उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

शोध-प्रबन्ध

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

शोधार्थी
गुमान सिंह जाटव

शोध–पर्यवेक्षक
डॉ .पूरणमल मीना (विभागाध्यक्ष)

हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाई माधोपुर

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2018

डॉ. पूरणमल मीना
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध प्रबन्ध **'उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना'** शोधार्थी **गुमान सिंह जाटव** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है—

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूँ।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीना
(शोध पर्यवेक्षक)

लघु सार (Abstract)

समाज में रहने वाला हर एक प्राणी समाज में अपने को महज पहचान पाने, अपनी जगह तलाश पाने, अपने होने और न होने के बीच के सम्बन्धों की पड़ताल कर पाने, अपने बारे में 'क्यों' और 'क्यों नहीं' की जिज्ञासाओं में रमते रहने में ही अपनी सारी जिन्दगी गुजार डालता है। सर्वाधिक धार्मिक आग्रहों, नैतिक प्रतिमानों, मूल्य सम्मत प्रतिज्ञाओं और लोकाचरण की कट्टरताओं में जीने को विवश यह सर्वाधिक धार्मिक जघन्यताओं, नैतिक विसंगतियों, मूल्य विसर्जित इरादों और अराजक छूटों में जीता रहता है। स्वयं 'अश्क' जी ने उपन्यास के विषय में कहा भी था—"उपन्यास जिन्दगी का शास्त्र है। इसमें सारी जिन्दगी का निचोड़ होता है। उपन्यास मैंने जिन्दगी के शास्त्र की तरह लिखा है। ऐ मेरे पाठकों! ऐ मेरे बेटो! तुम जिन्दगी को समझो ...।"

'उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना' को शोध का विषय बनाने के पीछे मेरा यही उद्देश्य रहा है कि 'अश्क' जी के उपन्यासों में चित्रित समाज और कृति–सत्य जितना प्राणी के सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक यथार्थ से जुड़ा है, उतना ही चेतन पात्रता से उसके जीवन के भ्रमजालों को दिशा–निर्देश देने वाली नियति से और अन्ततः एक निम्न–मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक परिप्रेक्ष्य की सपुंज नियति से।

'अश्क' जी की दृष्टि में जो रूप उभरकर सामने आता है वह आज के समाज के लिए बहुत उपयोगी है। आपसी स्वार्थ और मतभेदों की लड़ाई में पिसता मानव जीवन कब तक अधोगति को प्राप्त होता रहेगा, यह चिन्ता 'अश्क' जी के सम्पूर्ण साहित्य में ध्वनित होती है। वे व्यक्ति को समाज से, समाज को व्यक्ति से अलग करके देखने के अभ्यस्त नहीं है, उन्हें दोनों एक–दूसरे के पूरक लगते हैं।

इस विषय से जुड़े अनेक प्रश्नों को, इनके अन्तर्गत उठाया गया है तथा उनके समाधान की दिशा में एक छोटा–सा सार्थक प्रयास भी किया गया है। 'उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना' के व्यवस्थित और सर्वांगीण अध्ययन के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को प्रस्तावना, उपसंहार और परिशिष्ट को छोड़कर छः अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में 'अश्क' जी की बहुरंगी तथा विविधधर्मी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन किया गया है। साहित्य में 'अश्क' जैसा अनुभवपूर्ण जीवन कम ही साहित्यकारों को मिला है। इस अध्याय में 'अश्क' जी की 'औपन्यासिक रचना दृष्टि' शीर्षक के अन्तर्गत 'अश्क' जी का संक्षिप्त जीवन और सृजन परिचय, उपन्यास और समाज के सम्बन्धों का विवेचन और उनके सामाजिक दृष्टिकोण का विवेचन विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय अध्याय में 'अश्क' जी के उपन्यास और समकालीन परिवेश को चित्रित किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में 'अश्क' जी के उपन्यास और समकालीन परिवेश शीर्षक के अन्तर्गत रचनाकार का युग परिवेश (स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज की पूर्व पीठिका, नव जागरण, साहित्य में उसकी छवि, भाषा कौशल) और 'अश्क' के उपन्यासों में समाज और सामाजिक संरचना की वर्गीय भूमिका तथा सामाजिक स्वातन्त्र्य : दशा और दिशाएँ तथा अन्य विविध पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय में 'अश्क' जी के उपन्यासों में परिवेशगत वैशिष्ट्य एवं वैचारिक सृष्टि की चर्चा हुई है। परिवेश की विभिन्न रूपों में—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक तथा धार्मिक—चर्चा की गई है। इसी अध्याय में स्वाधीन भारतीय समाज का वैचारिक धरातल और 'अश्क' के उपन्यासों में उसका दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'अश्क' के उपन्यासों में पात्र सृष्टि एवं उनका सामाजिक दृष्टिकोण शीर्षक के अन्तर्गत प्रमुख पुरुष पात्रों एवं प्रमुख स्त्री पात्रों के मध्य सामाजिक दायित्व बोध का ज्ञान कराना है। इसी अध्याय के अन्तर्गत 'अश्क' जी ने कालजयी पात्र सृष्टि और उनमें व्याप्त संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह का भी सफल प्रयोग किया है।

पंचम अध्याय में अश्क के उपन्यासों में चित्रित समाज के विविध वर्गों का वर्णन किया गया है जिसमें उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग का यथार्थ चित्रण किया गया है।

षष्ठ अध्याय में उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय : एक विवेचन पर विस्तार से विचार किया गया है। इसमें 'अश्क' जी के 16 उपन्यासों का विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी के लगभग सभी उपन्यासों में सामाजिक चेतना को पर्याप्त उल्लेखनीय प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। 'अश्क' जी ने समाज की समस्याओं को विविध कोणों और माध्यमों से एक विशाल पैमाने पर प्रस्तुत किया है, जो आज के युग के व्यक्ति जीवन की एक संत्रास बनकर रह गयी है। अत: उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में प्रतिफलित सामाजिक चेतना को और अधिक जानने समझने के लिए ही मैंने उपर्युक्त शीर्षक 'उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना' को शोध–प्रबन्ध के रूप में चुना है। समग्रत: 'अश्क' जी की इस उपन्यास माला को 'सामाजिक चेतना' का महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

घोषणा–पत्र (शोधार्थी)

मैं घोषणा करता हूँ कि शोध–प्रबन्ध **'उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना'** में, जो शोधकार्य मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिये आवश्यक है। मैंने यह शोधकार्य **डॉ. पूरणमल मीणा (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)** के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्रोतों से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है। जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है, वह कहीं और किसी और डिग्री के लिए किसी भी संस्था में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि किसी भी नियम का उल्लंघन करने पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैंने किसी स्रोत से बिना, उसका नाम दर्शाये या जिस स्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

गुमान सिंह जाटव
(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी गुमान सिंह जाटव (RS/1417/13) द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीणा
(शोध पर्यवेक्षक)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर (राज.)

पीएच .डी .उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध का अनुमोदन

यह शोध प्रबन्ध **'उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना'** शोधार्थी **गुमान सिंह जाटव** (पंजीयन संख्या (RS/1417/13) शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (कोटा विश्वविद्यालय, कोटा) द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसे पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए अनुमोदित किया जाता है।

परीक्षक

शोध पर्यवेक्षक

दिनांक :

स्थान :

उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

शोध-सारांश

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

शोधार्थी
गुमान सिंह जाटव

शोध–पर्यवेक्षक
डॉ .पूरणमल मीना (विभागाध्यक्ष)

हिन्दी विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाई माधोपुर

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2018

शोध प्रबन्ध

उपेन्द्र नाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

गुमान सिंह
जाटव

2018

प्रथम अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की औपन्यासिक रचना दृष्टि

(अ) जीवन : संक्षिप्त परिचय

(ब) सृजन : संक्षिप्त परिचय

(स) उपन्यास और समाज : सम्बन्ध विवेचन

(द) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का समाज विषयक दृष्टिकोण

प्रथम अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की औपन्यासिक रचना दृष्टि

मध्यमवर्गीय परिवार से निकलकर किसी भी देश में शोहरत पाना बड़ा मुश्किल होता है अगर किसी को कामयाबी मिलती है तो कड़ी मेहनत और लम्बे समय के बाद। मगर कुछ कलाकार ऐसे भी होते हैं, जो किस्मत के धनी होते हैं। मध्यमवर्गीय होने और बिना किसी का सहारा पाने के बाद भी उन्हें सफलता बड़ी आसानी से मिल जाती है। ऐसे ही तकदीर वालों में से एक हैं—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'।

(अ) जीवन : संक्षिप्त परिचय

मुँशी प्रेमचन्द ने जीवन के वास्तविक यथार्थ को अपने उपन्यासों का आधार बनाया था। यह आधार इतना दृढ़ था कि बाद के उपन्यासकार भी इससे अछूते नहीं रह सके। सामाजिक जीवन के मानव चरित्र का सम्पूर्ण चित्र इन उपन्यासों में उभरता है, जो इनकी प्रमुख विशेषता है। अपने युग और उसके अन्तरविरोधों की गहरी पकड़ एवं पहचान ने ही प्रेमचन्द को महान् कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसलिए प्रेमचन्द के बाद के कथाकारों के लिए उनका साहित्य 'दीप स्तम्भ' के रूप में उपस्थित था। उसी यथार्थ के उज्ज्वल प्रकाश में—यशपाल, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', रामेश्वर शुक्ल एवं रांगेय राघव आदि ने भी अपनी साहित्य यात्रा प्रारम्भ की। साहित्य और जीवन से निकट का सम्बन्ध बनाये रखने वाली यह परम्परा निरन्तर मजबूत और विकसित होती चली गई। आज भी यह परम्परा शेखर जोशी, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, ज्ञानरंजन, अमरकान्त तथा स्वयं प्रकाश आदि के द्वारा जीवन यथार्थ को व्यक्त कर रही हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' समाजोद्देश्य परम्परा के प्रतिभावान हस्ताक्षर हैं। 'सितारों के खेल' (1940) उपन्यास से आरम्भ हुई उनकी उपन्यास यात्रा 'बांधो न नाव इस ठाँव' के बीच की लम्बी सृजन यात्रा में 'अश्क' जी जीवन की तलाश करते रहे हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में विषय वैविध्य जिस रूप में मिलता है, वैसा बहुत कम उपन्यासों में मिलता है। 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'शहर में घूमता आईना', 'एक रात का नरक', 'एक नन्ही किन्दील', 'पलटती धारा', 'बांधो न नाव इस ठाँव' (दो भाग), 'छोटे-बड़े लोग', 'निमिषा', 'चन्दा', 'चेतन संक्षिप्त एवं वृहद्', 'संघर्ष का सत्य', 'नन्ही सी लौ' जैसे विषयों पर उपन्यास लिखना विस्तृत जीवन अनुभव और जीवन की परिपक्व समझ का द्योतक है। सामाजिक जीवन में मनुष्य भूमिका और उसका महत्त्व जैसे विषयों पर लिखने से पहले समाज में स्वयं अपनी स्थिति का भाव न जाने उन्हें कितनी बार हुआ होगा। वह ताजगी जो उनके उपन्यासों में मिलती है, वह पुस्तकीय ज्ञान और चिन्तन की नकल से विस्तृत नहीं है। वह आदमी को आदमी बनाये रखने की चिन्ता से उत्पन्न है। इतिहास और पुराणों की दुनिया में भी उन्होंने उतनी मानवता की खोज की है, जो धीरे-धीरे समाज से लुप्त होती चली जा रही है।

भूख मानव की सबसे बड़ी कमजोरी भी है और सबसे बड़ी शक्ति भी। महान् कवियों की पीड़ा और उनके व्यक्तिगत दुःख-दर्द के रूप में परिणित होकर अध्यात्म की जिस ऊँचाई तक पहुँचते हैं, वहाँ भी समाज की उपेक्षा नहीं हुई है। भक्तिकाल के महान् कवि तुलसीदास के अद्भुत ग्रन्थ 'रामचरितमानस' का उत्तरकाण्ड और 'सूरसागर' में व्यक्त सूरदास के विचारों को उनके समाज से निरपेक्ष करके देखा ही नहीं जा सकता। उनकी शक्ति तो वहीं है, जहाँ अपना युग और उसके अन्तर्विरोध उभरकर सामने आते हैं। 'अश्क' जी ने अपने उपन्यासों में जीवन के इन्हीं तत्त्वों की पहचान की है। इसी कारण वे महान् रचना रच सके, जिसका सारा दारोमदार समाज पर अवलम्बित है।

सबसे मुख्य बात तो यह है कि 'अश्क' किसी राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक या मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं हैं। उन्होंने केवल चित्रण का प्रयास किया है। वैसे

आधुनिक लेखकों के समान 'अश्क' जी में भी आत्मश्लाघा तथा अहंकार की कमी नहीं, फिर भी अपने उपन्यासों को तथा अपने को बहुत कुछ तटस्थ रख सके हैं।

प्रखर चेतना और निर्भीक वाणी के जरिये साहित्यिक और साहित्येतर मोर्चों पर अनेक लड़ाइयाँ लड़ने वाले व मध्यमवर्गीय समाज से गहन सम्पृक्ति रखने वाले उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जन्म 14 दिसम्बर, 1910 को भारद्वाज गोत्र के एक सारस्वत जसरा ब्राह्मण परिवार में जालन्धर (पंजाब) के कल्लोवानी मुहल्ले के अपने पैतृक निवास में हुआ। अपने समकालीन और नये लेखकों को बेहतर लिखने के लिए प्रेरित करने वाले 'अश्क' जी का बचपन और युवावस्था अभावों और विपन्नता में बीता एवं उनका सामाजिक परिवेश व उनके माता-पिता का परस्पर विरोधी स्वभाव, उनके संवेदनशील मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गये। इसी परिवेश में उन्हें आगे चलकर भारतीय मध्यम वर्ग के सच्चे और व्यापक चित्रण के लिए उत्पन्न महत्त्वपूर्ण व उपयुक्त मिजाज दिया।

जालन्धर में एक अर्से से 'अश्क' जी का परिवार परम्परागत यजमानी-पुरोहिताई के पेशे से अपनी आजीविका अर्जित करता रहा, लेकिन 'अश्क' के परदादा ने यह पैतृक व्यवसाय त्याग दिया और पटवारी की नौकरी कर ली और यहीं कल्लोवानी मोहल्ले में एक छोटा-सा मकान बनवा लिया। उनके चार बेटों में से तीसरे बेटे मूलराज ने भी कपूरथला की रियासत में अपने पिता के ही व्यवसाय को अपनाकर पटवारी बनने का फैसला किया।

मूलराज के एकमात्र पुत्र माधोराम जो कि 'अश्क' जी के पिता थे, अभी तीन वर्ष के ही थे, जब उनकी माँ प्लेग की शिकार हो गईं, जिसमें मूलराज, उनके एक पागल भाई और उनकी माँ को छोड़कर सारे कुनबे को साफ कर दिया था। पं. मूलराज के पटवारी होने के नाते रियासत के तूल अर्ज में जरीब़ हाथ में लिए जगह-जगह घूमना पड़ता था। इस कारण मूलराज ने अपने एकमात्र बेटे माधोराम को अपनी माँ, 'अश्क' जी की परदादी गंगादेई के पास जालन्धर भेज दिया। परदादी तो यजमानों के यहाँ चली जाती और पीछे पण्डित माधोराम अपने दोस्तों के साथ दुनिया—जहाँ की खरमस्तियाँ करते अखाड़े जाते, लड़ाई-झगड़ा करते। मोहल्ले के लड़कों के वे 'रिंग लीडर' थे। इन्हीं दिनों वे सभी तरह के ऐब सीख गये। जब मोहल्ले वाले उनकी दादी से शिकायत करते तो वह उनको गालियाँ

देतीं। माधोराम बेहद मेधावी युवक थे, लेकिन ऐसे में मेधा क्या कर सकती है? उनकी सारी मेधा शरारतों, दंगों और शराबनोशी वगैरह में विनष्ट होती रहती। परिणामत: मैट्रिक में वे फेल हो गये। किसी ने कुछ कह दिया, बुरा मान गये। अगले वर्ष फिर परीक्षा में बैठे तो जिले भर में अव्वल आये।

परन्तु मूलराज अपने बेटे को आगे नहीं पढ़ा सके और अपने उद्दण्ड बेटे को बांधने के लिए आठवीं कक्षा में ही उनकी शादी होशियारपुर पण्डित रुद्रमणि मिश्र की लड़की वासन्ती देवी से कर दी।

पं. माधोराम के यहाँ सात बेटे और एक बेटी पैदा हुई, लेकिन सबसे बड़ा बेटा और एकमात्र बेटी शैशव में ही ईश्वर को प्यारे हो गये। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' शेष छ: भाइयों में से दूसरे नम्बर के थे। उनके बड़े भाई डॉक्टर थे। छोटे चार भाई क्रमश: महापालिका के अवकाश प्राप्त अधिकारी, वैद्य, अवकाश प्राप्त स्टेशन मास्टर और दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार हैं। 'अश्क' जी के पिता पं. माधोराम स्टेशन मास्टर थे। क्रूरता एवं कठोरता के बावजूद परम उदार, मनमौजी, सरल हृदयी माधोराम खुद अपने जीवन में कुछ नहीं कर पाये।

पं. माधोराम अपनी तमाम खामियों के बावजूद बेहद उदार हृदय, बात के सच्चे और कौल के पक्के, दृष्टि सम्पन्न (विजनरी) आदमी थे, लेकिन ज्यादातर बाहर वालों और अपने चेले-चांटों के लिए। न सिर्फ शराब पीते थे, अपितु जुआ भी खेलते थे और अनेक तरह से रुपये उड़ाते थे। 'कौड़ी न रख कफ़न के लिए' उनका प्रिय नारा था। और 'अश्क' जी ने इस बात की पुष्टि की थी कि जब 1943 में उनका देहान्त हुआ तो घर में एक पैसा भी नहीं था, लेकिन उन्होंने अपने पुत्र के मन में यह आकांक्षा जगायी कि वह जो भी करे, उसे उत्कृष्टता के शिखर तक पहुँचाये। 'अश्क' जी ने जहाँ पिता से महत्त्वाकांक्षा और उसे पूरा करने के लिए अनथक श्रम करना सीखा, वहीं माँ से तकलीफ को साहस एवं गरिमा से सहन करना और जिन्दगी को नैतिक मापदण्डों के अनुसार चलाना।

"1918 में 'अश्क' जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर के साथ साईंदास ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल में हुई। 1927 में उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की और 1930 में जालन्धर के डी;ए.वी. कॉलेज से बी.ए. किया। बी.ए. की डिग्री हासिल करने के कुछ

महीने पहले और बाद में भी 'अश्क' जी ने अपने ही स्कूल में अध्यापन कार्य किया। 1931 में उन्होंने स्कूल मास्टरी छोड़ दी।"[1]

बी.ए. करने के पश्चात् उनका प्रथम विवाह 1932 में बस्ती गजाँ, जालन्धर की एक प्राइमरी पास लड़की शीला देवी से हुआ। अनाकर्षक, अनगढ़, अल्हड़ और लगभग अनपढ़ शीला देवी इस विनोदप्रिय लेखक, इस कटु और क्रुद्ध सामाजिक, आन्दोलनकारी के निर्माण में सबसे ज्यादा योगदान करने वाली थीं। जो जिन्दगी भर उन तमाम व्यक्तियों को अपना निशाना बनाता रहा है, जो अहंकार, बड़बोलेपन और फरेब का सहारा लेते हैं और 'अश्क' जी ने शायद सबसे ज्यादा वार खुद अपने पर किए हैं। शीला देवी के साथ 'अश्क' जी का विवाह (ज्यादातर भारतीय शादियों की तरह) परिवार द्वारा तय किया गया था जिसे 'अश्क' जी के तानाशाह पिता ने शराब के नशे के दौरान उदारता की एक हरब-मामूल झोंक में वचनबद्ध होने के बाद 'अश्क' जी पर थोप दिया था। शादी के पश्चात् शिमला स्वास्थ्य स्थल के लिए चले गए। शिमला से लाहौर चले आये जहाँ तीन वर्ष तक लाला लाजपतराय के दैनिक 'वन्दे मातरम्' तथा 'वीर भारत' तथा उर्दू के अन्य दैनिक साप्ताहिक समाचार पत्रों में संवाददाता, अनुवादक तथा सह-सम्पादक के रूप में कार्य करते रहे।

लाहौर के अपने अनुभवों के बारे में 'अश्क' जी ने श्री आर.के. शौनक को लिखा था—"1934 और 1936 के दरम्यान मेरी जिन्दगी में बहुत कुछ ऐसा घटा कि जिसने न केवल अपने जीवन के बारे में मेरा दृष्टिकोण बदल दिया, बल्कि मुझे वह यथार्थवादी दृष्टि भी दी, जिससे मैंने दुनिया को एक नयी नज़र से देखना सीखा और पहले से एकदम अलग किस्म की रचनाएँ कीं।...संघर्ष तो मेरा कटुतम था, लेकिन मुझे वह खलता नहीं था। मैं उसे 'पार्ट ऑफ द गेम' समझता था और उस तमाम दलदल, कीचड़ और गलाज़त में रहते हुए, मैं न उसके बारे में लिखता था, न उसके बारे में सोचता था। उस जमाने में, मैं कल्पना से अनोखे और अनजाने प्यार की रूमानी कहानियाँ लिखता था। बिना वैयक्तिक अनुभव के क्रान्तिकारियों के किस्से कहता था। आदर्श नारियों, प्रेमियों, नेताओं, कलाकारों को अपनी कहानियों के पात्र बनाता था। मेरी उन कहानियों को (और मेरी फाइल से कम-से-कम 40 ऐसी प्रकाशित कहानियाँ पड़ी हैं) वास्तविक जीवन का जरा-सा भी संस्पर्श नहीं मिला था।"

"जब मैं लाहौर में कानून पढ़ता था और मेरी कहानियाँ तथा कविताएँ हर सप्ताह छपती थीं और मैं अपने आपको कुछ समझता भी था। एक दिन अचानक मुझे मालूम हुआ कि मेरे ससुर पागल हो गये हैं। उनके भाई ने उन्हें लाहौर के पागलखाने में भर्ती कर दिया है। मेरी सास जेठ से लड़कर लाहौर चली आई है और उसने एक सेठ के यहाँ सात रुपये महीने पर महाराजित के तौर पर रोटी पकाने और बर्तन आदि मलने का काम कर लिया है, ताकि लाहौर में रहकर पति की देखभाल कर सके। मैं हत्प्रभ और स्तब्ध रह गया, मुझे यह किसी तरह स्वीकार न हुआ कि मेरी सास महाराजिन की नौकरी करे। परन्तु जब मैं उस सेठ के यहाँ गया, उन्होंने मेरी बड़ी आव-भगत की। मैंने देखा कि मेरी सास वहाँ बहुत खुश है। सोचा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उस सूरत में जब वह लड़की के घर का अन्न नहीं छू सकती, मुझे इस कर्मठता की प्रशंसा करनी चाहिए कि जेठ के यहाँ अपमान सहने के बजाय यहाँ स्वाभिमान से जीवनयापन कर रही है। लेकिन दुर्भाग्य से उस सेठ की लड़की से मेरे मोहल्ले के मेरे एक ऐसे समकक्ष की सगाई हो गई जो उसी वर्ष डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गया और जो डिप्टी मजिस्ट्रेट होने के बाद मोहल्ले वालों को हेय समझने लगा था और जिसने मेरा हल्का-सा अपमान भी कर दिया था। मेरे अहम् को दोहरी ठेस लगी। मेरे लिए वह स्थिति एकदम असह्य हो उठी। बार-बार मुझे ख्याल आने लगा कि जब उसकी शादी होगी तो मेरी पत्नी की स्थिति क्या होगी। महाराजिन की लड़की की ही ना और मेरी? महाराजिन के दामाद की। मैं चाहता था कि मेरी सास वहाँ से नौकरी छोड़ दे, पर वह ऐसा करने को तैयार नहीं थी। तब मैंने तय किया कि डिप्टी कलेक्टरी के कम्पटीशन में तो मैं नहीं बैठ सकता (मेरी उम्र ज्यादा हो गई थी) परन्तु मैं सब-जजी के कम्पटीशन में तो बैठ सकता हूँ। मेरी पत्नी उस घर में जाये तो जज की पत्नी की हैसियत से जाये, केवल रसोई देखने वाली महाराजिन की लड़की की हैसियत से नहीं।"[2]

इसी बीच प्रशासनिक प्रतियोगिता में शरीक होने के उद्देश्य से 'अश्क' जी ने 1934 में कानून में प्रवेश किया और प्रथम श्रेणी से विशेष योग्यता हासिल कर उत्तीर्ण हुए। सात सौ छात्रों में से आठवें थे, लेकिन कुदरत को कुछ और ही मंजूर था और सब-जजी की परीक्षा में वे नहीं बैठे क्योंकि शीला देवी जिनके लिए 'अश्क' जी सब-जज बनना चाहते थे 11 दिसम्बर 1936 को 2 वर्ष के बेटे उमेश को छोड़कर उनका साथ छोड़ गईं। इस हादसे का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने प्रशासनिक

प्रतियोगिताओं और वकालत का ख्याल छोड़ दिया, कानूनी किताबों को त्याग दिया और एक लेखक के रूप में अपनी नीयती को पहचान लिया।

शीला देवी की मौत और 1936 से 1939 के बीच अन्य समस्याओं से वह कुछ इस कदर घिरे रहे कि उनके जीवन और लेखन का नजरिया ही बदल गया।

'अश्क' जी जिन्दगी को उसकी कठोर यथार्थता में देखने के बाद एक पूर्ण परिवर्तित व्यक्ति के रूप में उभरे। अपने काल्पनिक और वापसी स्वर्ग को उन्होंने तिलांजलि दे दी थी। कल्पना प्रधान मानी कहानियाँ लिखना छोड़कर चारों ओर बिखरे विराट जनसमुदाय के जीवन और दुःख-दर्द को चित्रित करने का संकल्प लिया।

इसी दौर में 'अश्क' जी कृष्णचन्द्र और राजेन्द्र सिंह बेदी जैसे कथाकारों के सम्पर्क में आये। इतने सारे जीवन्त और मूर्धन्य लेखकों के सम्पर्क का गहरा असर 'अश्क' जी पर पड़ा और उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के अगले उर्वरकाल में प्रवेश किया।

उन्होंने एक के बाद एक उत्कृष्ट कहानियाँ और नाटक लिखे। 1940 में 'अश्क' जी का 'सितारों के खेल' उपन्यास नजर में आया। यह उपन्यास एक प्राचीन हिन्दू गाथा के पुनर्मूल्यांकन के उद्देश्य से बुना गया था।

पत्नी के निधन के बाद 'अश्क' जी ने अपना पहला काव्य-संग्रह 'प्रात: प्रदीप' पूरा किया जो 1938 में छपा। दुर्भाग्य से इन्हीं भावुकतापूर्ण दुःख भरी और दिल को कचोटने वाली कविताओं के कारण 'अश्क' जी एक स्केण्डल में भी उलझ गए। "एक लड़की थी, वह एक हिन्दी स्कूल में पढ़ाती थी। उसने 'प्रात: प्रदीप' की कविताएँ पढ़ीं और मंच से सुनी तथा वह उनके यहाँ आने लगी। एक दिन क्रोध और तनाव की चरम सीमा तक पहुँच कर उन्होंने उस युवती से ताल्लुक तोड़ लिया।वह लड़की निराशा में शादी करके अफ्रीका चली गयी। इस कटु प्रसंग पर और वह प्रसंग जैसे समाप्त हुआ। उस पर 'अश्क' जी अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'गर्म राख' लिख चुके थे। इस स्केण्डल से परेशान होकर 'अश्क' जी 1938 में प्रीतनगर चले गये और वहाँ उन्होंने अपने वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' को लिखना शुरू कर दिया।"[3]

प्रीतनगर में 'अश्क' जी के साथ एक और प्रवाद खड़ा हो गया। 'अश्क' जी ने महसूस किया कि अकेले विधुर के रूप में जीवन असम्भव होगा और 'गिरती दीवारें' उपन्यास की पूर्णता के साथ ही उन्होंने फरवरी 1941 में मायादेवी से विवाह कर लिया।

'अश्क' जी ने लिखा है कि—"यह विवाह एक नियोजित दुर्घटना सिद्ध हुआ। श्रीमती ऐसी आयीं कि उन्होंने डेढ़ महीने में मुझे मजबूर कर दिया कि मैं नौकरी छोड़ूं और भाग जाऊँ। अत: मैंने नौकरी छोड़ दी और बैंगलोर भाग जाने की योजना बना ली। लेकिन तभी कृष्ण चन्द्र ने मुझे दिल्ली बुला लिया और मैं रेडियो में नाटककार के तौर पर मुलाजिम हो गया।"[4] लेकिन अपनी दूसरी पत्नी माया देवी से सम्बन्ध विच्छेद करके अगले छ: महीने के भीतर ही 'अश्क' जी ने चुपचाप 1941 में कौशल्या जी से दिल्ली के अपने निवास पर पुनर्विवाह कर लिया। तब से 1996 तक 55 वर्ष तक 'अश्क' जी और कौशल्या जी सुखपूर्वक, संघर्ष करते और मुसीबतें झेलते रहे।

1944 में उन्होंने रेडियो की नौकरी छोड़ दी और छ: महीने 'सैनिक समाचार' के हिन्दी संस्करण का सम्पादन किया। इसके बाद जनवरी 1945 में पटकथा और संवाद लेखक के रूप में फिल्मिस्तान (बम्बई) में चले गये। फिल्मिस्तान में 'अश्क' जी ने शशिधर मुखर्जी और निर्देशक नितिन बोस के साथ दो वर्षों तक काम किया। संवाद, पटकथा और गीत लिखने के अलावा उन्होंने दो फिल्मों में अभिनय भी किया। 'मजदूर' जिसके निर्देशक नितिन बोस थे और 'आठ दिन' जिसका निर्देशन अशोक कुमार ने किया। 'मजदूर' में 'अश्क' के संवाद 1945 के सर्वश्रेष्ठ संवाद माने गये। बम्बई प्रवास के दौरान 'अश्क' 'इप्टा' से भी जुड़े और नाटक 'तूफान से पहले' लिखा। इस नाटक को प्रसिद्ध अभिनेता बलराज साहनी ने 'इप्टा' के मंच पर प्रस्तुत किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर लिखे गये इस नाटक पर उसी समय ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। लेकिन 'अश्क' जी को फिल्मी दुनिया ज्यादा रास नहीं आयी, परन्तु उन्हें कभी यह महसूस हुआ कि वे उस चमक-दमक वाली दुनिया में खप सकते हैं, लेकिन वहाँ रहकर अपनी आत्मा को कैसे बेचा जा सकता था। प्रेमचन्द, सुदर्शन, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर जैसे साहित्यकारों ने फिल्मी दुनिया में काम किया, लेकिन सबका जल्दी ही मोहभंग हो गया था, फिर 'अश्क' जी कैसे वंचित रह जाते।

बम्बई प्रवास के दौरान 'इण्डियन पीपुल्स थिएट्रिकल एसोसिएशन' (इप्टा) और 'प्रगतिशील लेखक संघ' के साथ 'अश्क' के सम्बन्धों ने उन्हें फिल्मों की नकली दुनिया से निकाल कर वास्तविकता के संसार में विचरण करने की रचनात्मक सुविधा प्रदान की। वह फिल्मी दुनिया से सम्बन्ध तोड़ने की सोच ही रहे थे कि बीमारी की चपेट में आ गये। 1947 में 'अश्क' जी पंचगनी के बेल ऐयर सैनेटोरियम अस्पताल में भर्ती हो गये, जहाँ दो वर्षों तक राजयक्ष्मा से संघर्ष करते रहे। इसी बीच देश विभाजित हो गया। 'अश्क' जी ने इस त्रासदी पर अपनी प्रसिद्ध कहानी 'टेबल लैण्ड' लिखी।

थोड़ा स्वस्थ होने के बाद 'अश्क' जी 1948 में त्रिवेणी संगम इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश) पहुँचे और इसी शहर को अपना निवास स्थान बना लिया।

इलाहाबाद आने के बाद से ही 'अश्क' जी ने अपने लिए यह ख्याति अर्जित की कि वे हिन्दी के सर्वाधिक विवादग्रस्त लेखकों में से एक हैं। भैरव प्रसाद गुप्त ने कहा भी है कि—"यह लोकप्रियता तथा विवादग्रस्तता बहुत हद तक 'अश्क' जी को स्वयं अर्जित है। मुझे तो ऐसा लगता है कि 'अश्क' जी ने ऐसा करके अपने व्यक्तित्व के ऊपर एक खोल चढ़ा लिया है, जिसे भेद कर उन्हें कोई नहीं देख पाता और वे रक्षा कवच के भीतर बैठे मजे से जमाने पर हँसते हैं।"[5]

लेकिन 'अश्क' पर की गई यह टिप्पणी भ्रामक सिद्ध हुई। तत्पश्चात् उन्होंने अपना पूरा समय लेखन को समर्पित किया और एक अत्यन्त विवादग्रस्त बहुचर्चित एवं बहुविध प्रतिभा के साहित्यकार के तौर पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवनकाल में पंजाबी में एक, उर्दू में चालीस और हिन्दी में साहित्य की सभी विधाओं में सत्तर से अधिक पुस्तकें लिखीं। उनकी कृतियाँ उनके यथार्थवादी चित्रण और स्वाभाविक ऊर्जा के कारण चर्चित हैं। बरमिंघम स्थित टेलीविजन केन्द्र ने 'अश्क' जी से उनके जीवन और साहित्य के बारे में लम्बा इन्टरव्यू रिकार्ड किया।

जिन्दगी के सात-आठ महीनों में 'अश्क' जी ने बहुत यन्त्रणा झेली। पहले कमर में चोट आयी, इधर आँखों की ज्योति मन्द पड़ गई थी। धीरे-धीरे थोड़ा आराम होने पर कुछ दिन छड़ी के बावजूद फिर बाथरूम में फिसल कर गिर गये और सीने व कंधे में चोट आयी। लगातार लेटे रहने के कारण पेट खराब हो गया। इसके अतिरिक्त दमा की बीमारी

ने परेशान कर दिया। कमजोर हो गये, नींद नहीं आती थी, भूख नहीं लगती थी। डॉक्टर की सलाह से नींद की गोली लेते रहे। रात को जब पानी पीने उठे तो चक्कर खा कर गिर गये और सुबह एक्स-रे से पता चला कि कूल्हे की हड्डी टूट गई है। डॉक्टर ने पलस्तर लगाकर पैर में ईंटें लटका दीं और मेजर ऑपरेशन करने की सलाह दी। तब उन्हें 20 अगस्त को स्वरूप रानी मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। सारा परिवार उनके साथ था, सिर्फ नीलाभ जी दिल्ली में थे। उन्हें भी फोन से बुला लिया गया। डेढ़ महीना अस्पताल में रहने के बाद डॉक्टरों की राय से उन्हें घर ले आया गया, लेकिन पूरी तरह ठीक होने में दो महीने और लगने थे। 'अश्क' जी बड़े आशावादी थे, स्वयं कहते कि मैं 15-20 दिन में उठने-बैठने लगूँगा।

कई तरह की बीमारियों के बावजूद 'अश्क' जी के दुबले-पतले तन में दृढ़ इच्छा शक्ति थी। मुश्किलों, मुसीबतों, दुश्वारियों और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने और उनसे पार पाने की अदम्य ऊर्जा थी। 'औसान खता न होने दो' वे अक्सर कहा करते थे और बुरे से बुरे हालात में भी बड़े धीरज से सोच कर रास्ता निकाल लेते थे। सारी उम्र 'अश्क' जी समाज की रूढ़ियों, कुरीतियों, बुराइयों, अत्याचार और अशिक्षा तथा अंधकार की शक्तियों के विरुद्ध लड़ते रहे। अपनी पेचीदा होती बीमारी का सामना भी उन्होंने बड़े साहस से किया और मौत से भी उसी तरह संघर्ष किया।

3 जनवरी, 1996 को अचानक उनकी हालत बहुत बिगड़ गई, उसी वक्त उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जाते ही ऑक्सीजन लगाकर चिकित्सकों ने आपस में राय-मशविरा किया, खून चढ़ाया गया डॉक्टरों ने कोई कसर नहीं छोड़ी लेकिन सब बेकार और 17 जनवरी आते-आते 'अश्क' जी इतने घिर गये कि उनकी नब्ज डूब गयी थी, साँस रुक गई थी। डॉक्टर इन्हें रिवाइव कर रहे थे। "कुछ समय बाद नब्ज वापस आ गयी, साँस चलने लगी, दिल धड़कने लगा लेकिन वे बेहोश थे। सायं तक यही सिलसिला चलता रहा। डॉक्टर दवाएँ, दुआएं, बेटे-पूतों, बहुओं की अनथक सेवा-सुश्रूषा, 'अश्क' जी को किसी तरह बचा लेने के प्रयास सब असफल हो गये और 'अश्क' जी मौत से लड़ते रहे और 18 जनवरी, 1996 को सूरज के डूबने के साथ ही सिंक कर गये, उस बड़े जहाज की तरह जो प्रचण्ड तूफान के थपेड़े खाता धीरे-धीरे डूबता है। बस उसकी ध्वजाएँ और

बत्तियाँ देर तक दिखाई देती रही हैं। 'अश्क' जी की यादें, उनका स्वर, उनका जलाया हुआ दिया अब भी हमारे साथ है।"[6]

"जिस तरह 'अश्क' जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'दीप जलेगा' में साहित्य को 'समरांगण' नाम दिया है उसी तरह जिन्दगी को भी युद्ध का मैदान मानते थे। साहित्य के प्रति समर्पित थे, लिखना उनका जीवन था इसके साथ घर-परिवार के प्रति भी उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभाया।"[7]

'अश्क' जी बहुत शौकीन मिजाज थे। अपने छोटे पोते की शादी में कहने लगे— "मेरा अचकन पुराना हो गया है, मेरे लिए नया अचकन बनवा दो। शादी तक मैं कुर्सी पर बैठने लगूँगा और नया अचकन पहनूंगा। वे सदा अचकन के साथ दो टोपियां बनवाते थे।"[8]

'अश्क' जी का व्यक्तित्व विविध आयामी है। 'अश्क' जी सामाजिक इतिहास, घुमक्कड़ी और अनदेखे को देखने की अदम्य इच्छा के कारण जीवन भर प्यासे से घूमते रहे। साहित्यिक वातावरण को बनाये रखने के लिए भी घूमना बहुत जरूरी है। 'अश्क' जी अपने साहित्य जगत को विस्तृत करने के लिए दिल्ली में मण्टो, ख्वाजा अब्बास, फैज, नगेन्द्र, गिरिजा माथुर और अन्य मूर्धन्य विद्वानों के सम्पर्क में सदैव बने रहे।

'अश्क' जी खुशमिजाज व्यक्ति थे। वे किसी व्यक्ति को जरूरत से ज्यादा गम्भीरता से लेने से इन्कार करते थे और अपने प्रति तो सबसे कम गम्भीरता बरतते थे। अक्सर उन्हें उसी साँस में किसी व्यक्ति की हँसी उड़ाते और उसकी रचनाओं की भरपूर प्रशंसा करते पाया जा सकता था। लोगों को 'अश्क' जी के ठहाके मारने का ढंग पसन्द नहीं था। विशेष रूप से अपने ही चुटकुलों और लतीफों पर। उन्हें 'अश्क' जी के बोलने का ढंग पसन्द नहीं था, बिना रुके, और अपने ही बारे में उन्हें 'अश्क' जी का पहनावा पसन्द नहीं था। इतना अजीब और गैर-मौजू। जब 'अश्क' जी अपनी वास्तविक और भावी उपलब्धियों के बारे में बडबोलेपन से काम लेते थे तो झेंप 'अश्क' जी को नहीं, लोगों को होती थी। जब 'अश्क' जी अपनी बीमारी का जिक्र करते थे तो उन्हें अविश्वास भरे विनोद का एहसास होता था, लेकिन जब 'अश्क' जी नब्ज दिखाने के लिए हाथ बढ़ाते थे तो वे घबराकर पीछे छिप जाते थे।"[9]

इकबाल के शेर में 'अश्क' जी यकीन रखते थे—

खुद ही को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले,
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।

पिता की क्रूरता और कठोरता के संस्कार ने 'अश्क' जी को बांधा नहीं था। जीवन के तथाकथित लाभ-लोभ ने जकड़ा नहीं था। भौतिक चकाचौंध ने उनकी आँखों को चौंधियाया नहीं था, बड़े बनने की ललक में अपनों को भूल जाने की इच्छा उसके मन में कभी नहीं उठी। अपनी जमीन को छोड़कर अन्यत्र विचरण करने का विचार उन्हें मोहित नहीं कर पाया था। जीवन की बड़ी किताब उनके सामने खुली पड़ी थी, जिनके एक-एक पन्ने को उन्हें अच्छी तरह से चित्रित करना था। उनका बचपन अभावों और विपन्नता में बीता एवं उनका सामाजिक परिवेश व उनके माता-पिता के परस्पर विरोधी स्वभाव मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गये थे। इसी परिवेश ने उन्हें आगे चलकर भारतीय मध्य वर्ग के सच्चे और व्यायपक चित्रण का अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति का आधार बनाया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की इस बेजोड़ हस्ती के दुनिया से उठ जाने से साहित्य जगत को करारी चोट पहुँची है। भारतेन्दु के बाद हिन्दी साहित्य की अनेकानेक गतिविधियों का केन्द्र यदि कोई एक रचनाकार था, तो वह 'अश्क' जी ही थे।

(ब) सृजन : संक्षिप्त परिचयसन् 1936 तक पहुँचते-पहुँचते 'अश्क' जी ने लेखक बनने का पूरी तरह संकल्प कर लिया था। आजीवन लेखन के आधार पर जीवित रहने का उनका संकल्प सराहनीय है। अपने इस संकल्प की पूर्ति के लिए वे पंजाबी, उर्दू और हिन्दी के चर्चित और प्रतिष्ठित लेखकों से मिलते रहे। इसी दौर में 'अश्क' जी कृष्ण चन्द्र और राजेन्द्र सिंह बेदी जैसे कथाकारों के सम्पर्क में आये। उदय शंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों का भी उन्हें साथ मिला, हालाँकि 'अश्क' जी जब ग्यारह वर्ष ही के थे, तब ही उन्होंने पंजाबी में तुकबन्दियां लिखना शुरू कर दिया था। इसके अलावा उन्होंने 'आर्य भजन पुष्पांजलि' की तर्ज पर भजन भी रचे। चौदह वर्ष की आयु में 'अश्क' जी को 'दसुआ' के एक पंजाबी कवि ने कविता में दीक्षित किया। उन्हीं पंजाबी गुरु ने उनका तखल्लुक (उपनाम) 'शनावर' (तैराक) रख दिया।

शिष्यत्व ग्रहण करने के साल भर के भीतर 'अश्क' ने होली के अवसर पर पंजाबी कवि सम्मेलन में पुरस्कार स्वरूप चाँदी का पदक जीता। मगर 1925-26 के आस-पास 'अश्क' जी ने पंजाबी का दामन छोड़कर उर्दू में लिखना शुरू कर दिया था। पंजाबी भाषा का जब कोई भविष्य नहीं था। स्वयं 'अश्क' जी ने लिखा है—"पंजाबी विभाजन के बीज अंग्रेज बहुत पहले बो चुके थे। पंजाबी भाषा अपने प्रान्त में ही निर्वासित हो चुकी थी। पहली कक्षा से उर्दू पढ़ायी जाती थी, पाँचवीं से अंग्रेजी, पंजाबी की कोई पत्रिका न थी। हमारे शहर के पंजाबी कवि अधिकांशत: रंगरेज, नेचेबन्द, कोयला और सब्जीफरोश, मोटर ड्राइवर और क्लीनर थे, ज्यादातर उनमें शहर के प्रसिद्ध गुण्डे थे। ऐसे लोगों के बीच 'अश्क' जी को कविता करना बहुत खटकता था। जहाँ गुण्डों का शासन हो वहाँ 'अश्क' जी एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहते थे, ऐसा सोचकर उन्होंने अपने आपको पंजाबी से अलग कर लिया।"[10]

सभ्य लोगों की भाषा उर्दू थी। 'अश्क' जी ने उर्दू में शायरी में बाकायदा जालन्धर के प्रसिद्ध शायर उस्ताद मुहम्मद अली 'आजर' की शागिर्दी कुबूल की जो 'दबिस्तान-द-दाग' से सम्बन्ध रखते थे। 'अश्क' जी की पहली उर्दू नज्म 1926 में लाहौर में प्रसिद्ध उर्दू दैनिक 'मिलाप' के रविवारीय अंक में छपी थी। 1927 में उर्दू में लिखी उनकी पहली कहानी 'याद है वो दिन' के नाम से प्रकाशित हुई। गलदश्रु भावुकता से भरपूर यह कहानी पिटी-पिटायी थीम के गिर्द बुनी गई थी। प्रेमी-प्रेमिका, ररीब, बेरहम किस्मत, अनचाहे व्यक्ति से शादी और अन्तत: खुदकुशी। यह कहानी एक ऐसे आदमी के आत्मकथन से समाप्त होती है, जो खुदकुशी करने जा रहा है।

'अश्क' जी को कथाकार बनाने में उनके बड़े भाई डॉ. सुरेन्द्रनाथ शर्मा का बड़ा हाथ था। सुरेन्द्रनाथ की उस समय पढ़ने-लिखने में विशेष रुचि न होने से भैरों बाजार, जालन्धर के महन्त राम बुक सेलर्स से दो पैसे रोजाना पर एक नॉवल ले आते और दीमक की तरह उसे चाट जाते। उनके पढ़ने के बाद 'अश्क' जी उसे पढ़ते। 'अश्क' जी उन्हें पढ़कर स्वयं लिखने की कोशिश करते।

आठवीं कक्षा में ही 'अश्क' जी ने एक जासूस ब्लैक की तर्ज पर एक जासूसी उपन्यास भी लिखने की कोशिश की थी। भाई साहब तो उपन्यास पढ़ने के इसी शौक के

चलते एफ.ए. में हाजरियां पूरी न कर सके और घर बैठ गए, लेकिन 'अश्क' जी उस्ताद से नाराज होने पर गजलें लिखना छोड़कर लगातार कहानियाँ लिखते रहे।

कॉलेज के चार वर्षों के दौरान 'अश्क' जी ने उर्दू में ढेरों कहानियाँ, नज्में और गजलें प्रकाशित कीं। उर्दू में उनका पहला कहानी संग्रह 'नौ रतन' 1930 में प्रकाशित हुआ। 1931 में अपने गृह नगर से विदा ली और उर्दू शायर मेलाराम 'वफा' के साथ लाहौर चले गये। यह सरगर्मियों और हलचलों से भरी सूबे की राजधानी लाहौर ही थी जहाँ युवा उपेन्द्रनाथ ने तमामतर मुश्किलों में जिन्दा रहने के लिए सबसे बड़े पाठ पढ़े। अब तक उन्होंने अपने मौहल्ले के एक शायर मित्र की त्रासद मृत्यु की याद में अपना उपनाम 'शनावर' छोड़कर उनका तखल्लुस अपना लिया 'अश्क' यानि 'आँसू'।

लाहौर में 'अश्क' जी ने जैसा कि 1948 में इलाहाबाद जाने पर हुआ...खुद को एक ऐसे समुदाय के बीच पाया, जिसके स्वागत-सत्कार में बेपनाह ठण्डापन था और जो भी गर्मी थी, वह बाहर से आने वाले व्यक्ति के प्रति बेरुखी भरे रवैये में प्रकट होती थी। 'अश्क' जी का व्यक्तित्व पिता की दबंगई और लड़ाकूपन, महत्त्वाकांक्षा, दुस्साहसी और दृढ़ इच्छा शक्ति की, परस्पर विरोधी अन्त:क्रियाओं से पैदा होने वाली दरारों और जोड़ों की जटिल और बारीक संरचना है।

लाहौर आने पर प्रसिद्ध कथाकार सुदर्शन ने 'अश्क' जी की कुछ कहानियों को अपनी पत्रिका 'चन्दन' के लिए स्वीकृत किया।

1932 के शुरू में 'अश्क' जी ने मुँशी प्रेमचन्द से पत्र व्यवहार शुरू किया था। प्रेमचन्द की सलाह पर 'अश्क' जी ने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। 'अश्क' जी कभी अपने अग्रज कथाकार के शिष्य या अनुयायी नहीं बने लेकिन प्रेमचन्द का अन्तर 'अश्क' जी की जिन्दगी से सबसे निर्णायक प्रभावों में शामिल है। प्रेमचन्द जी ने 'अश्क' के हिन्दी हिज्जों की गलतियाँ सुधारीं। पढ़ने की सामग्री के बारे में राय-मशविरा किया, सुख-दुःख बाँटे, सांत्वना दीं और अपने परवर्ती कथाकार को अपने सपनों और आकांक्षाओं में हिस्सेदार बनाया तथा हिन्दी की प्रेरणा से 'अश्क' जी ने हिन्दी कथा साहित्य में अपना नाम कमाया।

1933 की गर्मियों में 'अश्क' जी ने मैदानों की धूल और गर्मी से दूर शिमला के पहाड़ी स्वास्थ्य स्थल में तीन महीने बिताने का ललचाने वाला आमन्त्रण स्वीकार किया और सारी गर्मियों में सरपस्त मेजबान कविराज हरनामदास के लिए छद्म लेखन करते रहे। इस दौरान उन्होंने नवजात शिशुओं के लालन-पालन पर एक हिदायतनामा लिखा, जो कविराज हरनामदास के नाम से प्रकाशित हुआ, जो आज साठ साल बाद भी बिक रहा है।

शिमला से लाहौर आने पर 'अश्क' जी ने बतौर सम्पादक एक नये साप्ताहिक 'भूचाल' का काम सम्भाला, लेकिन उसके मालिक प्रकाशक से तकरार हो जाने पर जल्द ही उससे भी छुट्टी पा ली।

लाहौर आने के बाद से ही 'अश्क' जी स्थानीय अखबारों और पत्रिकाओं के लिए कहानियाँ लिखते रहे। 1933 में उन्होंने अपना दूसरा कहानी संग्रह 'औरत की फितरत' प्रकाशित किया, जिसकी भूमिका मुँशी प्रेमचन्द ने लिखी। इससे पहले वे 'अश्क' जी की एक लघुकथा 'तलाश-ए-जावेदा' स्वयं उर्दू से अनुवाद करके 'अनन्त खोज' के शीर्षक से अपने हिन्दी साप्ताहिक 'जागरण' में छाप चुके थे।

इसी समय 'अश्क' जी की पत्नी शीला देवी को तपेदिक हो गया। उन्हें सेनेटोरियम अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। 'अश्क' जी इस दौरान प्राइवेट ट्यूशनें करते रहे। एक साप्ताहिक अखबार के लिए कहानियाँ लिखते रहे।

अपनी पत्नी शीला देवी की मौत के बाद 'अश्क' जी बुरी तरह टूट चुके थे। वे सोचते थे—"हम जिन्दगी चुनते नहीं, माता-पिता की कृपा से वह हमें मिलती है। लेकिन हम उसे खत्म करके इस दुःख तकलीफ से घोर व्यर्थता से मुक्त तो हो सकते हैं।" "अश्क" जी ने आत्महत्या करने की कोशिश की, परन्तु नहीं कर सके। इस प्रकार उनके मन में इस तरह के हजारों खड़े हुए बुनियादी प्रश्न उठे—हम क्यों जीते हैं? प्यार क्या है? क्या चाहत प्यार है? नियति क्या है? मौत क्या है?

मई, 1937 की एक तपती हुई दोपहर में अपनी छोटी-सी मयानी में फर्श पर चटायी बिछाये, दीवार से पीठ लगाये उन्हीं प्रश्नों से जूझ रहे थे अचानक ('अश्क' जी दावे से ऐसा कहते थे) उनका दिमाग रोशन हो उठा और उन्हें उन सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गए जो उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट भी कर गए।

उन इल्हामी क्षणों में वहीं बैठे-बैठे नौ वृहद् खण्डों में लिखे जाने वाले एक महाकाव्यात्मक उपन्यास की योजना भी अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से उनके जेहन में बन गयी। दूसरे ही दिन 'अश्क' जी ने कानून की किताबें बेच दीं। कहीं भी नौकरी न करने और जीवन को साहित्य के लिए समर्पित करते हुए यह वृहद् उपन्यास लिखने का फैसला कर लिया। उन्होंने अपना पहला नाटक 'जय-पराजय' 1938 में प्रकाशित किया और अपनी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ एवं एकांकी लिखे। पत्नी के निधन ने बीती हुई जिन्दगी के 'अश्क' जी के रिश्तों को पहले ही छिन्न-भिन्न कर डाला था, नियति ने एक ही झटके से जिन्दगी की वह प्लेट जैसे एकदम साफ कर दी थी मानो उनका उस जीवन से कभी कोई ताल्लुक नहीं रहा था।

'अश्क' जी ने लिखा है—"इन दो वर्षों में मैने जिन्दगी को ऐसे नंगे रूप में देखा कि मेरी सारी रोमानियत उड़न छू हो गई और मुझे वे आँखें मिल गईं, जो प्रकट दिखायी देने वाली हकीकतों के पीछे छिपी हकीकतों को देख सकें। मैंने मौत को देखा और नियति का स्पर्श भी पाया और अपने उस घनघोर संघर्ष की नितान्त व्यर्थता मेरे सामने मूर्तरूप से उजागर हो गई, जो मैंने सबजज बनने के प्रयास में किया था। मैंने दुःख, तकलीफ, गरीबी, नेताओं की द्वैत वृत्ति, शोषण और अपने परिवेश की विवशता को जाना और मुझे यह नयी दृष्टि मिल गई, जो पहले मेरे पास नहीं थी।"[11]

इस प्रकार 'अश्क' जी ने अपनी पत्नी शीला देवी की मौत के बाद अपनी पूर्व जिन्दगी को छोड़कर साहित्य के जीवन में कदम रखा और वे उत्तरोत्तर बढ़ते गए। साहित्य के क्षेत्र में 'अश्क' जी का सर्वप्रथम हिन्दी का उपन्यास 'सितारों के खेल' (1940) सामने आया। 'अश्क' जी ने एक ऐसा कथानक चुना जो उस पुरानी हिन्दू गाथा जितना ही अद्भुत था। उपन्यास में आधा रास्ता यह कहकर चुकने के बाद उन्होंने मुड़कर दूसरे यथार्थवादी छोर की ओर चलने की कोशिश की।

यह उपन्यास अन्ततः एक दारुण कहानी बनकर रह गया, जो मूल कथा जितना ही अविश्वसनीय था। फर्क बस इतना था कि वह और भी ज्यादा अनास्थापरक और अवसादपूर्ण था। यह बात दीगर है कि यह उपन्यास आज भी लोकप्रिय है। इन दो वर्षों में ही 'अश्क' जी ने अपनी मशहूर कहानी 'डाची' और अपनी बीवी की बीमारी और मौत से

जुड़ी हुई थोड़ी-सी भावुकता लिए कहानियाँ लिखीं जिनमें 'नन्हाँ', 'ये मर्द' और 'संगदिल' आदि आज भी मशहूर हैं।

लेकिन 'अश्क' जी को तो एक महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखना था, जिसकी घटना भी उनके जेहन में सुस्पष्ट थी। लेकिन कैसे उन घटनाओं को एक शृंखला में बांधा जाये, इसका पैटर्न उनके दिमाग में नहीं था। इसलिए उन्होंने कई विदेशी उपन्यास पढ़े, लेकिन उपन्यास की बनावट उनके हाथ में नहीं आयी और जब आयी तो उन्होंने अभ्यास के लिए कुछ ऐसी कहानियाँ लिखीं जो न केवल हकीकतों के अन्दर छिपी हकीकतों को उजागर करती थीं, बल्कि जिनकी उठान भी वैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैसी थी, जिसे 'अश्क' जी लिखना चाहते थे। इनमें 'अंकुर', 'मनुष्य यह', 'पिंजरा', 'गोखरू' और 'चट्टान' प्रसिद्ध हैं। चट्टान आधी ही लिखी थी कि उनका उपन्यास चल पड़ा और उन्होंने कहानियाँ लिखना बन्द कर दिया।

अपने कहानी लेखन के आखिरी दौर में 'अश्क' जी ने 'अंगारे ग्रुप' की नंगी हकीकतों की कुछ अद्वितीय कहानियाँ लिखीं।

पत्नी के निधन के दो वर्ष बाद 'अश्क' जी ने अपना पहला काव्य संग्रह 1938 में 'प्रात: प्रदीप' छापा। इन कविताओं के कारण 'अश्क' जी एक स्कैण्डल में उलझ गए। इस कटु प्रसंग पर और वह कैसे समाप्त हुआ, उस पर 'अश्क' जी ने 'गर्म राख' उपन्यास लिखा। 'गर्म राख' उपन्यास लिखकर 'अश्क' जी लाहौर से 1938 में उनके एक प्रसिद्ध कवि मित्र प्रोफेसर मोहन सिंह के कहने पर अमृतसर के निकट सरदार गुरबक्स सिंह द्वारा बसायी गई आदर्श कालोनी, प्रीतनगर चले गये और वहाँ पर उन्होंने अपने वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' को लिखना शुरू कर दिया था। 1941 में मायादेवी से विवाह और बिछोह से 'अश्क' जी पर्दा नहीं उठा सके और उन्होंने इस सिलसिले में स्वयं कुछ न कहकर अपना उपन्यास 'निमिषा' लिखा।

दूसरी पत्नी के अलग होने के साथ-साथ 'अश्क' जी ने प्रीतनगर वाली नौकरी भी छोड़ दी। वहाँ के वातावरण को अपने उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आँखें' (1955) में चित्रित किया।

इसके बाद 'अश्क' जी बम्बई चले गये, वहाँ पर उन्होंने कहानियाँ, पटकथा, संवाद और गीत लिखे, लेकिन यहाँ का जीवन 'अश्क' जी को रास नहीं आया और यहाँ पर 'अश्क' जी ने 1946 में अपना एकांकी 'तूफान से पहले' लिखा, जिस पर ब्रिटिश सरकार ने पाबन्दी लगा दी थी।

बम्बई प्रवास के दौरान 'अश्क' जी नियमित रूप से अपने मित्रों कृष्ण चन्द्र, अब्बास, महेन्द्र, मजरूह, साहिर वगैरह के साथ वे प्रगतिशील लेखक संघ की बैठकों में शामिल होते हैं। ये सारे के सारे लोग 'प्रगतिशील' कहलाना पसन्द करते थे। बाद में 'अश्क' जी 'उत्तरप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ' की स्वागत समिति के अध्यक्ष भी बने। बम्बई से इलाहाबाद आने के बाद 'अश्क' जी 'नीटा' (नॉर्थ इण्डियन थियेट्रिकल एसोसिएशन) के अध्यक्ष बने और उनके तत्त्वाधान में उनके कई एकांकी और दो पूर्व कालिक नाटक 'अलग-अलग रास्ते' और 'अंजो दीदी' पैलेस और लक्ष्मी थिएटर में उनके निर्देशन में खेले गये। चूँकि यक्ष्मा की बीमारी के कारण उनके फेफड़ों पर जोर पड़ता था, इसलिए डॉक्टरों के निर्देशन के लिए उन्हें मना कर दिया।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है—"यदि बीमारी ने 'अश्क' जी का शरीर शिथिल न कर दिया होता तो शायद वे स्वयं रंगमंच के एक बहुत बड़े अभिनेता बन जाते। 'अश्क' जी जब भी मंच पर जाते हैं, निश्चय ही इस बात की पुष्टि करते हैं।"

1947 को 'अश्क' जी को यक्ष्मा हो गया और उन्हें पंचगनी के बेल एयर सैनेटोरियम हॉस्पीटल में दाखिल करवा दिया गया। यक्ष्मा के साथ संघर्ष करते हुए उन्होंने रोग शैया पर दो लम्बी कविताएँ 'दीप जलेगा' और 'बरगद की बेटी' भी लिखी।

1947 में देश विभाजन की त्रासदी पर 'अश्क' जी ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'टेबुल लैण्ड' लिखी। स्वस्थ होने पर उन्होंने अपने सारे उर्दू नाटक और कहानियाँ हिन्दी में कर डालीं।

जब फिल्मी दुनिया से कमाया हुआ उनका सारा रुपया खत्म हो गया तब अचानक उत्तरप्रदेश की राष्ट्रीय सरकार ने महाकवि निराला के साथ उन्हें रोग मुक्त होने के लिए पाँच हजार रुपये का अनुदान दिया।

'अश्क' जी ने अपनी पत्नी के साथ इलाहाबाद आकर कहानियों का संग्रह 'छींटे' और उपन्यास 'सितारों के खेल' भारती भण्डार से छापे और एकांकी नाटकों का संग्रह 'आदि मार्ग' साहित्यकार संसद से।

'अश्क' जी का वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' 1947 में छप गया था, लेकिन वे दूसरा खण्ड दस साल तक नहीं लिख सके। उन्होंने इस बीच 'गर्म राख' (1952), 'बड़ी-बड़ी आँखें' (1955), 'पत्थर अल पत्थर' (1957) उपन्यास लिखे। तभी उन्हें 'गिरती दीवारें' के दूसरे खण्ड की बनावट सूझ गई और वे दूसरा खण्ड 'शहर में घूमता आईना' लिखने लगे, जो 1962 में छपा। तीसरा खण्ड 1968 में 'एक नन्ही किन्दील' के नाम से, चौथे और पाँचवें खण्ड 1974 में 'बांधो न नाव इस ठाँव' के नाम से प्रकाशित हुए। छठा खण्ड 'पलटती धारा' 1990 में पूरा हुआ और अब नौ खण्डों की मूल योजना को त्याग कर 'अश्क' जी इसके सातवें और अन्तिम खण्ड पर काम कर रहे थे।

इस प्रकार के अपने अथक परिश्रम व कठोरता के वशीभूत 'अश्क' जी ने हिन्दी साहित्य से अपना नाम कमाया। इनकी रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए इनकी पत्नी कौशल्या जी ने सरकार से ऋण लेकर एक प्रकाशन गृह शुरू किया उसके बाद इनके पूर्व प्रकाशकों से उनकी किताबों को वापस लेने का एक लम्बा संघर्ष शुरू हुआ। अन्ततः वे 'नीलाभ प्रकाशन' से (जिसका नाम शायद उन्होंने अपने बेटे के नाम पर रखा) 'अश्क' की सभी रचनाएँ प्रकाशित करने में तो सफल हुए ही, अन्य लेखकों की कृतियाँ भी उन्होंने प्रकाशित कीं।

'अश्क' जी ने अपने एकांकी नाटक 'पर्दा उठाओ : पर्दा गिराओ' को भी साभिनय सुनाया और लेखकों तथा पाठकों से भेंट भी की।

1956 में ही 'अश्क' जी ने उस समय की श्रेष्ठ हिन्दी रचनाओं का एक वृहद् संकलन 'संकेत' के नाम से सम्पादित किया।

इसी वर्ष 'अश्क' जी ने उर्दू के विवादग्रस्त विद्रोही सआदत हसन मण्टो के बारे में अपना लम्बा संस्मरण 'मण्टो मेरा दुश्मन' प्रकाशित किया।

सितम्बर 1956 में 'अश्क' जी सोवियत सरकार के आमन्त्रण पर कालिदास जयन्ती में भाग लेने के लिए सोवियत संघ पहुँचे। इससे हिन्दी साहित्य में खलबली मच गयी और उन्होंने अपनी शौहरत हासिल की।

'अश्क' जी ने अपना साहित्यिक जीवन उर्दू लेखक के रूप में शुरू किया था और उनके आरम्भिक वर्ष ऐसे उर्दू लेखकों के बीच गुजरे जो अब प्रसिद्ध हो चुके हैं। हालाँकि 'अश्क' जी मूल रूप से हिन्दी लेखक के रूप में ही माने जाते हैं। लेकिन हमेशा से ऐसा प्रतीत होता रहा है कि उर्दू से उनके सम्पर्क सूत्र कभी टूटे नहीं, और उनकी रचनात्मकता उर्दू भाषा और बेहद समृद्ध परम्परा हमेशा ताजा होने वाली जीवन्तता से जीवनदायक ऊर्जा ग्रहण करती रही।

दिसम्बर 1965 में 'अश्क' जी को नाट्य लेखन के प्रमुख रचनाकार के तौर पर संगीत नाटक अकादमी ने अपने सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया। वे हिन्दी-उर्दू के पहले नाटककार थे, जिन्हें यह सम्मान दिया गया।

'अश्क' जी को किसी ने एक बार यह प्रश्न पूछा कि आपको लेखक बनने के लिए किस चीज ने प्रेरित किया। 'अश्क' जी ने बचपन की तीन स्थितियाँ गिनायी थीं— "दुर्बल स्वास्थ्य, अतिभाव-प्रवणता और घर का अत्यन्त आतंकपूर्ण और कलुषित वातावरण।"[12]

इस चीज को सोचकर उन्होंने अपने जीवन का साहित्य खड़ा किया जो आज हमारे सामने है।

साहित्य के प्रति अटूट आस्था, लेखन के प्रति अदम्य-विश्वास और जीवन के प्रति जिजीविषा 'अश्क' जी को महान् साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है। उन्होंने सामाजिक जीवन में मध्यमवर्गीय विरूपताओं और उनसे संघर्ष करते आदमी की कहानी को कलात्मक रूप में चित्रित किया है। 'अश्क' जी के उपन्यासों में सृजन के प्रति यह इच्छाशक्ति और मध्यमवर्गीय दृष्टि 'अश्क' जी को प्रेमचन्द की परम्परा का मजबूत स्तम्भ बनाती है।

'अश्क' जी ने हिन्दी साहित्य को जो कुछ भी दिया, उसकी कीमत आंक पाना आसान नहीं है। जितनी बड़ी उनकी उम्र थी, उससे कहीं बड़ी उनकी साहित्य साधना थी। उन्होंने साहित्य की हर विधा में अपनी कलम का जोर आजमाया और पूरी लगन, परिश्रम एवं योग्यता के उचित प्रयोग से उसे बनाया, संवारा।

(स) उपन्यास और समाज : सम्बन्ध विवेचन

साहित्य और समाज का यथार्थ में अन्योन्याश्रित और गूढ़ सम्बन्ध है। उपन्यास समसामयिक समाज का सबसे बड़ा दर्पण है। इस दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य विधा है, लेकिन ये सम्बन्ध सीधे और सपाट नहीं हैं। आज के पूँजीवादी समाज में जहाँ विज्ञान और उद्योग ने जीवन को जटिल तथा दुरुह बना दिया है, वहीं साहित्य की जिम्मेदारी भी बड़ी कठिन हो गई है। जनवादी लेखकों ने पूँजीवादी समाज की समस्त चुनौतियों को जिस रूप में स्वीकारा है, उससे निश्चय ही एक आशा जगती है। आज निरन्तर जनवादी लेखक समाज की विविध आयामी समस्याओं का न केवल चित्रण कर रहे हैं, अपितु जन संघर्ष में सक्रिय भागीदारी भी कर रहे हैं, इसलिए साहित्य में जीवन्तता और ताजगी स्पष्ट दिख रही है।

आधुनिक मशीनी सभ्यता के युग में उपन्यास तत्कालीन समाज का युग की परिस्थितियों तथा जनजीवन के चित्रण का सर्वश्रेष्ठ साधन तथा माध्यम है। उपन्यास में जीवनगत सत्य की अवतारणा ठीक-ठीक सम्भव है। उपन्यास अपने एक कलेवर में मानव जीवन की सम्पूर्णता तथा समग्रता को हर दृष्टि से अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है। उसमें समाज के किसी सदस्य के सौ वर्ष के जीवन की घटनाएँ, अनुभूतियाँ, सुख-दुःख समाहित हो सकते हैं और केवल एक दिन या रात या इनका एक भाग एक घण्टे की क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं से भी उपन्यास पूरा हो सकता है। जहाँ एक उपन्यास में मानव जीवन का पूरा चित्र उतारा जाता है, वहाँ जीवन के एक भाग का कई जिल्दों में भी वर्णन किया जाता है। उपन्यास समाज का चित्र तो प्रस्तुत करता ही है, वह तो सभी दृश्यों, व्यक्तियों को घात-प्रतिघातों, उनकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को भी चित्रित करता है। वह तो मानव मन की गहराइयों में मस्तिष्क की प्रत्येक परत में प्रत्येक पपड़ी के धरातल पर होने वाली बाह्य क्रियाओं को भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। विज्ञान के नश्वर से चीरना-फाड़ना सीखकर उपन्यासकार मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं को उपन्यासों के पन्नों पर बिखेरता है।

इसलिए सुप्रसिद्ध कथा आलोचक रैल्फ फॉक्स ने उपन्यास के सामाजिक स्वास्थ्य पर विचार करते हुए इसे आधुनिक युग के महाकाव्य की संज्ञा दी है। “उपन्यास का

वास्तविक सम्बन्ध जीवन से है। वह महान् घटनाओं की खोज नहीं करता, उसका रचना क्षेत्र तो दैनिक जीवन की घटनाओं से है।"[13]

आधुनिक युग में पूँजीवाद के उदय ने विश्व स्तर पर अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं। नवीन वैज्ञानिक आविष्कार और औद्योगिक क्रान्ति ने सामन्ती जीवन मूल्यों को ध्वस्त कर दिया है। पूँजीवादी समाज में श्रम का मूल्य और महत्त्व बढ़ा है। नवीन मानवीय मूल्यों का सृजन हुआ है, जिसने पूँजीवादी समाज का नेतृत्व करने में एक विशिष्ट भूमिका निभाई है। उपन्यास ने इसी समाज की आशा-निराशा, इच्छा-आकांक्षाओं को उसके यथार्थ रूप में विश्लेषित किया है।

उपन्यास के उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप बदलते रहते हैं। मानव जीवन में विकास का आधार परिवर्तन है और उपन्यास इन्हीं परिवर्तनों का एक जीवित इतिहास है। उपन्यास में अभिव्यक्ति, विचारों और उद्देश्यों को बिना सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्ययन किए नहीं समझा जा सकता। उपन्यास समाज की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है।

उपन्यास समाज का वास्तविक दर्पण है। समाज में घटित कोई भी प्रभावशाली घटना नहीं रहती। प्रेमचन्द युग की राजनैतिक और सामाजिक घटनाएँ तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में भरी पड़ी हैं। आन्दोलनों और सत्याग्रहों का भी वर्णन मिलता है। समाज-सुधार के सभी प्रयासों का अंकन मिलता है। प्रेमचन्दोत्तर युग में भी दूसरे महायुद्ध, भारत छोड़ो आन्दोलन, बंगाल का अकाल, राशन व्यवस्था, भारत विभाजन, कश्मीर युद्ध आदि सभी घटनाएँ उपन्यासों में यत्र-तत्र बिखरी मिल जायेंगी। अत: उपन्यास समाज का दर्पण है।

भारतेन्दु ने कविता, नाटक, प्रहसन, निबन्ध आदि लिख और लिखवाकर यह आवश्यकता बड़ी शिद्दत से महसूस की कि इन परिवर्तनों को रूपायित करने के लिए उपन्यास जैसी विधा की नितान्त आवश्यकता है। इसलिए लेखकों का आह्वान किया कि वे उपन्यास लिखें, परिणामस्वरूप हिन्दी का पहला उपन्यास 'परीक्षा गुरु' उन्हीं के युग में आया जिसमें पूँजीवादी समाज के खतरों और दैनन्दिन जीवन की अच्छाइयों-बुराइयों का लेखा-जोखा मिलता है।

उपन्यास आधुनिक समाज का महाकाव्य है। मानव जीवन के जटिल होते जा रहे सम्बन्धों को रूपायित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य उपन्यास ने किया है। 19वीं शती के बाद आये परिवर्तनों और नवजागरण के उपन्यास को जन्म दिया। उपन्यास ने उन सभी हलचलों और उससे उत्पन्न अन्तर्विरोधों को वास्तविक रूप में सजोने का काम किया। मशीनरी युग में गद्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उपन्यास इसी गद्य का अद्भुत नमूना है।

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेज' के अनुसार मनुष्य अपनी उद्देश्य पूर्ति के हेतु साधन जुटाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से क्रियारत रहता है। मनुष्य के इस कार्यकलाप के फलस्वरूप विकसित मानव सम्बन्धों का संकुल रूप 'समाज' है।

इस प्रकार "समाज, मनुष्य के सामाजिक जीवन का समन्वित मूर्त रूप है। जिस पर वंश-परम्परा, परिवेश, संस्कृति, वैज्ञानिक बोध एवं पद्धति, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विचार प्रणालियों और कलात्मक अभिव्यंजना रीतियों का भी प्रभाव रहता है। ये तत्त्व यद्यपि स्वत: समाज नहीं हैं तथापि ये उसके विधिवत् प्रकाशन में योगदान करते हैं। समाज का अस्तित्व इन तत्त्वों से पृथक् होकर नहीं रह सकता।"[14]

उपन्यास समाज का तटस्थ रूप से वर्णन कर सकता है—"इसमें जो लचीलापन है, बन्धनहीनता है, वह कभी कोई भी रूप धारण कर सकता है। इसमें मदोन्मत्त साहसिकों की कथा रह सकती है या पूरे समाज की कथा भी रह सकती है। कथानक भी न हो तो भी कोई परवाह नहीं। जीवित मनुष्यों की कथा की कोई बात नहीं, कब्र से भी उठकर मनुष्य आ सकते हैं।"[15] उपन्यास में एक या अनेक पात्र एक साथ बैठकर तर्क-वितर्क कर सकते हैं। उपन्यासकार उन पात्रों में तर्कों की छोटी से छोटी बात उनके चेहरे की प्रत्येक मुद्रा, प्रत्येक अभिव्यक्ति और उनके अंगों के हिलने मात्र को शब्दबद्ध कर सकता है। एक स्वप्न भी पूरी कहानी बन सकता है। उपन्यास की इसी असीम शक्ति और व्यापक क्षेत्र के कारण हम आज 'चन्द्रकान्ता सन्तति' को भी उपन्यास मानते हैं। 'गोदान' भी उपन्यास है। 'शेखर एक जीवनी', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' तथा 'मैला आँचल' भी उपन्यास परिवार में सम्मिलित हैं।

उपन्यास और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है, समाज की हर धड़कन को उपन्यास संजोता है और सुनकर मानवीय स्थितियों के अनुरूप चित्रित करता है। यही कारण है कि

रीतिकाल के बाद आये परविर्तनों और बाद में समाज में उठी हलचलों को कविता समेटने में असमर्थ रही। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हुए प्रथम विश्व युद्ध और उसके बाद की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों को कविता में व्यक्त नहीं किया जा सकता था इसलिए साहित्य के अध्येता इस तथ्य से भलीभाँति अवगत हैं कि "छायावादी कविता का त्वरित पतन मात्र इसलिए हुआ कि उसने अपने युग की वास्तविकताओं से मुँह मोड़ा, जबकि इसी युग में प्रेमचन्द रचनारत थे, जिन्होंने अपने युग की वास्तविकताओं से रूबरू होकर उन्होंने साहित्य का निर्माण किया। प्रेमचन्द के उपन्यास में न केवल उस समय का समाज मिलता है, अपितु उस समाज के वे अन्तर्विरोध भी मिलते हैं, जिनसे लड़ना बहुत जरूरी था। 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' जैसे उपन्यास हमारे समाज की वास्तविकताओं को उजागर करते हैं और 'गोदान' उपन्यास उन निरीह स्थितियों को यथार्थ रूप में चित्रित करता है जिनके रहते होरी जैसे सीधे-सादे किसान की करुण मृत्यु होती है। होरी की मृत्यु न केवल होरी की मृत्यु है, बल्कि उन करुण स्थितियों का भयावह रूप है जो पूँजीवाद के रूप में हमारे गाँवों में प्रवेश कर रही थीं। जिनके कारण गाँव का शान्त जीवन गर्हित हो उठा था। यह क्षमता केवल उपन्यास में ही थी कि उन स्थितियों का वर्णन करते हमारे समाज का नंगा चित्र प्रस्तुत कर सकें।"[16]

सारांश में कह सकते हैं कि आधुनिक युग में सुभीत के साथ लम्बी-लम्बी कहानी कह सकने, अनेक दृष्टिकोणों को धैर्य के साथ प्रस्तुत कर सकने, आत्मकथा और परकथा रूप से कथा कह सकने की सामर्थ्य के कारण उपन्यास तत्कालीन समाज का वास्तविक दर्पण बनने की पूर्ण योग्यता रखता है। इस दृष्टि से कोई भी साहित्य विधा इसकी तुलना में नहीं ठहर सकती। आधुनिक युग की यह अपूर्ण देन है।

उपन्यास में जीवनगत सत्य की पूर्ण अवतारणा होती है। उपन्यास में मानव जीवन का तटस्थ वर्णन मिल जायेगा, जीवन की आलोचना के दर्शन हो जायेंगे और भावी जीवन निर्माण के लिए कलात्मक सुझावों द्वारा संकेत मिल जायेंगे। हम समाज में फैली हुई कुरीतियों या बातों को होते प्राय: देखते हैं, अनुभव करते हैं, पर कह नहीं पाते। स्पष्ट चिन्तन का अभाव अभिव्यक्ति में बाधा बनता है, पर उपन्यास में इन सबका सच्चा वर्णन देख सकते हैं।

उपन्यास में न केवल कथानक और पात्र हैं, अपितु कड़वे दृश्य और नाटकीय प्रस्तुतीकरण के सभी आवश्यक उपसाधन भी हैं। मैरियम ने ठीक ही कहा है कि "पाठक उपन्यास को जेब में डालकर कहीं भी ले जा सकता है। अवकाश के क्षणों के आते ही जेब से उपन्यास निकाल कर पढ़ सकता है। रेल में, बस में, यात्रा में, प्रतीक्षा में वह उपन्यास थियेटर को खोलकर दृश्य पर दृश्य देखने में निमग्न हो सकता है।"[17]

हिन्दी में उपन्यास और समाज को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।

उपन्यास और समाज के इन रिश्तों की जाँच समाज की वास्तविक घटनाओं को समझकर इन स्थितियों की खोज उपन्यास में करने से ही हो सकती है। इसलिए कहा जाता है कि आलोचक के पास जितनी विशद सामाजिक दृष्टि होगी, वह उतनी ही क्षमता के साथ उपन्यास के यथार्थ को पकड़ सकेगा।

उपन्यासकार अपने युग की परिस्थितियों से सीधे साक्षात्कार करता है और करना भी चाहिए, इसी हकीकत को रचनात्मक प्रयोग में साहित्य और समाज तथा उपन्यास और समाज की पड़ताल की जा सकती है।

(द) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का समाज विषयक दृष्टिकोण

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' सामाजिक जीवन के रचनाकार थे, इसलिए उनके साहित्य में समाज का जो रूप उभरकर आता है, वह आज के समाज के लिए बहुत ही उपयोगी है। आपसी स्वार्थ और मतभेदों की लड़ाई में पिसता मानव जीवन कब तक अधोगति को प्राप्त होता रहेगा, यह चिन्ता 'अश्क' जी के सम्पूर्ण साहित्य में ध्वनित होती है। वे व्यक्ति को समाज से और समाज को व्यक्ति से अलग करके देखने के अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें दोनों एक–दूसरे के पूरक लगते हैं।

''अश्क' समाज के प्रत्येक वर्ग के चितेरे थे। व्यक्ति की आकांक्षा, कुण्ठा, निराशा, असफलता, प्रेम, समस्या—आर्थिक, बेरोजेगारी, शिक्षा समस्या, घुटन, असन्तोष, मनोद्वन्द्व का जीवन्त बिम्ब अश्क कथा साहित्य में देखा जा सकता है। सामाजिक विकृतियों और अवस्था के प्रति व्यक्ति को मनोद्वन्द्व और जीवन में ऊँचा उठने के लिए बाह्य द्वन्द्व अश्क के उपन्यासों का मुख्य कथ्य है। अश्क के उपन्यास 'गिरती

दीवारें', 'गर्म राख', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील' सभी में व्यक्ति का मूर्त रूप में हुआ है।"[18]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का साहित्य समाज विषयक साहित्य है। फलत: उनके यथार्थ चित्रण की अपनी सीमाएँ हैं, वह समाज की संवेदनाओं के भीतर से उभरता है और सर्वहारा के प्रति सहानुभूति होने पर भी उसका प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। अपनी इस सीमा को लेखक ने भलीभाँति जाना है।

'मैं किसके लिए लिखता हूँ' शीर्षक निबन्ध में उसने लिखा है—"मैं किसान, मजदूरों के बारे में ज्यादा नहीं लिख सका। मैं निम्न-मध्य वर्ग में पैदा हुआ, पला और बढ़ा और इसी वर्ग का चरित्र-चित्रण मैंने अपनी कृतियों में अधिकांशतया किया है। बिना किसी व्यक्ति अथवा वर्ग का पूरा ज्ञान प्राप्त किए साहित्य सर्जना मेरे ख्याल में बद-दयानती है। लेखक जहाँ है, जिस वर्ग में है, जिस प्रदेश में है, जिसका पूरा ज्ञान उसे प्राप्त है, उसी वर्ग, समाज और प्रदेश को जन-कल्याण और जन-सुख के हेतु उसे अपने साहित्य में चित्रित करना चाहिए, ऐसी मेरी धारणा है। यदि लेखक किसानों और मजदूरों से उठा है अथवा उसमें रहता है तो उन्हें छोड़कर उच्चवर्ग का चित्रण उसके लिए गलत होगा। इसी तरह उच्च वर्ग के साहित्य के लिए बिना निम्न वर्ग की परिस्थितियों का पूरा ज्ञान किए, केवल बौद्धिक सहानुभूति के बल पर उनका चित्रण करना ठीक न होगा और उसके साहित्य में वह गुण न आएगा जो अनुभूति के सच्चे और खरेपन से पैदा होता है।"[19]

'अश्क' के विचार में—"जब-जब समाज में मूल्यों का विघटन होता है, वह चाहे समाज के अत्यन्त वैभवशाली होने से अथवा अत्यन्त विपन्न हो जाने के कारण निरुद्देश्यता का बोलबाला हो जाता है। इसके वर अक्सर जब कोई रूप बनने के क्रम में होता है, अपनी सत्ता के लिए जद्दोजहद कर रहा होता है, उसके लेखकों की रचनाएँ सोद्देश्य हो जाती हैं।"[20]

'अश्क' ने ठीक ही कहा है—"मैं सदा इस बात की कोशिश करता हूँ कि अनुभूतियों की सच्चाई और खरेपन तथा कला और शिल्प की सौष्ठवता के साथ अपने वर्ग और समाज का चित्रण करूँ, समाज के हित और कल्याण के लिए मेरी कृति आज से सौ वर्ष बाद जिन्दा रहेगी या नहीं, इसकी चिन्ता मैं नहीं करता।"[21] वस्तुत: जनहित रचना

के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कसौटी है। यथार्थवाद का नारा लगाते हुए जो अपनी रचनाओं में जीवन का कदम बटोरते हैं, वे इस सत्य को आँख की ओट कर देते हैं, जहाँ तक आदर्श का प्रश्न है, 'अश्क' इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द के साथ हैं, प्रेमचन्द ही क्यों वे तुलसीदास और इकबाल जैसे श्रेष्ठतम साहित्य मनीषियों के साथ हैं, जो जीवन के यथार्थ पर गहरी दृष्टि रखते हुए भी उसके सतत् परिष्कार, निरन्तर उन्नयन के लिए प्रयत्न करते नहीं थकते।

'मैं क्यों लिखता हूँ?' शीर्षक अपने एक निबन्ध में 'अश्क' ने लिखा है— "महाकवि इकबाल ने एक जगह कवि की उपमा आँख से देते हुए लिखा है कि जनता यदि शरीर है तो कवि आँख है, शरीर का कोई अंग दुखे तो आँख भर आती है। अनजाने में यह शेर मेरे दिल में बस गया है। कवि हो या कहानी लेखक, उपन्यासकार या नाटककार उसे आँख का काम देना है, ऐसे मैं मानने लगा हूँ और इस मान्यता ने उस सुख की उपादेयता को बढ़ा दिया है। सुख तो जासूसी उपन्यास लिखकर भी मिलता है और रोमानी फिल्म बनाकर भी उस पर सृजन का सुख जो जन सुखाय ही नहीं, जन हिताय भी है, शायद वह सबसे बढ़कर है और इस 'क्यों' का पूरी तरह उत्तर देता है।"[22]

'अश्क' समाज के प्रतिनिधि कलाकार थे, अत: उनके कथा साहित्य में भारतीय मध्य वर्ग का व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन ही अधिक है। उन्होंने निम्न-मध्य वर्ग की समस्याओं का विशेष रूप से चित्रण किया है। यद्यपि उनके निराकरण के विषय में वे मौन हैं। सम्भवत: वे साहित्यकार की सीमाओं को जानते हैं और साहित्य को राजनीति का पिछलग्गा बनाना नहीं चाहते। यह नहीं कि उन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार नहीं किया है, उनका प्रसिद्ध नाटक 'छठा बेटा' पंजाब की सामाजिक और पारिवारिक भूमिका को बड़े ही शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। तात्पर्य यह है कि 'अश्क' के साहित्य में उनके युग की पूरी झलक आ गई है। यह बात दूसरी है कि उन्होंने प्रत्येक विधा को देखा-परखा है और उसके अनुरूप ही उसे भूमिका प्रदान की है।

उपन्यास की अपेक्षा वे नाटक और कहानी में अधिक प्रगतिशील और सामाजिक दृष्टि में अधिक क्रान्तिकारी दिखाई देते हैं। उपन्यास को उन्होंने शायद अपने जीवन के अनुभवों के वर्णनात्मक चित्रण के लिए चुना है। फलत: वे वर्णन प्रधान हैं और उनमें नाटकीय प्रसंगों का समावेश नहीं है। यद्यपि नाटकीयता उनमें पर्याप्त है।

विचारों के भेद से स्वस्थ   की कामना करने वाले 'अश्क' जी सामाजिक जीवन में मतभेद को बुरा नहीं मानते। आज के समाज में जहाँ मत वैभिन्न्य होना अपराध मान लिया है, असहमति का अधिकार छीन लिया गया है। मनुष्य की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता का नारा लगाने वाले समाज नियन्ताओं ने सब कुछ अपने पास सुरक्षित रख लिया है, तब 'अश्क' के विचार हमारे लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

'सितारों के खेल' उपन्यास के कथानक में भारतीय समाज के पारिवारिक जीवन का करुणामय चित्रण प्रस्तुत है। इस उपन्यास में लता के विचारों से सहमत होता हुआ जगत कहता है—"मिस लता ने इस समस्या का जो हल बताया है, वही ठीक है, जबकि इस सामाजिक समस्या का एकमात्र हल वही है...जैसा मनुष्य चाहता है, तो वही घर जो पहले नरक का नमूना था, स्वर्ग बना दिखाई देगा। रही पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल, तो वह जिस ओर हमें ले जायेगी, उसका नाम है—नैतिक पतन। अब यह आप पर निर्भर है कि आप किसे पसन्द करते हैं, नैतिक दृढ़ता की नींवों पर खड़े अपने पुराने मकान को अथवा नैतिक पतन की नींव पर निर्मित होने वाले इस भव्य प्रासाद को।"[23]

'अश्क' जी अपने उपन्यास 'गिरती दीवारें' में समाज दृष्टि का अवलोकन करते हुए बतलाते हैं कि किस प्रकार मानव समाज विवशता पर क्या करता है। "चेतन के सामने सहसा अपने मोहल्ले का चित्र घूम गया।...सारे का सारा मोहल्ला अपनी समस्त गरीबी, गन्दगी, रोग-शोक, दुश्चरित्रता, अपगढ़ा, मूर्खता, संकीर्णता के साथ उसकी आँखों के सामने आ गया। साथ ही सोचते-सोचते क्रोध का बवण्डर सा चेतन के मन में उठा।...सारे देश की जीर्ण-पुरातन दीवारों को गिरा कर नये देश, नयी समाज, नयी नस्ल का आविर्भाव करना होगा।"[24]

"...उसने (चेतन) सारे संसार को उसके यथार्थ रूप में देखा। उसने पाया कि उसके इर्द-गिर्द जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं—एक अत्याचारी है, शोषक है, दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं।"[25]

उपन्यासकार 'अश्क' ने उक्त उद्देश्य का समावेश स्वतन्त्रता को कम ही अपनाने का यत्न किया है और साथ ही विविध मतों के पचड़े में न पड़कर सीधे ही अपने भावों को प्रकट करना चाहा था।

"अश्क" जी को अपने उपन्यासों में निम्न-मध्यवर्गीय समाज की बहुत चिन्ता है इसके साथ ही वे समाज के हर एक वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। इसलिए उनके प्रत्येक उपन्यास में यह चिन्ता झलकती है और उससे पार पाने की अद्भुत ललक उनके साहित्य में देखने के लिए विद्यमान है। मनुष्य के सुख-दुःख को वे अपना दुःख-दर्द समझते थे, जिसकी मुक्ति के लिए अपने साहित्य में अपने आपको (चेतन) जैसे पात्रों का सृजन किया है, जिससे कि समाज का मार्ग प्रशस्त हो। धर्म और राजनीति को वे अलग करके देखते हैं। धर्म व्यक्तिगत आस्था की चीज है और राजनीति राज करने के कुचक्रों की नीयत। इसलिए दोनों एक हो ही नहीं सकते। जो व्यवस्था मानवता विरोधी हो, 'अश्क' जी की भरसक कोशिश है कि उसका पतन हो जाये।

समाज आर्थिक अभावों के कारण निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की घुटन, कुण्ठा, निराशा, गरीबी, मानसिक असन्तुलन के लिए सामाजिक विकृति उत्तरदायी है—"इस अभावग्रस्त मोहल्ले में हाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था, वहाँ कई घरों में उमर भर के भूखे-प्यासे कुँवारे पड़े थे। अनाचारी, जुआरी, व्यभिचारी और पागल न हों तो और क्या हो?"[26]

'अश्क' जी सामाजिक रीति-रिवाजों की असलियत को वैज्ञानिक मापदण्ड से परखते हैं। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में सोलह वर्ष की नीला का विवाह किसी अधेड़ व्यक्ति से होता है। विवाह के समय स्त्रियाँ गीत गा रही हैं—"ओह दिन याद कर कान्हा।"[27] यह सुनकर 'अश्क' जी उपन्यास नायक चेतन के माध्यम से सोचते हैं—"प्रतिदिन कान्त कामिनी तरुणियां अनमेल युवकों, अधेड़ों अथवा विधुरों के साथ बाँध दी जाती हैं और ये अनपढ़ स्त्रियाँ अपने गीतों में उन्हें 'कान्ह' या कन्हैया बनाया करती हैं। क्या इनके आँखें नहीं हैं? क्या ये चुप नहीं रह सकतीं? यदि लड़की का गला घोंटना ही अभीष्ट है तो क्या यह 'सत्कार्य' मौन रूप से नहीं हो सकता।"[28] और चेतन को यह सब सोचते-सोचते उन समस्त रस्मों से घृणा हो उठती है। "उन अंध-बहरी रस्मों से जो भावनाहीन चक्की की तरह मानवों के हृदय और जीवन कुचले जा रही थीं। क्या कभी ऐसा समाज न बनेगा जो इन रस्मों से आजाद हो या जहाँ से रस्में देखें, सुनें, अनुभव करें और समय के अनुसार (कुबीनियां चाहे बिना) अपना चोला बदलते रहें।"[29] 'अश्क' जी ने रूढ़िवाद का दो प्रकार से विरोध किया है एक तो निम्न-मध्य वर्ग में प्रचलित धार्मिक अंधविश्वासों की

व्यर्थता सिद्ध करके और दूसरे इस वर्ग की नारी के जीवन को नरक बनाये जाने वाली सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन करके।

'अश्क' जी की सामाजिक दृष्टि लोक–कल्याणकारी थी लेकिन वे धर्म के ढोंग का विरोध और मानव की जिजीविषा और सत्य के लिए उसके संघर्ष को ही वाणी मिली है। 'अश्क' जी कोई समाज सुधारक सन्त–महात्मा नहीं थे, वे लेखक के रूप में एक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते थे। इसी धरती को उन्होंने अपनी कर्मस्थली बनाया था, इसलिए यहाँ की ऐसी कोई मर्मान्त समस्या उनसे बच नहीं सकी है।

लेखक के रूप में 'अश्क' जी का विशेष महत्त्व है। वे कोई राजनेता नहीं थे और न किसी दल के सक्रिय सदस्य, वे सिर्फ कलम के धनी थे।

'अश्क' जी स्पष्ट रूप में कहते हैं कि किसी लेखक को किसी दल का सदस्य नहीं होना चाहिए, वे इसका विरोध करते थे। लेखक की अपनी–अपनी स्वतन्त्रता और स्वायत्तता होती है, जिसकी सुरक्षा के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते थे।

इसलिए 'अश्क' जी की सामाजिक दृष्टि की तलाश करते समय दलगत राजनीति के शिखर तक नहीं जाना चाहिए, बल्कि दलगत राजनीति से थोड़ा ऊपर उठकर सोचना चाहिए। समाज की बुराइयों, कुरीतियों व अंध विश्वासों को समाप्त करने और उनके लिए संघर्ष करने की दृढ़ता में ही उसकी तलाश करना उचित है। अत: 'अश्क' जी की समाज सुधार की दृष्टि प्रत्येक दृष्टि से स्वयं सिद्ध होती है।

सन्दर्भ

1. अश्क : संक्षिप्त जीवन परिचय — मीनाक्षी अश्क, पृ. 6
2. वही, पृ. 8
3. वही, पृ. 11
4. वही, पृ. 12
5. वही, पृ. 19
6. वही, पृ. 29
7. वही, पृ. 27
8. वही, पृ. 28

9. वही, पृ. 21-22
10. वही, पृ. 5
11. वही, पृ. 10
12. वही, पृ. 4
13. उपन्यास और लोक जीवन — रैल्फ फाक्स, पृ. 38
14. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज (खण्ड-13) प्रधन सम्पादक — ए. आर. ए. सैलिगमैन, अनूदित, पृ. 231
15. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1), पृ. 139
16. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डॉ. (श्रीमती) शोभा पालीवाल, पृ. 14
17. हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग — डॉ. हेमराज निर्मम, पृ. 10
18. हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व — डॉ. मंजुला गुप्ता, पृ. 136
19. अश्क — ज्यादा अपनी कम परायी (1959)
20. अश्क — कुछ दूसरों के लिए, पृ. 20
21. अश्क — ज्यादा अपनी कम परायी, पृ. 95
22. अश्क — ज्यादा अपनी कम परायी, पृ. 66
23. सितारों के खेल : एक विवेचन — ओंकार शरद, पृ. 25-26
24. गिरती दीवारें — अश्क, पृ. 411
25. वही, पृ. 381-382
26. शहर में घूमता आईना — अश्क, पृ. 66
27. गिरती दीवारें — अश्क, पृ. 674
28. वही, पृ. 675
29. वही, पृ. 675

❑

द्वितीय अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यास और समकालीन परिवेश

(अ) रचनाकार : युग एवं परिवेश
- (1) स्वाधीन भारतीय समाज की पूर्व पीठिका
- (2) नवजागरण परिदृश्य
- (3) साहित्य में प्रतिच्छवि
- (4) भाषा कौशल

(ब) सामाजिक संरचना की वर्गीय भूमिका

(स) सामाजिक स्वातन्त्र्य : दशा और दिशाएँ

द्वितीय अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी के उपन्यास और समकालीन परिवेश

(अ) रचनाकार : युग एवं परिवेश

कोई भी रचनाकार अपने युग के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। उसे जीवन और व्यक्तित्व व कृतित्व का विकास समाज के भीतर रहकर ही करना होता है। वह अपने परिवेश और वातावरण को एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता या तो वह उस समाज और परिवेश के यथार्थ को अपनी कृतियों का आधार बनायेगा या उस यथार्थ से ऊपर उठकर एक अधिक समुन्नत समाज और परिवेश की कल्पना करेगा। वास्तविकता तो यह है कि लेखक को अपने समाज के यथार्थ और आदर्श के बीच से अपना मार्ग निकालना होता है। यह उसकी दृष्टि और अनुभव पर निर्भर करता है। मध्यकाल से लेकर आज तक के साहित्य पर यह तथ्य एक चुनौती के रूप में अब भी खड़ा है, आगे आने वाले लेखक के लिए चुनौती बनकर। वीरगाथा काल की तरह राजे-रजवाड़ों और सामन्ती वातावरण और उसके राज्याश्रित कवियों का रचना संसार, जिसमें युद्धों का अमानवीय दृश्य तथा उसके मूल में स्त्री की चाहत ही प्रमुख रही है। राजा-महाराजाओं की लड़ाई के मूल में जनता की भावना और उसके विकास की कामना न होकर व्यक्तिगत सुख-दुःख ही कारण रहे हैं। कवियों ने उन स्थितियों के विरोध में न रहकर उस युग के वातावरण में स्वयं को खपा लिया और राज्याश्रित होकर रचना करते रहे, जिसमें उनके युग का पराभव और उसकी चुनौतियाँ बोलती दिखाई पड़ती हैं। पूर्व मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन ने उन परिस्थितियों को चुनौती दी, जिनके कारण जनता की स्थिति भयावह स्तर तक पहुँच गई थी।

'सन्तन को कहा सीकरी सो काम' कहने वाले कुम्भन कवि, 'जासु राज प्रिय प्रजा दु:खारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी' कहने वाले तुलसीदास जी, 'खेलन में को का को गुसैंया' के निर्भीक महात्मा सूरदास जी तथा 'राणा जी अब न रहूँगी तोरी हट की' के द्वारा राणा जैसे वैभवशाली को चुनौती देने वाली मीरां का काव्य अपने युग की जनता की आर्त्त वाणी से निरपेक्ष हो ही नहीं पाया है। वह काव्य अपने युग की वास्तविकताओं का काव्य है। अपने युग की जनता की वाणी का प्रस्फुटन है। इसलिए वह अमर काव्य है। उसके कवि महान् हैं और वह युग हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। जिस पर आगे चलकर समाज के मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग का सूक्ष्म निरीक्षण एवं यथार्थ जीवनानुभव लेकर उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने हिन्दी उपन्यास में पदार्पण किया। 'सितारों के खेल' तथा 'बांधो न नाव इस ठाँव', 'एक नन्ही किन्दील', 'शहर में घूमता आईना', 'पत्थर अल पत्थर', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'निमिषा', 'एक रात का नरक', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पलटती धारा', 'छोटे-बड़े लोग', 'चन्दा', 'चेतन संक्षिप्त', 'चेतन वृहद्', 'संघर्ष का सत्य' तथा 'नन्ही-सी लौ' जैसे उपन्यास लिखे हैं, जिनमें भक्तिकाल की स्थितियों से समझौता न कर अपनी वाणी को निम्न-मध्य वर्ग की जनता की वाणी एकात्म कर देने वाले कवियों का रचना संघर्ष है।

"उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) के पराभव और रियासतों की जर्जर (दयनीय) स्थिति में शृंगारिक कविता ही लिखी जा सकती थी, जिसमें बिहारी, देव, घनानन्द, भूषण, मतिराम, भिखारीदास आदि कवियों ने अपने युगानुकूल कविता करके भी कविता परम्परा को समृद्ध किया है। यद्यपि इन कवियों में अपने युग की चुनौतियों को स्वीकार करने का साहस नहीं था, फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि राजनीतिक पराभव से दिग्भ्रमित कवियों का यह रचना संसार उस युग का निदर्शन तो कराता ही है। मध्यकाल के अपने अन्तर्विरोध हैं, जैसे हर युग के अपने अन्तर्विरोध होते हैं। एक ओर तो भक्तिकाल और उसके बाद रीति में आबद्ध कविता और शृंगारिक दृष्टि से बँधे कवि। शृंगार कवियों का प्रमुख रस इसलिए बना कि दयनीय स्थितियों में जीवित राजा महाराजाओं को वह सुहाता था, जबकि जनता जो भूख और गरीबी में ही अपना जीवन जी रही थी, वह जनता और उसकी आर्त्त वाणी जो भक्तिकाल के भक्त कवियों में सुनने को मिलती है, यहाँ नदारद है। इस अन्त:विरोध को उस युग की स्थितियों को बिना समझे, समझा ही नहीं जा सकता।"[1]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के कथा साहित्य को उस युग से अलग करके देखा और समझा नहीं जा सकता है, जिसमें उनका साहित्य संसार निर्मित हुआ और जिसके कारण रचना संसार प्रभावित हुआ। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने तो सोलह साल की उम्र में ही लिखना शुरू कर दिया था और 1936 तक पहुँचते-पहुँचते उर्दू कथाकारों की अग्रणी पंक्ति में शामिल हो गये, लेकिन यह लिखना लिखने की पीठिका थी, अभ्यास था, खूब लिखने और अच्छा लिखने का। 'अश्क' जी जिन्दगी को उसकी कठोर यथार्थता में देखने के बाद एक पूर्ण परिवर्तित व्यक्ति के रूप में उभरे, अपने काल्पनिक और वायवी स्वर्ग को उन्होंने तिलांजलि दे दी थी। कल्पना प्रधान रूमानी कहानियाँ लिखना छोड़कर चारों ओर बिखरे विराट जन समुदाय के जीवन और दुःख-दर्द को चित्रित करने का संकल्प लिया।

(1) स्वाधीन भारतीय समाज की पूर्व पीठिका

"मुस्लिम आक्रान्ता सामाजिक दृष्टि से पिछड़े थे और अंग्रेज प्रगतिशील। मुसलमानों ने राज्य करने के साथ वहाँ की जनता को अपने संस्कार दिए और यहाँ के संस्कार लिए भी, इसलिए वे विधर्मी होते हुए भी यहाँ की जनता में घुल-मिल गए, लेकिन अंग्रेज ऐसा नहीं कर पाये। वे राज्य करने आये थे, यहाँ की जनता से मेल-जोल बढ़ाने नहीं। भारत का शोषण करके जितना धन अंग्रेज अपने देश में ले गए, उतना कोई आक्रान्ता नहीं ले जा पाया। मुसलमान तो बाहर से आकर यहाँ के होकर रह गये, इसलिए उनके द्वारा किया गया शोषण यहीं का यहीं रहा। अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़ाकर राज्य किया, जबकि मुसलमानों के सामने इस प्रकार की कोई चुनौती थी ही नहीं। उनके सामने तो वे राजपूत राजा थे, जो आपसी कलह और ईर्ष्या के शिकार होकर पतनशील थे। इस पतन का लाभ मुसलमानों ने उठाया और हिन्दू-मुसलमानों के द्वेष का लाभ अंग्रेजों ने उठाकर अपना राज्य कायम किया।"[2]

(2) नवजागरण : परिदृश्य

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में पुनर्जागरण का प्रारम्भ हुआ। धर्म व समाज का सुधार करने के लिए अनेक सांस्कृतिक आन्दोलन हुए, जिनसे आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका। इस पुनर्जागरण के मूल में दो प्रकार की प्रेरणा काम कर रही थी—

(अ) पाश्चात्य अथवा यूरोपीय सभ्यता से सम्पर्क, तथा

(ब) प्राचीन भारत की गौरवमय सांस्कृतिक परम्परा।

इस नवजागरण के अग्रदूत आधुनिक भारत के पिता कहे जाने वाले राजा राममोहन राय थे, जिन्होंने शुद्ध एकेश्वरवाद की उपासना के लिए 1828 ई. में कलकत्ता में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की।

अरबी-फारसी और अंग्रेजी के ज्ञाता राजा राममोहन राय ने बंगाल में रूढ़ियों के विरुद्ध जो आन्दोलन चलाया उसके दूरगामी परिणाम सामने आये। बंगाल में नारी जीवन के कलंक 'सती प्रथा' को मिटाने के लिए जो नवजागरण हुआ वह सन् 1929 में गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक से मिलकर सती-प्रथा पर रोक के रूप में सामने आया। कोई भी जनजागरण अपनी तेजस्वी भूमिका में न तो एकदम आता है और न ही मद्धिम पड़ता है। अत: यह कहना कि राजा राममोहन राय के बाद बंगाल में यह क्रान्तिकारी कदम बन्द हो गया, सती-प्रथा के साथ ही समाप्त हो गया, इसके साथ अन्याय करना है। बल्कि सच्चाई यह है कि इसके बाद तो बंगाल जैसा प्रान्त चमक उठा था, बल्कि यह कहा जाए कि "ब्रह्म समाज हिन्दू धर्म को त्यागने को अनइच्छुक था, किन्तु उदारवादी बनने और पाश्चात्य देशों के धार्मिक प्रभावों को ग्रहण करने को उद्यत था।" स्वयं राजा राममोहन राय ने लिखा है, "मुझे यह कहते हुए दु:ख होता है कि हिन्दुओं की वर्तमान धर्म व्यवस्था ऐसी है जिससे उनके राजनीतिक हितों की पूर्ति नहीं हो सकती। अगणित धार्मिक संस्कारों तथा सिद्धिकरण के नियमों ने उनको कोई भी कठिन और साहसिक कार्य करने के अयोग्य बना दिया है। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि कम-से-कम अनेक राजनीतिक और सामाजिक कल्याण के लिए उनके धर्म में कुछ परिवर्तन करें।" अंग्रेजों ने अपने हित के लिए जो भी काम किए जनता ने उनसे अपने हित में लाभ उठाया। 1757 ई. में बंगाल पर पूर्ण अधिकार कर लेने के बाद सन् 1780 ई. में मदरसा और सन् 1791 ई. में बनारस संस्कृत कॉलेज खोला। यह काम ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता को शिक्षित करने के लिए नहीं किया था, बल्कि भारतीय जनता को भाषा के आधार पर हिन्दू-मुसलमानों में बाँटने के लिए किया था।सन् 1801 ई. में 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना करके उन्होंने इस फूट को और भी गहरा करने के लिए हिन्दी-उर्दू का मामला उछाला, लेकिन परिणाम इसके उल्टे ही निकले। शिक्षा के प्रभाव से एक प्रकार की राजनीतिक चेतना का

उदय हुआ और देखते ही देखते अनेक भाषाओं में समाचार-पत्रों का प्रकाशन हो गया। अपने देश के सन्दर्भ में पत्र निकालने की पहल राजा राममोहन राय ने की। सन् 1821 ई. में उनके सहयोग से 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक बँगला पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमें सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में लेख रहते थे। द्वारिकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर, राजा राममोहन राय जैसे प्रगतिशील व्यक्तियों ने सन् 1830 ई. में 'बंगदूत' पत्र की नींव डाली। हिन्दी की पहली पत्रकारिता का इतिहास बंगाल से ही शुरू होता है। सन् 1826 ई. में हिन्दी के सबसे पहले समाचार पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' का प्रकाशन कलकत्ता से ही हुआ। कलकत्ता से ही 'प्रजापति' (1834 ई.) का प्रकाशन होने लगा। हिन्दी का दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' (1854 ई.) श्याम सुन्दर सेन के सम्पादकत्व में कलकत्ता से ही निकला। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में चेतना का शंख फूँकने का काम इन्हीं समाचार-पत्रों ने किया है, जिससे विचारों के आदान-प्रदान में सुविधा हुई। निगलित सामाजिक नैतिक रूढ़ियों के विरोध में पत्रों का अच्छा उपयोग किया गया।

केरल में 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' नामक एक संस्था थी जो सामाजिक सुधार का कार्य करती थी। इस संस्था का एक प्रमुख नारा था—'एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर' परन्तु गाँधी जी ने उनसे कहा कि—"एक ही पेड़ की सारी पत्तियाँ आकार और बनावट में एक जैसी नहीं होती।" इसके जवाब में नारायण गुरु ने कहा था कि—"फर्क सिर्फ ऊपरी है, पत्तियों के रस में तो कोई फर्क नहीं होता। एक पेड़ की सारी पत्तियों से निचोड़े गये रस का स्वाद एक ही होता है।" नारायण गुरु ने ही यह आह्वान किया था—"मानव मात्र के लिए एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर।" बाद में उनके एक परम शिष्य ने इसे इस तरह सुधारा—"मानव मात्र के लिए कोई धर्म नहीं, कोई जाति नहीं, कोई ईश्वर नहीं।"[3]

इसी तरह की महाराष्ट्र में 'परमहंस' नामक एक गुप्त संस्था थी जो सामाजिक सुधारों का कार्य करती थी। फर्कुहर के अनुसार—"इस संस्था का वही सदस्य हो सकता था, जो ईसाई तथा मुसलमान का बनाया भोजन खा सके।"[4] ईसाई तथा मुसलमानों का बनाया हुआ खाना खाने का उद्देश्य समाज में जाति और धर्म के आधार पर जो विभाजन और फूट पहले से पड़ी हुई थी, जिसे धार्मिक कठमुल्लाबाद हवा दे रहा था, को समाप्त करना था।

'प्रार्थना सभा' केशवचन्द्र सेन की बम्बई यात्रा के बाद 1867 में बम्बई में 'प्रार्थना सभा' की स्थापना की गई। इसके प्रमुख नेता डॉ. आत्माराम पाण्डुरंग और जी. भण्डारकर तथा महादेव गोविन्द रानाडे थे। इस समाज के मुख्य आधार एकेश्वरवाद में दृढ़ विश्वास और सुधार कार्यक्रम थे। रानाडे ने इसके अन्तर्गत समाज सुधार आन्दोलन को संगठित किया। जाति प्रथा तथा पर्दा-प्रथा के खण्डन तथा बाल विवाह की समाप्ति पर प्रार्थना समाज ने जोर दिया, स्त्री शिक्षा तथा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। इस समाज ने कई अनाथालय तथा विधवा आश्रम खोले तथा रात्रि पाठशालाओं द्वारा समाज में शिक्षा का प्रचार भी किया। देश और समाज का कोई ऐसा पक्ष नहीं था, जिसकी ओर उनकी दृष्टि न गयी हो। सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध वे निरन्तर संघर्ष करते रहे। अतीत के लिए उनके मन में आदर था, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे अतीत को उसके उसी रूप में पुन: प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार समाज जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार समाज जीवित अवयवों का संघठन है, जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है। इस प्रक्रिया के बन्द हो जाने पर समाज मुर्दा हो जायेगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1867 ई. में बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना की जो अन्त में एक बहुत बड़ा धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक आन्दोलन बन गया। देश को अनेक क्रान्तिकारी देने का काम भी आर्य समाज ने ही किया। स्वाधीनता का मन्त्र देने में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने कहा है कि, "विदेशी राज चाहे माता-पिता के समान ही क्यों न हो, लेकिन वह स्वदेशी राज्य की समानता नहीं कर सकता।"[5]

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही सर्वप्रथम हिन्दू धर्म के सार्वदेशिक रूप को पहचाना और उसमें अपने विचार प्रकट करने का निश्चय किया। आर्य समाज ने हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति भी सर्वप्रथम आर्य समाज ने ही चालू की थी। स्वराज्य का मूलमन्त्र भी महर्षि दयानन्द ने ही सबसे पहले देश को दिया। 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि— "अच्छा से अच्छा विदेशी राज्य भी तुलना में बुरा ही है।" उन्होंने जोर देकर यह भी कहा

कि भारत को प्राचीन वेदों की ओर लौटना है, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं के भण्डार हैं। आर्य समाज के महान् कार्यों में वैदिक धर्म का पुनरुद्धार, समाज सुधार, शुद्धि आन्दोलन, जाति भेद उच्छेद, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति, हिन्दी प्रसार और राष्ट्रीय जागरण, आर्य समाज ने ही एक आन्दोलन के रूप में समाज को एक नई दिशा प्रदान की, परिणामस्वरूप अनेक क्रान्तिकारियों और लेखकों को जन्म देने का श्रेय आर्य समाज को ही जाता है। रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, भगवानदास माहौर और शिव वर्मा आदि क्रान्तिकारी तथा प्रेमचन्द जैसे लेखकों ने अपनी यात्रा आर्य समाज से ही आरम्भ की थी। इसमें श्याम जी कृष्ण शर्मा भी थे। उनका कहना है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं अपना मार्गदर्शक गुरु मानता हूँ। उनके चरणों में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया है। उनकी मुझ पर सदैव कृपा रही है। स्वामी जी की यह इच्छा थी कि विदेशों में भी वैदिक विचारधारा का प्रचार हो। उन्होंने विदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रचार करने की प्रेरणा दी। मैंने राष्ट्र, जाति तथा समाज की जो सेवा की है, उसका श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती जो को प्राप्त हो। मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसमें बड़ा हाथ सर्वहितैषी, वेदज्ञ, तेजस्वी, युग दृष्टा का है। मुझे इस स्वतन्त्र विचारक का शिष्य होने का अभिमान है।"[6]

इसी प्रकार लाला लाजपतराय ने आर्यसमाज के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा है—"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हें अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है। इन दोनों को उन्होंने गढ़ा है। मेरे गुरु एक स्वतन्त्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है। उन्होंने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना सिखाया है। यह मेरा निश्चित मत है कि महात्मा गाँधी के असहयोग कार्यक्रम में एक भी विचार ऐसा नहीं है,जो स्वामी दयानन्द महाराज की शिक्षा में न मिलता हो।"[7]

'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद स्वामी विवेकानन्द ने 1887 में बारानगर में की थी। रामकृष्ण परमहंस अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में अर्धमूर्तिपूजक, मित्रहीन हिन्दू भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। उन्होंने सब धर्मों की सत्यता में विश्वास करते हुए कहा था—"ईश्वर एक है किन्तु विभिन्न कालों व देशों में वह भिन्न-भिन्न नामों से व भावों से पूजा जाता है। सभी धर्म एक ही ईश्वर की खोज में लगे हैं। यद्यपि उनके रास्ते भिन्न-भिन्न हैं। ईश्वर को जिस शक्ल और नाम से तुम पुकारोगे, उसी नाम और स्वरूप में तुम उसे देखोगे।" उनके योग्य शिष्य विवेकानन्द ने

उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है। स्वयं विवेकानन्द के सम्बन्ध में ठीक इसका उल्टा कहा जा सकता है। सन् 1893 ई. में विवेकानन्द धर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए शिकांगो गये। उनकी वकृता से प्रभावित होकर न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था—"विश्व धर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।" विवेकानन्द का मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करना था। फिर सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि की मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति, सम्प्रदाय, छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति अत्यन्त प्रगाढ़ थी। शिक्षित समुदाय तथा उच्च वर्ग की भर्त्स्ना करते हुए उन्होंने कहा है—"जब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं, अज्ञानी हैं, मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूँगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।"

थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना सन् 1875 में मदाम ब्लावस्तु और ओल्कार्ट द्वारा न्यूयार्क में हुई थी। यह आन्दोलन भारतीय धार्मिक परम्परा पर आधारित था। उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक इस प्रकार के समाज सुधारक आन्दोलनों ने भारतीय जनता को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की जनता को जगा दिया था। अपनी वास्तविकताओं की गहराई की खोज करना ही इन आन्दोलनों की देन है। हिन्दू समाज की कुरीतियों पर 19वीं शताब्दी में जिस प्रकार एक साथ प्रहार हुए, वे पहले कभी नहीं हुए थे, बल्कि स्वामी विवेकानन्द को यहाँ तक कहना पड़ा कि—"तुम्हारी भक्ति और मुक्ति की परवाह किसे है, कौन इसकी परवाह करता है कि तुम्हारे धर्म ग्रन्थ क्या कहते हैं? मैं बड़ी खुशी से हजार बार नरक जाने को तैयार हूँ, अगर इससे मैं अपने देशवासियों को ऊँचा उठा सकूँ।"[8]

भारत की स्वाधीनता का आन्दोलन भी इन्हीं समाज सुधारकों के आन्दोलन के साथ साथ चल रहा था। स्वदेशी की भावना और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए आन्दोलन तथा अपने देश से प्यार करने की उत्कृष्ट इच्छा इन्हीं की देन है। हमें हमेशा याद रहना चाहिए कि उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों का महत्त्व उनकी संस्था के आधार पर नहीं तय किया जाना चाहिए। वास्तव में वे लोग तो नई धारा के प्रवर्तक थे। उन्हीं के विचारों और क्रियाकलापों का नए भारत का रचना पर निर्णायक असर पड़ा।

(3) साहित्य में प्रतिच्छवि

इतिहास का कोई भी काल सहसा समाप्त नहीं हो जाता और प्रायः अगले एक–दो दशक तक उसकी रचना प्रवृत्तियाँ किसी–न–किसी रूप में व्यक्त होती रहती हैं। इसी भाँति किसी नये युग का शुभारम्भ भी सहसा नहीं होता, उसके स्वरूप निर्माण की प्रक्रिया के बीच दस बीस–वर्ष पहले तक के साहित्य में विद्यमान रहते हैं। आर्यों की चिर सभ्यता अंग्रेजी विचारधारा तथा संस्कृति से जा टकराई और विक्षिप्त सी हो गई, जिससे राष्ट्र के कोने–कोने से क्रान्ति पुकार उठी। देश के राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक कलात्मक जीवन में एक नई लहर जाग्रत हुई। सन् 1857 के गदर ने इस क्रान्ति का परिचय दिया और यह सिद्ध कर दिया कि देश के जीवन में नव–चेतना एवं जागरण प्रविष्ट हो चुका है। किसी भी राष्ट्र की साहित्यक प्रगति जानने के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि उसकी बाह्य परिस्थितियों का गहन अवलोकन किया जाय। इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द और उनकी मित्र मण्डली के द्वारा लिखा गया साहित्य आज से हिन्दी ही नहीं, बल्कि हिन्दी प्रदेश, हिन्दी जाति के लिए अपने स्वाधीनता आन्दोलन के स्फुरण का साहित्य है। रीतिकाल से निकलकर हिन्दी कविता पहली बार जनता के दुःख–दर्द का संवाहक बनी। अंग्रेजों के विरोध और स्वाधीनता की लहर को जन–जन तक पहुँचाने में इस युग के साहित्यकारों का विशेष महत्त्व है।

भारतेन्दु हरिश्च का जिस समय आविर्भाव हुआ उस समय भारतवर्ष मध्ययुगीन पौराणिक जीवन में लिप्त तथा पतित था। नवीन ऐतिहासिक कारणों से विशेषतः नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप हिन्दी प्रदेश में नवयुग की अवतारणा हुई और लेखकों में विचार स्वातन्त्र्य का जन्म हुआ। भारतेन्दु हरिश्च नवयुग के अग्रदूत और हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के जन्मदाता थे। उनकी रचनाएँ देश प्रेम से ओत–प्रोत हैं। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की सर्वतोमुखी अधोगति का हृदय–विदारक चित्र अंकित किया और उसके भावी उज्ज्वल भविष्य का स्वर्णिम स्वप्न देखा। भारतवासियों की परस्पर फूट, वैमनस्य और अभारतीयता उन्हें बहुत खटकती थी। अंग्रेजी राज्य में प्राप्त धार्मिक स्वतन्त्रता और विविध प्रकार के अत्याचारों और दिन–रात की अशान्ति से छुटकारा पाकर उन्होंने परम सुख और शान्ति का अनुभव किया। देश का हित ही उनके लिए सर्वोपरि था। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी राज्य में बरती गई अनीतियों का भलीभाँति

विरोध भी किया और अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण, काले-गोरे के भेद-भाव, अंग्रेज कर्मचारियों के दुर्व्यवहार आदि का क्षोभ प्रकट किया। वे स्वतन्त्रता के जबरदस्त पक्षपाती थे, किन्तु तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल औपनिवेशिक प्रतिनिधि शासन प्राप्त करना चाहते थे। उनका विरोध 'हिज मैजेस्टीज अपोजीशन' वाला विरोध था। भारतवासियों का पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण और जिस भाषा के प्रति उदासीनता भी उन्हें बहुत अखरती थी। भारतीय जीवन की समस्त बुराइयों की उन्होंने निन्दा कर उसे स्वस्थ एवं प्रशस्त बनाने की चेष्टा की। हिन्दी नवोत्थान आन्दोलन के धर्म और साहित्य सम्बन्धी दो प्रमुख पक्षों पर भारतेन्दु अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ गये हैं। वास्तव में हिन्दी प्रदेश या भारतवर्ष के ही नहीं वरन् समस्त पूर्वी संसार के अलसाये जीवन में नवीन चेतना और स्फूर्ति उत्पन्न करने में उन्होंने अपना पूर्ण योग दिया।

भारतेन्दु का काल 1857 की असफलता का काल है, जिसमें असफलता से प्राप्त प्रेरणा और जिजीविषा निरन्तर आगे की ओर बढ़ रही थी। जनता की दुःख तकलीफों के साथ उनके निदान के लिए स्वदेशी का वरण और विदेशी का बहिष्कार इनका मुख्य उद्देश्य है। अंग्रेजों की शोषण नीति का भारतेन्दु द्वारा प्रत्यक्ष उल्लेख इस भावना की चरम परिणति है—

भीतर भीतर सब रस चूसैं,
हँसि हँसि के तन-मन धन मूसैं।
जाहिर बातन में अति तेज,

क्यों सखि साजन! नहिं अंगरेज।।सन् 1885 ई. से लेकर 1905 ई. तक के काल में अंग्रेजों द्वारा भारतवर्ष में काफी उथल-पुथल किया गया। सन् 1905 ई. में अंग्रेजों द्वारा बंगाल के दो टुकड़े करने के बाद सम्पूर्ण देश में जो विरोधी भावना फैली उसे निरन्तर फैलाव मिला इस समय विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था। समाचार पत्र इस आन्दोलन के विस्तार के लिए जी-जान से एक हो गये थे। देश में नवजागरण की लहर उठ रही थी। 19वीं शती के उत्तरार्ध के समाज सुधारक आन्दोलन का प्रभाव पहले से ज्यादा बढ़ने लगा था। नारी को सामाजिक धारा में बराबरी का अधिकार दिलाने, उसे बढ़ाने की ओर उसकी दयनीयता की जिम्मेदार कुरीतियों पर सामाजिक प्रतिबन्ध लगाने का आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था। इसके प्रभाव से

साहित्य भी अछूता नहीं रह पाया। 1918 ई. में मुँशी प्रेमचन्द (धनपतराय) ने अपना पहला उपन्यास 'सेवासदन' लिखा। इसमें प्रेमचन्द जी ने पुलिस और वर्तमान हिन्दू समाज की कुव्यवस्था, दहेज-प्रथा व नारी जाति की दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों के विरोध में लिखा है। इस उपन्यास की दो प्रमुख आदर्श नारियाँ हैं—शान्ता और सुमन। सुमन वेश्या जीवनयापन करने को विवश होती है। नारी को वेश्या बनाकर सुख की कामना करने वाला यह समाज अधिक दिनों तक सुख की नींद सो नहीं सकता। 'सेवासदन' की सुमन को घर से निकाल देने वाले पदमसिंह स्वयं पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—"यदि मैंने उसे घर से निकाल न दिया होता, तो इस भाँति पतन न होता। मेरे यहाँ से निकलकर उसे और कोई ठिकाना न रहा और क्रोध एवं कुछ नैराश्य की अवस्था में वह भीषण अभिनय करने को बाध्य हुई।"[9]

अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए सुमन पुरुष समाज के अत्याचारों पर सटीक चोट करती है—"आप सोचते होंगे कि भोग-विलास की लालसा से मैं इस कुमार्ग में आयी हूँ, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं जानती हूँ कि मैंने अत्यन्त निकृष्ट कर्म किया है, लेकिन मैं विवश थी। इसके सिवाय मेरे लिए और कोई रास्ता न था।"[10] सुमन स्वयं अपने आपको दोषी मानकर कहती है—"हाय! मुझ जैसी डाइन संसार में न होगी, मैंने विलास तृष्णा की धुन में अपने कुल का सर्वनाश कर दिया। मैं अपने पिता की घातिका हूँ, मैंने शान्ता के गले पर छुरी चलाई है। मैं उसे यह कालिमापूर्ण मुँह कैसे दिखाऊँगी? उसके सम्मुख कैसे ताकूंगी...?"[11]

प्रेमचन्द 'गबन' के जालपा को अदम्य साहस और धैर्य से गबन के रुपये चुकाती हुई बताती हैं। वह कलकत्ते से रमानाथ की खोज करती है और अन्त में धिक्कार, प्रेरणा, सेवा और त्याग से रमानाथ को मानसिक दृढ़ता देती है। यह भी मध्यमवर्गीय नारी का ही स्वरूप है। सन् 1905 ई. में बंग विभाजन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, प्रथम विश्व युद्ध, 1930 की आर्थिक मंदी, 1930 का महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन, राजनीतिक अस्थिरता, कांग्रेस की भूमिका, कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रभाव, प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, द्वितीय विश्व युद्ध के काले बादल और उसके दुष्परिणाम, अकाल, किसानों की दयनीय स्थिति, जमींदारों द्वारा किए गए अत्याचार, जड़ जमाता पूँजीवाद, मध्यम वर्ग का उदय, धार्मिक वैमनस्य, हिन्दू-मुस्लिम दंगे, उग्रवाद की प्रभावशाली

भूमिका तथा 1942 में महात्मा गाँधी द्वारा भारत छोड़ो अंग्रेजों का उद्घोष आदि अन्य ऐसे कारण हैं, जिन्होंने भारतीय जनमानस को झिंझोड़कर जगा दिया था। हिन्दी कथा साहित्य इन व्यापक प्रभावों से बच ही नहीं सकता था। जिस प्रकार संगमरमर की पत्थर जुटा लेने से ही ताजमहल तैयार नहीं किया जा सकता, उसके लिए विशेष कलात्मकता की अपेक्षा है, वैसे ही महान् विषयों को संकलित कर लेने से ही महान् काव्य निर्मित नहीं हो पाते, उसके लिए भी विशेष प्रतिभा और विशेष अनुभूति की अपेक्षा होती है। इसी परिवेश में सच्ची प्रतिमा एवं विशद् भावानुभूति थी, इसी के बल पर कविता बन सकी थी—

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

— प्रसाद : यशोधरा

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में।
स्वच्छ चाँदनी छिटक रही है, अवनी और अम्बर तल में।।

— पंचवटी

कविता के अतिरिक्त कथा साहित्य में मुँशी प्रेमचन्द, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, जयशंकर प्रसाद, भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि की रचनाओं में उस युग के व्यापक प्रभाव को भली-भाँति देखा जा सकता है। कहने को तो यहाँ तक कहा जाता है कि यदि दुर्भाग्य से हिन्दू जाति का इतिहास विलुप्त हो जाये तो हिन्दी साहित्य से उसकी पुन: रचना हो सकता है। यह वाक्य हिन्दी साहित्य के लिए एक अलंकार के समान है।

इन व्यापक परिवर्तनों और जन-आन्दोलनों के परिप्रेक्ष्य में ही उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के कथा साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। 'अश्क' जी नवजागरण काल में बचपन की साँस ले रहे थे, इसी काल में वे बड़े हुए। महात्मा गाँधी का 1920 का असहयोग आन्दोलन, 1930 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1928 का साइमन कमीशन वापस जाओ के जन-समूह में भाग लिया। स्वतन्त्रता की खुली कल्पना में अपने

भावी जीवन के स्वप्न संजोये, समाज सुधारकों की अच्छी-अच्छी बातें सुनीं, अपना मानस बनाया।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का रचनाकाल गाँधी युग और नेहरू युग दोनों युगों के बीच पड़ता है। उनकी भावनाएँ गाँधी युग की उपज हैं और उनकी बौद्धिकत्व चेतना नेहरू युग की वस्तुन्मुखी वैज्ञानिक तथा समाजोन्मुख चेतना की देन है। अपने 'चेतन' सीरीज के बड़े उपन्यासों में वे अपने चारों ओर के संसार को बड़ी निर्ममता और मानवीयता से चित्रित करते हैं, परन्तु इस प्रयोग के खतरों से भी वे परिचित हैं। अन्य साहित्यकारों की तरह उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के मन पर भी इन आन्दोलनों की अमिट छाप है, जो उनके साहित्य में यथा अवसर प्रकट हुई हैं।

(4) भाषा कौशलसन् 1757 ई. में प्लासी का युद्ध और 1857 का गदर और उसके बाद ब्रिटिश सरकार का अधिक शक्तिशाली होना, इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। अंग्रेजों की दृष्टि में बंगाल जैसे उर्वर प्रदेश और सांस्कृतिक दृष्टि से धनी तथा राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिशील प्रदेश को अपने कब्जे में करना पहली विजय थी। इसके बाद ब्रिटिश सरकार के पैर जम गये। सम्पूर्ण भारतवर्ष को जीतने का स्वप्न उनकी आँखों में सालता (चुभता) रहा।

अपनी सम्पूर्ण कूटनीति को उन्होंने (अंग्रेजों ने) भारत विजय पर ही लगा दिया। अब अंग्रेजों के सामने दो महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ ही शेष थीं, एक मराठे और दूसरे सिख। दोनों की विजय के बाद सम्पूर्ण हिन्दुस्तान उनका अपना था। यह विश्वास उनके चेतन मन में अच्छी तरह बैठ गया था। अपनी विजय के प्रति आश्वस्त अंग्रेजों ने सन् 1803 में 'असी' और 'लासवारी' के युद्धों में मराठों की सम्प्रभुता को विजित कर लिया और लगातार युद्धों और शत्रु को कमजोर करने की कूटनीति ने सन् 1849 में सिखों को भी पराजित कर दिया। सन् 1856 में अवध भी अंग्रेजों के अधीन हो गया। अंग्रेजों ने अपने युद्ध कौशल और भारतीय राजाओं की आपसी ईर्ष्या का लाभ उठाते हुए सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को अपने कब्जे में कर लिया।सन् 1857 के विद्रोह का आरम्भ 10 मई, 1857 को दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ में हुआ। फिर यह तेजी से बढ़ता हुआ पूरे उत्तर भारत में फैल गया। जल्दी ही उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में

बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक एक विस्तृत भू-भाग इसकी चपेट में आ गया। यह युद्ध निर्णायक था, जो पहला स्वाधीनता संग्राम था, जिसे हिन्दू और मुसलमानों ने एक साथ होकर भारत की स्वाधीनता के लिए लड़ा। हिन्दू-मुसलमान जिस तरह मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़े, उस तरह उनके खिलाफ न उससे पहले लड़े थे और न उसके बाद लड़े। भारतीय सेना की क्रान्तिकारी भूमिका का यह बहुत बड़ा प्रमाण है। अंग्रेजों ने इस गदर को सैनिक विद्रोह का नाम देकर उसके महत्त्व को कम करने का प्रयास किया, परन्तु इस विचार के विरुद्ध सन् 1909 ई. में पहली बार विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 के विप्लव को 'भारत की स्वतन्त्रता का युद्ध' की संज्ञा दी व इसी शीर्षक से एक ग्रन्थ भी लिखा। 1957 में स्वतन्त्र भारत ने 1857 ई. के विप्लव की पहली शताब्दी मनायी।सन् 1857 ई. का विप्लव कई दृष्टियों से ऐतिहासिक है, पहली बार पूरे देश में एक साथ विद्रोह की ज्वाला उठ खड़ी हुई—"आजादी के हर हिस्से में विद्रोही पैदा हुए। दिल्ली की रिज पर (ब्रिटिश पक्ष की ओर से) सिख थे, तो शहर के भीतर (जनपक्ष की ओर से) सिख थे, पूरबियों से लड़ने के लिए सीमान्त प्रदेश की कबीलाई लोगों की भर्ती की गई तो धार और मंदसौर में विलायती या अफगान लोगों को विद्रोही दल में प्रधानता दी गई। एक समय बगावत को मुस्लिम आन्दोलन, अन्य समय उसे हिन्दू आन्दोलन मानने का फैशन था, लेकिन हर मंजिल में विद्रोही सेना के भीतर दोनों सम्प्रदायों का अच्छा प्रतिनिधित्व था। नाना के साथ उनके अजीमुल्ला थे, बहादुर खाँ के साथ उनके शोभाराम और झांसी की रानी के साथ उनके भरोसेमंद पठान अंगरक्षक थे। बगावत के प्रारम्भिक दिनों में कहा जाता था कि फसाद की जड़ ऊँची जाति के हिन्दू हैं और उनके तोड़ के लिए निचली जातियों और आदिम अवस्था वाले कबीलों को लामबन्द करने की कोशिश की गई, लेकिन अवध में विद्रोहियों की सेना में पारसी भरे हुए थे और राजपूताना तथा मध्य भारत में भील विद्रोहियों के साथ हो गये। उधर संथालों ने एक बार फिर से तय किया कि सूदखोरों की संरक्षक सरकार से लड़ना चाहिए। कोई भी सम्प्रदाय, वर्ग या जाति पूरी की पूरी सरकार के पक्ष या विपक्ष में नहीं थी।"[12]

विप्लव के इस स्वरूप के बारे में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, फरमाते हैं—"गदर में समाज के हर स्तर के लोग अंग्रेजों से लड़े। जनजातियाँ लड़ीं, शूद्र लड़े, मुसलमान लड़े। किसिम-किसिम के सम्प्रदायवादी इतिहास की इसी स्मृति को मिटा देना

चाहते हैं। जिन ऐतिहासिक परम्पराओं से उन्नत राष्ट्रों का निर्माण होता है, उन्हीं से गदर की यह जनसंग्राम वाली परम्परा है और गदर के बाद भी स्वाधीनता आन्दोलन ने जन आन्दोलन का रूप लिया, वह परम्परा फिर जी उठी, बड़े जतन से उठाई हुई दीवारें एक क्षण में ढह गयीं।

नवम्बर-दिसम्बर 1990 के भारत में किसे विश्वास होगा कि अयोध्या के मन्दिरों में पुजारियों ने मुसलमानों को आश्रय दिया था।"[13] आगे लिखते हैं—"इतिहास की स्मृतियों को उत्पीड़क वर्ग मिटाते हैं, मिटा नहीं पाते तो उन्हें विकृत रूप में पेश करते हैं पर ये स्मृतियाँ लोक-मानस में सुरक्षित रहती हैं। वे नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन की प्रेरक शक्ति बन जाती है। अवध का किसान आन्दोलन देश के स्वाधीनता आन्दोलन का एक हिस्सा था, वह हिन्दी जाति के स्वाधीनता आन्दोलन का भी अंग था। गदर भारत का स्वाधीनता आन्दोलन था, वह हिन्दी जाति का स्वाधीनता आन्दोलन भी था। बीसवीं सदी में उससे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा मिली, हिन्दी नवजागरण को प्रेरणा मिली।"[14]

डॉ. रामविलास शर्मा, रामप्रसाद बिस्मिल और शिवप्रसाद गुप्त — गदर को स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी नवजागरण के प्रेरक के रूप में देखते हैं। इस आन्दोलन को विकृत करने के लिए न जाने कितने प्रयत्न सरकारी स्तर पर हुए, लेकिन वे सब स्वत: ही नष्ट हो गये। जनता में उनका कोई महत्त्व नहीं है। जनता आज भी विप्लव की स्मृति को उसके पुण्य रूप में ये अपने चेतन मन में संजोये हुए हैं। भगत सिंह ने कहीं भारतीय जनता के नाम रामप्रसाद बिस्मिल का संदेश उद्धृत किया था। उसमें कहा गया था—"अब देशवासियों के सामने यही प्रार्थना है कि यदि उन्हें हमारे मरने का जरा भी अफसोस हो तो वे जैसे भी हों, ये हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें, यही हमारी आखिरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है।"

वास्तव में सन् 1857 ई. के गदर ने भारतीय जनता को एक साथ जोड़ने में तथा उनमें एक देश का वासी होने की चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(ब) सामाजिक संरचना की वर्गीय भूमिका

साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि होता है। उसकी कृतियों में तत्कालीन समाज एवं मानव जीवन का यथार्थ चित्र झलकता है। किसी भी परिवार, जाति एवं वर्ग पर

सामाजिक वातावरण का प्रभाव रहता है। वे वस्तुत: पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार के समस्त व्यक्तित्व को चित्रित करती है—"किसी व्यक्ति अथवा समाज को ही उपन्यास अपने वर्णन का आधार बनाता है, वर्ण्य व्यक्ति अथवा समाज के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-नीति, भाषा और उसके आस-पास घिरी परिस्थितियाँ ही देश-काल और वातावरण की संज्ञा धारण करती है।"[15] इसी परिप्रेक्ष्य में 'अश्क' जी ने व्यक्ति को सामाजिक जीवन के केन्द्र में रखा है, और उसके माध्यम से एक बड़े मानव समुदाय के सुख-दुःख, आशा, आकांक्षा, हर्ष, विषाद की कथा कही है। उनका सामाजिक चिन्तन मार्क्सवादी है न कि समाजवादी। वह व्यक्ति और समाज की अन्तरंगी चेतना से निष्पन्न मानव संवेदनाओं का मूल्यगत लेखा-जोखा है; इसीलिए उसमें बिखराव दिखाई देता है और घटनाओं, प्रसंगों, चरित्रों तथा विवरणों की प्रमुखता हो गई है।

'अश्क' के उपन्यासों में कहीं बीमारी से सड़-सड़ कर मरना, परस्पर के लड़ाई-झगड़े, असंगत प्रेम, अशिक्षा का प्रभाव, मुहल्लों का वर्णन, चाटूकारिता, रूढ़िगत कुण्ठाएँ तथा पागलपन तो कहना ही क्या? इसी परिवेश को लेकर 'अश्क' ने अपने उपन्यासों की रचना को जो वस्तुत: नग्न सत्य का रूप है। उन्होंने उपन्यासों में पूँजीपतियों से लेकर मध्यम वर्ग तथा निम्न-मध्य वर्ग तक के परिवेश को चित्रित किया। उसकी रचनाओं में प्रत्येक वर्ग का यथार्थ रूप से वर्णन किया गया है। इस कारण उपेन्द्रनाथ 'अश्क' सफल उपन्यासकार हैं।

सितारों के खेल

'सितारों के खेल' उपन्यासकार 'अश्क' का सर्वप्रथम उपन्यास है और इस उपन्यास की विशेषता यह है कि जीवन के सुख-दुःख, ह्रास-अश्रु, विनोद, संताप का सुन्दर, सजीव और मर्मस्पर्शी वर्णन वास्तविक कसौटी पर उतारा गया है।

उपन्यास का आरम्भ कॉलेज के वाद-विवाद प्रतियोगिता से प्रारम्भ होता है। वाद-विवाद का विषय—'वैवाहिक पद्धति पर पूर्वीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण' है। लता और जगत भारतीय संस्कृति के अनुसार नैतिकता की दृढ़ नींव पर स्थापित पुरातन वैवाहिक आदर्शों का समर्थन करते हैं।

'अश्क' ने अपने वक्तव्य में स्वयं लिख दिया है कि प्रस्तुत उपन्यास विषय प्रधान है। इसमें भारतवर्ष की वैवाहिक समस्या, प्रेम, भावुकता और सामाजिक स्वतन्त्रता पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। पात्रों की जुबान से जो बातें कहलायी गई हैं, वे सचमुच लेखक के विचार को स्पष्ट कर देती हैं। लता ने अन्तिम संदेश जो रानी को दिया है वह उल्लेखनीय है—"देख मेरी तरह स्वतन्त्र रहकर न भटकना। प्रकृति ने जिस उद्देश्य से पुरुष-स्त्री का सृजन किया है, उसी उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है।" इस संक्षिप्त अवतरण से ही लेखक के सुलझे हुए विचार ज्ञात हो जाते हैं और यही साहित्यकार की सफलता है कि उसकी भावनाएँ व्यक्त होकर पाठक को अपने प्रवाह में बहा ले जाए।

गिरती दीवारें

'अश्क' जी का वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' स्वाधीन भारतीय समाज का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। "'गिरती दीवारें' शरबत का गिलास नहीं कि आप उसे एक ही घूँट में कण्ठ से नीचे उतार लें। कॉफी के तख्त प्याले की तरह आपको उसे घूँट घूँट पीना होगा, पर कॉफी की तख्त सरीखी (कटु मिठास) का जो शख्स आदि हो जाता है, वह फिर शरबत की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता है।"[16]

प्रेमचन्द के 'गोदन' ने यदि किसान के जीवन का सांगोपांग चित्रण किया है तो 'अश्क' ने 'गिरती दीवारें' उपन्यास में समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यापक चित्रण किया है। 'गिरती दीवारें' वस्तुत: समाज के युवा चेतन मन की जीवनी है।

'अश्क' जी ने अपने उपन्यास "'गिरती दीवारें' का प्रत्येक वाक्य वर्तमान जीवन की अगणित समस्याओं को एक जटिल ग्रन्थि के रूप में उपस्थित किया है। एक ऐसी ग्रन्थि के रूप में जो अपनी जर्जरता को छिपाने के लिए अधिकाधिक निर्मम, कठोर और हिंसक बनती जा रही है, पर साथ ही जीवन के उद्दाम गति-वेग और अविराम परिवर्तन के थपेड़े खाकर जिसके बंधन असल वेदना, गहरी निराशा और मानसिक उद्विग्नता पैदा करके टूटते जा रहे हों।"[17] गरीब निम्न-मध्य वर्ग में उत्पन्न चेतन अपनी पसन्द न होते हुए भी अपने माँ-बाप की आज्ञा से चन्दा से शादी कर लेते हैं, जबकि चेतन चंदा की छोटी बहन नीला से हमेशा ही आकर्षित था, परन्तु चेतन को अपने भाग्य से समझौता करना पड़ा।

नीला के प्रति चेतन का आकर्षण और चेतन के प्रति नीला का आकर्षण एक जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है।

उपन्यासकार 'अश्क' ने 'गिरती दीवारें' उपन्यास को पूर्ण रूप से यथार्थवादी बनाने का सफल प्रयत्न किया है। 'अश्क' ने विषय के प्रसार में जितनी सफलता प्राप्त की है, उतनी कल्पना के माध्यम से कथा तत्त्व के समाहार में नहीं।

शहर में घूमता आईना

'अश्क' जी ने 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में एक सशक्त चरित्र के रूप में बिल्ला, जगना, देबू आदि सामाजिक परिस्थितियों के शहर के नामी गुण्डों के कारनामों का बखान किया है, जिनका कार्य अनजाने राहगीर की हँसी उड़ाना, झगड़ना आदि ही हैं। बिल्ला गुण्डों के आकर्षण का केन्द्र है। 'शहर में घूमता आईना' के पात्र पागल अथवा पागल सरीखे लगते हैं और पागल अपनी सन्तान से भी क्या आशा रखेगा—"इस अभावग्रस्त मुहल्ले में जहाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था, जहाँ कई घरो में उभर करके भूखे-प्यासे, कुँवारे पड़े थे—अनाचारी, जुआरी, व्यभिचारी और पागल न हों तो और क्या?"[18] "इसके साथ ही अपनी पत्नी की कुरूपता और फूहड़ता, लेकिन इसके बावजूद हर दूसरे तीसरे वर्ष आने वाले बच्चों की रीं-रीं, पीं-पीं से भागकर जिस-जिस के प्रति आकृष्ट हो, वे काल्पनिक प्रेम के संसार बरसाते हैं।"[19]

इस प्रकार 'अश्क' जी ने 'शहर में घूमता आईना' से समाज में पाये जाने वाले पात्र यदि पागल, गुण्डे तथा विक्षिप्त होकर दूसरों के प्यार में तड़पते रहते हैं तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं, अपितु 'अश्क' जी ने उनके प्रति गहरी सहानुभूति प्रदर्शित की है।

एक नन्ही किन्दील

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी ने 'शहर में घूमता आईना' की भाँति 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में भी लाहौर के समाज के विविध वर्गों को चित्रित किया है। लेखक ने स्वयं ही आमुख से पूर्व इस उपन्यास के प्रति इन वाक्यों को दोहराते हुए लिखा है—"अपने आप में सम्पूर्ण होते हुए भी यह उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' के बाद समाज की वास्तविक अनुभूतियों का चित्रण करने वाला महाकाव्य 'गिरती दीवारें' की कथा को आगे बढ़ाता है

और अपने जीवन तथा परिवेश के निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क से विस्तृत होते हुए नायक चेतन और उसकी पत्नी चंदा के चरित्रों का अभूतपूर्व खाका खींचता है। कैसे चन्दा अपनी सरलता और सहृदयता से पूरे आकार को पाती है और चेतन पेट और सैक्स के जज्बे से ऊपर उठकर अहम् के जज्बे से झूमने लगता है—यही इस उपन्यास की विशाल पृष्ठभूमि है।"

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में निम्न मध्यम वर्गीय युवक नायक चेतन की उस कहानी को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वह अपने चारों ओर की विषम परिस्थितियों, महत्त्वाकांक्षाओं, सपनों एवं मानसिक चिन्ताओं के साथ उच्च वर्ग के शोषण प्रधान वातावरण का बिना किसी हिचकिचाहट के सामना करता हुआ अपना उतार-चढ़ाव का जीवन व्यतीत करता है।

बांधो न नाव इस ठाँव (दो भाग)

'बाँधों न नाव इस ठाँव' उपन्यास 'गिरती दीवारें' उपन्यास की चौथी शृंखला है, जिसमें समाज की कुरीतियों तथा वहाँ होने वाले दाँव-पेचों में अनजाना भोलापन पथिक किस प्रकार फँस जाता है। कथाकार यह कहना नहींभूलता—"उपन्यास के नायक को भले ही मैंने अपनी जिन्दगी की घटनाएँ और संघर्ष दिए हैं।...चेतन को ही नहीं, मैंने दूसरे पात्रों को भी अपना बहुत कुछ दिया है, जिन्दगी के यथार्थ को कला के यथार्थ में परिणत करने के लिए यह जरूरी था।"[20] इस विचारधारा के बाद ही वह उपन्यास की कथा की ओर मुड़ता है। कथा को 'अश्क' जी ने दो भागों में विभक्त किया है। पहले घाट में नौ खण्ड और दूसरे घाट में दस खण्ड हैं।

पलटती धारा

'गिरती दीवारें' उपन्यास लिखते समय 'अश्क' जी के मन में था कि वे चेतन का सर्वांग जीवन लिखेंगे। ऐसे संकल्प प्राय: साहित्यिक जीवन में लेखक लेते ही रहते हैं और कालान्तर में उनको बदल भी देते हैं, लेकिन 'अश्क' ने जो संकल्प आज से चालीस-पचास साल पूर्व लिया था, उसे पूरा कर दिखाया। 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील' , 'बांधो न नाव इस ठाँव (दो भाग)' और अन्तिम कड़ी 'पलटती धारा' आदि उपन्यास उसी संकल्प की शृंखला में लिखे गये हैं। यह निर्वाह शक्ति हर लेखक में नहीं होती। 'अश्क' जी में यह अन्य लेखकों की अपेक्षा सबसे ज्यादा है।

'पलटती धारा' उपन्यास 'गिरती दीवारें' उपन्यास की अन्तिम व पाँचवीं कड़ी है। इस उपन्यास में "चेतन की कहानी एक कदम आगे बढ़ती है और उसे एक ऐसे मोड़ पर ले आती है जहाँ उसके सामने दो विकल्प हैं—लेखक बने या कानून की परीक्षा पास करके सब-जजी के कम्पीटीशन में बैठे। चेतन दूसरा विकल्प चुनता है और...। इसी के साथ-साथ अपनी पत्नी की बीमारी के सिलसिले में चेतन अपने परिवार के कुछ दबे-छिपे पहलुओं से भी रू-ब-रू होता है, जिनसे उसे अपने माता-पिता को नये कोण से देखने की अन्तर्दृष्टि मिलती है। इन्हीं घटनाओं में अपनी साली नीला के प्रति चेतन के आकर्षण की अन्तर्कथा भी गुथी है और धर्म तथा अध्यात्म को लेकर भी चेतन की ऊहापोह भी।"[21]

'अश्क' जी ने चेतन की इसी संघर्ष गाथा को चित्रित किया है और भारतीय समाज की झाँकी प्रस्तुत की है।

गर्म राख

उपन्यासकार 'अश्क' जी का तीसरा वृहद् उपन्यास और निम्न-मध्यवर्गीय जीवन पर लिखा 'गिरती दीवारें' के बाद दूसरा उपन्यास है। नायक चेतन मध्य वर्ग की चेतना के उस रूप को लेकर आता है जो पराजय पर भी विजय की कामना से सदा अग्रसर होती चली जाती है। भले ही वह कमजोर हो, फिर भी वह अपने को सदा उत्थान के मार्ग पर लाने में समर्थ होती है। 'गर्म राख' में भी नायक जगमोहन के द्वारा ही कथाकार सामाजिक विषमताओं को प्रकट करवाता है।

'अश्क' जी ने 'गर्म राख' उपन्यास में मानव के जीवन को कसौटी पर कसने का प्रयास किया है। "निम्न-मध्य वर्ग और विशेषत: बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मुख दो समस्याएँ हैं—पहली पेट को भरने के लिए रोटी की समस्या और दूसरी सैक्स की समस्या। इन दोनों समस्याओं के कारण यह पूरा वर्ग तन-मन से क्लान्त हो रहा है। निम्न वर्ग के सामने रोटी की समस्या ने अपना अजगर जैसा मुँह खोल रखा है। उच्च वर्ग को इस समस्या से कोई वास्ता ही नहीं।"[22] जैसे—"तरक्की तो करा दोगे, बाबूजी, पर इससे हमारा क्या भला होगा?...कुछ ऐसा करो बाबूजी, जिससे हमको भी खाने को दो टुकड़े मिलते रहें।"[23]

"उच्च वर्ग के सामने सैक्स की समस्या केवल मात्र विलास के रूप में। कवि चातक के यहाँ कुछ अजीब-सी घुटन जगमोहन को महसूस हुई थी।...यह कैसा प्रेम

है?...यह कैसी भूख है?...केवल एक दृष्टि विनिमय अथवा एक भेंट कर वे ऐसे गीत लिख सकते हैं जिनके शब्द-शब्द से राल सरीखा प्रेम रस टपकता है।"[24]

'गर्म राख' उपन्यास में मुख्य रूप से तीन पात्र हैं—जगमोहन, सत्या एवं हरीश। नायक का पद दिलवाने के लए 'अश्क' जी ने जगमोहन को हर प्रकार से ऊँचा उठाने का यत्न किया है। वह तत्कालीन निम्न-मध्य वर्गीय युवकों के चरित्र का प्रतिनिधि पात्र है। उसमें उसी वर्ग के संस्कारों, परिस्थितियों एवं कमजोरी की छाप प्रकट होती है—"जगमोहन निम्न-मध्य वर्ग के उन लाखों लोगों (युवकों) में से एक था जो बचपन में 'बच्चे' और जवानी में 'युवक' नहीं होते। बचपन ही से जिन पर प्रौढ़ता का रंग चढ़ जाता है, जो एक कदम आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं, जिनके बचपन में खिलन्दरापन होता है, न जवानी में अल्हड़ता। बचपन में सब कुछ भूलकर खेलना और जवानी में सब कुछ भूलकर प्रेम करना तो नहीं जान पाते।"[25]

इस प्रकार हम उपन्यास 'गर्म राख' के माध्यम से उपन्यासकार की प्रगतिशीलता का परिचय सही रूप में पाते हैं, संक्षेप में 'गर्म राख' 'अश्क' जी का सुन्दर तथा सफल यथार्थवादी उपन्यास है।

बड़ी-बड़ी आँखें

यह 'अश्क' जी का चौथा उपन्यास है। 'अश्क' के इस उपन्यास को चिन्तन और यथार्थ का मिश्रण कहा जाता है। केवल एक सबल, सशक्त, पूँजीवाद की अनुभूति ही पूर्ण उपन्यास में द्रवित एवं तरल रूप में प्रकट हुई है।

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास की कथा नायक संगीत की जिस चेतना बिन्दु से आरम्भ होती है और उसके पीछे उसके गहरी मानसिक चुभन, वेदना और आत्मग्लानि ही छुपी हुई है।

उपन्यासकार 'अश्क' जी के शब्द चित्रों का नियोजन स्वत: ही रूप, आकार अथवा मानसिक क्रिया का प्रतिबिम्ब खड़ा कर देता है। वाणी की बड़ी-बड़ी पनियारी आँखों का यह चित्र कितना मार्मिक है—"उन बड़ी-बड़ी आँखों का उन गहरी-भोली आँखों का प्रताप था, जो सदा कुछ अजीब-सी श्रद्धा और स्नेह से मुझे देखती थी। क्या उन भोली भाली ठहरी, निथरी, झील-सी खामोश लेकिन इन पर भी शत-शत वाणियों में मुखर उन बड़ी प्यारी आँखों ने मेरी चेतना की मूर्च्छा को दूर कर सजग कर दिया था।"[26]

पत्थर–अल–पत्थर

'पत्थर–अल–पत्थर' 'अश्क' जी का लघु उपन्यास है। इसमें 'अश्क' जी ने कश्मीर को निकट से देखने और समझने का प्रयत्न किया है और उसे यथार्थ रूप में यथार्थ की दृष्टि से चित्रित किया है। कश्मीर का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ के लोगों की घोर गरीबी और जीवन संघर्ष और अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने वाले युवकों के भ्रमणार्थियों के जो खाके 'अश्क' ने खींचे हैं, उनमें कश्मीर का ही सजीव चित्र हमारे सामने नहीं आता, बल्कि वह दृष्टि भी समाज में आती है, जिससे भ्रमणार्थी कश्मीर को देखते हैं।"[27]

'पत्थर–अल–पत्थर' उपन्यास में सबसे सशक्त चरित्र के रूप में हसनदीन का अंकन हुआ है। हसनदीन निम्न–मध्य वर्गीय जीवन की सम्पूर्ण गाथा है। हसनदीन पाठक को झकझोर देता है। वह अपने वर्गीय चरित्र के रूप में सदैव याद रखने योग्य पात्र है।

एक रात का नरक

'एक रात का नरक' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक पाठकों को शिमला से दूर पहाड़ी रियासत सी.पी. मेले के वार्षिक तथा वहाँ के रंग–बिरंगे आकर्षण तथा रियासत की हवालात के अँधेरे भू–गृह में एक रात की सैर कराकर घर बैठे ही उस रियासत की वास्तविक दशा तथा शासकों के मनमाने अत्याचार का अनुभव करा देता है।

कथाकार उपन्यास के आरम्भ में सी.पी. के मेले की विशेषता, आकर्षण तथा लोकप्रियता के विषय में अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट करता है—"मेले की एक खूबी पहाड़ की सुन्दर युवतियाँ हैं, जो भड़कीले कपड़े पहने हुए पहाड़ी की एक ओर बैठी हुई मेले में होने वाले खेल–तमाशों और दूसरे कौतुकों को देखती हैं।"[28]

अत: 'एक रात का नरक' नामक उपन्यास लिखकर 'अश्क' जी ने सी.पी. में होने वाले एक प्रसिद्ध मेले का यथार्थ रूप से वर्णन किया है, जिसको देखने की कामना उनके मन में न जाने कब से थी, किन्तु जब उस मेले में जाने का अवसर मिला तो लेखक पाठक को वहाँ की वास्तविकता का वर्णन भी उपन्यास के माध्यम से देना नहीं भूलता। किस प्रकार वहाँ के असभ्य, क्रूर, अशिक्षित कर्मचारी भोले–भाले अजनबी दर्शक पर न जाने

कैसे–कैसे आरोप लगाकर नरक जैसे भू–गृह में ढकेल देते हैं। इसे बड़ी ही सजीवता से अंकित किया गया है।

चन्द्रा

'अश्क' जी का यह उपन्यास शिमला की मनमोहक फिजा में एक निम्न–मध्य वर्गीय ट्यूटर और एक सरकारी अफसर की रूप गर्विता बेटी चन्द्रा की प्रेमकथा है जिसमें हास्य–व्यंग्य, करुणा और विसंगति का अद्भुत चित्रण हुआ है।

निमिषा

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का नवीनतम उपन्यास है—'निमिषा'। इस उपन्यास में विवाह और प्रेम के बीच झूलते, संशयग्रस्त चित्रकार गोविन्द और उसकी पत्नी माला तथा प्रेमिका निमिषा का अभूतपूर्व चित्र चित्रित किया है। समाज की रूढ़िग्रस्तता पर आघात करते हुए 'अश्क' जी ने इस उपन्यास में अपनी पैनी नजर और बेबाक नजरिये से समाज का अनुपम खाका पेश किया है।

मार्मिक नारी चित्रण

सामाजिक संरचना की वर्गीय दृष्टि से 'अश्क' जी ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन का बेहद मार्मिक चित्रण खींचा है। 'सितारों के खेल' में बंशीलाल की बहन राजरानी डॉ. अमृतराय से प्रेम करती है जबकि अमृतराय अपना सर्वस्व लता को अर्पण करना चाहते हैं, किन्तु लता बंशीलाल के प्रति अनुरक्त है। इनका यह प्रेम सामाजिक कसौटी पर तो खरा उतरता है परन्तु भटकाव की स्थिति में अवलम्बित खड़ा है। 'गर्म राख' उपन्यास में कवि चातक और पण्डित रघुनाथ सत्या को प्रेम जाल में फंसाना चाहते हैं जबकि सत्या जगमोहन को अपना जीवन संगी बनाना चाहती है। 'सत्या' में अपने ऊपर सामाजिक जीवन का चित्रांकन है। 'गिरती दीवारें' में चन्दा चेतन की वामा बनकर प्रसन्न है, लेकिन चेतन अपना प्रेम नीला पर प्रदर्शित करता है। उधर नीला एक विधुर की अर्धांगिनी बन सदा के लिए चेतन से सम्बन्ध तोड़ भारत से दूर चली जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अश्क' जी के पात्र परस्पर प्रेम का आदान–प्रदान न कर तीसरे पर अपना प्यार न्यौछावर करने में मग्न हैं। फलत: 'अश्क' के उपन्यासों में नायकों से प्रेम करती हुई नायिकाओं को कठोर यातना भोगनी पड़ती है। बंशीलाल के

कारण लता की मृत्यु होती है। चेतन के कारण नीला को रंगून जाना पड़ता है। जगमोहन के कारण सत्याजी को अफ्रीका और संगीत सिंह के कारण वाणी को माताजी के स्कूल में घुटन एवं कैदी बनकर रहना पड़ता है। यही नहीं, "इन्हीं नायकों के अभिशाप से पीड़ित सोलह वर्षीय नीला को चालीस वर्ष का विधुर, कुरूप, अधेड़, मिलिट्री एकाउन्टेन्ट मिला और सत्या जी को काला-कलूटा काना अफ्रीका वासी। इस अनमेल संग के कारण उनका जीवन सदा के लिए नष्ट हो जाता है।"[29] इस रूप में नारी का हर प्रकार शोषण होता है और वह सब कुछ सहने को विवश है। हमारे वर्तमान समाज में भी इस प्रकार के चरित्रों की कमी नहीं है।

पाखण्ड विखण्डन

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी वैचारिक धरातल पर किसी राजनीतिक दल विशेष से जुड़े हुए नहीं थे। उनकी यह मान्यता थी कि दल विशेष से जुड़ने से लेखन की स्वतन्त्रता में बाधा आती है। इसलिए वे मृत्यु पर्यन्त घोर आस्तिक होते हुए भी धार्मिक पाखण्डों से सदैव दूर रहे। उनके साहित्य में जो समाज के प्रति तीव्र सहानुभूति और रागात्मकता है, वह उनके जीवन का यथार्थ चित्रांकन है। 'अश्क' जी अपने उपन्यासों में अपने आपको ही समाज के प्रत्येक वर्ग से जोड़कर उसमें उफनते सैलाब को प्रदर्शित करता है। उनका अपना जीवन उनकी अपनी जीवन दृष्टि इस अनुभव में काम कर रही थी। अपने पहले उपन्यास 'सितारों का खेल' से लेकर 'निमिषा' तक उनकी यात्रा में जितने चरित्रों का निर्माण हुआ, वे सब सामाजिक जीवन के हर वर्ग की देन है, जिनको वर्गीय चरित्र के रूप में 'अश्क' जी ने प्रस्तुत किया है।

उपेक्षित समाज, पद दलित और निर्धन लोगों के प्रति तीव्र सहानुभूति लेखन को शक्ति प्रदान करती है और यही तीव्र शक्ति उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के सम्पूर्ण साहित्य में सर्व विराजमान है। शोषण और अन्याय के विरुद्ध उनकी लेखनी पूरी शक्ति के साथ चलती है। उधर समाज की चेतना के प्रति अपनी लेखनी को 'अश्क' जी ने प्रेमचन्द को छोड़कर सभी साहित्यकारों से आगे बढ़कर चित्रित किया है।

'अश्क' जी के उपन्यासों में समाज

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी ने अपने उपन्यास 'सितारों के खेल' (1937), 'गिरती दीवारें' (1947), 'गर्म राख' (1952), 'बड़ी-बड़ी आँखें' (1955), 'शहर में घूमता आईना' (1963), 'बांधो न नाव इस ठाँव' (1964), 'एक रात का नरक', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'एक नन्ही किन्दील', 'पलटती धारा' और 'निमिषा' में इन समस्याओं को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है।

'अश्क' जी ने समाज की जीवन-रीति, स्वभाव संस्कार, विचार पद्धति, विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक बुराइयों, उसकी आन्तरिक कुण्ठाओं एवं दमित इच्छाओं का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक शैली में किया है वे किसी मतवाद से ग्रस्त नहीं हैं, अपितु जीवन के यथार्थ रूप को सहज प्रेरणा से प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि उनके उपन्यासों में आदर्शवाद एवं सुधारवाद की प्रत्यक्ष में कोई झलक नहीं मिलती, किन्तु यथार्थ की कठोर एवं तीखी आलोचना अप्रत्यक्ष में आदर्श की ओर बढ़ने की प्रेरणा अवश्य देती है। वस्तुत: उनकी रचनाओं में प्रारम्भ से ही यथार्थ का वह आलोचनात्मक रूप मिलता है जो प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास की विशेषता है। नवीनतम युग के अनेक उपन्यासकारों की भाँति वे यथार्थ की गन्दगी में बह जाने का अनुमोदन नहीं करते।

'अश्क' जी के उपन्यासों में विशेषत: 'गिरती दीवारें' उपन्यास में हमें युद्धोत्तर भारत की निर्धनता तथा मूल्यात्मक विघटन का बड़ा सुन्दर चित्र मिलता है। अन्य रचनाओं में उन्होंने मानव की वर्ग सत्ता तथा गाँधी युग के आदर्शवाद की निस्सारता का भी चित्रण किया। **समाज की चेतना** और **उसका संघर्ष** ही उनकी रचनाओं के केन्द्रीय विषय हैं। अपनी रचनाओं में वे निरन्तर पुराने सामन्ती मूल्यों का उपहासात्मक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं और इस प्रकार नये मूल्यों की प्राणवत्ता और सार्थकता को उभारते हैं।

उपन्यासकार 'अश्क' का यह कथन महत्त्वपूर्ण हो जाता है—"मुझे जिन्दगी अपनी तमाम व्यर्थताओं, सीमाओं, विरोधाभासों के बावजूद बड़ी दिलचस्प लगती है। मुझ लोग बेहद दिलचस्प लगते हैं। उनके तमाम गुण-दोष दिलचस्प लगते हैं।"[30]

'अश्क' ने अपने प्रारम्भिक उपन्यास 'सितारों के खेल' के कथानक में भारतीय समाज के पारिवारिक जीवन का करुणामय चित्रण प्रस्तुत किया है। नायक बंशीलाल इस

कथानक का एक ऐसा पात्र है, जिसके दारिद्र्य, दैन्य तथा नैराश्य के सूत्र में घटनाओं की जाली सी बुनी गई। 'सितारों के खेल' उपन्यास का मुख्य उद्देश्य बताते हुए 'अश्क' जी लिखते हैं कि स्वतन्त्र प्रेम की अपेक्षा वैवाहिक प्रेम ही अच्छा है। लता डॉक्टर अमृतराय से कहती है—"खुला रहकर प्रेम भटक जाता है, आवारा रहकर सूख जाता है, बन्धन में ही वह सार्थक होता है, बंधकर ही पनपता है।"[31]

'अश्क' जी का 'गिरती दीवारें' उपन्यास सन् 1947 में लिखा गया। यह बहिरंग (सामाजिक) चरित्र प्रधान उपन्यास के वर्ग में आता है। स्वयं उपन्यासकार का यह कथन आरम्भ से इसी आशय को पुष्ट करता है—"कहानी उसमें महत्त्व नहीं रखती, महत्त्व रखता है, निम्न-मध्य वर्ग के वातावरण का चित्रण और उस वातावरण के अँधेरे में अपनी प्रतिभा के विकास का पथ खोजने वाले जागरूक अतिभाव प्रवण युवक की तड़प और उसका मानसिक विकास।"[32]

'अश्क' जी ने 'बांधो न नाव इस ठाँव' उपन्यास में विभाजन पूर्व पंजाब की राजधानी लाहौर के एक निम्न-मध्य वर्गीय युवक चेतन के संघर्षों का दस्तावेज है। 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में भी 'अश्क' जी ने विभाजन पूर्व हिन्दुस्तान के महानगर लाहौर के मध्य वर्ग के संघर्षरत नायक चेतन की कश्मकश तथा उसके गार्हस्थ्य जीवन के छोटे-बड़े ब्यारौं की कहानी है।

'अश्क' जी का 'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास आदि से अन्त तक एक प्रेम कथा है। फिर उपन्यास के नायक संगीत सिंह और नायिका वाणी की इस प्रणय कहानी के माध्यम से आज के समाज की न जाने कितनी ग्रन्थियों पर प्रकाश डाला है, जो समाज के युवक-युवतियों को सहज स्वाभाविक जीवन नहीं जीने देती।

'शहर में घूमता आईना' समूचे शहरी जीवन का इतिहास है। आंचलिक उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में स्थानीय रंग अपने पूरे चटकीलेपन के साथ उभरा है। चेतन वह कैनवास है, जिस पर एक पूरे युग की छाप अंकित है।

'निमिषा' 'अश्क' जी का नवीनतम उपन्यास है। समाज की रूढ़ि ग्रस्तता पर आघात करते हुए इस उपन्यास में अपनी पैनी नजर और बेबाक नजरिये से समाज का

अनुपम खाका पेश किया है। जहाँ दरिन्दगी और इसीलिए प्रेम भी सहज, स्वाभाविक और प्राणवन्त नहीं रह पाता।

'पत्थर-अल-पत्थर' में जहाँ कश्मीर के अकथनीय सौन्दर्य का वर्णन है, वहाँ उस सौन्दर्य में रेंगने वाले गरीब और पत्थर सरीखे मानवों का यथार्थवादी चित्रण भी है। इसके अतिरिक्त 'अश्क' जी ने उपन्यासों में परिवार में आये स्वार्थ को यथार्थ स्तर पर चित्रित किया है, जैसा कि 'अश्क' जी ने सबसे पहले नोट बुक के पन्ने पर इस प्रकार लिखा है—"मैं क्या करूँ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता....। मेरा ससुर धुत्त पागल है, मेरी सास नजदीक ही सेठ वीरभान के घर चौका-बर्तन कर सात रुपये महीना पा रही है।"[33]

नारी और सेवक हमेशा से ही उपेक्षित रहे हैं, जिनकी समस्याओं का निराकरण करना बहुत ही उपयोगी है, समाज के लिए। 'अश्क' जी ऊँच-नीच, जाति-पाँति तथा धर्म की संकुलताओं से कैसे ऊपर उठकर मानव मन की एकता और उसकी निजता को साहित्य में उभारते हैं।

उपन्यासों का व्यापक फलक 'अश्क' जी को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् बड़ा उपन्यासकार बनाता है। 1940 से प्रारम्भ कर बंगाल में पड़े अकाल, देश विभाजन से लेकर मध्ययुगीन समाज 1974 तक का ब्यौरा 'अश्क' जी के पास है, जिसे वे वास्तविक धरातल पर उतारते हुए चलते हैं। उसके बाद आजादी के पश्चात् का भारत, अपने भयावह रूप में भी और सुन्दर रूप में भी उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। हर एक उपन्यास का उद्देश्य मानव जीवन के और देश की एकता का फैलाव ही है। 'यथा विधाता विधियते तदैव शुभाय' की कथा भूमि पर खड़े होकर 'अश्क' जी सामाजिक जीवन में चेतना की बात करते हैं, जिसे आज के नेता अलगाव पैदा कर रहे हैं। स्वाधीन भारत की सामाजिकता 'अश्क' के उपन्यासों में एक चिन्ता के साथ उभरकर आती है जो हम सब भारतीयों की चिन्ता है।

'अश्क' के उपन्यासों में समाज और व्यक्ति के द्वन्द्व को सूक्ष्मता से उकेरा है। अपने अस्तित्व को कथाकार के रूप में स्थायित्व करने के लिए उसे समाज में पग-पग पर संघर्षों से जूझना पड़ता है और चेतन में जूझने की शक्ति है। लेखक ने "चेतन में जोश और बलवती आशाओं-निराशाओं, कल्पना से उठने और यथार्थ की ठोकर से ढहने

वाले सपनों और निम्न-मध्य वर्गीय युवक के अन्दर और बाह्य के द्वन्द्वों में जूझता हुआ अपने परिवेश में गिरता, उठता, सहसा, झेलता और समाज में अपना साहित्यिक स्थान बनाने में संघर्षरत, निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति का जीवन्त रूप है।"[34]

(स) सामाजिक स्वातन्त्र्य : दशा और दिशाएँ

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यास भारत वर्ष के स्वाधीनता से पूर्व 1940 और स्वाधीनता के पश्चात् 1974 तक का ही विश्लेषण करते हैं। अत: उनके उपन्यासों में सामाजिक चेतना का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। सामाजिक चेतना को यथार्थ रूप में अपने उपन्यासों में 'अश्क' जी किस प्रकार चित्रित करते हैं, यह महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, जिसकी जाँच-पड़ताल आवश्यक है। कथाकार जीवन स्थितियों में से अपना चुनाव किन घटनाओं और पात्रों को लेकर करता है, यह उसकी सामाजिक वैचारिकता पर निर्भर करता है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' सामाजिक जीवन के उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में व्यक्ति को सामाजिक जीवन के केन्द्र में रखकर उसके माध्यम से मानव समुदाय को यथार्थ की कथा कही है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में वर्तमान में अतीत को प्रक्षेपित कर काल की कठोरता का परिहार ही नहीं किया, अपितु उसे एक नई रंगीनी भी प्रदान की है। अत: स्पष्ट है कि उनके साहित्य में वर्णित घटनाएँ सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ही होंगी। जीवन परिचय और साहित्यिक संसार के अन्तर्गत जिन महत्त्वपूर्ण स्थलों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें यह स्पष्ट किया गया है कि परदादा, पितामह (मूलराज), पिता (माधोराम), परदादी (गंगादेई) और जालन्धर (पंजाब) के संस्कार 'अश्क' जी को विशेषत्व से प्रभावित करते हैं। 'अश्क' जी का बचपन और युवावस्था अभावों और विपन्नता में बीता एवं उनका सामाजिक परिवेश व माता-पिता के परस्पर विरोधी स्वभाव, उनके संवेदनशील मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गये। इसी परिवेश ने उन्हें भारतीय मध्य वर्ग के सच्चे और व्यापक तथा सामाजिक चेतना के चित्रण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व उपयुक्त मिजाज दिया।

'अश्क' जी के पिता की क्रूरता और कठोरता के बावजूद परम उदार मनमौजी सरल हृदयी खुद जीवन में कुछ नहीं कर पाये, लेकिन अपने पुत्र 'अश्क' के मन में यह

आकांक्षा जगायी कि वह जो भी करें, उसे उत्कृष्टता के शिखर पर पहुँचाये। 'अश्क' जी ने जहाँ पिता से महत्त्वाकांक्षा और उसे पूरा करने के लिए अनथक श्रम करना सीखा, वहीं माँ से तकलीफ को साहस एवं गरीबी से सहन करना और जिन्दगी को नैतिक मानदण्डों के अनुसार चलाना। इस प्रकार की जिन्दगी को देखकर ऐसा लगता है, मानो 'अश्क' जी ने कानून प्रशासनिक प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए 1934 में कानून में प्रवेश लिया, प्रथम श्रेणी से सफल भी हुए लेकिन कुदरत को कुछ और ही मंजूर था। 1936 में पत्नी शीला देवी हमेशा-हमेशा के लिए चल बसी। कानूनी किताबों को त्यागकर लेखक के रूप में अपनी नियति को पहचान लिया। लेखक बनने के लिए वे हिन्दी ही नहीं अपनी मातृभाषा पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं में लिखते रहे बल्कि महादेवी वर्मा ने तो यहाँ तक कह दिया कि जिस लेखक की मातृभाषा पंजाबी हो, धातृभाषा उर्दू हो और धर्म भाषा हिन्दी हो, उसकी शक्ति अपरिमित है और न जाने किस-किस भाषा के साहित्यकारों से मिलते घूमते रहे। यह घूमना तफरी के लिए नहीं था, वरन् वे उन सूत्रों की तलाश कर रहे थे, जिनके कारण वे लेखक अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण लेखक बन सके। उनके मन में यहाँ तक था कि वे फिल्मी दुनिया में भी भटकते रहे। उनके मन में यह बात विशेष रूप से घर कर गयी थी कि यदि लेखक ही बनना है तो अपने क्षेत्र और अपनी भाषा का महत्त्वपूर्ण लेखक ही बनना चाहिए। 1941 में 'अश्क' जी हिन्दी सलाहकार और नाटककार के रूप में ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली में जुड़ गये। दिल्ली में मण्टो, ख्वाजा अहमद अब्बास, फैज अहमद फैज, मीराजी, राशिद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. नगेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, शिवदान सिंह चौहान, भगवती प्रसाद वाजपेयी, बनारसी दास चतुर्वेदी, गिरिजा कुमार माथुर जैसे हिन्दी-उर्दू के स्थापित लेखकों से उनका सम्पर्क हुआ। इन सभी कथाकारों के गुणों को लेकर 'अश्क' जी हिन्दी साहित्य के मैदान में निर्भय होकर कूद पड़े।

'अश्क' जी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना का जो स्वरूप उभरकर हमारे सामने आता है, वह अभावों और विपन्नता में बीता, विरोधी स्वभाव सामाजिक परिवेश की रचना का है। राजेन्द्र यादव कहते हैं—"अश्क हिन्दी का पहला उपन्यासकार है, जो कभी भी अपने उपन्यासों की कहानी का वर्ग, समाज और तत्कालीन परिस्थितियों से एकदम हटकर अपने पात्रों में, उनके ड्राइंग रूमों, कमरों या रेल के डिब्बों में से ले जाते हुए भी

केवल उन तक सीमित नहीं रखना जानता...वह हर समय आपको अनुभव कराता रहेगा कि यह ऐसे लोगों की कहानी है, जो आदमियों के बीच में रहते हैं, जिनके कुछ सामाजिक सम्बन्ध और सम्पर्क हैं, स्तर और स्थितियाँ हैं और जिनका जीवन 'नदी के द्वीप' का जीवन नहीं है।"

'अश्क' जी का प्रमुख उपन्यास 'गिरती दीवारें' की विशेषता "इसके कथासूत्र में नहीं है, वरन् उसके परम यथार्थवादी चरित्र-चित्रण, व्यक्तित्व प्रतिष्ठा और समूचे निम्न-मध्य वर्गीय समाज और उसके बीच एक युवक की कुण्ठाओं, इच्छाओं तथा उसकी विकासशील चेतना के दिग्दर्शन में इसकी सारी कलात्मकता प्रकट हुई है। चेतन इस समाज के युवा वर्ग, उसकी समस्त इच्छा शक्ति और कुण्ठाओं का सजीव प्रतिनिधि है, जिसे उपन्यासकार की सौन्दर्य दृष्टि के माध्यम से प्रतीक की भी संज्ञा दी जा सकती है। चेतन नाम स्वभावत: उस चेतना की ओर सफल संकेत है, जो किसी युवक के सम्पूर्ण मन का चित्र उपस्थित करती है। अपने रक्त में परम्परा से प्राप्त रूढ़ मान्यताओं का संस्कार लिए हुए तथा अर्थाभाव एवं उग्र पिता के दमन के फलस्वरूप चेतन में जितनी मनोग्रन्थियां पड़ जाती हैं तथा उसे कैसे गंदे वातावरणों और कटु संघर्षों से गुजरना पड़ता है, इसका एक पूर्ण हृदयग्राही, अणुवीक्षक दृष्टिमय चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।"[35] 'अश्क' जी की सामाजिक दृष्टि से न केवल सामाजिक चेतना बल्कि उसके मूल में छिपे हुए रहस्य को उजागर किया गया है।

'गर्म राख' उपन्यास में 'अश्क' जी ने अपनी उपन्यास कला, पात्र, चित्रों और तत्त्व सम्बन्धी जीवन के छोटे-छोटे ब्यौरों को प्रस्तुत करने की है। इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं—"उपन्यास को मैं उपन्यास ही देखना चाहता हूँ, कहानी नहीं। कहानी में जहाँ मैं कथानक को महत्त्व देता हूँ, वहाँ उपन्यास में मुझे कथानक के बदले पात्रों का चरित्र-चित्रण, उनके मन में क्षण-क्षण उठते-बदलते विचार, दैनन्दिन घटनाओं का घात-प्रतिघात और जिन्दगी के असंख्य छोटे-छोटे ब्यौरों का चित्रण आता है। कहानी जहाँ मेरे निकट जीवन के नद से काटा गया छोटा-सा रहा है, वहाँ उपन्यास जीवन की पूरी गहमागहमी को अपने अंक में संजोये, ठाठे मारता हुआ महानद है।"[36]

'अश्क' जी ने 'गर्म राख' उपन्यास में सामाजिक रूप से लड़खड़ाते हुए समाज का सफेदपोश तबका उपन्यास में बड़ी मार्मिकता से अंकित किया है।

'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील', 'निमिषा', 'बांधो न नाव इस ठाँव' जैसे उपन्यासों के द्वारा 'अश्क' जी ने स्वतन्त्रता पूर्व की स्थिति में निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति की कुण्ठा, संघर्ष, घुटन, आर्थिक अभाव, अपने अस्तित्व के लिए समाज में रत होकर जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास असफलता, आदर्शप्रियता का यथार्थित भावभूमि पर चित्रण किया है।

आधुनिक जीवन में ही नहीं मध्यकालीन जीवन में भी उनकी दृष्टि ने उन बिन्दुओं की तलाश की है, जिनके कारण एक ओर समाज का पतन हो रहा था तो दूसरी ओर उस पतन को रोकने के लिए नैतिक दायित्वों की स्थापना के लिए कटिबद्ध लेखकों, समाज सुधारकों आदि का संघर्ष चल रहा था, जिसका यथार्थ चित्रांकन 'अश्क' ने अपने उपन्यासों में किया। 'अश्क' जी के उपन्यासों में व्यक्त समाज के स्वरूप की दिशाएँ न केवल आधुनिक जीवन के उपन्यासों से व्यक्त होती हैं, वरन् 'निमिषा' और 'पलटती धारा' आदि उपन्यासों से भी विशेषत: व्यक्त होती है। 'अश्क' जी उपन्यासों में भारतीय एकता को प्रतिपादित कर यह कहने पर जोर देता रहा है कि कितनी भी प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्न हो जाएँ, लेकिन भारत की एकता सदैव अक्षुण्ण रहेगी। उन्होंने जालन्धर (पंजाब) से लेकर कन्याकुमारी तक भारत की एकता में सामाजिक दर्शन के उपरान्त 'अश्क' ने ये निष्कर्ष दिए हैं।

जाति और धर्म के आधार पर समाज को बाँटकर किसी भी देश का विकास नहीं किया जा सकता। जाति और धर्म संकीर्णता फैलाकर हमें ओछा और हमारे विकास में बाधा पहुँचाते हैं। अत: 'अश्क' जी अपने उपन्यासों में इस प्रकार की समाज की सामाजिकता को स्पष्ट करते हैं। उनका मत है कि जिस प्रकार विजेता ने विजित करने को मारकर समाज की चेतना करने में कठोरता दिखाई, वह समाज की चेतना का चित्रण ही हमेशा करता रहेगा।

शोषण एवं शोषक के प्रति भी उपन्यासकार 'अश्क' ने अपनी लेखनी चलायी है। वे समाज के विषम वातावरण को प्रत्यक्ष रूप से चित्रित करते हैं। विषमता कितने जघन्य

पापों की जननी है। इसका अनुमान कम व्यक्ति लगा पाते हैं—"हमारे बीच जो लड़ाई-झगड़े, मार-काट, लूट-खसोट, मुकदमेबाजी तथा जालसाजी का बाजार गर्म है, इसका एकमात्र कारण यही विषमता राक्षसी है।"[37]

'अश्क' जी ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण किया है, जिसके कारण चेतन की माँ—"वह उन पतिव्रता स्त्रियों में से थी, जिसका मस्तिष्क धर्मशा , पण्डितों और पुराहितों ने बुरी तरह पकड़ रखा है। स्वर्ग पाने के लिए वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नहीं। बचपन में ही उसे बताया जाता है कि पति अँधा, काना, लूला, लंगड़ा, निर्धन, शराबी, जुआरी जैसा भी क्यों न हो, वह पत्नी के लिए परमेश्वर है, उसकी अवज्ञा करना महापाप है।"[38] नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होकर भी स्वतन्त्र नहीं हो सकती। नारी शोषण के विरोध में चेतन की माँ का स्वर ही 'अश्क' जी का स्वर है।

सामाजिक जीवन की बुराइयों को बताकर निराशाजनक वातावरण की ओर दृष्टि करना 'अश्क' जी को अभीष्ट नहीं है, वे निराशा के उन तत्त्वों को पकड़ते हैं, जो आशा की किरण बिखेर सकें। ऐसा ही चित्रण 'अश्क' जी ने किया है।

लाहौर का चंगड़ मौहल्ला जो मुख्य बाजार अनारकली के पास ही बसा है, वहाँ बसने वाले गूजरों, चमारों, भंगियों के घरों की गंदगी और बदबू, भिश्तियों के होने पर भी मक्खियों, मच्छरों से पूर्ण तथा भिनभिनाता मोहल्ला चलचित्र के पर्दे की भाँति ही पाठक के नेत्रों के सामने यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। साथ ही वहाँ के बनावटी तथा कृत्रिम सामाजिक जीवन, धूल तथा गंदगी से पूर्ण बाजार की सड़कें, तंग गलियों के दोनों ओर नालियों से आने वाली दुर्गन्ध तक का उपन्यासकार द्वारा उपन्यासों में चित्रण किया गया है। पाठक को घर बैठे ही वैसी गंदगी महसूस होने लगती है। गड्ढे, टूटे-फूटे खण्डहर घरों की भी कमी नहीं है। खेमचे वाले तथा दुकानदार तो यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आन्दोलनों के साथ ही स्कूल, कॉलेज, नेता, सम्पादक, कवि, साहित्यकार, पत्र-पत्रिकाएँ, बीमारी, रूढ़िगत विशृंखलित परिवारों आदि सभी का समावेश 'अश्क' के उपन्यासों में चित्रित है।

'अश्क' जी के उपन्यासों में न केवल समाज का बदरंग चित्र ही उभरकर आता है, बल्कि वे गहरे चित्र भी उभरते हैं जो हमारे विश्वास को जगाते हैं। सामाजिक जीवन के प्रति घोर अविश्वास जगाकर वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझते, वरन् वे अविश्वास से जन्मते विश्वास का भी दिग्दर्शन कराते हैं। समाज की इस बदहाल स्थिति का चित्र प्रस्तुत करके 'अश्क' जी ने समाज में एक नयी चेतना जगाने का सार्थक प्रयास किया है। 'अश्क' जी का साहित्य यथार्थ की धारा पर खड़ा है, परन्तु यह यथार्थ न दलदल युक्त है और न कच्छ के रन की तरह सपाट है बल्कि उर्वर यथार्थ को 'अश्क' जी ने अपने साहित्य में अभीष्ट माना है। सामाजिक संकटों के वर्णन से वे विकास का रास्ता रोकते नहीं हैं, वरन् आगे का रास्ता दिखाने का संकल्प व्यक्त कराते हैं। 'अश्क' जी यथार्थ के आगे घुटने टेकने वाला साहित्य नहीं लिखते, वरन् उसका अतिक्रमण करने का साहस रखने वाले पात्रों का सृजन करते हैं। उनके द्वारा व्यक्त दिशाएँ हमारे सामाजिक जीवन की प्रगति की भी दिशाएँ हैं और यही दिशाएँ समाज में नयी चेतना उत्पन्न करने की भावभूमि पर खरा उतरती हैं।

सन्दर्भ

1. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डॉ. (श्रीमती) शोभा पालीवाल, पृ. 20
2. वही, पृ. 20
3. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष — प्रोफेसर विपिन चन्द्र, पृ. 51
4. मॉडर्न रिलीजियस मूवमेण्ट इन इण्डिया — फर्कुहर, पृ. 5
5. सत्यार्थ प्रकाश, आठवाँ सम्मुल्लास, पृ. 154
6. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द — जगमोहन चमनलाल, पृ. 83
7. वही, पृ. 19
8. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष — विपिन चन्द, पृ. 47
9. सेवासदन — प्रेमचन्द, पृ. 87
10. वही, पृ. 87
11. वही, पृ. 252
12. एट्टीन फिफ्टी सेवन — सुरेन्द्रनाथ सेन, पृ. 406
13. स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य — डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 123
14. वही, पृ. 123

15. हिन्दी उपन्यास : शिप और प्रयोग — डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 286
16. गिरती दीवारें — अश्क (मुख पृष्ठ)
17. उपन्यासकार अश्क — डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 129
18. शहर में घूमता आईना — अश्क, पृ. 67
19. बाँधो न नाव इस ठाँव — अश्क, पृ. 50
20. वही, पृ. 17
21. पलटती धारा — अश्क, कवर पेज-I
22. उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' — डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त, पृ. 65
23. गर्म राख — अश्क, पृ. 498
24. वही, पृ. 382
25. वही, पृ. 140
26. बड़ी-बड़ी आँखें — अश्क, पृ. 130
27. पत्थर-अल-पत्थर — भैरव प्रसाद गुप्त : भूमिका पत्थर-अल-पत्थर और अश्क के उपन्यास, पृ. 18
28. एक रात का नरक — अश्क, पृ. 13
29. उपन्यासकार अश्क : डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त, पृ. 162
30. हिन्दी कहानियाँ और फैशन — उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पृ. 125
31. सितारों के खेल — अश्क, पृ. 235
32. गिरती दीवारें — अश्क, पृ. 21
33. एक नन्हीं किन्दील — अश्क, पृ. 547
34. समकालीन साहित्य और समीक्षा — डॉ. बेचन, पृ. 38
35. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2 — धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 229
36. 'गर्म राख' की भूमिका में कुछ कड़वे-मीठे संस्मरण शीर्षक से, पृ. 9-10
37. एक नन्हीं किन्दील — अश्क, पृ. 589
38. गिरती दीवारें — अश्क, पृ. 105

❑

तृतीय अध्याय

उपेन्द्रनाथ ‘अश्क’ के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश एवं वैचारिक दृष्टिकोण

(अ) उपन्यासों का परिवेश

- (1) राजनैतिक परिवेश
- (2) सामाजिक परिवेश
- (3) धार्मिक परिवेश
- (4) आर्थिक परिवेश
- (5) सांस्कृतिक परिवेश
- (6) प्राकृतिक परिवेश

(ब) स्वाधीन भारतीय समाज का वैचारिक धरातल एवं उपेन्द्रनाथ ‘अश्क’ के उपन्यास

तृतीय अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश एवं वैचारिक दृष्टिकोण

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का बचपन और किशोरावस्था संघर्षपूर्ण परिवेश में व्यतीत हुआ। यह काल रूढ़िगत मान्यताओं के बदलने की प्रक्रिया तथा समाज के सत्य को व्यक्तिगत सत्य के आधार पर जाँचने-परखने का था। पुरानी अवधारणाएँ बदल रही थीं और नया आकार ग्रहण करने की दिशा में सक्रिय थीं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद शोषण, लूट-खसोट तथा मुनाफाखोरी का दौर-दौरा बढ़ गया था जिससे निम्न-मध्य वर्ग प्रत्यक्षत: प्रभावित हो रहा था। उसकी आर्थिक स्थिति चरमरा गई थी, परन्तु इच्छाएँ और आकांक्षाएँ बढ़ती ही जा रही थीं।

'अश्क' जी के उपन्यासों का समय 1935 से 1980 तक फैले देशकाल में इन उपन्यासों की वही समस्याएँ हैं जो उस काल के समस्त निम्न-मध्य वर्ग की समस्याएँ थीं। स्वाभाविक है कि यह अवधि और इस अवधि के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्बन पूरे यथार्थ के साथ इन उपन्यासों में हुआ है।

'अश्क' के सभी उपन्यासों में निम्न-मध्य वर्ग का सत्य चित्रित हुआ है। इनके उपन्यास अपने वातावरण का एक ऐसा दस्तावेज हैं जो आगे चलकर ऐतिहासिक मान्यता प्राप्त करेंगे। इन उपन्यासों में चित्रित परिवेश कथानक के सन्तुलन को बनाये रखता है जिससे उसकी यथार्थता और स्वाभाविकता बनी रहती है।

प्रत्येक उपन्यासकार अपने लिए उपयुक्त कथानक तलाशता है। उपन्यास के समस्त घटना चक्र उसी अंचल में घटित होते हैं। पात्र उसी परिवेश में साँस लेते और

स्वरूप ग्रहण करते हैं। परिवेश का सत्य कथा को प्रामाणिक और पात्रों को जीवन्तता सौंपता है।

'अश्क' के उपन्यासों का परिवेश कथ्य के उपयुक्त ही है। उनके उपन्यासों का कथा क्षेत्र लाहौर, जालन्धर, शिमला और कश्मीर है। इन उपन्यासों का परिवेश यथार्थ और चित्र कितना स्वाभाविक है? यह डॉ. धर्मवीर भारती की इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है—"आप कभी जालन्धर गये हैं? शायद नहीं। कम-से-कम मैं तो नहीं गया। किन्तु इस उपन्यास के पहले अध्याय ने ही मुझे अलिफ-लैला के उड़ते हुए कालीनों की तरह सशरीर उड़कर जीते जागते हुए जालन्धर के बीचोंबीच ले जाकर खड़ा कर दिया। यह बाजियों वाला बाजार है, यह चौरस्ती अटारी है, जहाँ तहमद बाँधे लटके की कमीजें पहने पान से मुँह लाल किए हुए दो गाने वाले सास-बहू की लड़ाई का महाकाव्य गा रहे हैं, यह सूंदा है, यह बाजार शेखां है और यह छत्ती गली के दीनू हलवाई की दुकान है और इधर उस दुबले-पतले इकहरे बदन के युवक को देख रहे हो आप? वह तेजी से बड़ा बाजार की ओर जा रहा है। आप जानते हैं यह कौन है? वही है चेतन, इस उपन्यास का नायक जिसकी कहानी 'अश्क' ने इन 700 पृष्ठों में अंकित की है।"

'अश्क' जी ने अपने सभी उपन्यासों में यशपाल की तरह प्रतिदिन की वास्तविकता का ज्यों-का-त्यों चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में लाहौर और जालन्धर के रीति-रिवाज, सामाजिक मर्यादाएँ, आचार-विचार, बोली-वाणी तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण कर परिवेश के सृजन में स्थानीय रंग भर दिया है। यह रंग अपने परिवेश के इतना अनुरूप है कि पाठक अपने को परिवेश से एकदम जुड़ा हुआ महसूस करता है। इसका कारण मार्कण्डेय के इन शब्दों में तलाशा जा सकता है—"मैं अपनी रचनाओं के परिवेश में हमेशा समाज सम्मत बने रहने के साथ ही संघर्ष की लीक से भूलकर भी नहीं हटते। शायद वे उन कुछ एक हिन्दी के पुराने लेखकों में से हैं जो नई से नई रचना को बढ़ाकर उच्छवासित होते हैं और अपने पीछे आने वाली पीढ़ी को अपने से आगे करके चलने में सुख अनुभव करते हैं।"[1]

'अश्क' जी के अधिकांश उपन्यासों में निम्न-मध्य वर्ग का यथार्थ चित्र चित्रित किया है। 'गिरती दीवारों' के सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह का कथन है—"गिरती दीवारें

निम्न मध्य वर्ग के उन अनेक परिवेशों का चित्र उपस्थित करता है जिसकी रूढ़ियों, वैषम्य और शोषण के कारण इस वर्ग को अपने आदर्शों, आशा और आकांक्षाओं तथा सुनहले सपनों को दफना देना पड़ता है। वह अपनी लाचारी और विवशता में सिसकता हुआ सारी सामाजिक व्यवस्था को उच्छिन्न करने का संकेत करता है।"[2]

इसी सन्दर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी का कहना है—"'अश्क' जी के उपन्यासों में यथार्थ की प्रकृति वैज्ञानिक सीमा पर नहीं पहुँचती है, परन्तु उनके उपन्यास भी मध्यमवर्गीय समाज की गतिविधियों को एक विशेष दृष्टि से ही चित्रित करते हैं और उनके उपन्यासों में उक्त समाज के ऐसे ही पहलू आये हैं जिनमें निष्क्रियता, उद्देश्यहीनता और हल्के विषाद की छाया पड़ी हुई हैं। इन रचनाओं को पढ़ने पर हमें समाज के ऐसे चित्र मिलते हैं जिनमें यथार्थता हो सकती है परन्तु इनके पढ़ने पर हमारे मन में ऐसी स्वस्थ, उल्लासपूर्ण और विकासोन्मुख भावनाएँ उत्पन्न नहीं होतीं जैसे प्रेमचन्द के उपन्यासों को पढ़कर होती हैं।"[3] लेकिन यह भी सत्य है कि 'अश्क' के प्रत्येक उपन्यास में उनका परिचित परिवेश अपने आस-पास के लोग, भोगा जाने वाला जीवन एवं भविष्य चित्रित है।

'अश्क' जी पर प्रेमचन्द के 'गोदान' का गहरा प्रभाव पड़ा लेकिन उन्होंने उसका अंधानुकरण नहीं किया। वे छोटा प्रेमचन्द बनना नहीं चाहते थे जिसमें गाँवों का चित्रण है। वे 'अश्क' ही बना रहना चाहते थे, वे अपनी सीमा जानते थे। उन्हें ग्राम्य जीवन का विशेष अनुभव नहीं था, इसलिए उस जीवन को चित्रित करने की चेष्टा इनमें कभी नहीं मिलती है। प्रेमचन्द को भी नगर जीवन का विशेष अनुभव नहीं था जितना ग्राम जीवन का। 'अश्क' को नगर जीवन का विशेष कर निम्न-मध्य वर्ग का विशेष अनुभव था। उसी को चित्रित किया। उनमें बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ थीं। अनुभूतियाँ भी गहनतम थीं। उनके पास जीवन के असंख्य अनुभव थे—उन अनुभवों, नन्हे-नन्हे ब्यौरे जो प्रकट में अकिंचन एवं हेय दृष्टिगोचर होते हैं, पर कई बार जीवन की धारा परिवर्तित कर देते हैं।

'अश्क' समाजवादी चिन्तनधारा के उपन्यासकार हैं। शोषण, भय, भूख, बेकारी को उन्होंने स्वयं भोगा और देखा है। जिन्दगी के ये कटु अनुभव उपन्यासों में विभिन्न पात्रों और घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। 'अश्क' ने 'गिरती दीवारें' और 'गर्म राख' में जो चित्र दिए हैं, वे उनके समय के चित्र तो हैं पर वे एक वर्ग के एक बहुत छोटे

अंग के चित्र हैं। फिर उन्होंने जिन इन्सानों को लिया है उनके भी स्वस्थ पहलुओं या वैसी सम्भावनाओं को देखने का प्रयत्न नहीं किया। 'गर्म राख' के हरीश जी जो अस्वस्थ वायुमण्डल में रहकर भी उससे अछूते हैं। एक बोलने वाले सुन्दर खिलौने की तरह ही जीवित हैं जिनके मुख से लेखक ने जब चाहा कहलवा दिया है।[4]

"इन सबके साथ ही अश्क के उपन्यासों में प्रकृति का ऐसा सटीक और सप्राण वर्णन हुआ है कि पूरा परिवेश प्राणमय हो उठा है। वातावरण का इतना अधिक महत्व होता है कि जिस प्रकार रात के अँधेरे में रस्सी में साँप की प्रतीति होती है, उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित कथा में सत्य घटना ही प्रतीत होती है।"[5]

'अश्क' के उपन्यास विशाल फलक को घेरते हैं। उनके अधिकांश उपन्यास महाकाव्यात्मक गरिमा से सम्पन्न हैं। उनके उपन्यासों का परिवेश इतना भरा है कि इससे समाज पर सम्पूर्ण चित्र उभर कर आ जाता है। इन उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेश अपने पूरे साज–सामान के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

1. राजनीतिक परिवेश

देशकाल परिवेश का बाह्य रूप होता है। राजनीतिक परिवेश के अन्तर्गत प्राय: राजनीतिक दशा का यथार्थ चित्रण किया जाता है। इसमें यह वर्णित होता है कि किसी काल विशेष में किसी विशिष्ट राज्य या देश में कैसी परिस्थितियाँ थीं। राजनीतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी आयामों का वर्णन इसके अन्तर्गत आता है। राजनीतिक स्थितियों का वर्णन यथार्थ होना चाहिए। कृत्रिम होने से उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।

'अश्क' के उपन्यासों का समय 1935 ई. से 1980 ई. तक फैला हुआ है। अत: तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का उल्लेख इनके उपन्यासों में वर्णन होना स्वाभाविक है। उस समय के आन्दोलनों एवं अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ रहे विद्रोह को इसमें यथार्थ रूप मिलता है। नये मजदूर आन्दोलन और उनकी सफलताओं के चित्र 'गर्म राख' के अन्तिम रूप में मिलते हैं।

ब्रिटिश शासन खत्म करने तथा महात्मा गाँधी के बाह्य रूप के अनुकरण का भी चित्रण हुआ है। कुछ लोग गाँधी के आचरण का अनुसरण करते हैं। पर इस अनुकरण में न तो सहानुभूति होती है और न करुणा, "उन दिनों हर प्रान्त में कुछ लोग ऐसे थे, जो

महात्मा गाँधी का अनुसरण करते थे। दिमाग तो वे लोग महात्मा गाँधी का कहाँ से लाते, उनके पास न महात्मा गाँधी की करुणा थी, न सहानुभूति थी, जन जनमानस की परख, न देश और समाज की समझ। उनका सारा जोर सिर मुंडाने, अधनंगे रहने, मौनव्रत रखने, प्राकृतिक चिकित्सा करने, उबले सिंघाड़े या आलू या दही खाने, तकली चलाने अथवा अगले टूटे दाँत दिखाने में लगता था।"[6] विदेशी कपड़ों की होली जलाने का वर्णन भी 'शहर में घूमता आईना' में दिखाया है।

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास में राजनीतिक भावना आत्मा के रूप में विद्यमान है। देवनगर और उसकी व्यवस्था एक विशिष्ट सरकारी ढाँचे की प्रतीक है। दफ्तरों में भ्रष्टाचार और स्वजन पालन का दौर-दौरा दिखाया गया है। गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर देवनगर की स्थापना हुई है, परन्तु वहाँ की कथनी और करनी का अन्तर चारित्रिक खोखलेपन तथा देवाजी की पत्नी भक्ति सारे उद्देश्यों को नष्ट कर देते हैं। देवनगर की यह वास्तविकता मधवार साहब के शब्दों में स्पष्ट है—"बड़े-बड़े इरादे और उम्मीदें लेकर हम देवमण्डल के मेम्बर बने थे, धन मान का लालच हमें नहीं था। हम तीनों अच्छी नौकरियों पर लगे थे लेकिन कम-से-कम अपनी निजी जरूरतों से एकदम निश्चिन्त होकर ऊँचे आदर्शों के लिए जीवन को लगा देना और ऐसे वायुमण्डल में साँस लेना जहाँ सहृदय साथियों की संगति हमारे दिलों का कुशदा और व्यक्तित्व को मजबूत बनाये, इस आदर्श ने हमें सींचा था, लेकिन यहाँ साल भर गुजारने के बाद लगता है कि इस नगर का बाहर चाहे सुन्दर सही पर इसकी आत्मा वैसी ही तंग, सीली और गंदी है।"[7] इस सम्बन्ध में डॉ. रामदरश मिश्र का विचार है कि, "गाँधी के प्रभाव से बहुत-से स्वप्नजीवी लोग आधुनिक आश्रम जीवन की कल्पना को साकार करने में संलग्न हुए किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि गाँधीजी की सच्चाई की प्रखरता उन्हें नहीं प्राप्त हो सकी और व्यवहार में उतर कर स्वप्नों ने अनेक विसंगतियों की सृष्टि कर दी।"[8]

देवनगर में अन्दर ही अन्दर स्वार्थपरता, चालाकी, असहिष्णुता पनपती है, जो उस आश्रम को संचालित करती है। डॉ. मिश्र का कहना है कि—"इसमें आधुनिक आश्रमों, सर्वोदय संस्थाओं की विसंगतियों को उद्घाटित किया गया है। ये संस्थाएँ मानव प्रेम, शान्ति, सेवा के बड़े-बड़े सपने पालती है, किन्तु सत्य तो यह है कि ये उन सपनों का भीतरी साक्षात्कार कम करती हैं, पोस्टर की तरह उन्हें टांगती अधिक हैं।"[9]

सरकारी संस्थान किस तरह आम आदमी के हितों के विरोधी हो गये हैं इसका सही चित्र 'अश्क' के उपन्यासों में चित्रित है। 'सितारों के खेल' उपन्यास में तत्कालीन अस्पताल का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है—"सरकारी अस्पताल हो या गैर सरकारी, चाँदी के देवता की सब जगह पूजा होती है। इस देवता के दर्शन से ही दर्प, विनम्रता और कठोरता, मृदुता में परिणत हो जाती है। जिन निर्धनों पर इस देवता की कृपा नहीं, वे खैराती अस्पतालों से भी निराश ही लौटते हैं। सरकार लाख नोटिस लगवाए कि सरकारी नौकरों को कोई रिश्वत न दे, किन्तु गर्ज रखने वाले देते हैं। दिल पर पत्थर रख कर देते हैं। वे देने के लिए विवश हैं, न दें तो धक्के खायें। नियम और अनुशासन के नाम पर निकाले जायें, निराश वापस लौटें।"[10]

'गिरती दीवारें' उपन्यास में चेतन का सम्बन्ध चूँकि राजनीतिक परिवेश से भी रहा है, इसलिए स्वभावत: उसमें राजनीतिक परिस्थितियों का भी पर्याप्त निदर्शन हुआ है। उदाहरणार्थ—"इतवार को अधिकांश समाचार पत्रों के दफ्तरों में छुट्टी होती है। चेतन के दफ्तर में उस दिन भी काम होता था। बात यह है कि उसके पत्र का 'सण्डे एडीशन' सोमवार को निकलता था। उस दिन दूसरे पत्रों से मुकाबला न होता था। शनि के दिन अंग्रेजी सरकार ने भारत सम्बन्धी ह्वाइट पेपर प्रकाशित किया था। इसलिए चेतन के जिम्मे इतवार को स्थानीय नेताओं के इन्टरव्यू करने की ड्यूटी लगी थी। छुट्टी के कारण दूसरे समाचार पत्रों को यह सुविधा न थी इसलिए सम्पादक महोदय चाहते थे वे उनसे पहले ही ह्वाइट पेपर के बारे में स्थानीय नेताओं की सम्मतियाँ छाप कर डायरेक्टरों की प्रशंसा और पाठकों का यश अर्जित कर लें।"[11]

"चेतन दिन-भर साइकिल लिए घूमता रहा। वह तीन तरह के नेताओं से मिला। एक जो राजनीतिक थे, राजनीति के सन्दर्भ में गम्भीर थे, अपने दृष्टिकोण के बारे में दयानतदार थे और जिनकी राय को महत्त्व भी दिया जाता था। ये नेता सारे के सारे ह्वाइट पेपर का पहले अध्ययन करना चाहते थे, फिर अपने दल के नेताओं के वक्तव्यों की प्रतीक्षा करना चाहते थे। किसी प्रकार का ओछा वक्तव्य देना उन्हें स्वीकार न था—उनके बयान कुछ अस्पष्ट से थे, कुछ अपूर्ण से, जिनमें निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कहा गया था और सरकारी नजर से देखने पर ह्वाइट पेपर के असन्तोषजनक होने का उल्लेख था।"[12]

"दूसरे नेता सामाजिक थे और राजनीति में उन्हें इसलिए घसीटा जाता था कि उनके पास पैसा था या फिर उनका नाम बड़ा था। वे किसी-न-किसी साम्प्रदायिक सभा के प्रधान अथवा उपप्रधान थे। उनके वक्तव्य बड़े नपे-तुले, दुअर्थी शब्दों में वेष्टित थे।"[13]

"तीसरे ऐसे थे, जो न राजनीतिक थे, न सामाजिक, जो बस नेता थे। कांग्रेस की सभाओं में शुद्ध खादी पहनकर भाषण झाड़ आते थे और किसी सामाजिक पार्टी में अप-टू-डेट फैशन की पोशाक में सज धज कर पहुँच जाते थे। वे न इसके सम्बन्ध में गम्भीर थे, न उसके जीवन उनके लिए फूलों के उपवन जैसा था, जिसमें वे भौंरे बने घूमना चाहते थे। इनमें से कोई डॉक्टर था, कोई वकील, कोई वैद्य, कोई बैरिस्टर, कोई धनी रिटायर्ड अफसर जिसे मालूम न था कि अपने धन का क्या करे अथवा कोई सम्पन्न बेकार जिसे मालूम न था कि अपने समय का क्या करे।"[14]

रचनाकाल की दृष्टि से 'गिरती दीवारें' की कथा सन् 1947 के पहले की है, जब भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था। उपन्यासकार ने उपन्यास में एक स्थल पर काल की प्रत्य सूचना दी है। उसी के सहारे उसने कथा के चित्रण के यथार्थ स्वरूप पर दृष्टिपात किया है—"सारे जालन्धर में बिजली का प्रकाश हो जाने पर भी कल्लोबानी में सन् 1940 तक मिट्टी के तेल का लैम्प ही धुंधला प्रकाश देता था।"[15] इसी प्रकार नायक चेतन की जीवन गति से सम्बन्धित जो परोक्ष कथाएँ आयी हैं वे उसके समय से पहले की हैं। यही कारण है कि लाहौर के सन् 1929 के कांग्रेस अधिवेशन की झलक भी उसमें मिल गई है। इस अधिवेशन में चेतन तथा उसका परम मित्र अनन्त स्वयं सेवक के रूप में भाग लेते हैं।

उपन्यास में भारतीय स्वाधीनता के इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन और रावी के तट की स्वातन्त्र्य घोषणा के उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह राजनीतिक जड़ता का युग न था। 12 मार्च, 1930 को शुरू होने वाले नमक सत्याग्रह को देखते हुए भी तत्कालीन माहौल सम्बन्ध तर्क की झलक स्पष्ट हो जाती है।

2. सामाजिक परिवेश

साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि होता है। उसकी कृतियों में तत्कालीन समाज एवं मानव जीवन का यथार्थ चित्र झलकता है। किसी भी परिवार, जाति एवं वर्ग पर

सामाजिक वातावरण का प्रभाव अवश्यमेव रहता है। यहाँ तक कि उपन्यास के पात्रों व चरित्रों का जीवन भावहीन न होकर समाज में पाये जाने वाले भावों से ओत-प्रोत रहा करता है। जीवन में आने वाली अनेक ऐसी स्मृतियाँ एवं घटनाएँ हैं जिनहें उपन्यासों में स्थान मिलता है। वे वस्तुत: पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार के समस्त व्यक्तित्व को चित्रित करती है, "किसी व्यक्ति अथवा समाज को ही उपन्यास अपने वर्णन का आधार बनाता है। वर्ण्य व्यक्ति और समाज के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, नीति-भाषा और उसके आस-पास घिरी परिस्थितियाँ ही देशकाल और वातावरण की संज्ञा धारण करती हैं।"[16]

साहित्य समाज का दर्पण है। किसी भी महत्त्वपूर्ण कृति में उसका काल और उस समय की सामाजिक स्थिति प्रतिबिम्बित होगी। अपने समय को नकार कर कोई भी कृति महत्तम रचना नहीं बन सकती। अपने समय का वही दस्तावेज बनकर ही वह कालजयी बन सकती है। उपन्यास समाजधर्मी साहित्य विधा है। इसमें सामाजिक स्थितियों का विशेष महत्त्व होता है—"सामाजिक स्थिति में किसी काल विशेष में किसी विशिष्ट समाज की परिस्थितियों का आकलन किया जाता है। सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी वर्णन, वेशभूषा, भाषा, रीति-रिवाज, सामाजिक वर्ग, शिक्षा, संस्कृति, व्यापार आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।"[17]

'अश्क' के उपन्यास अपने समय की सामाजिक गतिविधियों के जीवन्त दस्तावेज हैं। इनके उपन्यासों के कथानक द्वितीय महायुद्ध काल में देश की सामाजिक एवं नैतिक परिस्थितियों पर आधारित हैं। उस काल के सामाजिक जीवन का अच्छा-बुरा 'अश्क' के उपन्यासों में दर्ज है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में चित्रित सामाजिक परिवेश के सम्बन्ध में शमशेर बहादुर सिंह का कथन है—"'गिरती दीवारें' के पर्दे पर हर उस घटना, दुर्घटना, आशा-आकांक्षा, सफलता-असफलता, प्यार और चोट उनकी ऊहापोह का चित्र आया है...हर गली-कूचे और मकान-ड्योढ़ी के परिचय और घर बाहर के अपने पराये के सम्बन्ध में एक सस्ते ओछेपन की बू आती है।"

'अश्क' के उपन्यासों में 1935-1940 ई. के पंजाब के निम्न-मध्य वर्ग के सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। उस समय के आदमी के जीने की

शर्तें कितनी कठोर थीं, उनको अपनी हर साँस के लिए जी तोड़ श्रम करना पड़ता था, किन्तु बावजूद इसके उनकी विपन्नता और दयनीयता का कोई समाधान नहीं था।

उपन्यासकार अपने पात्रों को किसी स्थान विशेष में रखकर उसका चित्रण करता है। इस दृष्टि से 'अश्क' ने लाहौर, जालन्धर, कश्मीर एवं शिमला को अपने उपन्यासों का कथांचल बनाया है। इन स्थानों की प्रत्येक गली, दुकान एवं मुहल्ले से 'अश्क' पूर्ण परिचित से लगते हैं।

'जालन्धर की गलियाँ और सड़कें'[18], 'कुएँ की भीड़'[19], 'बाजार और बस्तियाँ'[20], 'सीलनदार घर'[21] उनका झगड़ा एक ओर अपने मकान की ऊँची खिड़की मैं बैठी तीन सम्पन्नों, पतिविहीना बेटियों वाली धनी विधवा, चौधरायन माथे से पसीने को पोंछती हुई नई-नई गालियों से मुहल्ले की स्त्रियों को कोस रही थी। दूसरी ओर ब्राह्मणी जीवी पल पसार कर परमात्मा से न जाने कैसे शब्दों में उसकी कुटुम्ब की शेष सधवाओं के भी विधवा होने की भयंकर प्रार्थनाएं कर रही थी।[22]

"चौक भर में भीड़ इकट्ठी थी। गली खोसलियां, गली बढ़इयां, चौक चड्ढियां, गली बनिया से तमाशाई उमड़े पड़ रहे थे। आँखें ज्यादा और मर्द कम। मासी पूरन देई कुएँ की जगत पर खड़ी खत्रियों की सात पुश्तों के नाम गिन-गिन कर गालियाँ दे रही थी। अपने कोठे पर खड़ी शन्नो मुँह बिचका रही थी कि मुँह काला करके मण्डली चली गई थी तो उसे मुहल्ले में आने की क्या जरूरत थी, धीआं भैणां वाला मुहल्ला है ऐसी फिरनीकलियां यहाँ कैसे रह सकती हैं।"[23]

"वह भुवाड़े से बंकारता हुआ निकला और चुटिया पकड़ कर उसने पीढ़े से भागो को घसीट लिया और पाँव से जूता उतार कर दे एक, दे दो, दे तीन मार-मार कर उसे अधमरा कर दिया। उसके सिर से बेतहाशा खून बह रहा है। जाने कैसे पटका है मुहल्ले के पक्के फर्श पर उसे उस निर्दयी ने।"[24]

"...लेकिन रात को छत पर चढ़कर मुकन्दी चिल्लाने लगा कि इन ब्राह्मणों ने मुहल्ले को कंजरखाना बना दिया है। बहू-बेटियों वाले मुहल्ले में ग्रामोफोन पर गंदे गजीज गाने बजाते हैं। इन सालों को कोई पूछने वाला नहीं। इन्हें नयी जबानी चढ़ी है। ये नहीं जानते कि अभी मुकन्दी मरा नहीं, उसके रहते मुहल्ला कंजरखाना नहीं बन सकता। यह

इन सबकी जवानी...और बहू-बेटियों की चिन्ता भूल लाला मुकन्दीलाल ने भयंकर गंदी गालियाँ देना शुरू की थीं।"[25]

"स्कूल अध्यापक, विद्यार्थी, प्रिंसीपल की इच्छा थी—उनके छात्र ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पुराने ब्रह्मचारियों की तरह अपना जीवन बितायें। तड़के चार बजे उठकर नित्यकर्म से निबट, व्यायाम करें, नहायें, फिर मन लगा कर संध्या वंदना करें, वक्त पर कॉलेज आयें। सादा कपड़े पहनें, कोई व्यसन न पालें, खूब पढ़ें, बड़े आदमी बनें।"[26] "...ग्रे रंग की पट्टी का बंद गले का कोट और उसी कपड़े का घुटन्ना पायजामा पहने और सिर पर पगड़ी बांधें, पतले छरहरे, पस्तकद, क्रोधी, क्रूर प्रिंसीपल शहर ही नहीं, प्रान्त भर में तानाशाह प्रसिद्ध थे। कॉलेज में जबरदस्त अनुशासन रखते थे। उसे राजनीतिक आन्दोलनों की सर्दी-गर्मी से बचाये रखते थे और अवसर पड़ने पर राजनीति में भाग लेने वाले छात्रों को उनकी योग्यता और भविष्य का विचार किए बिना, कॉलेज से निकाल देते थे।...लड़कों को पक्का विश्वास था कि इस बदतमीजी के लिए वे चेतन को उसी वक्त हाल के बाहर निकाल देंगे।"[27]

बस्ता लिए झुण्डों में लौटती हाई स्कूल की लड़कियाँ—"एक मंझले कद की कुछ मोटी सी, गेहुंए रंग की लड़की जैसे घर के ही धुले मटमैले कपड़े पहने, सीधी-सादी चाल से चली आ रही है। रूखे बालों की दो लटें उसके गोल-मटोल चेहरे पर बिखरी हुई थीं। उसके दोनों हाथों पर सलेट थी, जिस पर लगा हुआ किताबों का अम्बार जैसे उसके पक्ष का सहारा लिए पड़ा था।"[28] 'गाली गलौज'[29], 'पाखण्ड'[30], 'व्यभिचार'[31], 'ढकोसले एवं दिखावों'[32] का यथार्थ चित्रण किया है।

'अश्क' पात्रों के साथ परिवेश को स्पष्ट करने में यथार्थवादी कला का प्रयोग करते हैं। इनके द्वारा सामान्यजन की सामाजिक स्थिति, उनके कष्ट इस तरह अभिव्यक्त हुए हैं कि करुणा की सृष्टि करते हैं। जैसे लाहौर के एक मकान में दस-दस आदमी रहते थे।

"पाँच-छ: भागों में बने हुए उस तिमंजिले मकान में दस किरायेदार रहते थे...तीसरी मंजिल पर तीनों हिस्सों पर तीन बरसातियां थीं जिनमें क्रमश: एक खोमचे वाला, एक डाकिया और एक पनवाड़ी सपरिवार रहते थे। जलती धूप हो अथवा चुभती सर्दी खाना उन्हें बरसाती के आगे खुली छत पर पर्दा सा लगाकर पकाना पड़ता था।...तीन

शौचालय थे और बाकी बैठक, गुसलखाने, सोने के कमरे और रसोईघर आदि का काम वे सब अपने उन्हीं दो कमरों से लेते थे।"[33] और कुँवारे आदमी को मकान नहीं मिलता था—"लाहौर के गली-मुहल्लों में किसी गैर-शादीशुदा (अविवाहित) नौजवान के लिए किराये पर कोई कमरा ले लेना आसान बात नहीं। साथ में कोई औरत होनी चाहिए, चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज,बुआ, यहाँ तक कि कहीं से भगायी हुई ही क्यों न हो।"[34]

लाहौर का चंगड़ मुहल्ला, कल्दू भट्ठा उसके गूजरों, चमारों, भंगियों, भिश्तियों के होने पर भिनभिनाता मुहल्ला, गंदी गाड़ियों के अहातों चलचित्र के समान आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है।[35]

हमारे घिनौने सामाजिक रूप, कुचले-दुबले, भले-बुरे, तुच्छ निम्न-मध्यम वर्गीय समाज का साफ चित्र आमने-सामने आया है। 'गिरती दीवारें' की घटनाओं के सम्बन्ध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान की उक्ति है—"साधारण जीवन की साधारण घटनाओं के तन्तुओं से बुना गया उपन्यास न तो खादी की आदर्शवादिता तथा पाखनता संयुक्त है और न ही इसमें रेशमी वस्त्रों की सुकुमारता तथा कोमलता है। इसमें तो कोरे लट्ठे की गंध तथा मैल है।"[36]

'गिरती दीवारें' के सभी पात्रों में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का गया-बीतापन, उसकी सस्ती ढीला-पोली, उसका बासी रूखापन, उसकी उस जीवन के व्यक्त्यों की कीड़ा सी तड़पन तथा गिरती हुई दीवारों का वर्णन किया गया है। इस वातावरण में रहने वाले व्यक्ति रूढ़ियों के कमजोर पुतले हैं यहाँ अनेक दीवारें हैं—पाखण्ड, ढकोसले, व्यभिचार, ईर्ष्या एवं सस्ती बेइमानियां। "दीवार हमारे सामने खड़ी हैं मगर हम जानते हैं कि वह गिर रही है। रंग तो उड़ ही चुका है, उसके पलस्तर भी सब ढीले-ढाले हो चुके हैं। अब नये जमाने की चोटों में वह सम्भव न हो सकेगी।"[37]

सत्य तो यह है कि चेतन के चारों ओर बहुमुखी कुण्ठा की दीवारें ऐसी मजबूती से खड़ी रहती हैं जो चेतन के लिए गिरना असम्भव है पर पाठक के लिए गिरती जाती हैं। चेतन के चारों तरफ की दीवारें उसके लिए व्यक्तिगत नहीं है। जैसा कि व्यक्तिवादी उपन्यासकार की संज्ञा से 'अश्क' को विभूषित करने वाले आलोचक समझते हैं। वस्तुत:

वह सारे निम्न–मध्यवर्गीय समाज की दीवारें हैं और उसे समष्टि के परिवेश में चित्रित किया गया है न कि व्यष्टि की दृष्टि से।

लाहौर का कृत्रिम नागरिक जीवन, सड़कों की धूल और गंदगी, तंग गलियों और नालियों की सडांध, भैंसों की पूंछों से उछलती हुई कीचड़।[38] फैशन, स्त्री–पुरुष, सुबह और शाम खोमचे वाले, पंजाबी गालियाँ, उनके लड़ाई–झगड़े अजीब होकर हमारे सामने आते हैं।

पण्डित दाताराम (गर्म राख) पानी में रहने वाले खतरनाक घड़ियाल हैं जो पिता, भाई, दोस्त बनकर समाज में भयानक कारनामे करते हैं। ऊपर से ईमानदार अपनी मान–मर्यादा को बचाते हुए, अनेक अनैतिक कृत्यों के दोषी ज्योति स्वरूप (गर्म राख) स्वयं समाज के प्रतिनिधि हैं।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में जालन्धर के स्कूल, कॉलेजों के साथ लाहौर की पत्र–पत्रिकाओं का भी स्पष्ट चित्रण हुआ है—"इस सनातन धर्मी अखबार में दिन–भर यही कुछ होता देख चेतन को घोर वितृष्णा हुई थी। उसे लगा कि जालन्धर में अपने हाई–स्कूल की नौकरी छोड़कर लाहौर के उस अखबार में आना आसमान से गिरकर खजूर में अटकने के ही बराबर है।"[39]

'वन्दे मातरम्' पत्रिका में समाज और सरकार के प्रति व्यंग्य छपा करता था, "इसमें वे सरकार की अनीतियों, सरकार के पिट्ठुओं की खुशामद परस्तियों, साम्प्रदायिक संस्थाओं की ज्यादतियों और दूसरी राजनीतिक और सामाजिक कुरीतियों पर हास्य–व्यंग्य भरी नमकपाशी करते थे।"[40]

इस उपन्यास में तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक जीवन, राजनीतिक कार्यविधि तथा आन्दोलन, निम्न–मध्यवर्गीय कुटुम्ब तथा घर की अस्त–व्यस्तता आदि का सजीव चित्रण हुआ है।

'शहर में घूमता आईना' में कल के बनने वाले समाज की ओर इंगित किया है—"इस अभावग्रस्त मुहल्ले में जहाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था, जहाँ कई घरों में उमर भर के भूखे, प्यासे कुँवारे पड़े थे, अनाचारी, जुआरी, व्यभिचारी और पागल न हो तो और क्या हों? क्यों बीमारियाँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी यहाँ घर न करें और

नस्लों को खोखली न बनाती चली जाये।"[41] इन पंक्तियों से उस समय के समाज का स्पष्ट रूप प्रकट होता है। 'शहर में घूमता आईना' का उद्देश्य परोक्ष न होकर प्रत्य है, जिससे मूल कथा में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इस उपन्यास के मूल में आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक संघर्ष के पीछे एक अन्तर्विरोध है जो इसे संचालित करती है।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा के शब्दों में—"लेखक दिखाना तो यह चाहता है कि समाज के भीतर और बाहर चलने वाले अर्थ सम्बन्धारित चेतना-प्रवाहों का विभिन्न स्थितियों तथा पात्रों की सीमाओं में इस उपन्यास द्वारा देखा जा सकता है किन्तु उन्हें सजीवता प्रदान करने के लिए जिस व्यक्तिनिष्ठा तथा वैयक्तिक विशेषताओं की गहरी सूझ की आवश्यकता होती है। उसका काम यौन-कुण्ठाओं, विकृत अहम हीन ग्रन्थियों तथा असाधारण मनोदशाओं वाले पात्रों के चित्रण से लिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आर्थिक-सामाजिक तत्त्व निष्क्रिय और आरोपित बन गये हैं...परिवेश को सामाजिकता की पृष्ठभूमि तो दी गई है, किन्तु वह विषय भूषिता केवल आरोपित है, वर्णित है, सप्रयास है और वायसी है।"[42]

लेकिन डॉ. शर्मा का यह आरोप न उचित है और न तर्कपूर्ण। उपन्यास के सारे पात्र अपने परिवेश में अनमने और विकसित होते हैं। वे परिवेश की उपज हैं तथा उन पर किसी प्रकार का आरोपण नहीं हुआ है। 'शहर में घूमता आईना' के पात्र सामाजिक विकृति के जीवन्त प्रतीक पात्र हैं। 'गिरती दीवारें' तथा 'बांधो न नाव इस ठाँव' उपन्यास में चेतन के माध्यम से शिमला के क्लबों, होटलों, बस्तियों का वर्णन हुआ है।[43]

'गिरती दीवारें' उपन्यास में कस्बे के माहौल का सजीव चित्र उकेरा गया है—"कस्बे के बाहर एक जोहड़ में अत्यन्त दुर्गन्ध भरा पानी इकट्ठा हो रहा था। उसमें एक-दो बेडोल से सूखे पेड़ों के तने पड़े थे। किनारे पर कुछ टूटी हुई बैलगाड़ियों के पहिए, जूए, उठने उलारू आदि इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। एक बे-पहिए की पूरी की पूरी बैलगाड़ी भी एक ओर पड़ी थी। इर्द-गिर्द कूड़े के ढेर थे। एक सूखा, टेढ़े-मेढ़े तने वाला पीपल का पेड़, जिसके सिर पर ही चन्द हरी टहनियां लहरा रही थीं, इस सारे दृश्य को एक दार्शनिकता की उदासीनता से निरख रहा था।"[44]

'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास में कश्मीर के निम्न वर्ग के समाज का यथार्थपरक चित्र उभरा है। इसमें परेजपुर गाँव, लकड़ी के टेढ़े-बैंगे दो मंजिले मकान, थोड़ी-सी धरती, तीन घोड़े यही उसकी कुल जायदाद थी।[45] "गली के बीचोंबीच पानी का छोटा नाला बेआवाज बह रहा था। उसके उधर लम्बे-लम्बे पायों पर खड़ी शाली की गोठियां थीं और उधर लकड़ी के टेढ़े-बैंगे अनगढ़ दो मंजिले घरौंदे, जिनके छोटे-छोटे अहातों को किसान ने धरती में बल्लियाँ गाड़कर उन पर तख्ते लगाकर एक-दूसरे से अलग कर रखा था।"[46]

"हसनदीप ने अपने अहाते के कोने में घास गिरा दी। निकट ही पत्थर का बड़ा भारी कूड़ा पड़ा था।...सारे परेजपुर में वैसा कूड़ा कहीं नहीं था।"[47]

"घोड़वान हसनदीप का तीन कमरों का मकान का घर"[48] "उसमें पड़ी हुई घास, घोड़े का अस्तबल"[49] बसों को घेरकर खड़े "फटी कमीजें या मैले फिरन पहने, बरसों से नहाये, नंगे पाँव, घुटनों तक मैल से जमीं टाँगें लिए, हड्डी के एक टुकड़े के लिए, एक-दूसरे को नोच डालने वाले कुत्तों की तरह आपस में गुँथ जाते थे—तभी सरदार हरनाम सिंह सिपाही सुलभ गालियाँ देते हुए, छोटे कद के कारण डण्डा सिर से ऊपर उठाये, उनमें घुस पड़े।...डण्डा हाड-मांस के इन्सानों पर नहीं, मिट्टी के लोदों पर पड़ रहा हो...बरसा दिया।"[50]

सामाजिक उपन्यासकार समाज के अनौचित्य पर प्रहार करने तथा उसे बदलने की प्रेरणा देने के लिए व्यंग्य का प्रयोग करता है। उसका लक्ष्य भ्रष्ट हो जाना असम्भव नहीं है। वह अपने गम्भीर दायित्व को भूलकर यदि खिल्ली उड़ाने लगता है तब पाठक का विश्वास लेखक के विवेक पर से डिग जाता है और वह लेखक के चित्रों से दृष्टि हटकार लेखक को ही सशंकित दृष्टि से देखने लगता है।

'पलटती धारा' उपन्यास में मध्यम वर्ग का यथार्थ चित्रण किया गया है चेतन, "बैठक की सीढ़ियों के पास मुहल्ले के खुले चौक में चारपाई बिछाकर लेटा था। चारों ओर मकानों से घिरे उस छोटे-से चौक में भयंकर गर्मी थी। चेतन के पांयते से जरा परे, कुएँ की जगत के निकट तेलू झमान की भूरी और खूब भरी-पूरी भैंस बँधी थी। मक्खियाँ हटाने के लिए वह गोबर और पेशाब से लिथड़ी अपनी दुम रह-रहकर फटाक से अपनी पीठ पर दे मारती थी। हालाँकि चेतन ने उसके भय से अपनी चारपाई यथासम्भव परे बिछा

रखी थी तो भी हर बार उसे लगता था, जैसे भैंस की दुम का कोड़ा उसकी अपनी पीठ पर लगा हो।...चारपाई के सिरहाने उत्तर की ओर लाला मुकन्दीलाल और गोपीनाथ सुनार के मकानों के आगे उनकी गाएँ बँधी थीं। दक्खिन की ओर को चौधरी सुलक्खामल के घर की खिड़कियों की सलाखों से चौधरियों की एक भैंस और एक गाय बँधी थी। गाय मौसम पर आयी हुई थी और रह-रहकर कुछ इस तरह रम्भाती थी कि पूरा मुहल्ला गूँज उठता था।"

म्यूनिसिपैलिटी के भिश्ती और भंगी चौक की खुली नालियों को सुबह शाम दोनों वक्त साफ कर जाते थे, लेकिन कल्लोवानी के घरों की छतों पर बने हुए शौचालय, कहीं खुले और कहीं बन्द परनाले, देखते-देखते उन्हें फिर गजालत से भर देते थे। उनकी दुर्गन्ध गायों-भैंसों के नीचे बने गोबर के तगारों की बू से मिलकर गर्मी और उमस को और भी दम घोंटने वाला बना रही थी। ऊपर से मोटे-मोटे मच्छर इतने जोर से भनभना रहे थे जैसे अपने साम्राज्य में उसके आगमन की अनधिकार चेष्टा पर उसे गरिया रहे हों। नंगे कंधे पर आ बैठने वाले एक मच्छर पर जोर का थप्पड़ जमा कर उठा...।[51]

और जैसे ही चेतन ने चारपाई से करवट बदली। ऐन उसी वक्त भैंस ने अपनी दुम का चाबुक पीठ पर फटकारा और चेतन को लगा कि गोबर का एक कण उसकी नाक पर आ बैठा है।[52]

'निमिषा' उपन्यास के नायक गोविन्द व नायिका निमिषा के माध्यम से 'अश्क' जी सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं एक तो जब निमिषा की सहेली कनक गोविन्द के निवास स्थान के विषय में बताती है कि "पुरानी अनारकली के ढाबे के पास जो गली है न धोबियों वाली, उसी चौक में...अन्दर जाते ही कमरे...दोनों खिड़कियाँ खोल देने पर भी कोई खास रोशनी नहीं...कई बार धोबियों के लड़के उसके पीछे आ खड़े होकर चित्र बनाते हुए देखते रहते हैं। उनका एक गधा भी प्राय: चुपचाप उसे चित्र बनाते हुए देखता है।"[53]

इसी तरह के सामाजिक परिवेश का जीता-जागता और एक नमूना है, "निमिषा, गोपाल के ढाबे से वह धोबियों की गली में मुड़ी। पकते हुए गोश्त की सुगन्ध उसके नथुनों में भर गयी। फिर सहसा दुर्गन्ध का भभका आया। गली की नालियाँ बजबजा रही थीं।"[54]

दूसरी ओर समाज का कमजोर व्यक्ति गोविन्द का मित्र, "सरदार सुखवीर सिंह साहब संधू वही कच्छा-बनियान पहने हाथ में झोला लिए बाजार की तरफ आगे जा रहे थे...।"[55]

वहीं पर गोविन्द भी अपने अतीत में खो जाता है, "अपने पुरखों परदादा, दादा फिर माता-पिता...अपने परिवार उसकी जड़ रूढ़ियों की सोच के सीमित घेरे...अपने मुहल्ले, उसके वासियों...उस सारे निम्न-मध्यवर्गीय माहौल, उसकी संकुचितता, धूर्तता, क्रूरता, झूठ, छल-प्रपंचरियाकारी, आत्म-वंचना, ...दसियों घटनाएँ, दसियों ब्यौरे, ...और उन सब में धीरे-धीरे बीमारी और फिर मौत की ओर सरकती हुई एक निहायत सीधी-सादी, भोली-भाली, हँसमुख लड़की...समय और स्थान का कोई ज्ञान नहीं रहा। एक दुर्दयनीय बहाव था।"[56]

निश्चय ही 'अश्क' की अनुभूतियाँ गहरी हैं और तथ्यों को देखने की दृष्टि अन्य उपन्यासकारों से भिन्न हैं। उन्होंने समाज के मध्य एवं निम्न-मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग के यथार्थ पक्ष को नया आयाम देने की सार्थक चेष्टा की है। 'अश्क' के उपन्यासों का परिवेश पाठकों का अपना और परिचित जीवन है।

आत्म-विस्मृति और शोषण

'अश्क' के 'गिरती दीवारें' उपन्यास का नायक चेतन का पारिवारिक जीवन अवसादमय रहा है। घर से बाहर की दुनिया में उसके सम्पर्क में दो प्रकार के लोग आये हैं। एक प्रकार के वे लोग हैं जो जीवन की पीड़ा और अवसाद को भुलाने के लिए आत्म विस्मृत हैं और दूसरे प्रकार के लोग, किसी-न-किसी प्रकार की तिकड़म द्वारा लूट-खसोट करने में रत हैं। चेतन अपने भाई रामानन्द तथा उसके साथियों को ताश के निरर्थक खेल में दिन का दिन नष्ट करते देख जो सोचता है वह उसके समीप के आत्म विस्मृत समाज पर ठीक घटना है, "वे लोग कैसे इस फिजूल खेल में समय नष्ट कर सकते हैं? कोई काम नहीं, काज नहीं, आशा नहीं, आकांक्षा नहीं। बस किसी तरह वक्त को जिबह किए जाते हैं।"[57]

दूसरे प्रकार के अगणित धूर्तों की प्रधानता है। चेतन इन धूर्तों के सम्पर्क में आकर, इनसे ठगा जाकर भी स्वयं धूर्त और मक्कार नहीं बन पाया है। उसका पीड़ित

हृदय दुनिया के इस रंग–ढंग को देखकर रो उठा है। उसका कष्ट और भी बढ़ गया है। चेतन के जीवन की ट्रेजड़ी उसकी यही बढ़ी हुई भाव प्रवणता और उससे जनित क्षोभ था यदि अनजाने में उससे स्वयं छल बन जाता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जानकर आत्मग्लानि से उसका हृदय भर जाता है। प्रक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती। निम्न–मध्य वर्ग में जो 'मोटी खाल' पैदा होती है, जो मान–अपमान को सह जाती है और बिना महसूस किए झूठ बोलती है, खुशामद करती है, रिश्वत लेती–देती है और धोखा–फरेब करती है। वह चेतन के पास न थी। उसकी खाल बड़ी पतली थी। मस्तिष्क की नसें उसकी बड़ी नाजुक थीं। छोटी–सी बात भी उन्हें बेतरह झनझना देती थी।

चेतन की इसी चेतना के माध्यम से 'गिरती दीवारें' उपन्यास में समाज को देखा गया है। उपन्यास में जिन स्थानों पर चेतन की दृष्टि प्रमुख रही है वहाँ सहृदयता और पीड़ा की प्रधानता है किन्तु जहाँ उपन्यासकार का स्वर प्रखर हो उठा है उन स्थलों पर मजाक उड़ाने और खाका खींचने की प्रवृत्ति प्रबल है। ठीक यही स्थिति 'गिरदी दीवारें' की कथा का उत्तर भाग प्रस्तुत करने वाले उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' की है।

'अश्क' जी के दूसरे प्रमुख उपन्यास 'गर्म राख' में समाज को व्यक्त करने वाला, चेतन की चेतना जैसा, कोई सुयोजित माध्यम नहीं है इसलिए इस उपन्यास के सारे प्रकरण बिखरे हुए हैं और उनमें कहीं–कहीं पारस्परिक संगीत का अभाव खटकता है। इसमें पारिवारिक व्यवस्था के आन्तरिक रूप का चित्रण कम हुआ है और जो कुछ चित्रण हुआ है, वह भी अधिक मार्मिक नहीं बन पाया है। उपन्यास का अधिकांश समाज के आत्म विस्मृत तथा शोषक तत्त्वों का चित्रण करने पर व्यय हुआ है।

उपन्यासकार के तीखे निर्मम प्रहार इन सभी पर निरन्तर हुए हैं। कवि चातक, महाशय गोपालदास, धर्मदेव वेदालंकार, शुक्ला जी, शान्तादेवी, भगतराम, दाताराम, प्रो. ज्योति स्वरूप, डॉ. टेकचन्द, सरदार गुलबहार सिंह आदि अनेकानेक पात्रों के खाके खींचे गये हैं। इनकी धूर्तता, जड़ता, नीचता और मूर्खता का सब का कच्चा–चिट्ठा प्रस्तुत करने की धुन में लेखक का ध्यान इन्हें समझने पर कम, इनकी हँसी उड़ाने पर अधिक रहा है। इस प्रवाह में लेखक ने सीधे–सादे पात्रों को भी नहीं छोड़ा है। उनके आकार–प्रकार और चाल ढाल की खिल्ली उड़ाने का अवसर उसने हाथ से नहीं जाने दिया है। उदाहरणार्थ—

नारी लोलुप कवि चातक जी की सीधी-सादी पत्नी के सानुनासिक स्वर से युक्त संवादों को प्रस्तुत करते लेखक नहीं अघाता। इसी प्रकार हूरो के मौसा को जो किसी के भले बुरे में नहीं हैं, हँसी का पात्र बनाया गया है—"बाबा सुन्दर लाल अपनी दरयायी घोड़ों की-सी मूँछों पर हाथ फेरते हुए जोर-जोर से हँसने लगे। उनकी हिचकियों जैसी हँसी रुक-रुक कर आती थी, ठीक वैसे ही, जैसे कनस्तर के छोटे गोल छेद से पिघला घी रुक-रुक कर बाहर उछलता है। ऊपर के दो दाँत उनके टूटे हुए थे। एक हिचकी के बाद जब वे दूसरी हिचकी लेते हुए मुँह खोलते तो उनका वह हँसना और भी हास्यापद लगता।"[58]

सामाजिक उपन्यासकार समाज के अनौचित्य पर प्रहार करने तथा उसे बदलने की प्रेरणा देने के लिए व्यंग्य का प्रयोग करता है। उसका व्यंग्य सोद्देश्य होता है यह तथ्य प्रेमचन्द में सर्वत्र द्रष्टव्य है। व्यंग्य करने के लिए व्यंग्य करते समय उसका लक्ष्य भ्रष्ट हो जाना असम्भव नहीं है। वह अपने गम्भीर दायित्व को भूलकर यदि खिल्ली उड़ाने लगता है तब पाठक का विश्वास लेखक के विवेक पर से डिग जाता है और वह लेखक के चित्रों से दृष्टि हटाकर लेखक को ही सशंकित दृष्टि से देखने लगता है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास में चेतन के विकासशील व्यक्तित्व का अध्ययन है और उसके समाज का व्यंग्यात्मक चित्रण है। 'गर्म राख' में लेखक ने जगमोहन, सत्या आदि के चित्रण के साथ उनके समाज का खाका खींचा है। साथ ही इस उपन्यास में एक अन्य विशेषता है। इसमें वर्ग विशेष के जीवन चित्रण के साथ उसमें निहित भावी सम्भावनाओं का संकेत भी दिया गया है। निम्न-मध्य वर्ग के मुक्ति मार्ग के रूप में 'अश्क' जी ने साम्यवादी चिन्तन तथा कार्यक्रम को उपन्यास में हरीश, दुरो आदि पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया है जिन स्थलों पर साम्यवादी दृष्टिकोण तथा उसके गतिरोध के कारणों को प्रस्तुत किया गया है, वहाँ लेखक की व्यंग्य-वृत्ति ठिठक गई है। ऐसे प्रकरणों को लेखक की आस्था प्राप्त हुई है।

3. धार्मिक परिवेश

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में जिस समय का चित्र दिया गया है वह मौन-भुक्कड़ों, कायरों, दम्भियों, मिथ्या अभिमानियों, शोषकों, अनुत्तरदायियों, पागलों, जनखों, धोखेबाजों, जादूगरों तथा अवसरवादियों का है। उस समय के मनुष्य के संस्कार

थे—झूठ बोलना, रिश्वत की कमाई को वेतन का अंग समझना, बच्चों को निर्दयता से पीटना, गरीबों का खून चूसकर संदिग्ध तरीकों से रुपया पैदा करना, औरतों को तिल-तिल कर मारना, उपदेश जैसे रोगों से अपनी नस्लों को बर्बाद करना, सब कुछ उनके निकट उचित था। पर यदि किसी को मालूम हो जाये कि अमुक ने गाय का मांस चखा है तो शायद मुहल्ले में जीना मुश्किल हो जाये।[59]

'अश्क' जी ने भारतीय समाज में धर्म के नाम पर होने वाले शोषण और ढोंग पर तीव्र कटाक्ष किया है। धर्म को 'अश्क' पूँजी का ही दूसरा रूप मानते हैं। "यह धर्म क्या पूँजी का ही दूसरा रूप नहीं? पूँजी ही की तरह यह हजारों गरीबों की रक्त की कमाई पर फल-फूल कर मोटा नहीं हो रहा है क्या?"[60]

धर्म के नाम पर भारतीय समाज में क्या नहीं होता है, लेकिन अंधविश्वास, परलोक सुधार की भावना ने जनता का इतना त्रस्त कर रखा है कि उसे सब कुछ स्वीकार है। 'अश्क' जी ने चेतन के माध्यम से मन्दिरों द्वारा हो रहे शोषण के विरोध में भी अपने विचारों को व्यक्त किया है—"मन्दिरों द्वारा निरीह जनता का शोषण हो रहा है और जिस प्रकार के पूँजीवाद के स्तम्भ बने हुए हैं इस बात की ओर कभी उसका ध्यान क्यों नहीं गया?"[61]

स्पष्ट है कि लेखक यहाँ यही कहना चाहता है कि जब तक धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़ियों की समाप्ति नहीं होती है तब तक देश न तो विकास ही कर सकेगा और न इसका उद्धार ही सम्भव होगा। विशेषकर भारतीय समाज में नारी की जो स्थिति है वह बहुत हद तक धर्म के कारण ही है।

इस जगत में नारी को जो कुछ भी यातनाएँ मिल रही हैं वह वस्तुत: पूर्वजन्मों के कर्मों का ही फल है और हिन्दू धर्म के अनुसार पति परमेश्वर होता है, फिर परमेश्वर को नाराज किस तरह किया जा सकता है? उसके सभी गलत सही आदेशों का यथावत् पालन करना ही हिन्दू नारी का धर्म है। 'अश्क' धर्म के इस भूत से छुटकारा पाने के बाद ही नये समाज के निर्माण का स्वप्न देखते हैं।

उस समय के ज्ञानी व्यक्ति ब्रह्म चिन्तन में ही निमग्न रहते थे। आत्मा के सम्बन्ध में योगियों का ढपोलशंख यह था—"यह क्या चेतन जगत में इतना सुगम है। चेतन जगत के

आदमी आत्मा से इतना परे हो जाता है कि फिर उस स्थिति को उस परम सुख को उस परम शान्ति की स्थिति को पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। आत्मा से दूर आकर फिर उसमें लीन होना वैसा सुगम नहीं। उसके लिए गहरे ज्ञान, अध्यवसाय और योग साधना की आवश्यकता है।"[62]

4. आर्थिक परिवेश

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में मुख्यतया मध्य व निम्न वर्ग को ही उपजीव्य बनाया गया है। सच कहा जाये तो 'अश्क' के उपन्यास मध्य-निम्न वर्ग की सत्य कथाएँ हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का मध्य वर्ग ही उनके उपन्यासों में उपस्थित है। वैसे 'बांधो न नाव इस ठाँव' उपन्यास में उच्च वर्ग का भी थोड़ा संकेत आया है किन्तु वह 'अश्क' का मूल स्वर नहीं है। इसका कारण मुख्यतया उपन्यासकार का उस वर्ग से अपरिचय है, साथ ही उपन्यास का कथानक इसकी इजाजत भी नहीं देता।

'अश्क' के 'गिरती दीवारें' के सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह ने कहा है—"'गिरती दीवारें' निम्न-मध्य वर्ग के उन अनेक परिवेशों का चित्र उपस्थित करता है जिसकी रूढ़ियों, वैषम्य और शोषण के कारण इस वर्ग को अपने आदर्शों, आशा और आकांक्षाओं तथा सुनहले सपनों को दफना देना पड़ता है। वह अपनी लाचारी और विवशता में सिसकता हुआ सारी सामाजिक व्यवस्था को उच्छिन्न करने का संकेत करता है क्योंकि स्वयं अपनी वर्गीय मनोवृत्तियों में बँधे रहने के कारण उसे बदलने में सक्रिय योग नहीं दे सकता।"[63]

'सितारों के खेल' उपन्यास का नायक बंशीलाल, 'गर्म राख' का नायक जगमोहन, 'बड़ी-बड़ी आँखों' का नायक संगीत और 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील', 'बांधो न नाव इस ठाँव' (दो भाग), और 'पलटती धारा' का नायक चेतन मध्य-निम्न वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है।

मध्य-निम्न वर्गीय बुद्धिजीवी समाज की आर्थिक और नैतिक दृष्टि, कवि, समाज सुधारक, अध्यापक, सम्पादक और ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों का जीवन्त चित्रण हुआ है। आर्थिक परिस्थितियों से निरन्तर जूझता हुआ चेतन अपने आदर्शों की समाधि को तोड़ डालने की एक प्रेरणा इस उपन्यास में मिलती है। 'शहर में घूमता आईना' में उपन्यासकार

ने निम्न-मध्य वर्ग के इस चरित्रगत वैशिष्ट्य को दिखलाने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार वह तमाशबीन मात्र है—"और पलक झपकते चारपाइयाँ खाली हो गईं। होटल के अन्दर खाना खाते हुए रास्ता चलते हुए, सब लोग उधर पिल पड़े। जिन्दगी के घोर संघर्ष अथवा बेकारी, सुस्ती या बेजारी के मारे निम्न-मध्य वर्गीय क्षण भर को तमाशा देखने आ जुटे पर बिल्ले और जगने ने किसी को उन्हें छुड़ाने नहीं दिया।"[64] इन निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों के अतिरिक्त उच्च मध्यवर्ग के पात्रों का भी चित्रण किया गया है जो शोषक के रूप में सामने आते हैं। 'अश्क' ने इनके आन्तरिक खोखलेपन को अपनी व्यंग्यात्मक शैली में उभारा है। इनके उपन्यासों में मध्यवर्ग व निम्नवर्ग का प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध होता है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास का नायक चेतन का कविराज रामदास के साथ शिमला में रहने पर जो उद्‌बोधन होता है उसे हम निम्नस्थ पंक्तियों में पूर्ण रूप से देख सकते हैं—"उसने (चेतन) सारे संसार को यथार्थ रूप में देखा। उसने पाया कि उसके इर्द-गिर्द जो संसार है उसमें दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं, दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं। यह एहसास कि वह पीड़ित और शोषित है...।"[65]

'अश्क' के उपन्यास 'पत्थर-अल-पत्थर' में निम्न वर्ग के पात्र हसनदीन का प्रामाणिक चित्र उपस्थित किया है। वह अथक परिश्रम करता है और उसकी भगवान् के प्रति अटूट आस्था है। इसके फलस्वरूप उसे प्राप्त होती है, मात्र निराशा। वह निराश होकर टूटता है मगर फिर अपने कार्य में व्यस्त हो जाता है। यह निम्न वर्ग का वर्गगत चरित्र वैशिष्ट्य है। यहाँ निम्नवर्ग मध्यवर्ग के द्वारा शोषित होता है। हसनदीन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। 'पत्थर-अल-पत्थर' में चित्रित निम्नवर्ग की स्थिति स्वाभाविक और मार्मिक है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में निम्न वर्ग के परिवेश का स्पष्ट चित्र उभारा गया है—"पैसा अखबार स्ट्रीट से जब ताँगा लॉ कॉलेज की ओर चला तो सहसा वह अपना चिर-परिचित इलाका छोड़ते हुए चेतन का मन उदास हो गया। पीपल बेहड़ा में लाला दीवान चन्द हलवाई की वे सीली अंधेरी कोठरियाँ, वे उपलों से अटी दीवारें, वे बदबूदार नालियाँ, चंगडानियों की वे फुफतोड़ गलियाँ, वह धूल और गर्द-गुबार भरी स्ट्रीट, उसमें

रहने वाले वे गरीब लोग, वह सारे का सारा माहौल जिसके बीच उसने दो वर्ष बिताये थे, उसे हठात् प्रिय हो आया।"[66]

5. सांस्कृतिक परिवेश

'संस्कृति' शब्द व्यापक है। गहन और विस्तृत अर्थयुक्त भारतीय संस्कृति ही हो सकती है। लाखों-करोड़ों वर्षों की विपुल सम्पदा को सजाये भारतीय संस्कृति विश्व के समक्ष चुनौती ही रही है। संसार में अनेक प्रकार की संस्कृतियों का उद्भव भी हुआ और मृत प्राय: भी हो गयीं परन्तु भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्णता लिए हुए है। आज भी यहाँ की अनेकता में एकता, बहु-धर्मावलम्बियों का परस्पर स्नेह और आत्मीयता, बहु-भाषाभाषियों में विचार विनिमय की उदारता, अनेक स्थानीय रीति-रिवाज, खान-पान, पर्व-उत्सव एवं मनोरंजन के बहुविध साधनों के बाद भी समूचा भारत एक है। बाहर से जो भी आया वह यहीं का होकर रह गया और भारतीय संस्कृति के परिवेश में आत्मसात हो गया। न जाने कितने आक्रान्ता इस देश में आये और यहीं आकर रह गये। यह कोई चमत्कार नहीं है वरन् वास्तविकता है जिसे स्वीकारना ही होगा।

अमृतलाल नागर जी का इस सम्बन्ध में मानना है कि "हमारा देश विचारों और रीति-रिवाजों का एक महान् अजायबघर है। सैकड़ों सदियों के रहन-सहन, रीति-बर्ताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं, हमारा समाज अंधनिष्ठा के साथ अपनाये हुए है।"[67]

'अश्क' जी के उपन्यास मुख्यत: सामाजिक परिवेश की देन हैं। स्वाभाविक है कि रीति-रिवाज, परम्पराएँ, धार्मिक मान्यताएँ और रूढ़ियाँ इनके उपन्यासों में मुख्य उपजीव्य बने। 'अश्क' जी ने विस्तार से अपने उपन्यासों में इन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है।

'अश्क' के उपन्यास : समाज और रूढ़िवादिता

सामाजिक रूढ़ि और नारी

प्रेमचन्द परम्परा में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'अश्क' ने अपने उपन्यासों में समाज के मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की समस्याओं को ही प्रधान रूप से चित्रित किया है। 'अश्क' का दृष्टिकोण प्रगतिशील रहा है। अत: ऐसे सभी तत्त्वों का

उन्होंने जोरदार ढंग से खण्डन किया है जो समाज के विकास में बाधक रहे हैं। चाहे वे धर्म सम्बन्धी हों अथवा नारी सम्बन्धी।

भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति के पीछे धर्म तथा रूढ़िवादिता मुख्य कारण हैं। डॉ. मुकुन्द द्विवेदी के अनुसार—"जब तक धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़ियों की समाप्ति नहीं होती है तब तक देश न तो विकास ही कर सकेगा और न इसका उद्धार ही सम्भव होगा। विशेषकर भारतीय समाज में नारी की जो स्थिति है वह बहुत हद तक धर्म के कारण ही है... 'अश्क' धर्म के इस भूत से छुटकारा पाने के बाद ही नये समाज के निर्माण का स्वप्न देखते हैं।"[68]

प्रेमचन्द के ही समान 'अश्क' जी भी मध्यवर्गीय नारी को उसकी वर्तमान दुर्दशा से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। इस दुर्दशा के मूल में हमारी सामाजिक रूढ़िवादिता ही है जो नारी को ऊपर उठने देना नहीं चाहती। निम्न-मध्यवर्ग की नारी इस दृष्टि से सर्वाधिक अभिशप्त है। पुरुष नारी को अपनी दासी समझता है और उसकी यह हार्दिक इच्छा है कि नारी उसकी इच्छानुसार ही चले। नारी की इस स्थिति ने नारी को पराधीनता का प्रतीक बना दिया है।

'गिरती दीवारें' 1947 ई. में प्रकाशित उपन्यास में 'अश्क' जी ने तत्कालीन नारी को दी जाने वाली यातनाओं का सफल चित्रण किया है। उपन्यास के नायक चेतन की माँ लाजवन्ती उस भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो पति के अत्याचारों को चुपचाप सह लेती है और उसके खिलाफ कुछ भी नहीं करती। लाजवन्ती अपने पति के चले जाने के बाद खण्डहर से मकान में अकेली रहती है। पतिदेव शादीराम बाहर से मकान में ताला लगा जाते हैं। वह दिन-भर अपनी ददिया सास की जमायी चक्की पीसती रहती है। चक्की ही उसकी एकान्त की मित्र है। पर यह सब उसे खटकता नहीं, क्योंकि इसे वह अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का फल समझती है।[69] ऐसा लगता है कि नारी का कोई पृथक् अस्तित्व ही नहीं है। उसने अपने को पूरी तरह पुरुष की इच्छा के अनुरूप ढाल लिया है। पति ही परमेश्वर है और वह जो कुछ करता है, उसे भोगना नारी का धर्म है।

एक दिन लाजवन्ती अपने पतिदेव से जल्दी लौटने का आग्रह करती है। पति प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं पर लौटते तो आधी रात को। प्यास विह्वला लाजवन्ती एक

पड़ोसिन से पानी मांगकर पी लेती है तो "सहसा उसके मुँह पर थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए, जो उसने पहली बार सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती उसके आने की प्रतीक्षा क्यों न की?...तब चेतन की माँ ने पति के पाँवों पर झुककर क्षमा माँग ली और वचन दिया था कि भविष्य में कभी ऐसा अपराध नहीं करेगी।"[70] आखिर नारी करती भी क्या? घर से बाहर उसे स्थान भी कौन देता। आर्थिक दृष्टि से वह पूरी तरह पति पर ही आश्रित थी। दूसरे भारतीय समाज की संकीर्ण रूढियों के दायरे से मध्य-निम्न वर्गीय नारी जाये भी तो कहाँ? समाज में पति का स्थान निश्चित रूप से पत्नी से ऊँचा है। उसे गृहलक्ष्मी आदि कहना तो क्षणिक ही बहलावे की बातें हैं। इसके ठीक विपरीत है लाजवन्ती के पति पं. शादीराम—"शराब वे रोज पीते, दीवाली के दिनों में जुआ खेलते और बीसियों तरीके से रुपये लुटाते...लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस निर्दयी पति को अपनी समस्त आस्था, समस्त श्रद्धा, समस्त प्यार, समस्त आदर-सत्कार दिया।"[71] पति में इतने अवगुण होते हुए भी उनके प्रति आदर और श्रद्धा रूढ़िगत मान्यताओं के कारण ही था। इतना ही नहीं वह अपने पति के लिए मित्रों द्वारा कहे गये अपशब्दों का भी बुरा मानती है। चेतन के शब्दों में—"न जाने यह कमीना देशराज कब हमारा पीछा छोड़ेगा? पर शब्द उसके होठों तक ही आकर रुक गये, क्योंकि जहाँ तक उसके पिता या उसके मित्रों का सम्बन्ध था, उनके बारे में किसी तरह की कटु बात सुनना भी चेतन की माँ पाप मानती थी।"[72]

'बांधो न नाव इस ठाँव' में लाला हाकिम चन्द की पत्नी उनसे पिटती रहती है मगर मुख से कुछ नहीं कहती है। वह मूक होकर लाला हाकिमचन्द के निर्दयी व्यवहार को सह लेती है।[73]

सामाजिक रूढ़िवादिता

जिस काल विस्तार में 'अश्क' जी के उपन्यासों का कथानक फैला है, उस समय विवाह उपरान्त पुत्री के यहाँ रहना पाप समझा जाता था। ऐसा ही चित्रण 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में उपन्यास के नायक चेतन की सास अपनी बेटी चन्दा से कहती है— "धीए! मैं तेरा कुछ नहीं कीता, ते की मैं हुण ऐन्नी गयी गुजरी हो गयी ओ कि तेरे दर ते आके रखों मेरे हत्थ पैर चल देने। रब मेतो यह पाप न करावे।"[74] (बच्ची! मैंने तेरा कुछ

नहीं किया याने दिन त्योहार पर तुझे कुछ दिया लिया नहीं और क्या मैं ऐसी गयी गुजरी हो गई हूँ कि तेरे दर पर आकर रहूँ। भगवान् मुझसे यह पाप न कराये।)

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में ब्राह्मण और क्षत्रियों में परम्परा से चले आ रहे सामाजिक संघर्ष को भी चित्रित किया गया है। जो इस प्रकार से निरूपित किया गया है—"कुछ ब्राह्मण स्त्रियाँ भागवन्ती के पक्ष में थीं। उनका विचार था कि जब उसने घर वाला कर लिया तो क्यों न वह घर में रहे?...भागवन्ती को घेरे हुए, वे सोरे मुहल्ले को सुनाकर इसकी चर्चा कर रही थीं। चाची दयावन्ती कुछ स्त्रियों के घेरे में बाँह उलार कर कह रही थी कि राज अंगरेज का है, अमीरचन्द का नहीं...खत्री की लड़की ब्राह्मण के घर न जाये।"[75]

"नी अज्ज दी कि गल्ल ऐ, पुराने जमाने विच खत्री राजे अपनी लड़कियाँ ऋषियां नू कि नेही दिन्दे सन्?"

"ते दे दे न अपनी धी किसे चूढ़े चमार नूं।"

"नी भैणा, आदमी कर लिया ना, घर विच गंदगी तो नेई फैलायी, देरो-जेठो नाल खेड़ तो नेहीं उड़ायी।"[76]

जालन्धर के इस कल्लोवानी मुहल्ले में न जाने कब से क्षत्री-ब्राह्मणों में ठनी आ रही थी। इस संघर्ष का सूत्रपात न जाने राजसत्ता के लिए आपसी कशमकश से हुआ अथवा ब्राह्मणों की चातुरी के चंगुल में फँसे क्षत्रियों ने विद्रोह कर दिया (जिन्हें गर्भाधान संस्कार से लेकर नवजात शिशु के जन्म, छठी, ग्यारहवीं, मुण्डन, यज्ञोपवीत, सगाई, विवाह, मरण, चौथे, तेरहवीं और उसके बाद हर वर्ष श्राद्धों पर ब्राह्मणों का घर भरना पड़ता था।), जो भी हो, इसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण शायद विश्वामित्र को, क्षत्री होते हुए भी ब्रह्मर्षि कहलाने की सूझी अथवा महामन्त्री पुष्यमित्र को ब्राह्मणों का राजवंश चलाने की। यह प्रतिद्वन्द्विता जालन्धर के इस कल्लोवानी मुहल्ले में इस परिभ्रष्टावस्था को पहुँच गयी थी कि क्षत्री (जो अब खत्री कहलाते और ज्ञान-दान देने के बदले केवल दान-दक्षिणा लेते थे।) 'ब्राह्मण कुत्ते' कहते थे और ब्राह्मण क्षत्रियों को चोर और बेईमान दोनों ने एक-दूसरे के बारे में बड़ी टुच्ची लोकोक्तियां बना रखी थीं। जो ब्राह्मण पढ़-लिख गये थे, उन्होंने दान-दक्षिणा लेना छोड़ दिया था और क्षत्रियों ने जन्माष्टमी आदि त्योहारों पर

ब्राह्मण कन्याओं और कुमारों को भोजन पर बुलान के बदले खत्री कन्याओं और कुमारों को भोजन पर बुलाना शुरू कर दिया था।[77]

'गर्म राख' उपन्यास में जनता का सांस्कृतिक उत्थान भी देखने में आता है। "आदर्श देशभक्ति और जनता के सांस्कृतिक उत्थान के बड़े-बड़े भाड़े लेकर छोटे-छोटे व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए स्थापित की जाने वाली सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं का अच्छा चित्रण हुआ है।"[78] सामाजिक रूढ़ियों को चित्रित करने में 'अश्क' जी कहाँ तक सफल हो पाये हैं इसके सम्बन्ध में डॉ. मुकुन्द द्विवेदी के विचार हैं— "'गिरती दीवारें' प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है, हमारे समाज की रूढ़िगत दीवारें तेजी से गिर रही हैं। सामाजिक रूढ़ियों को चित्रित करके उनमें फँसे व्यक्ति की छटपटाहट के साथ पाठकों की सहज सहानुभूति जाग्रत करने में 'अश्क' सफल हो सके हैं। हमारे इसी समाज में रहने वाले अनगिनत पाठक भी जो इसी प्रकार की मिलती-जुलती परिस्थितियों में रहते हैं और टूटते हैं उन्हें अपने यथार्थ को पाकर अत्यधिक मानसिक तुष्टि हुई।"[79]

'अश्क' के उपन्यास : विधवा की स्थिति

तत्कालीन रीति-रिवाजों के अनुसार हिन्दू समाज में विधवा नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। भारतीय समाज में विधवा नारी की स्थिति और विशेषकर जब वह मध्यम वर्ग की हो, अत्यन्त निराशाजनक और दयनीय होती है। वैसे आज भी उसमें कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है, क्योंकि आज भी सामाजिक स्थिति में विशेष अन्तर नहीं आया है।

अनमेल-विवाह के घातक परिणाम होते हैं। 'गिरती दीवारें' उपन्यास की 'कुन्ती' भी इसी की शिकार हो असमय में ही विधवा होकर उसकी जो स्थिति होती है वह इन शब्दों में साकार हो उठती है—"बस, अब विदा। अब तुम्हारी ओर देख भी न सकूँगी। पति की छत्रछाया में रहने वाली नारी हँस-बोल सकती है, चाहे तो प्रेम कर सकती है और चदि चाहे (पति दुर्बल हो, नारी चलती हुई हो) तो सन्तान पैदा कर सकती है। समाज उसे कुछ न कहेगा, लेकिन विधवा...।"[80] विधवा को अपने मन की सारी इच्छाओं का दमन कर पवित्र जीवन बिताना पड़ता है। इसके विपरीत पुरुष एक पत्नी के मरने पर चाहे तो दूसरी शादी कर सकता है और मजाक तो यह है कि उसके लिए किसी तरह का प्रतिबन्ध

भी नहीं रहता। संवेदनशील लेखक का ऐसी नारी की मुक्ति के लिए चिन्तित हो उठना स्वाभाविक है। 'अश्क' जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से देश की असंख्य कुरीतियों के निवारण के लिए सबके सामने एक प्रश्न रखा कि आखिर असमय विधवा हो जाने वाली कुन्ती जैसी नवयुवतियों का भविष्य क्या है? इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है कि इसी काल में अनेक समाज सुधारवादी संस्थाएँ भी इन्हीं प्रश्नों को उभार कर उनका समाधान खोजने के लिए जनमानस को प्रेरित कर रही थीं।

लेकिन 'अश्क' जी मात्र प्रश्न ही नहीं रखते अपितु उसके समाधान का प्रयास भी करते हैं। भारतीय नारी को उसकी वर्तमान स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए 'अश्क' जी ने देश के नवयुवक वर्ग को आगे बढ़ने के लिए ललकारा है, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि देश का प्रगतिशील युवक इसे समय की पुकार समझकर आगे बढ़कर पहल करने के लिए तैयार है।

वैसे पहले की नारी और तत्कालीन नारी की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ चुका था। उसमें नयी चेतना विकसित हो रही थी। 'गिरती दीवारें' उपन्यास के नायक चेतन की पत्नी चंदा, चेतन के संकेत पर घूँघट निकालना बन्द कर देती है। देखा जाये तो चन्दा इसके लिए पहले से ही प्रस्तुत थी और ज्यों ही उसे पति की स्वीकृति मिलती है वह उससे तत्काल मुक्ति ले लेती है। 'अश्क' जी ने भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर जो प्रकाश डाला है, साथ-साथ उसमें जो नवीन जागरण आ रहा था उसका भी यथातथ्य चित्रण किया है।

'अश्क' जी के उपन्यासों की कथावस्तु के विकास में तत्कालीन युग चेतना का महत्त्वपूर्ण योग है। 'अश्क' ने अपने उपन्यासों में समाज की अनेक समस्याओं को उठाया है जिनके कारण इसमें नवीन चेतना का विकास उतनी तीव्र गति से नहीं हो रहा है जितनी तीव्रता से इसकी अपेक्षा की जाती है। रूढ़िवादिता इस समाज की सबसे बड़ी कमजोरी है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास की भूमिका में 'अश्क' जी ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है—"जीवन सागर की विशालता और उसकी गगनचुम्बी महोर्मियों को दिखाना मुझे अभीष्ट न था। सागर का पानी जहाँ आकर रुक गया और सड़ रहा है, उसी ओर

पाठकों का ध्यान मैं दिलाना चाहता था।...उसी जीवन का चित्र खींचा जिसका मुझे पूरा अनुभव है।"[81]

(6) प्राकृतिक परिवेश

प्राकृतिक परिवेश से पात्रों के चरित्र की विशेषताएँ स्पष्ट की जाती हैं। प्रकृति चित्रण के द्वारा पात्रों की मन:स्थितियों का भी चित्रण होता है। प्रकृति चित्रण द्वारा कथानक को प्रवाह मिलता है तथा उसमें अपेक्षाकृत अधिक मार्मिकता आ जाती है। प्रकृति का उपयोग सौन्दर्य निर्माण के लिए भी होता है जिसमें लेखक प्राकृतिक छटा तथा सौन्दर्य स्थलों की सैर पात्रों के माध्यम से करता है।

'अश्क' ने अपने उपन्यासों में प्राकृतिक छटा परिवेश का सृजन सजावट के लिए न करके इससे एक निश्चित लक्ष्य की पूर्ति करनी चाही है। यत्र-तत्र प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सुरम्य स्थलों का वर्णन अपूर्व बन पड़ा है।

'सितारों के खेल' उपन्यास में रावी तट का यह प्रकृति चित्र पाठकों को बाँधता है...लता और जगत की एकान्त सैर चाँदनी रात और नाव के द्वारा नदी की सैर के क्रम में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। "रावी नदी के किनारे घने वृक्षों की शाखाओं में झूले पड़े हुए थे और कुछ मनचले लम्बी-लम्बी पेंगे बढ़ा रहे थे।...दूसरी ओर गिरे हुए पेड़ के सूखे तने से पीठ लगाये एक चरवाहा अलगोजों में 'सस्सी-पुन्नी' का अमर गीत अलाप रहा था। पश्चिम की ओर सूर्य की पीली पीली जर्द धूप, किनारे के वृक्षों को, सामने सड़क के पुल को, दूर मकबरे के मीनारों को इस तरह आलिंगन में ले रही थीं, " जैसे चिरकाल तक मैके में रहने के बाद ससुराल को जाने वाली देहाती युवती अपनी परिचित वस्तुओं को गले लगाती फिरती है।[82] "कहीं ऐसी कैद नहीं, कहीं ऐसा बन्धन नहीं, तितली फूल-फूल पर बैठती है, एक ही फूल के साथ पिरो न दी जाती है, तो फिर पत्नी ही क्यों पति के साथ बाँध दी जाती है कि मृत्यु के सिवाय यह बन्धन टूट ही न सके।"[83]

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास की प्राकृतिक छटा सजीव और सप्राण है, एक धुन्ध घनी होकर प्रभामण्डल की उस गुलाबी आभा को निगल गई और ठूँस सा चाँद आकाश में मुटर-मुटर तकने लगा।[84] इस उपन्यास में प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है जो छायावादी कवियों की एक प्रमुख विशेषता थी। "भोली-भाली ठहरी निथरी झील-सी

खामोश लेकिन इस पर भी शत-शत वाणियों से मुखर उन बड़ी-बड़ी प्यारी आँखों ने मेरी चेतना की मूर्छना को दूर कर सजग कर दिया था।"[85] ये ऐसे उदाहरण है जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति पात्रों की मन:स्थितियों को तो उजागर करती ही है साथ ही घटना चक्रों के बीच सौन्दर्य दृष्टि को भी विकसित करती है।

'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास का प्रारम्भ ही प्राकृतिक परिवेश से होता है। कश्मीर सौन्दर्य स्थली है। वह प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य का अप्रतिम स्थल है। कश्मीर की घाटी के सुरम्य स्थलों में गुलबर्ग, टंगमर्ग, दो नाला, अफरावट, फरोजन लेक और अल पत्थर के प्राकृतिक सौन्दर्य और स्थानीय रंग को विस्तार से चित्रित किया गया है, "उस बर्फ की नदी के पार अफरावट की चोटी थी, जहाँ से दूसरी ओर का दृश्य दिखाई देता था। सारी जगह बर्फ से ढकी थी और एक ओर से ऊँचा और मुँह की ओर झुका विशाल बीकर सा बन गया था। कहीं भी तो चट्टान या पत्थर दिखाई न देता था। दाईं ओर जहाँ बर्फ ढालवी होती हुई अफरावट के पीछे-पीछे नीचे तक चली गई थी, दूर सब्जी मायल झलक लिए हुए नीला जल झाग उड़ाता बह रहा था। उसके परे कहीं नीचे देवदार का जंगल था। वहीं जंगल के ऊपर आकाश का रंग गहरा नीला हो रहा था और रह-रह कर बिजली चमक उठती थी।"[86]

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक वर्णन में शिवालक की हरी-भरी घाटी में बसा छोटा-सा गाँव पहाड़ी की ढलान पर बसे चन्द एक घर, स्लेट की ढालवीं छतें जो धूप में सीसों-सी चमक उठती हैं, नीचे घाटी में बहती हुई नदी का रमणीय वर्णन है, "शिवालक की हरी भरी घाटी में बसा छोटा-सा गाँव पहाड़ी की ढलान पर बसे एक घर स्लेट की ढालुवी छतें, जो धूप में सीसों सी चमक उठती, नीचे घाटी में बहती नदी उसमें पनचक्की घाटी में फैले हरे पीले धान के खेत, चीड़ के पेड़। जब उनकी सूखी सुइयां ढलानों पर बिछ जाती तो वहाँ उसकी सहेलियाँ उन पर फिसलतीं ढुलकती चली जातीं। गाँव के निकट एक जगह नदी का रुका हुआ पानी...उसमें वे जी भर नहाती, तैरती, कपड़े धोती, सुखाती, गेंद उछालती गातीं।"[87]

'गिरती दीवारें' तथा 'बाँधों न नाव इस ठाँव' उपन्यासों में शिमला के प्राकृतिक सौन्दर्य व दृश्य का वर्णन हुआ है, "सूरज पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे अस्त हो चुका

था। आकाश में सुरमई साये उतर आये थे। धरती के उजियाले में उनका उन्मुक्त नर्तन प्रकाश और छाया के विचित्र संसार की सृष्टि कर रहा था। बादल नीचे घाटियों से उठकर उस संसार को स्वप्निल बनाते हुए माल पर छा रहे थे।"[88]

'शहर में घूमता आईना' में प्रकृति का बड़ा ही काव्यात्मक वर्णन किया गया है, "और वह घिरी छटा, वह भीगा मौसम, वे पानी से भरे लहलहाते खेत, वह तरल रजत सी चमकती सड़क, वे हवा के मदभरे झकोरे सारा वातावरण चेतन के हृदय को एक अपरिमित उदासी से भर गया। उसने चाहा वह एकदम इस फिजा में घुल जाय, उस हवा का अंग बन जाय और सिसकारता गम की बूंदिया गिराता, आवारा, उदास, घटाओं और हवाओं का अंग बना देश-देशान्तर घूमता फिरे।"[89] इसमें प्रकृति का आत्मा से जुड़ाव हो जाता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में प्रकृति का एक अलग ही रूप दिखाई देता है, "चेतन के पीछे जंगला था फिर नीचे पक्की सड़क, उसके परे बहुत लम्बा-चौड़ा मखमली घास का आयताकार लॉन, जिसमें जीनिया, बाकसम और कानसकोम्ब की क्यारियाँ थीं और तारकोल के गमलों में जामुनी और गुलाबी बिगनैबलिया के रंगारंग फूल अनायास ध्यान आकर्षित करते थे।"[90]

'निमिषा' उपन्यास में निमिषा उदास है स्वाभाविक है कि प्रकृति अपनी पूरी रंगीनी के बावजूद उसे कृत्रिम और उदास लगती है, "दो दिन बाद तीन बजे के करीब-करीब निमिषा मन लगाने को ड्राइंग रूम की बड़ी खिड़की मैं बैठी थी। उसकी निगाहें शीशों से लॉन में तीनों ओर लगे जीनिया के ढेर के ढेर रंग-बिरंगे चटक फूलों पर टिकी थी और वह सोच रही थी कि अपनी तमामतर रंगीनी के बावजूद ये फूल कृत्रिम क्यों लगते हैं? तभी फोन की घंटी बजी और जीनिया के फूलों को उनके हाल पर छोड़कर वह भागी।"[91]

'पलटती धारा' उपन्यास में प्राकृतिक परिवेश का यथार्थ धरातल पर चित्रण हुआ। चेतन अपनी बीमार पत्नी चंदा को सुबह सुबह सैर कराने ले जाता है, "बाग में पहुँच चंदा लॉन पर लेट जाती है। बाईं ओर कंधे तक ऊँची ऊँची गुलाब के छोटे फूलों की बाड़ थी। छिपे हुए बच्चों के हँसते चेहरों के से नन्हे नन्हे गुलाबी फूल उसमें झाँक रहे थे...बाईं ओर

लोहे की सलाखों के जाल पर एक बेल चढ़ी थी जो लम्बे केसरिया फूलों से लदी थी। केसरिया फूलों का वह गुम्बद सा बहुत ही भला लग रहा था।"

निष्कर्षत: 'अश्क' जी के उपन्यासों में प्रकृति का अतिरेक नहीं है लेकिन जहाँ भी उचित है प्रकृति अपने शालीन रूप में स्थित है।

निष्कर्ष

उपन्यास में परिवेश का विशेष महत्त्व होता है, किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का समाधान भर रहे, साध्य न बन जाये। उपन्यास में परिवेश की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है सामाजिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आदि। इसमें स्थानीय रंग का भी महत्त्व है। उपन्यास में स्थानीय रंग आ जाने से उसमें प्रभावात्मकता और स्वाभाविकता बढ़ जाती है। स्थानीय रंग ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक उपन्यासों में समान महत्त्व रखता है।

'अश्क' जी का बचपन जिन परिस्थितियों में बीता वह निम्न-मध्य वर्ग के संघर्ष से भरा था। वह काल रूढ़िगत मान्यताओं के बदलने की प्रक्रिया तथा समाज सत्य को व्यक्तिगत आधार पर मूल्यांकित करने का था। पुराने मान्य मूल्य टूटने लगे थे। नये बनने की प्रक्रिया में थे। 'अश्क' जी के अधिकांश उपन्यासों की अवधि 1934-1940 के बीच फँसी है। उनके उपन्यासों में इस अवधि के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का समाहार हुआ है।

'अश्क' जी के प्राय: सभी उपन्यासों की कथावस्तु सन् 1947 ई. के पूर्व की है। 'अश्क' जी ने इनमें अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता के शोषण का विरोध भी किया है। चेतन को गोरे गोरे स्वस्थ अंग्रेजों के बच्चों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हजारों देश के काले बच्चों का शोषण करके ही उनमें निखार आया है। अनमने मन में वे अत्यन्त घिनौने दिखायी दिये। उसे कुछ ऐसा लगा कि जैसे उनके शरीर का हर लोथड़ा और उनके रक्त का प्रत्येक कण अनगिनत काले बच्चों के रक्त-मांस से बना हुआ है और उसे ऐसा आभास जैसे काला समस्त संसार माया बना दिन-रात गोरे संसार की सेवकाई कर रहा है और उसके मन में आया कि उल्का बनकर इस गोरे संसार पर फट पड़े और उसे नष्ट भ्रष्ट

कर उस भूखे काले संसार को मुक्त करे।[92] तत्कालीन समाज में अंग्रेजों के विरुद्ध लोगों के मन में जो भाव थे, यहाँ उनकी यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

छायावादी काल से ही रचनारत रहने के कारण छायावादी कवियों की कुछ प्रवृत्तियाँ आदि 'अश्क' के उपन्यासों में भी हो तो आश्चर्य नहीं। जिस तरह छायावादी कवियों के यहाँ प्रकृति मानसिक प्रक्रिया से जुड़कर अभिव्यक्त हुई हैं, उसी तरह 'अश्क' जी के कथा साहित्य में भी।

(ब) स्वाधीन भारतीय समाज का वैचारिक धरातल और 'अश्क' जी के उपन्यास

वैचारिक सृष्टि

मानव सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन के साथ मानव चेतना में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है, परन्तु यह प्रक्रिया यान्त्रिक नहीं है। चेतना के विकास के अपने नियम हैं जो सापेक्ष रूप से स्वतन्त्र हैं, चेतना के तत्त्व बदलते ही उनकी अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ जाता है, किन्तु स्वयं चेतना मानव सम्बन्धों में परिवर्तन होते ही बदलने लगती है। चेतना को अधिकांश आदर्शवादी विचारक व्यक्तिगत अर्थ में लेते हैं जिसका मानव समाज के ऐतिहासिक विकासक्रम से कोई मेल नहीं है। वर्ग चेतना की इसी गलत समझ के कारण व्यक्ति चेतना के रूप में प्रचारित करने की चेष्टा की जाती है। अपनी वर्ग स्थिति और चेतना के अनुरूप ही साहित्यकार अपने साहित्यिक विषयों का चुनाव करके उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साहित्यकार अपनी ऐतिहासिक, सामाजिक आवश्यकता के अनुसार ही अपने विषय चुनता है। साहित्य सृजन का आधार व्यक्तिगत होता है, परन्तु उसकी चेतना उस वर्ग में समाहित है जिसके भीतर रचनाकार ने अनुभव प्राप्त किए हैं।

केवल विचारधारा ही श्रेष्ठ साहित्य का आधार नहीं हो सकती। जब तक कलाकार में गहरी संवेदना न हो। साहित्य सृजन की प्रक्रिया केवल विचार तक सीमित नहीं बल्कि वह इससे ज्यादा गहरी, व्यापक और मानसिक है, जब तक लेखक अपने स्वयं के जीवन अनुभवों से उस दृष्टि का सामंजस्य स्थापित नहीं करता तब तक श्रेष्ठ साहित्य की रचना सम्भव नहीं है। लेखक जीवन से गहरा सम्बन्ध स्थापित करते हुए संवेदनात्मक जीवन ज्ञान प्राप्ति करके उसी भाव दृष्टि तक स्वयं पहुँचता है जो भाव दृष्टि

आग्रह रूप में बाहर से उपस्थित हो गई है। केवल विचार प्रमुख साहित्य कभी जनवादी साहित्य नहीं हो सकता और न केवल कला की दृष्टि से सर्वोच्च साहित्य ही जनता में लोकप्रिय और जनता का साहित्य हो सकता। इसलिए जरूरी है कि कला और विचार का सामंजस्य बैठाकर ही साहित्यकार बड़ी रचना दे सकने में समर्थ हो सकता है।

विचारधारा और साहित्य के सम्बन्ध की चर्चा हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य आन्दोलन से आरम्भ हुई। प्रगतिवादी से पहले किसी भी रचना का रचनाकार के साहित्यिक मूल्यांकन में विचारधारा का प्रश्न विचारणीय नहीं माना जाता था। अब तक ऐसा माना जाता रहा है कि विचारधारा का सम्बन्ध लेखक के अपने विश्वासों से जुड़ा रहा है इसलिए हम देखते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल किसी रचना का वैचारिक मूल्यांकन नहीं करते। प्रगतिवादी साहित्य और समीक्षा ने साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी लेखक की विचारधारा को माना है।

विचारधारा का अर्थ है—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं के प्रति व्यक्त किए गए विचारों की मान्यताओं की व्यवस्था। मार्क्सवाद के अनुसार विचारधारा बाह्य संरचना का हिस्सा होते हैं वर्ग विभक्त समाज में विचारधारात्मक संघर्ष भी वर्ग संघर्ष के अधीन होते हैं।

विचारधारा अनिवार्यत: वैज्ञानिक ही नहीं होती, वह वैज्ञानिक भी होती है और अवैज्ञानिक भी। विचारधारा में यथार्थ की अभिव्यक्ति भी हो सकती है और उसका प्रतिबिम्ब भी। मार्क्सवाद के अनुसार प्रतिक्रियावादी वर्ग मिथ्या विचारधारा के पोषक होते हैं और प्रगतिशील तथा क्रानितकारी वर्ग वैज्ञानिक विचारधारा का समर्थन करता है।

कुछ आलोचक रचनाकार की जीवन दृष्टि को राजनीतिक या आर्थिक दृष्टि का पर्याय मानते हैं लेकिन केवल राजनीतिक या आर्थिक दृष्टि, जीवन दृष्टि का पर्याय नहीं हो सकती। रूसी आलोचक 'क्राप चेंको' ने इस स्थिति पर अपने विचार व्यक्त करके उसे स्पष्ट किया है, "जीवन दृष्टि सिर्फ राजनीतिक दृष्टि ही नहीं होती, बल्कि उसमें दर्शन, इतिहास, समाज, नीति, सौन्दर्य शास्त्र सम्बन्धी अनेक प्रश्न शामिल होते हैं। जीवन दृष्टि में वर्गों के आपसी सम्बन्ध समाज में व्यक्ति की स्थिति प्रकृति की अवधारणा, ज्ञान की

समस्या भी शामिल है। कई बार लेखक की राजनीतिक दृष्टि उसके सामाजिक, ऐतिहासिक घटनाओं सम्बन्धी अन्य विचारों से असम्बद्ध भी होती है।"[93]

साहित्यकार अपने संवेदनशील विवेक द्वारा यथार्थ को आत्मसात करता रहता है। बाह्य प्रभावों के आत्मसात करने का ढंग ही उसकी शैली है। कोई लेखक जीवन और यथार्थ से जितना ही साक्षात्कार करेगा उसके व्यक्तित्व का भी उतना ही विकास होगा। साहित्यकार की वास्तविक जीवन शैली एक वर्ग विशेष में चलती रहती है। अतएव इस वर्ग में प्रचलित सामान्य भाव धारा भी उसके विकास में सहयोग प्रदान करती है। इसलिए उस मूल्य भावना तथा दृष्टि के विकास में जितना व्यक्तिगत योग है, उतना ही वर्गीय सहयोग भी है, जो कलात्मक विवेक का रूप धारण कर, साहित्य सम्बन्धी विचारधारा भी बन जाती है।

साहित्य और विचारधारा का सम्बन्ध दूध और चीनी की भाँति होता है। इसमें एक अनुपात भी आवश्यक है। प्रेमचन्द ने 'गोदान', यशपाल ने 'दिव्या', अमृतलाल नागर ने 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' एवं उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील' तथा 'पलटती धारा' में विचारधारा को जिस उच्च कलात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया है, वह हमारे लिए अनुकरणीय हो सकता है। हमारे साहित्य में इस प्रकार की और अनेक कृतियाँ हैं जिनमें विचारधारा और कला का अपूर्व योग है और ऐसी ही कृतियाँ आज हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

स्वाधीन भारत के समाज का वैचारिक आधार तलाशने के लिए पराधीन भारत की उन परिस्थितियों और घटनाओं का मूल्यांकन करना आवश्यक है जिनके कारण भारतीय समाज को स्वाधीनता प्राप्त हुई है और वे घटनाएँ घटित हुईं जिन्होंने भारतीय जनमानस का निर्माण किया।

"सन 1857 की क्रान्ति के बाद का काल भारतीय जनजीवन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण काल रहा है। अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप प्राप्त रेल, डाक, तार, शिक्षा, सभ्यता एवं आंग्ल भारतीय सम्पर्क ने भारतीय समाज में शिक्षित वर्ग को विकसित ही नहीं किया अपितु अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध ने भारत के नवयुवकों को

काफी प्रभावित भी किया था।"[94] ये सुविधाएँ औपनिवेशिक औद्योगीकरण का परिणाम थी जिनका समाज के अस्तित्व और संख्या प्रसार में पर्याप्त योगदान था। "19वीं शती के उत्तरार्ध में समाज खूब पनपता रहा। समाज का मध्य वर्ग उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग से अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा जीवन के प्रति आचार-व्यवहार की दृष्टि से न तो निम्न वर्ग से मिल सकता था और न ही उच्च वर्ग से, क्योंकि झूठी मर्यादा प्रदर्शन तथा महत्त्वाकांक्षा की भावना इनमें अन्य वर्गों से कहीं अधिक थी।"[95]

सामन्तों, पूँजीपतियों, जमींदारों और कृषकों के देश में समाज के विविध वर्गों का अस्तित्व में आना लगभग नवीन बात थी जो तत्कालीन व्यवस्था का अधिकतर कर्मचारी वर्ग था। इस वर्ग में अनेक लोग जीने के आदर्श रास्ते अख्तियार करना चाहते थे। प्रमुख इतिहासकार और समाजविज्ञान मर्मज्ञ आर.सी. मजूमदार इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "समाज में दो प्रकार की विचारधाराओं को व्याप्त करने वाले दो वर्ग बन गए थे, एक तो भारतीय प्राचीन वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था तथा सामाजिक बंधनों को आवश्यक मानता था और दूसरा जो तन से भारतीय था और मन से अंग्रेज था। इन दोनों विचारधाराओं के मध्य एक तीसरा वर्ग भी था जिसमें सुधारवादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं और जो मध्यम वर्ग को अपनाकर आगे बढ़ रहा था।"[96]

प्रथम महायुद्ध से पूर्व सामाजिक जीवन को दूर तक प्रभावित करने वाले महापुरुषों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे तथा महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। इस युग की उल्लेखनीय सामाजिक संस्थाएँ निम्नलिखित हैं—आर्य समाज, ब्रह्म समाज, भारतीय दलित संघ, थियोसोफीकल सोसायटी, हरिजन सेवक संघ, रामकृष्ण मिशन आदि। इन संस्थाओं का सामाजिक क्रान्ति में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, यह किसी से अनभिज्ञ नहीं है। ये सुधार आन्दोलन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में पुनर्जागरण और चेतना प्रसार का कार्यक्रम लेकर उपस्थित हुए।

उत्तरी भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का गौरव महर्षि दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज को है। विवेकशील आचरण और तार्किक आधारों पर उन्होंने जनसामान्य की आस्था को प्रगतिशील आधार दिया। वेदों की अपरिमित महिमा का

बखान करते हुए पुराणों की अवैज्ञानिकता को प्रकट करते हुए पाखण्ड, कर्मकाण्ड, जातीय भेद-भाव और नारी की उपेक्षा को निराधार और अप्रमाणिक घोषित किया जिसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर बहुत व्यापक रूप में लक्षित किया जा सकता है। यह आकस्मिक नहीं कि आर्य समाज अपने युग का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन था जिसका प्रभाव उपन्यासों में प्रधान रूप से देखने को मिलता है। आद्यन्त उपन्यास साहित्य में आर्य समाज किसी-न-किसी रूप में समाज के विविध वर्गों को प्रभावित करता रहा है। आर्य समाज द्वारा उठाई गई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का चित्रण श्रद्धाराम फुल्लौरी के 'भाग्यवती', हरिऔध के 'अधखिला फूल', ब्रजनन्दन सहाय के 'अरण्यवाला', प्रेमचन्द के 'प्रेमा', 'सेवासदन', 'निर्मला', 'कायाकल्प', प्रसाद के 'कंकाल', वृन्दावनलाल वर्मा के 'प्रत्यागम', 'अचल मेरा कोई', इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेम और छाया', 'जहाज का पंछी', 'जिप्सी', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'शहर में घूमता आईना', 'बांधो न नाव इस ठाँव (दो भाग)', 'एक नन्ही किन्दील', 'पलटती धारा', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'निमिषा', अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' में विस्तार से दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय समाज सामन्ती जुए के नीचे पिस रहा था। अंग्रेजों ने आते ही पूँजीवादी समाज की नींव रखी। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया भी है। सामन्ती ध्वंस से ही पूँजीवाद का निर्माण होता है। सामन्ती समाज की क्रूर एवं पाशविक यातनाएँ और शोषण के हथियार यद्यपि पूँजीवादी समाज में नहीं रहते, परन्तु आशय यह नहीं कि इसके स्थान पर और कोई हथियार न आते हों। पूँजीवाद अपने हथियार स्वयं तैयार करता है और ये हथियार सामन्ती हथियारों से अधिक पैने, अधिक घातक और अधिक शक्तिशाली होते हैं। पूँजीवादी शोषण सामन्ती शोषण से कहीं अधिक जटिल, सूक्ष्म और अमानवीय होता है किन्तु शोषण करने के ढंग साफ सुथरे और संश्लिष्ट होते हैं। सामन्ती समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का स्थान घोर व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता ले लेती है। कारण है कि सामन्ती व्यवस्था में जहाँ लोगों के रहन-सहन, खान-पान और अन्य दैनन्दिन जीवन में ईर्ष्या और द्वेष नहीं रह पाता, वहाँ पूँजीवादी व्यवस्था में इसका बाहुल्य रहता है। आपसी द्वेष और मनोमालिन्य इतना बढ़ जाता है कि शत्रुता की एक दीवार बीच में खड़ी हो जाती है और आपसी सम्बन्ध किंचित मात्र भी नहीं रह पाते। "सामन्ती व्यवस्था में एक जड़ता की

स्थिति रहती है, वह पूँजीवादी व्यवस्था में नहीं टिक पाती और पूँजीवादी व्यवस्था जड़ता के स्थान पर निरन्तर गतिशीलता को जन्म देती है। उत्पादन के साधनों का मशीनीकरण होता है। श्रम का महत्त्व स्थापित होता है और सदियों से जमी जड़ता की खाई एकाएक छट जाती है। संचार व्यवस्था और यातायात के साधनों के माध्यम से दूरियाँ कम होती हैं। एक-दूसरे की सभ्यता और संस्कृति से अवगत होकर एक नवीन संस्कृति का उद्भव होता है जिसे पूँजीवादी संस्कृति कहते हैं। इस संस्कृति का एकमात्र उद्देश्य अर्थ प्राप्ति है।"[97]

और यह सही है कि सामन्ती व्यवस्था में जीवन स्थिर सा रहता है। पूँजीवाद ने उसे सक्रिया किया, चेतन किया लेकिन इसके साथ पूँजीवादी व्यवस्था में भी अनेक प्रकार की खामियां हैं। उसने आते ही समस्त पारम्परिक भावुक सम्बन्धों की जड़ ही उखाड़ डाली, जिससे सम्पूर्ण ढाँचा चरमरा गया और सामन्ती सम्बन्धों की हत्या हो गई। कार्ल मार्क्स के शब्दों में, "पूँजीपति वर्ग का जहाँ पर भी उसका पलड़ा भारी हुआ, वहाँ सभी सामन्ती, पितृसत्तात्मक और काव्यात्मक सम्बन्धों का अन्त कर दिया। मनुष्य ने अपने स्वाभाविक बड़ों के साथ बाँध रखने वाले नाना प्रकार के सामन्ती सम्बन्धों को निर्ममता से तोड़ डाला और नग्न स्वार्थ के नगद पैसे कौड़ी के हृदय शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा सम्बन्ध बाकी नहीं रहने दिया। धार्मिक श्रद्धा के स्वर्गोपम आन्नदातिरेक को वीरोचित उत्साह और कूप-मण्डूकता पूर्ण भावुकता को उसने आना-पाई के स्वार्थी हिसाब-किताब के बर्फीले पानी में डुबो दिया। मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसने विनिमय मूल्य बना दिया है और पहले के अनगिनत अनहपरणीय अधिकार पत्र द्वारा प्रदत्त स्वातन्त्र्यों की जगह अब उसने उस एक अन्तःकरण शून्य स्वातन्त्र्य की स्थापना की है जिसे मुक्त व्यापार कहते हैं।"[98]

समाज के प्रत्येक कार्य व्यापार के मूल में जब अर्थ का महत्त्व बढ़ जायेगा, तब पारस्परिक स्नेह और आत्मीयता के सम्बन्ध रह ही नहीं सकते। निश्चित ही एक ऐसी सीमा रेखा खींच दी जाएगी जिसमें रहकर आदमी का शोषण होता रहेगा और वह कुछ बोल भी नहीं पायेगा; इसलिए अपनी समस्त उत्पादकता के बावजूद पूँजीवाद में अनेक प्रकार की कमियाँ हैं जिन्हें दूर करने के लिए समाजवादी विचारधारा प्रकाश में आयी है। साम्यवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसका आधार उत्पादन साधनों पर सामाजिक स्वामित्व है। समाजवाद में यह है कि "शोषण से मुक्त लोगों के बीच सहयोग के सम्बन्ध सारे

समाज के हित में योजनाबद्ध आर्थिक तथा सामाजिक विकास, सामाजिक उत्पादों का श्रम के अनुसार वितरण, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में समाज की राजनैतिक तथा नैतिक एकता का सुदृढ़ीकरण राज्य का मेहनतकशों की सत्ता के साधन में रूपान्तरण, समाजवादी जनवाद की विकास और व्यक्ति के पूर्णतम तथा सर्वतोन्मुखी विकास के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों का निर्माण हो।"[99]

सामन्तवाद के ध्वंस से पूँजीवाद का जन्म होता है और पूँजीवाद की पराजय से समाजवाद का, यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसे समझना इसलिए जरूरी है कि किसी भी राष्ट्र के जीवन में इस प्रकार की ऐतिहासिक प्रक्रिया का आना स्वाभाविक है।

भारत में भी सामन्तवाद से पूँजीवाद आया। सामन्तवाद का अर्थ केवल राजा-महाराजा ही नहीं बल्कि वे प्रवृत्तियाँ और मानसिकता भी जो सामन्ती मूल्यों पर आधारित हैं। आज भी देश के विभिन्न सीमान्त अंचलों में इस प्रकार की मानसिकता समाज को संचारित कर रही है। राजस्थान के सीमान्त जोधपुर सम्भाग में आज भी वही सामन्ती समाज जीवित है जिसकी कल्पना दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे महानगरों में बैठकर नहीं की जा सकती। जाति-प्रथा, सती-प्रथा, के प्रति असुरक्षित नारी शोषण, प्रान्तवाद और अनेक प्रकार की कुरीतियों तथा रूढ़ियों को जीवित रखे यह समाज बाह्य रूप में प्रगतिशील पूँजीवादी संस्कारों से युक्त दिखेगा, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं।

मुक्तिबोध के शब्दों में—"कम्पनी राज में भारत तंग हो गया। बंगल में लूट मची। 'लूट' अंग्रेजी शब्द बन गया। बंगाल के धन से इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। अब वहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हो गया। तैयार माल भारत आने लगा। देशी वस्त्र उद्योग ठप्प हो गया। लाखों कारीगर बेकार हो गये। अंग्रेजी राज ने परम्परागत भारतीय अर्थव्यवस्था बलपूर्वक नष्ट कर दी। पंचायती आत्मनिर्भर ग्राम समाज चौपट हो गये। भूपति भारत की भूमि में जबरदस्ती आरोपित किये गये।"[100]

इस प्रकार ब्रिटिश शासकों की नीति बड़ी कूट थी, "अपनी दुरंगी चाल से एक ओर भारत के औद्योगिक विकास के नाम पर शोषण कर रहा था, दूसरी ओर उसे सभ्य बनाने का झूठा प्रदर्शन भी। अंग्रेजों की यह कूटनीति अर्थ के आयामों से अधिक जुड़ी हुई थी और आर्थिक निस्मृति (ड्रेन) भारत को खोखला करता जा रहा था।"[101] इसी कारण

सर पी. ग्रिफ्थ्स ने कहा है, "अंग्रेजों की आर्थिक नीति का प्रथम प्रभाव यह पड़ा कि भारत की प्राचीन ग्रामीण कृषि व्यवस्था और आत्मनिर्भरता विशृंखल होने लगी।"[102] "सन 1933-35 के मध्य तो यह दशा हो गयी कि किसानों के लिए मालगुजारी न दे सकने के कारण बहुत-से किसानों ने भूमि से इस्तीफे दे दिये।"[103] इसी युग में, "औद्योगिक विकास ने पूँजीवाद को जन्म दिया जिसने भारत की सम्पूर्ण आर्थिक भूमि को नष्ट कर दिया। सन् 1935 के संविधान के अनुसार ब्रिटिश उद्योग-धंधों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई और इस प्रकार भारतीय औद्योगिक उन्नति का स्पष्ट विरोध किया गया।"[104]

अयोध्या सिंह ने कहा है, "तब से भारतीय बुर्जुआ वर्ग की शक्ति तेजी से बढ़ने लगी। अक्सर जमींदारों या बिचौलियों और व्यापारियों के घरों से आये इन शिक्षित लोगों ने डॉक्टर, वकील और शिक्षकों के पेशों पर कब्जा कर लिया। उन्होंने पैसा पहले जमीन में लगाया और बाद में उद्योग-धंधों में। कालक्रम से वे बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि और प्रवक्ता बन गये।"[105]

इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत का आर्थिक शोषण करने के लिए एक सुनिश्चित और सुनियोजित वैधानिक व्यवस्था को जन्म दिया और अपने कानून की आड़ में वे निरन्तर भारत का शोषण करते रहे। "इस प्रकार जाने-अनजाने ढंग से अंग्रेजों ने भारत में बलपूर्वक ही क्यों न सही, आमूल सामाजिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। भारत में नवीन व्यवस्था पर आधारित आधुनिक ढंग की नई समाज रचना उपस्थित हो गई। सन् 1857 के गदर के पहले ही बंगाल में आधुनिक सभ्यता आरम्भ हो गई थी तथा शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हो गया।"[106]

स्वाधीनता पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न हो गई यद्यपि पाँचवें दशकादि में देश औद्योगिकी की ओर बढ़ा और शासकीय दृष्टि से भारत संसार के आठ प्रमुख औद्योगिक देशों की संख्या में आ गया। तद्यपि यहाँ पूँजीपतियों की पकड़ निर्धन समाज पर और भी निर्मम हो गयी। महँगाई, नौकरी और बेकारी की समस्या दिन दूनी रात चौगुनी रफ्तार से बढ़ने लगी। समाज पर इस समस्या का सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा। आर्थिक व्यवस्था डगमगाने से सभी वर्गों में असन्तोष की लहर दौड़ गई। तत्कालीन असन्तोष का वर्णन लुईस फिशर की दो पंक्तियों में ही त्रास की पूर्ण अभिव्यक्ति है—"भारत कितना

असन्तुष्ट देश है। अमीर हिन्दुस्तानी, गरीब हिन्दुस्तानी और शासक अंग्रेज सभी यहाँ पर असन्तुष्ट दिखाई देते हैं।"[107]

उक्त आर्थिक स्थिति का वर्णन तत्कालीन हिन्दी उपन्यासों में जमकर हुआ है। इस युग के प्राय: सभी उपन्यासों में आर्थिक समस्या किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही है। इस युग के उपन्यासकारों में गोविन्द वल्लभ पन्त, उषा देवी मिश्र, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, राधिकारमण प्रसाद सिंह, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अज्ञेय, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकार मध्यम वर्ग की अधिकांश समस्याओं का कारण पैसे को मानते हैं। इस युग के अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में शिक्षा, बेकारी, पूँजी, शोषण, श्रम, उत्पादन-वितरण, बढ़ती गरीबी, बढ़ती जनसंख्या आदि समस्याओं का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत किया है।

स्वाधीनता के बावजूद भारत में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, पूँजीपतियों की निरंकुशता तथा निरीह जनता का शोषण जारी है। कारण स्वाधीनता के चार पाँच वर्षों में ही जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था इस देश पर हावी हो गई जिसने हमारे सपनों को ही बर्बाद कर दिया।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का उपन्यास साहित्य भी इसी वैचारिकता की नींव पर खड़ा है। एक ओर आर्थिक शोषण और दूसरी ओर धार्मिक शोषण, बेरोजगारी, बेकारी, चुगलखोरी एवं नारी का शोषण, विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह जिस व्यापक रूप में समाज में फैल रहा है उससे समाज का वर्ग उत्थान नहीं हो सकता।

(क) सितारों के खेल उपन्यास में 'अश्क' जी ने यह प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति का शत्रु नियति है। उपन्यास की मूल समस्या प्रेम और विवाह की है। यहाँ 'अश्क' जी की जीवन दृष्टि व्यक्तिवादी है। जो प्रेम के व्यक्तिमूलक पक्ष को उभारती है। उपन्यास की नायिका लता पौराणिक सती अनसुइया की प्रतीक है जिसकी जीवन्त दशा आधुनिक जीवन्त स्थितियों एवं सन्दर्भों में चित्रित है। उपन्यास का आधारभूत विचार एक सती की जीवन स्थितियों में आधुनिक नारी को रखकर इसके मनोवैज्ञानिक सत्य को देखना है।

(ख) गिरती दीवारें उपन्यास में 'अश्क' जी ने भारतीय जीवन के निम्न-मध्य वर्ग के एक अत्यन्त भाव-प्रवण किन्तु सामान्य व्यक्ति के यौवन के शुरू के जीवन पर

प्रकाश डाला है। इसके माध्यम से निम्न-मध्यवर्ग के वैवाहिक जीवन, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, कुण्ठाओं, सद्वृत्तियों, ग्रन्थियों का व्यापक रूप से चित्रण किया है। 'अश्क' ने चेतन के चरित्र के माध्यम से वस्तुतः दो मूल समस्याओं को उठाया है—आर्थिक और सेक्स सम्बन्धी कुण्ठा की समस्या इन समस्याओं से एक निम्न-मध्यवर्ग का युवक अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्ष करता है।

इस उपन्यास में कविराज की परिष्कृत शोषण वृत्ति, उदारता के नीचे छिपे कमीनेपन उनके चंगुल में फँसे चेतन की कुढ़न, लाचारी, विषमताओं तथा संगीतज्ञ बनने के लिए विफल प्रयासों का सविस्तार वर्णन है।

(ग) गर्म राख उपन्यास में तत्कालीन साहित्यिक जीवन राजनीतिक कार्यविधि तथा आन्दोलन विभिन्न ढंग के विद्यालय और कॉलेज तथा वहाँ का वातावरण पत्र-पत्रिकाएँ, निम्न-मध्यवर्गीय कुटुम्ब तथा घर की अस्त-व्यस्तता आदि का अनेक बातों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। यह निष्फल प्रेम की समस्या का आधार है।

(घ) बड़ी-बड़ी आखें उपन्यास में 'अश्क' जी ने राजनैतिक क्षेत्र की वास्तविकता को बड़े ही सुन्दर ढंग से अंकित किया है। हमारे जननेता, समाज सुधार एवं लोक कल्याण का व्रत लेकर बढ़ते हैं, परन्तु उनका वेष छद्म है।

इस उपन्यास के द्वारा उन नेताओं की ढकोसलेबाजी का पर्दाफाश करना चाहा है जिन खम्भों पर देश का भविष्य टिका है। वे यदि जर्जर हैं, तो कभी भी गिरकर दूसरे को घायल कर सकते हैं। आज की विषम राजनैतिक और सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह बात असम्भव नहीं है।

इनकी ऐसे समाज की परिकल्पना थी जिसमें न कोई गरीब हो न अमीर। वह शोषण रहित समाज हो, सबको पेट भर भोजन मिले और सभी को अपनी प्रवृत्तियों के अनुरूप जीवन के उद्देश्यों को तलाशने की स्वतन्त्रता हो। इसी विचार को पूर्ण विश्वास के साथ इस कृति में व्यक्त किया गया है और इसे उपन्यासकार की नयी उपलब्धि ही कहा जायेगा।

(ङ) पत्थर–अल–पत्थर उपन्यास तक आते–आते वर्ग संघर्ष काफी तीव्र हो गया। विदेशी शासन से छुटकारा तो मिल गया है लेकिन आजादी स्वाधीनता अभी जन–जन को नहीं मिली है। लिहाजा शोषण की प्रक्रिया तीव्र हुई और इसी के साथ शोषक के प्रतीक भी और तीखेपन के साथ उभर कर सामने आते हैं और यही कारण है कि 'अश्क' जी हसनदीन के माध्यम से कश्मीरी मजदूरों के जीवन संघर्ष को, गरीबी और मजबूरी को, उनके हाड़ तोड़ परिश्रम को, घृणित शोषण को चित्रित करते हैं। 'अश्क' जी की अन्तर्भेदिनी दृष्टि केवल कश्मीरी सौन्दर्य को ही नहीं देखती, वरन् वह आस्थावान सरल, भोले, अत्याचारों के शिकार गरीब घोड़वान को भी उसकी सम्पूर्णता में ही देखती समझती हैं।

(च) शहर में घूमता आईना उपन्यास एक सैरबीन है। इसमें चेतन ही वह आईना है जो जालन्धर में घूमता है और इसके जीवन खण्डों को बारह घण्टे की छोटी अवधि में प्रतिबिम्बित करता है। यह प्रतिबिम्ब ही उपन्यास का मूल कथा सूत्र है। इस आईने में जो बिम्ब आते हैं वे यथार्थवादी हों, आर्थिक विषमता और वर्ग संघर्ष के परिणाम हों, पर सामाजिक विकृतियों पर टिके हों, इस पात्र के माध्यम से उजागर होते हैं। चेतन एक ऐसा आईना है जिसमें 'जालन्धर' के जीवन का बिम्बात्मक रूप आता है।

जिस समाज का यहाँ चित्र दिया गया है वह यौन भूखण्डों, दम्भियों, कायरों, मिथ्याभिमानियों, पलायनवादियों, शोषकों, जनखों, पागलों, दिमागी, ऐय्याशों तथा धोखेबाजों आदि का है। इनमें कोई भी ऐसा नहीं है जो परिस्थितियों को उसकी यथार्थ स्थिति में स्वीकार करके आगे बढ़े और संघर्ष का जोखिम उठाये।

(छ) एक नन्ही किन्दील यह 'अश्क' जी की महत्त्वाकांक्षा का एक पड़ाव है। इसके पूर्व के यात्रा खण्ड हैं—'गिरती दीवारें' और 'शहर में घूमता आईना'। 'एक नन्ही किन्दील' विभाजन पूर्व भारत के महानगर लाहौर में संघर्षरत नायक चेतन के कशमकश तथा पारिवारिक जीवन के बुलबुलों की गाथा है। चेतन एक भाव प्रवण युवक है जिसके संघर्षों और सपनों, इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं, अन्त और उलझनों के यथार्थ का यहाँ स्वरूप प्राप्त हुआ है।

'अश्क' जी ने अपने इस उपन्यास में समाज के तीन प्रमुख संचालक सूत्र—पेट, सेक्स और अहम् में से 'अहम्' को चित्रित किया है। इस उपन्यास में लाहौर की उर्दू पत्रकारिता की खूबियों, खामियों, आर्थिक स्थितियों, पत्रकारिता में लगे लोगों का स्तर, उनकी ऊब आदि का सविस्तार वर्णन किया है। उपन्यासकार ने विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में चलने वाली धांधली, कुचक्र तथा राजनीति पर करारा प्रहार किया है।

(ज) बांधो न नाव इस ठाँव बारह सौ पृष्ठों में फैला यह वृहत् उपन्यास दो खण्डों—तकलीफ और तनाव तथा वापसी में विभाजित है। प्रकाशकीय टिप्पणी के अनुसार 'बांधो न नाव इस ठाँव' का पहला भाग तकलीफ और तनाव अगर एक खलबलाता हुआ जीवन नद है तो यह दूसरा भाग तथा वापसी एक छोटी-सी झील है जिसके एक छोर से दाखिल होकर कथा धारा दूसरे छोर से फिर अपनी अटूट गति ग्रहण कर लेती है। तकलीफ और तनाव वाले खण्ड में इसका नायक चेतन, अपने परिवेश और व्यक्तित्व की सार्थक पहचान की तलाश में धारा के केन्द्र से फैलावों के गहरे धुंधलकों की तरफ तेज गति से बहता है और विभाजन पूर्व लाहौर की उन तमाम सरगर्मियों से जुड़ता है जो सड़क पर स्टॉल लगाये नीलामकारों से लेकर, भव्य सभागारों में 'व्यवस्थित' जिन्दगी जीने वाले उच्चवर्गीय साहित्यकारों और शायरों तक फैली हुई है। दूसरे भाग में 'अश्क' जी बड़ी निर्भीकता से अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। धर्म सम्बन्धी विचार 'अश्क' ने पूरे विस्तार से उपस्थित किए हैं क्योंकि यह विचार चेतन के विचारों के अंग हैं।

इस उपन्यास में एक उच्च-मध्यवर्गीय अफसर की रूपगर्विता, उद्दण्ड लड़की और जिम्मेदारियों के बोझ से संत्रस्त, निम्न-मध्यवर्गीय भीरू युवक चेतन की एक प्रणय कथा को भी 'अश्क' जी ने बड़े सधे हाथों से चित्रित किया है। इस उपन्यास में नीलामकारों, बारात पार्टी, चमत्कारी बाबा के अलौकिक कारनामों, शेरों, टप्पों और लेखों के उद्धरण तथा अनेक प्रसंग आये हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. गोपालराम का मत है कि—"यह उपन्यास हमें किसी रूप में प्रभावित नहीं कर पाता। इसमें न तो कोई 'आत्म साक्षात्कार' है और न कोई वैचारिक मंथन, न किसी कालखण्ड का तीव्र बोध है न परिस्थितियों के साथ व्यक्ति के संघर्ष का प्रभावी चित्रण है।"

(झ) एक रात का नरक उपन्यास में 'अश्क' जी ने समाज की कुरीतियों, आड़म्बरों तथा क्रूरताओं को प्रकट करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझा है। वह चाहता है कि समाज में चोरी छिपे तथा खुल्लमखुल्ला हो रही बुराइयों का पर्दाफाश हो।

इस उपन्यास में लेखक शिमला से दूर पहाड़ी रियासत सी.पी. के वार्षिक मेले तथा वहाँ के रंग-बिरंगे आकर्षण तथा रियासत की हवालात के अँधेरे भू-गृह में एक रात की सैर कराकर घर बैठे ही उस रियासत की वास्तविक दशा का तथा शासकों के मनमाने अत्याचार का अनुभव करा देता है।

(ञ) निमिषा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का नवीनतम उपन्यास है, जिसमें भारतीय समाज के विवाह और प्रेम के बीच झूलते संशयग्रस्त चित्रकार गोविन्द, उसकी दूसरी पत्नी माला और प्रेमिका निमिषा का अभूतपूर्व चित्र खींचा है। इसमें निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की रूढ़िग्रस्तता पर आघात करते हुए 'अश्क' जी ने इस उपन्यास में अपनी पैनी नजर और बेबाक नजरिये से समाज का अनुपम खाका पेश किया है, जहाँ जिन्दगी और इसलिए प्रेम भी सहज, स्वाभाविक और प्राणवन्त नहीं रह पाता।

(ट) पलटती धारा उपन्यास में समसामयिक समस्याओं को समाते हुए सरल प्रेम, स्वच्छन्द उन्माद, साम्प्रदायिक सूफी मत की धर्म निरपेक्षता और अद्वैतवाद की आध्यात्मिक सर्वाधिक ऊँचाइयों को छूता है। यह 'गिरती दीवारें' सीरीज का मनोवैज्ञानिक, प्रौढ़ और प्रोफाउण्ड उपन्यास है।

'पलटती धारा' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का नवीन उपन्यास है जो उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास 'अश्क' जी के वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' का छठा खण्ड है जिसमें नायक चेतन की कहानी एक कदम आगे बढ़ती है और चेतन को एक ऐसे मोड़ पर ले जाती है जहाँ उसके सामने दो विकल्प हैं——लेखक बने या कानून की परीक्षा पास करके सबजजी की प्रतियोगिता में बैठे।

चेतन दूसरा विकल्प चुनता है और हम उसे एक ओर विभाजन पूर्व भारत के महानगर लाहौर के साहित्यिक समाज में विचरते पाते हैं, दूसरी ओर कानून की पेचीदगियों में डूबते-उतरते हैं। इसी के साथ-साथ अपनी पत्नी के बीमारी के सिलसिले में चेतन अपने परिवार के कुछ छिपे हुए पहलुओं से भी रू-ब-रू होता है।

'अश्क' जी ने बड़े सधे हाथों से चेतन की संघर्ष गाथा को चित्रित किया है और भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की ऐसी झांकियां प्रस्तुत की हैं कि हर संघर्षरत युवक को यह उपन्यास अपनी ही कथा जान पड़ेगा।

(ठ) संघर्ष का सत्य उपन्यास 'अश्क' जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'गर्म राख' का विद्यार्थी संस्करण है। इस उपन्यास में हम सामाजिक कुरीतियाँ और कुरूपताएं तो उनकी समस्त विषमता में देखते ही हैं, साथ ही हम अनेक उठते और उफनते हुए सामाजिक आन्दोलन और राजनीतिक हलचलें भी देखते हैं, जो नये जीवन की सृष्टि के लिए आतुर हैं।

(ङ) नन्ही सी लौ 'अश्क' जी के वहत् उपन्यास 'एक नन्ही किन्दील' का यह संक्षिप्त संस्करण विभाजन पूर्व हिन्दुस्तान के महानगर लाहौर में मध्यवर्ग के संघर्षरत नायक चेतन की कश्मकश तथा उसके गार्हस्थ जीवन के छोटे-छोटे ब्यौरों की कहानी है।

चेतन की कहानी सहज एक मध्यवर्गीय युवक की कहानी न रहकर, भारत के तमाम युवकों की कहानी बन जाती है।

(ढ) चेतन वृहद् और चेतन संक्षिप्त दोनों ही उपन्यास 'गिरती दीवारें' उपन्यास के संक्षिप्त संस्करण हैं, जो 'गिरती दीवारें' उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाते हैं।

(ण) चन्द्रा 'अश्क' जी का अप्रकाशित उपन्यास है जिसमें शिमला की मनमोहक फिजा में एक निम्न-मध्यवर्गीय ट्यूटर और एक सरकारी अफसर की रूपगर्विता बेटी की प्रेम कथा है जिसमें हास्य-व्यंग्य-करुणा और विसंगति का अद्भुत रूप साकार हो उठा है।

निष्कर्षतः उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी निम्न-मध्यवर्गीय समाज के सबसे बड़े उपन्यासकार हैं। उन्होंने इस वर्ग की नियति को स्वयं भोगा है। सम्भवत: उनके उपन्यास निम्न-मध्यवर्ग की वैवाहिक समस्याओं, आर्थिक विषमताओं, सामाजिक उलझनों, दमित वासनाओं, रूढ़िगत संस्कारों, विडम्बनापूर्ण कुण्ठाओं, काम ग्रन्थियों और अर्थशून्य विकृतियों का विपुल चित्रालेखन 'अश्क' साहित्य है। 'अश्क' जी के मुख्य पात्र प्राय: निर्णय लेने में असमर्थ हैं क्योंकि उनका व्यक्तिगत रुग्ण है। भारतीय रुग्णता के वे कायाकल्प हैं, प्रतिनिधिक बिम्ब हैं।

प्रेमचन्द परम्परा के अन्य उपन्यासकारों ने भी अपनी परिवेशगत जीवन स्थितियों अर्थात् समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को अपने उपन्यासों के कथानकों के ढाँचे में पिरोया है। 'अश्क' जी प्रगतिशील चेतना के उपन्यासकार रहे हैं। उन्होंने निम्न-मध्यवर्ग को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है। इनकी समस्याएँ उनके उपन्यासों में सम्यक् विस्तार के साथ उपस्थित हुईं। 'अश्क' ऐसे किसी भी तत्त्व के विरोधी रहे हैं जो समाज के विकास में बाधक हो।

सन्दर्भ

1. अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व, पृ. 131
2. डॉ. बच्चन सिंह : मध्यमवर्गीय वस्तुतत्त्व का विकास, आलोचना-13, पृ. 136
3. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : हिन्दी उपन्यास की विकास रेखा : उपलब्धियाँ और अभाव, पृ. 59-60
4. मोहन राकेश : आलोचना-13, पृ. 41
5. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृ. 288
6. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 236
7. अश्क : बड़ी-बड़ी आँखें, पृ. 79
8. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास, पृ. 135
9. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास, पृ. 135
10. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 83
11. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 147
12. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 147
13. वही, पृ. 147
14. वही, पृ. 147
15. वही, पृ. 119
16. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, पृ. 286
17. डॉ. (श्रीमती) वीणापाणि : अश्क के उपन्यास : कथ्य और शिल्प, पृ. 197-198
18. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 36
19. वही, पृ. 88
20. वही, पृ. 34
21. वही, पृ. 117
22. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 89
23. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 372-373

24. वही, पृ. 374
25. अश्क : पलटती धारा, पृ. 21
26. अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 78
27. वही, पृ. 82
28. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 26
29. वही, पृ. 40
30. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 209
31. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 118
32. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 209
33. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 91-92
34. वही, पृ. 92
35. वही, पृ. 89
36. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार अश्क, पृ. 40
37. शमशेर बहादुर सिंह : उपन्यासकार अश्क, पृ. 141
38. अश्क : गर्म राख, पृ. 73
39. अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 177
40. अश्क : एक नन्ही किन्दली, पृ. 127
41. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 73
42. डॉ. मक्खनलाल शर्मा : आलोचना-35 (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य), जनवरी 1966, पृ. 156
43. (क) अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 510; (ख) अश्क : बांधो न नाव इस ठाँव-2, पृ. 338
44. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 258
45. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, पृ. 54
46. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, पृ. 50
47. वही, पृ. 50
48. वही, पृ. 40
49. वही, पृ. 37
50. वही, पृ. 55
51. अश्क : पलटती धारा, पृ. 231
52. वही, पृ. 239
53. अश्क : निमिषा, पृ. 53-54
54. वही, पृ. 154
55. वही, पृ. 109

56. वही, पृ. 110
57. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 84
58. अश्क : गर्म राख, पृ. 149
59. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 208
60. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 410
61. वही, पृ. 410
62. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 269
63. डॉ. बच्चन सिंह : आलोचना-13 (उपन्यास विशेषांक), अक्टूबर 1954, पृ. 127
64. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 198
65. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 251
66. अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 23
67. अमृतलाल नागर : बूँद और समुद्र, पृ. 557
68. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी : हिन्दी उपन्यास, युग चेतना और पाठकीय संवेदना, पृ. 83
69. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 130
70. वही, पृ. 136
71. वही, पृ. 138
72. वही, पृ. 104
73. अश्क : बांधो न नाव इस ठाँव, पृ. 517
74. अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 713
75. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 374
76. वही, पृ. 375
77. वही, पृ. 390-391
78. अश्क : गर्म राख
79. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी : हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना, पृ. 142
80. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 113-114
81. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 23-24
82. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 73
83. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 15
84. अश्क : बड़ी-बड़ी आँखें, पृ. 109
85. वही, पृ. 108
86. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, पृ. 136-137
87. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, पृ. 102

88. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 356
89. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 231
90. अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 293
91. अश्क : निमिषा, पृ. 43-45
92. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 363
93. The writer's Geative Individuality and the development of lituatue by M. Krapchenko, p. 40
94. मार्क्स-एंजिल्स : सलेक्टेड वर्क्स, पृ. 90 (हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति लाने में इंग्लैण्ड के अपने हीनतम स्वार्थ निहित थे और इन स्वार्थों की पूर्ति करने में उसने निकृष्टतम साधनों का प्रयोग किया था)।
95. डॉ. राजकुमारी : उपन्यासकार प्रेमचन्द : समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 46
96. आर.सी. मजूमदार : एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (तीसरा भाग), पृ. 877
97. राहुल सांकृत्यायन : मानव समाज, पृ. 119
98. कार्ल मॉर्क्स-फ्रेडरिक ऐंगेल्स : कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र, पृ. 38-39
99. ल. लेओन्त्येव : राजनीतिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा, पृ. 164
100. मुक्तिबोध : मुक्तिबोध रचनावली भाग-6, से संकलित 'भारत...इतिहास और संस्कृति' ग्रन्थ, पृ. 550
101. दादा भाई नौरोजी और महादेव रानाडे : इकोनॉमिक ड्रेन फ्रांस, इण्डिया नामक अध्याय
102. सर परसिबल ग्रिफ्थ्स : मॉडर्न इण्डिया, पृ. 75
103. रजनी पामदत्त : भारत : वर्तमान और भावी, पृ. 54
104. डॉ. गॉडगिल : भारत में औद्योगिक विकास, पृ. 97
105. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 34
106. मुक्तिबोध : मुक्तिबोध रचनावली, भाग-6, पृ. 556 से संकलित 'भारत : इतिहास और संस्कृति' ग्रन्थ
107. लुईस फिशर : दि लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 292

❑

चतुर्थ अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में पात्र सृष्टि एवं उनका सामाजिक दृष्टिकोण

(अ) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों के प्रमुख चरित्रों में सामाजिक दायित्व बोध निर्वाह

  (1) प्रमुख पुरुष पात्र एवं उनका सामाजिक दायित्व बोध

  (2) प्रमुख स्त्री पात्र एवं उनका सामाजिक दायित्व बोध

(ब) कालजयी पात्र सृष्टि और उनमें व्याप्त जिजीविषा एवं विद्रोह

चतुर्थ अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में पात्र सृष्टि एवं उनका सामाजिक दृष्टिकोण

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मूलत: सामाजिक सरोकार के रचनाकार हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में सामाजिक परिवेश के जो बहुआयामी चित्र मिलते हैं, वे उनके इसी परिवेश के ही प्रतिफल हैं। साहित्यकार अपनी रचनाओं में वही सब तो कहना चाहते हैं, जो वह अन्य कहीं जोरदार शब्दों में नहीं कह सकता। कहने के प्रति जो उद्दाम चाव है, वह सामाजिक सरोकारों और उनसे उपजी चिन्ताओं का कारण है। क्षमता के साथ विचार आता है, वह पाठक वर्ग को उस चिन्ता से जोड़ता है, जो चिन्ता रचनाकार की चिन्ता है, जो पीड़ा एक हर सामाजिक व्यक्ति की चिन्ता है। इसलिए रचना में आया हुआ समाज वह समाज ही नहीं होता जिसे हम अपनी आँखों से देख रहे हैं, बल्कि वह समाज होता है, जिसे हम नित्यप्रति देखकर भी अनदेखा कर रहे होते हैं। रचना का महत्त्व यही है कि वह हमारे समाज को, समाज के उन अवयवों को और उन बिन्दुओं को हमारे सामने खोलकर रखता है, जिन पर हमारी दृष्टि उस रूप में कभी नहीं गयी, जिस रूप में रचनाकार की दृष्टि ने उसे देखा है। रचनाकार का विषय चयन और उसके अनुरूप कला-कौशल इसी निष्कर्ष पर परखना चाहिए।

अश्क जी के उपन्यास जीवन के साक्षात्कार से पैदा होते हैं। अपने जीवन-अनुभवों, परिचितों, परिस्थितियों एवं परिवेश को उपन्यास विधा में बांधने के कारण अश्क के उपन्यासों का फलक एक विशालता को घेरता है। बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण अश्क जी का परिचय क्षेत्र व्यापक रहा है। अपने परिवेश में साँस ले रहे लोगों से उनका सीधा परिचय रहा है, जिसका उपयोग वे अपने उपन्यासों में करते हैं।

अश्क जी के औपन्यासिक पात्रों की बहुलता, प्रामाणिकता तथा निजता का यही कारण है। उनके उपन्यासों में विभिन्न वर्गों के पात्रों की उपस्थिति का भी यही कारण है। सम्राट् उपन्यासकार मुन्शी प्रेमचन्द के बाद अश्क ही ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके उपन्यासों में पात्र अपनी विविधता और भारी संख्या में उपस्थित हैं।

अश्क जी की पात्र सृष्टि विलक्षण है। वे जिस समाज को अपनी रचनाओं में पुन: सृजित करते हैं, उस समाज से उन पात्रों का चयन करते हैं जो सामाजिक चिन्ताओं से पूर्णतया जागरूक हैं और उन्हें दूर करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। ऐसे पात्रों की संख्या कम नहीं है, बल्कि इतनी अधिक है कि पूरा जागरूक समाज उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ-सा लगता है। स्पष्ट है कि रचनाकार की जागरूकता अपने पात्रों के माध्यम से ही रचनाओं में आकार ग्रहण करेगी।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' प्रेमचन्द परम्परा के कथाकार हैं। विषय, दृष्टिकोण, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से उन्हें प्रेमचन्द संस्थान का ही कथाकार माना जायेगा। वे यथार्थवादी कथाकार हैं, इसलिए उनके चरित्र इसी समाज से आये हैं। उनके सभी पात्र साधारण तथा निम्न-मध्यवर्ग से लिए गए हैं। उनके उपन्यासों में पात्रों के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष एवं विकास की समस्या है। उनके नारी एवं पुरुष पात्रों के विकास में एकरूपता एवं एकरसता दिखाई पड़ती है। आज के व्यक्ति की मानसिक एवं यौन कुण्ठाओं को उनके पात्रों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। आज के समाज में सत्यनिष्ठ व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवनयापन करना बड़ा कठिन है। सामाजिक व्यक्ति के रीढ़हीन, दुर्बल और हेय जीवन, उसकी छोटी-बड़ी घटनाएँ तथा सीमित संकुचित विचारों को भी उनकी कृतियों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।

अश्क जी ने युग मानव की नैतिकता और मानवता को उभार कर देखते हुए बड़ी सतर्कता से अपने चरित्रों को गढ़ा है। वे चरित्र साहित्य के माध्यम से युग और जीवन की अभिव्यक्ति है। अश्क की प्रतिक्रिया सार्थक, तीखी, यथार्थ और जनवादी हैं। 'गर्मराख' में उन्होंने आदर्शोन्मुख जीवन की भी झलक दी है। वे सिर्फ समाज के रूढ़ीवादी संस्कारों पर ही प्रहार नहीं करते बल्कि नये समाज के निर्माण की ओर भी संकेत करते हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जीवन निम्न-मध्यवर्गीय समाज की मानसिक कुण्ठाओं, नैतिक वर्जनाओं तथा आर्थिक विषमताओं के परिवेश में विकसित हुआ है। जीवन के तिक्त अनुभवों तथा विकट भावभूमियों ने उनके व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। एक साधनहीन व्यक्ति किस तरह जीने के लिए परिश्रम तथा सतत् साधना से अपने पथ का निर्माण करता है। दूसरा विशद तथा विस्तृत विवरण 'नाटककार अश्क' नामक पुस्तक में दिया गया है।

"अश्क नायक के व्यक्ति में विश्वास रखते हैं। साधारण पात्र बनकर रहना उनके लिए कहीं भी सम्भव नहीं है।"[1] अश्क की कल्पना, दैवीशक्ति और जन्मजात प्रतिभा के प्रति कोई भ्रम नहीं। जीवनभर उन्होंने संघर्ष किया है। स्वयं ही हाथ-पाँव मारकर तैरना सीखा है और लेखन की रक्षा की है। वह अपनी सीमाओं को भली-प्रकार जानते हैं और अपने विस्तार को बराबर बढ़ाते रहने में सजग रूप से प्रयत्नशील रहते हैं—"वह सागर के तल में पड़े मोती या आकाश में खिलने वाले फूलों की ओर हाथ नहीं बढ़ाते। वह जो जीते हैं, उसी को लिखते हैं। पहाड़ और घाटी, मैदान और दलदल, सड़क और पगडण्डी, नदी और नाले, फूल और काँटे सबसे होकर आशा का सम्बल लिए अपने लक्ष्य की ओर बढ़े हैं।"[2] इन परिस्थितियों ने उनके दृष्टिकोण को रूप दिया है तथा उनकी व्यक्तिवादी विचारधारा को स्पष्ट किया है। उनका पारिवारिक जीवन सामन्ती रूढ़ियों तथा संस्कारों से ग्रस्त और आर्थिक चिन्ताओं से आक्रान्त था। इन मानसिक बाधाओं तथा सामाजिक विषमताओं से संग्राम करना किसी भी व्यक्ति के लिए, वह कितना ही आत्मनिष्ठ अथवा दृढ़ निश्चय क्यों न हो, अत्यन्त कठिन है।

व्यक्तिवादी मान्यताओं की स्थापना नायकों के चरित्र-चित्रण, नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण, विवाह तथा प्रेमचन्द के सम्बन्ध में उनके विचारों द्वारा की गई है।

सामाजिक मान्यताओं को वैयक्तिक कसौटी पर परख कर अपनाया गया है। इन मान्यताओं के प्रति अश्क जी का दृष्टिकोण प्रेमचन्द परम्परा के उपन्यासकारों की तरह सुधारवादी तथा सामाजिक न होकर व्यक्तिमूलक है।

अश्क जी के उपन्यासों में नायकों तथा नायिकाओं के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष तथा विकास की समस्या है। 'गिरती दीवारें' का चेतन तथा 'गर्म राख' का जगमोहन, 'बड़ी-बड़ी आँखें' का संगीत एक ही साँचे में ढाले गये हैं, जिसका आभास

अश्क के पृथक् उपन्यास 'सितारों के खेल' के नायक बंशीलाल के चरित्र में मिलता है। चेतन की सामाजिक चेतना क्षीण पड़कर जगमोहन की दुर्बलता तथा अन्तर्मुखता का रूप धारण कर लेती है। बंशीलाल की आदर्शवादिता म्लान पड़कर संगीत के व्यक्तित्व अथवा एकरसता का स्वर मुखरित होता है। 'सितारों के खेल' की लता, 'गिरती दीवारें' की नीला, 'गर्म राख' की सत्याजी, 'बड़ी-बड़ी आँखें' की वाणी तथा 'निमिषा' की निमिषा के चरित्रों में समानता के अनेक लक्षण मिलते हैं। नारी-पात्रों के जीवन की मूल समस्या प्रेम सम्बन्धी है। उनका भावुक हृदय स्नेह को पाने के लिए आतुर रहता है। पुरुष पात्रों की दो प्रमुख समस्याएँ हैं——आर्थिक तथा प्रेम सम्बन्धी। निम्न-मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक विषमताओं तथा सेक्स सम्बन्धी कुण्ठाओं के कारण व्यक्ति का विकास कठिन है। पुरुष का संघर्ष तथा विद्रोह और नारी की मूल वेदना तथा नीरव-क्रन्दन व्यक्तिवादी विचारधारा को एक सीमित तथा संकुचित रूप में अभिव्यक्ति देने में सफल हुआ है।

अश्क जी अपने वर्ग की सीमाओं तथा समस्याओं से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। उनका पारिवारिक जीवन अभावग्रस्त रहा है। उनकी पहली पत्नी की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई, उसका गहरा प्रभाव उनके मन पर पड़ा। लाहौर में निम्न-मध्यवर्गीय समाज, जिसमें उन्हें रहना पड़ा, जुगुप्सा से लिप्त था। लाहौर के जीवन में इतनी घुटन-घुमडन थी कि जिससे पलायन कर वह पंजाब के एक आधुनिक आदर्श गाँव प्रीतनगर में जा पहुँचे। वहाँ भी सामाजिक कलंक के भूत ने उनका पीछा न छोड़ा। सत्यनिष्ठ व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करना सर्वत्र कठिन हो गया। इन स्थानों तथा यहाँ के जीवन का विस्तृत विवरण और सूक्ष्म चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है। छोटी-छोटी घटनाएँ सीमित तथा संकुचित विचार और साधारण भाव निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्तियों के रीढ़हीन, दुर्बल व हेय जीवन के अंग हैं। अश्क जी का उद्देश्य जीवन-सागर के उस जल का चित्रण करना है, जो रुक गया है और सड़ रहा है। उस यथार्थ को व्यक्त करना है जो घृणास्पद है। लेखक दैनिक जीवन की दलदल को जानता है, स्वयं उसमें फँसा हुआ है। उस दलदल से निकलने का उपक्रम करना और उसकी ओर दूसरों का ध्यान आकृष्ट करना उतना ही कठिन है जितना जीवन के भव्यरूप का चित्रण करना। उनके उपन्यासों पर नीरसता, अश्लीलता व शिथिलता के आरोप लगाये गये हैं। इसके सन्दर्भ में लेखक का कथन है——"कला पारखी चाहता है कि लेखक स्वयं तो गले तक डूबा, कीचड़ में लथपथ रहे

पर किनारे पर खड़े उनको उस कीचड़ का छींटा तक न लगने दे। उनके हाथों में चुपचाप कलम तोड़-तोड़ कर देता आये, जिनके रंग, रस और गन्ध से सरावोर होकर वे जीवन के रोग, शोक और पीड़ा को भूल रहे।"[3] इस प्रकार अश्क जी ने अपनी उपन्यास कला को यथार्थवादी रूप देने का प्रयास किया है।

शिवदान सिंह चौहान ने "गिरती दीवारें' को मूलतः एक यथार्थवादी उपन्यास कहा है और 'गर्म राख' को एक प्रकृतवादी उपन्यास कहा है।"[4] प्रकृतवादी उपन्यासकार की प्रकृति यथातथ्य चित्रण की ओर रहती है। उसके अधिकांश पात्र अपने दैनिक जीवन के व्यक्तिगत या आर्थिक-सामाजिक वैषम्य से कुण्ठित, खण्डित और क्षुद्रताओं तथा वासनाओं से आक्रान्त होते हैं। उन पात्रों की जीवन परिस्थितियों का ज्यों-का-त्यों चित्रण रहता है। लगता है जैसे मनुष्य खो गया है, क्योंकि पुरानी या नयी किसी भी नैतिकता से पात्रों का सम्बन्ध नहीं दिखता। नैतिकता के बिना मनुष्य की सामाजिकता नहीं रहती और सामाजिकता के बिना मनुष्य समाज-सम्बन्धों में पड़कर ही विकसित होने वाला मूर्त मानव नहीं रह जाता, जो अपने इतिहास का सभी भौतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माता है। चौहान का मत है कि प्रकृतवादी उपन्यास में मनुष्य अपना व्यक्तित्व खोकर एक यन्त्र या बायोलॉजीकल प्राणी बन जाता है।

अश्क अपनी उपन्यास रचनाओं में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के चित्र उपस्थित करते हैं। इस वर्ग की सामाजिकता तथा आर्थिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उपन्यासों के प्रमुख पात्र अपने व्यक्तिगत आदर्शों में इन पात्रों के जीवन की समस्याओं को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से निरूपित करते हैं। अश्क अपने औपन्यासिक चरित्रों का सृजन बहिरंग एवं अन्तरंग दोनों ही प्रणालियों से करते हैं।

अश्क के नायक

अश्क के उपन्यासों के नायक अश्क के मानस प्रतिनिधि हैं। यह कहना बहुत हद तक अनर्गल या सत्य से अतिदूर नहीं होगा कि अश्क के औपन्यासिक नायक 'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास के नायक हसनदीन घोड़वान को छोड़कर कमोवेश उनको ही जीता है। यही वजह है कि उनके उपन्यासों के नायकों का स्वरूप, विकास लगभग एक-सा है। उनके नायकों के स्वरूप-विकास की भाँति ही आत्मचरित्रात्मक और आत्मगत अनुभूतियों से सम्बन्ध है।

'सितारों के खेल' का नायक बंसीलाल, 'गर्मराख' का जगमोहन, 'बड़ी–बड़ी आँखें' का संगीत सिंह, 'निमिषा' का गोविन्द तथा 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्हीं किन्दील', 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दो खण्ड) और 'पलटती धारा' का चेतन एक ही जातीय गुणों तथा संस्कारों से लैस है। इन नायकों के जीवन की गतिविधि व्यक्ति, चिन्तन से संचालित होती है।

अश्क के उपन्यासों की नायिकाएँ

अश्क के उपन्यासों में नारी पात्रों के निर्माण में भी एकरूपता अथवा एकरसता का स्वर मुखरित होता है। 'सितारों के खेल' की लता, 'गिरती दीवारें' की चन्दा, नीला, 'गर्म राख' की सत्या और 'बड़ी–बड़ी आँखें' की वाणी तथा 'निमिषा' की निमिषा के चरित्रों में समानता के अनेक लक्ष्य मिलते हैं।

नारी पात्रों के जीवन की मूल समस्या प्रेम–सम्बन्धी है। उनका भावुक हृदय स्नेह को पाने के लिए आतुर रहता है। पुरुष पात्रों की प्रमुख समस्याएँ आर्थिक तथा सामाजिक सम्बन्धी रहती हैं।

अत: अब हम अश्क जी के उपन्यासों के पात्रों में निम्न–मध्यवर्गीय सामाजिक चरित्र व उनके सामाजिक दायित्व बोध का अवलोकन करेंगे।

बड़े रचनाकार की विशेषता यह है कि समाज को उस दृष्टि से देखता है जो दृष्टि सामाजिक जीवन को स्त्री और पुरुष की असमानता या हीन और श्रेष्ठ की कृत्रिमता में बाँट कर नहीं रखती है। वह उस दृष्टि से समाज की धुंधली आकृति को स्पष्ट करता है, जिससे समाज की प्रगतिशील और बहुआयामी, अर्द्धगामी छवि निखर सके। अश्क जी के उपन्यासों में यह छवि निखर कर आती है। इसलिए उनके पात्र पुरुष–वर्ग की अहंमन्यता और नारी वर्ग की निम्नता से ऊपर उठकर समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। सुविधा की दृष्टि से हम नर पात्र और नारी पात्र सृष्टि की सामाजिकता को अलग–अलग विश्लेषित कर रहे हैं ताकि दोनों की सामाजिकता स्पष्ट हो सके और यह भी कि दोनों की दृष्टि और सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में वैषम्य होते हुए भी वे अपने समाज के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में किसी प्रकार पीछे नहीं रहते। बंसीलाल, चेतन, जगमोहन, हसनदीन, संगीत, गोविन्द, देवाजी, शादीराम, तीरथराम, खन्ना साहब, हरीश, जगत व चन्दा,

लाजवन्ती, नीला, लता, सत्या, वाणी, श्रीमती खन्ना, निमिषा तथा चन्दा जैसे पात्र निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह से निर्वाह करते हैं और समाज की विसंगतियों को दूर करने में किसी भी प्रकार से पीछे नहीं रहते।

प्रमुख पुरुष पात्र : सामाजिक दायित्व बोध

सितारों के खेल (1938)

"यह 'अश्क' जी का पहला उपन्यास है जिसमें समाज के सीमित जीवन को उपन्यास का क्षेत्र बनाया गया है। लता तथा बंसीलाल के चरित्र-चित्रण द्वारा एक पौराणिक आदर्श को अमानवीय, अस्वाभाविक तथा काल्पनिक सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। लेखक मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर लता के चरित्र का विश्लेषण करता है। बंसीलाल का चरित्र एक भावुक तथा उत्कृष्ट प्रेमी का चरित्र है।"[5]

(क) बंसीलाल

बंसीलाल अतृप्त प्रेम तथा कुण्ठा से भरा एक निम्न-मध्य वर्ग का युवक है। वह एक ऐसा पात्र है, जिसके दैन्य, नैराश्य और दारिद्रय के सूत्रों व घटनाओं की योजना की गई है। दीनता और बेबसी ही इसकी जिन्दगी रही है। अपनी इस निर्धरता और विपन्नता के बावजूद बंसीलाल कॉलेज में प्रतिष्ठित था। मेधावी छात्र होने तथा योजना और परिश्रम के कारण वह छात्रों और अध्यापकों के बीच समादृत था।

लता से उसके एकांगी प्रेम ने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी थी। वह लता के लिए दीवाना था और लता उससे घृणा करती थी। लता की इस उपेक्षा से विक्षिप्त होकर वह उसके सामने आत्महत्या का प्रयास करता है। ओंकार शरद का विचार सत्य है कि— "बंसीलाल जीवन भर सदा असन्तुष्ट पात्र है जिसके बिना शायद लता अमृतराय का चरित्र न उभर पाता।"[6]

बंसीलाल कॉलेज में होने वाली प्रतियोगिता में भारतीय जीर्णशीर्ण और जर्जर वैवाहिक नियमों के विरुद्ध पाश्चात्य आदर्शों का समर्थन करता है। वह लता से प्रेम का आग्रही होता है पर लता की उपेक्षा बंसीलाल का उल्लास, हर्ष, खुशी सब कुछ छीन लेती है। लता उस समय भी जब बंसीलाल पाइप के सहारे उसके मकान पर चढ़ गया था, तनिक हमदर्दी दिखाती तो उसके लिए संजीवनी का काम करता। लता ऐसा नहीं कर सकी,

जिसके परिणामस्वरूप बंसीलाल का जीवन नरक में परिणत हो गया। बंसीलाल स्वयं अपनी दृष्टि में, "सदा ही ऐसा आवारा, ऐसा असफल न था। तुम्हें शायद मालूम न हो, तुम्हारे जाने से पहले अपनी कक्षा में ही नहीं सारे विश्वविद्यालय में वह सर्वप्रथम रहा था। ... उसका जीवन एक गीत था और आज तक बंसीलाल तुम्हारे सामने आया है। पहले बंसीलाल का छाया मात्र।"[7]

यद्यपि बंसीलाल जीवन पर्यन्त असन्तुष्ट तथा विषमताग्रस्त रहा पर इसीके माध्यम से उपन्यासकार ने डॉ. अमृतराय तथा लता के चरित्र को उभारा है। यह एक ऐसा अभिशप्त चरित्र है जो प्रेम के लिए आजन्म तड़पता रहा है पर कभी उसे नहीं मिला, लेकिन उसकी मृत्यु ने लता और उसके बीच की दूरी को समाप्त कर दिया।

(ख) डॉ. अमृतराय

डॉ. अमृतराय एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने लिबास से विलायती ओर विचार से भारतीय है। उनकी दृष्टि में नारी पुरुष के समान धरातल पर खड़ी होने वाली संगिनी नहीं हो सकती है। ओंकार शरद के शब्दों में "अमृतराय के रूप में अश्क ने आज के एक ऐसे पढ़े-लिखे पर कुण्ठित आधुनिक व्यक्ति का मिश्रण किया है, जो सूट-बूटधारी होने और विलायत का चक्कर लगा आने पर भी कहीं अन्तर में वही बर्बर मनुष्य है, जो नारी को पवित्रता की दासी देखना चाहता है और बराबर की संगिनी से डरता है।"[8]

डॉ. अमृतराय लता की सेवा भावना पर मुग्ध होकर उसकी ओर आकर्षित होता है और उससे प्रेम करने लगता है, किन्तु लता का वह कृत्य जो परिस्थितिजन्य विकृतियों तथा दबावों से बिल्कुल स्वाभाविक था, अमृतराय को अस्वाभाविक तथा क्रूर कर्म लगा। लता के प्रति उनके आकर्षण का मूल कारण केवल वह निष्ठा, लग्न थी जिससे वह पंगु बंसीलाल की सेवा कर रही थी। भावना के झोंके में वह उसे जहर भी दे सकती है। यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था। वे स्वयं बंसीलाल को जहर देना चाहते थे और एक बार ऐसा प्रयत्न भी कर चुके थे। परन्तु लता के कृत्य से वे असन्तुलित हो उठे थे। अगर लता जहर नहीं देती तो वे उससे विवाह कर सुखपूर्वक जीवन बिता सकते थे। किन्तु लता के उस कृत्य के बाद उनके लिए ऐसा करना सम्भव नहीं रहा।

यद्यपि अमृतराय का प्रेम समुद्र–सा गहरा है। इनके प्यार में नदी का ओछापन नहीं है, पत्थर की भाँति दृढ़ता है, फिर भी अन्त में इनके प्यार का वह रंग समाप्त हो जाता है। इनके प्यार में ईर्ष्या द्वेष भी नहीं है।

गिरती दीवारें (1947)

यह 'अश्क' जी का दूसरा उपन्यास है, जो निम्न–मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की सामाजिक तथा सीमित समस्याओं को एक जटिल ग्रन्थि के रूप में चित्रित करता है। यह एक चरित्र–प्रधान उपन्यास है जिसमें कथानक चेतन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है और इसके लिए उपयुक्त बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियाँ जुटाई है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं—चेतन, चन्दा, नीला, शादीराम तथा लाजवन्ती।

(क) चेतन

'गिरती दीवारें' उपन्यास का प्रधान पात्र, बल्कि वह ऊर्णनाभ (उपनिषद् में मकड़ी के लिए शब्द) जो अपने अन्दर से रेशे निकाल कर अपने आस–पास जाला–सा बुनता जाता है, वह है चेतन। चेतन वास्तव में 'सितारों के खेल' के पात्र बंसीलाल का ही रूपान्तर है, जो नियति के विधान का शिकार न होकर सामाजिक बन्धनों का शिकार है।

उपन्यासकार ने कथा–नायक चेतन के चरित्रांकन द्वारा दो मूल समस्याओं को उठाया है, आर्थिक विषमता तथा प्रेम सम्बन्धी कुण्ठा, जिनसे एक साधारण व्यक्ति जूझता है और अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए उनसे टकराता है।

चेतन पहले प्रकृति की कोड़ में अपनी चोटें छिपाता है और फिर कला की शरण में कुछ त्राण पाता है। उसके घर के वातावरण में कटुता है और बाहर के जीवन में कठोरता है। साहित्य में उसकी रुचि है। कवि और लेखक बनने की उत्कृष्ट आकांक्षा उसमें जग चुकी है। परन्तु परिस्थितियाँ उसे एक स्कूल मास्टर बनने और फिर लाहौर में एक समाचार–पत्र में नौकरी करने को विवश कर देती है। चेतन की आर्थिक विपन्नता उसे लाहौर के एक प्रसिद्ध कविराज रामदास के चंगुल में ला फँसाती है जो स्नेह का अभिनय करके स्वास्थ्य लाभ करवाने के लिए शिमला ले जाते हैं, वहाँ वह उससे पचास रुपये महीने पर पुस्तकें लिखवाते हैं जो कविराज के नाम से प्रकाशित होंगी। इस चाल को चेतन जान जाता है और तब से उसका मन कपटी कविराज के चंगुल से निकल भागने को

विकल हो जाता है। एक आलोचक के शब्दों में, "कविराज रामदास चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का 'भला करने' और उनकी प्रतिभा को चूसने वाली एक सबसे मोटी, सबसे चिकनी, चालाक जोंक है।"[9]

चेतन का आर्थिक शोषण उसके संघर्षमय जीवन का एक पक्ष है। उसके जीवन का दूसरा पक्ष उसकी प्रेम सम्बन्धी कुण्ठा है। उसके माता-पिता उसका विवाह एक साधारण, पर अत्यन्त सरल हृदय लड़की चन्दा से कर देते हैंजो उसकी रुचि के अनुकूल नहीं बैठती। परन्तु अपने कठोर पिता और ममतामयी माता के आदेश की अवज्ञा नहीं कर सकता। चन्दा की छोटी बहिन नीला के प्रति चेतन का आकर्षण और चेतन की ओर नीला का खिंचाव रूढ़िग्रस्त समाज में एक जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है। नीला के प्रति चेतन की आसक्ति इतनी उग्र रूप धारण कर लेती है कि वह एक दिन नीला को बलात् अंक में भर लेता है। नीला उससे दूर हो जाती है। इससे चेतन का जीवन विषादमय बन जाता है। इस अनुभूति की टीस चेतन के मन में जीवन भर उठती रहती है। उधर नीला का विवाह एक अधेड़, कुरूप व्यक्ति से सम्पन्न होता है। इधर चेतन एक ओर आत्म-ग्लानि और दूसरी ओर जीवन के विषय सौन्दर्य के अभाव से उत्पन्न आकांक्षा के बीच दुविधा में पड़कर परिस्थितियों से जूझ कर अपनी प्रतिभा को अधिक मानवीय तथा व्यापक बनाने का प्रयास करता है। संघर्ष के दीर्घ पथ पर अनेक नारियाँ उसके जीवन में आती हैं। "कुन्ती उसके स्नेह का प्रथम अनुभव है जिसमें मौन तथा संकोच था।"[10] वह इस परिणाम पर पहुँचा कि, "जाति-पाति के झमेलों, चरित्र-निर्माण के कठोर नियमों, बिरादरी और समाज के प्रतिबन्धों में ग्रस्त और मानव के रूप में एक-दूसरे को निगल जाने के लिए तत्पर दानवों से घिरा हुआ कोई व्यक्ति किस तरह प्रेम का नाम ले सकता है। वह घुट-घुटकर मरने का अधिकारी है।"[11] नीला से उसका स्नेह भी इसी अनुभूति को गहन बनाता है। इसके उपरान्त, दम्भो, प्रकाशो तथा मन्नी के प्रसंग उसके रिक्त जीवन को भरने वाले प्रयास-मात्र हैं, जो उसके कुण्ठित तथा दमित मन का परिचय देते हैं। इसी कारण एक आलोचक ने चेतन के व्यक्तित्व को अशिष्ट चरित्र की संज्ञा दी है।

"विवाह के पश्चात् उसकी अपनी साली के लिए व्यग्र हो उठना, रेलगाड़ी में यादराम की पत्नी मन्नी से छेड़छाड़, नल पर जल भरने के लिए आने वाली प्रकाशों से उसका व्यवहार व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की महिमा नहीं है। व्यभिचार की गरिमा है।"[12]

परन्तु शिवदान सिंह चौहान "चेतन के इस व्यवहार को पुराने ढंग से अनमेल-विवाह से उत्पन्न परिस्थितियों का परिणाम समझते हैं।"[13] चेतन के व्यक्तित्व की अनेक परतें हैं। एक परत के उतरते ही दूसरी निकल आती है। वह बार-बार जीने के लिए विपरीत परिस्थितियों से समझौता करता है। उसके व्यक्तित्व की परतें समाज की दीवारें हैं जो उसे घेरे रहती हैं। उपन्यासकार ने इन दीवारों के चित्र विस्तार से अंकित किये हैं।

वास्तव में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं जिनकी उपन्यास कृतियों में व्यक्तिगत जीवन-घटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन-दर्शन अथवा व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण सर्वोपरि रहता है। चेतन के व्यक्तित्व को आधार बनाकर उन्होंने उपन्यास की रचना की है। इसमें सामाजिक पक्ष का चित्रण रहते हुए भी व्यक्ति की आँखों से देखा गया है, सामाजिक मान्यताओं को व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की कसौटी पर जाँचा गया है। चरित्रों का चित्रण भी इसी धारणा को पुष्ट करता है।

चेतन के कठोर शराबी पिता शादीराम आत्मभीरू, सेवा, त्याग और ममता की मूर्ति उसकी माँ लाजवन्ती, रूप और यौवन से दीप्त नीला, सरल तथा उदार हृदय पत्नी चन्दा, कपटी तथा मधुर स्वभाव के कविराज रामदास, चेतन का अभिन्न मित्र अनन्त उसके सामाजिक जीवन को बनाने तथा बिगाड़ने वाले शायर हुनर साहब और संगीतज्ञ जगदीप सिंह विषम परिस्थिति के आ पड़ने पर छड़ी उठाकर, बाहर निकल जाने वाले भाई साहब, ईर्ष्या तथा द्वेष की भावनाओं से पूर्ण चम्पावती, आर्य समाजी सुधारक मास्टर नन्दलाल, कॉलेज के छात्र तथा अध्यापक इन सबको चेतन की व्यक्तिवादी दृष्टि से देखा गया है।

नायक चेतन का व्यक्तित्व सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक शोषण तथा सैक्स सम्बन्धी कुण्ठाओं से पूर्ण है। इसके चरित्र का विश्लेषण करते हुए नलिन विमोचन शर्मा ने लिखा है, "वह एक रीढ़ रहित, ढुलमुल यकीन, कमजोर और अत्यन्त साधारण मनुष्य है। इस आदमी में कहीं कोई द्वन्द्व या तनाव नहीं है। वह समाज की 'गिरती दीवारें' का टूटते और बदलते हुए ढाँचें का प्रतिनिधि न बनकर उसमें छिपा रहने वाला दैनीय जीवन है।"[14]

आज के निम्न-मध्यवर्गीय युवक के समान चेतन के सामने भी जीवन की कोई दिशा स्पष्ट नहीं रहती। उसमें प्रतिभा तो है, पर वह यह नहीं सोच पाता कि उसे इस

प्रतिभा का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए और वह अपने जीवन का निर्माण किस प्रकार कर सकता है? फलस्वरूप वह एक भटकाव की स्थिति में आ जाता है और उसके जीवन में विशृंखलता आ जाती है। अनिश्चय एवं संशय की स्थिति में वह कभी इस पथ पर और कभी उस पथ पर आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। वह कवि, कथाकार, उपन्यासकार, संगीतज्ञ, चित्रकार व अभिनेता—सभी कुछ बनना चाहता है पर बन कुछ नहीं पाता। यह अश्क जी की जबरदस्त कलात्मकता है कि उन्होंने चेतन को कुछ नहीं बनने दिया है। अपने औपन्यासिक सामर्थ्य का उपयोग करते हुए उन्होंने चेतन के लिए सारे सुयोग नहीं जुटाये। यदि वह दुर्बल है, असफल है और दिशाहारा की भाँति भटकता रहता है तो इसमें अश्क का क्या दोष? आज का सामाजिक यथार्थ भी तो यही है। आज कितने निम्न मध्यवर्गीय युवक अपना ध्येय निश्चित कर सफल हो पाते हैं। ... हजारों में एक या शायद वह भी नहीं। इसका परिणाम होता है कि वे टूट जाते हैं। निराशा उसकी मन:स्थिति पर छा जाती है—कुछ तो इसमें पथभ्रष्ट हो जाते हैं, कुछ दफ्तरों की फाइलों में ही जीवन पर्यन्त माथा फोड़ते रह जाते हैं और कुछ निश्चय ही जीवन से पलायन कर जाते हैं। चेतन ऐसे ही निम्नमध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो इस समाज के बहाव में बह जाता है। उसके सामने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। अनेक स्थितियाँ आती हैं। स्वार्थी, अहसान-फरामोश, नीच एवं कुत्सित वृत्तियों से परिपूर्ण व्यक्तियों, जिनसे वह समाज भरा पड़ा है, के संस्पर्श से उसे नवीन अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं और वह आगे बढ़ता है।

डॉ. सुरेश सिन्हा के मतानुसार, "इस उपन्यास का नायक चेतन दुर्बल, शिखण्डी, वासना का कीड़ा या अनैतिकता के परिवेश में लिपटा लुच्चा नहीं है, जैसाकि प्राय: आलोचकों का दावा है। वह निम्न-मध्यवर्ग की उन सारी प्रवृत्तियों को अपने में समेटकर एक ऐसे सशक्त यथार्थवादी नायक के रूप में उभरता है, जिसमें अश्क का अपना आरोपित कुछ भी नहीं है। वह जो करता है या सोचता है, वह बहुत ही स्वाभाविक रूप में, उसके व्यक्तित्व के साथ सगुम्फित है। उसे एक परिवेश में रखकर अश्क ने जिस विराट कैनवास का यथार्थ चित्रण किया वह अन्यतम है। हिन्दी में ऐसा प्रथम बार ही हुआ है। प्रेमचन्द ने ग्राम्य जीवन का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से अवश्य किया था पर आदर्श के मोह में उनका यथार्थवाद उस सशक्त रूप में उभर नहीं पाया है जिस रूप में इस उपन्यास में अश्क का यथार्थवाद।"[15]

निस्सन्देह नायक चेतन शतप्रतिशत भारतीय और उसकी मांसपेशियों में भारत का ही खून दौड़ता है। उसे किसी दूसरी पृष्ठभूमि में रखकर देखा ही नहीं जा सकता। वह अज्ञेय के शेखर की भाँति नहीं, जो किसी भी धरती की उपज हो सकता है। चेतन भारतीय धरती की उपज होने के अलावा कहीं और धरती की उपज हो ही नहीं सकता। यह वस्तुत: भारत के निम्न–मध्यवर्गीय जीवन का अनुपम महाकाव्य है।

(ख) पण्डित शादीराम

शादीराम 'गिरती दीवारें' उपन्यास के नायक चेतन के पिता हैं। इनके पिता कपूरथला में पटवारी थे। बचपन में ही इनकी माँ की मृत्यु हो गयी थी। अत: बचपन से ही एक तरह से अनाथ हो गये थे, जिसकी वजह से कभी ये अपने पिता के पास कपूरथला रहते और कभी अपनी दादी गंगादेई के पास। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्र घूमने से ये बचपन से ही उच्छृंखल तथा उद्दण्डी हो गये। पाँचवें दर्जे में ही इन्हें हॉस्टल में रख दिया गया, परन्तु इनकी उद्दण्डता में कमी नहीं आयी। ये हॉस्टल से भागकर मित्रों के यहाँ छिपते। ये कर्कश व कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे। जब आठवें दर्जे में थे तभी इनका विवाह लाजवन्ती से हो गया था। विवाह के पहले तो ये सिगरेट पीते थे, परन्तु अपने विवाह के अवसर पर अपने घनिष्ठ मित्र देशराज के घर मदिरा का रसास्वादन भी किया। मैट्रिक पास करते–करते पक्के शराबी बन चुके थे। ये तार बाबू से स्टेशन मास्टर बन चुके थे। जब भी जालन्धर आते और जितने दिन यहाँ रहते, लाजवन्ती घबराती रहती। अपने पुत्रों को डाँटने–मारने में ही इनका समय समाप्त हो जाता और वापस अपने काम पर चले जाते।

शादीराम शराब के साथ–साथ दीवाली जैसे त्योंहार पर जुआ खेला करते। ये कर्कश स्वभाव के व्यक्ति थे फिर भी इनके हृदय के भीतर बच्चों के प्रति अपार प्यार है।

शादीराम वचन के पक्के हैं। चेतन की शादी के समय जब उन्हें आभास मिला कि चेतन चन्दा से शादी करने को तैयार नहीं है तो वे कहते हैं, "देखो, मैं उन भले आदमियों को वचन दे आया हूँ ... सगुन का रुपया मैंने ले लिया है ... फिर अचानक अपने इस इक्कीस–बाईस वर्ष के 'बच्चे' को गोद में लेकर और उसका मुँह चूमकर पिता ने सहसा विनीत स्वर में कहा, "देखो बेटा, मैंने सदा तुम्हें आदेश दिया है, आज मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, यदि उस लड़की में कोई दोष न हो तो तुम मान लेना ... मुक्त करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी

से कहा ... मैं इसे डाँटता हूँ, लेकिन इसकी इज्जत भी करता हूँ।"[16] इन पंक्तियों से शादीराम का अपने बच्चों से प्रेम का स्पष्ट रूप दिखाई देता है तथा वे वचन के कितने पक्के हैं और सामाजिक दायित्वों का निर्वाह कितनी सटीकता से करते हैं, यह स्पष्ट होता है।

लेखक के शब्दों में, "पण्डित शादीराम स्वभाव के बड़े क्रूर थे, कठोर और अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है, पर इसके साथ ही उनके हृदय में कहीं-न-कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा में दबी पड़ी थी। इस कोमलता के कारण वे अपने शत्रुओं को माफ कर देते थे और अपनी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो वे बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो पड़ते थे।"[17] यह इनकी आन्तरिकता का परिचय देता है।

पण्डित शादीराम में अनेक दुर्गुणों के बावजूद भी अपने बच्चों के लिए ये अपने मन में उच्च आकांक्षाएँ रखते थे। ये उन्हें अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बनने की महत्त्वाकांक्षा करते रहते हैं, जिसका इनके बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। सब कुछ होने के पश्चात् भी ये एक पिता हैं।

उपन्यासकार ने एक निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है कि जिसको वातावरण नहीं मिलता है तो वह जीवन भर भटक जाता है और इसी भटकाव की स्थिति में वह कुमार्ग की ओर पलायन कर लेता है।

(ग) कविराज रामदास

'गिरती दीवारें' उपन्यास में प्रसिद्ध वैद्य कविराज रामदास यौन रोगों का ईलाज करने वाले मशहूर वैद्य हैं। वे मध्यवर्गीय शोषक वर्ग के प्रमुख सामाजिक प्रतीक हैं और 'गिरती दीवारें' उपन्यास में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्यक्ष रूप से वे साहित्यकारों का बड़ा आदर करते हैं, किन्तु इसके पीछे उनकी स्वहित स्वार्थ भावना निहित है। वे ऐसे व्यक्तियों में हैं जो साहित्यकारों का खून चूसकर मोटा होता जाता है। वे साहित्यकारों को झूठे प्रलोभन देकर उनसे अपने लिए पुस्तकें लिखवाते रहे हैं और पुस्तकें स्वयं के नाम से छपती रही हैं। शील के स्तर पर वे बड़े शातिर व्यक्ति हैं।

उपन्यास में कविराज रामदास मध्यवर्गीय सामाजिक शोषक के रूप में चित्रित किये गये हैं। वे साधन-सम्पन्न व्यक्ति हैं, मगर जरूरतमन्द लोगों का शोषण उनकी

प्रवृत्तियों में हैं। उपन्यास के नायक चेतन की दरिद्रता तथा स्वास्थ्यहीनता से काफी लाभ उठाते हैं। उसे मिथ्या प्रलोभन देकर तथा उसकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कविराज उसे शिमला ले जाते हैं। स्वास्थ्य लाभ तो रामदास के लिए बहाना मात्र था। वे तो वस्तुत: उससे अपने लिए स्वास्थ्य पर एक पुस्तक लिखवाना चाहते थे।

कविराज रामदास की स्वार्थपरता तथा काइयाँपन चेतन के इन शब्दों से सिद्ध होता है, "ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये उसे मालूम होता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है जिस प्रकार जयदेव और यादराम। कविराज दूसरे बीसीयों शोषकों की तरह एक शोषक हैं, वे उसे शिमला केवल वह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं।"[18]

"जाओ-भागो! तुम्हें क्या मालूम कि इस शख्स की प्रकट दया-माया के अन्दर एक खून का प्यासा शोषक भी छिपा है। अच्छा है कि यहाँ तुम महावीर की छत्रछाया में रहते हो। यहाँ तुम्हें भोजन भी मिल जायेगा और श्रद्धा भी, पर अगर कभी तुम रूल्दू भट्टे तक इनके पीछे-पीछे चले जाओ तो इनकी दया-माया का सारा भरम तुम पर खुल जायेगा।"[19]

सच में 'गिरती दीवारें' उपन्यास में अश्क जी ने कविराज रामदास को एक मीठे जहर के रूप में निरूपित किया है जो अपनी स्वार्थों की पूर्ण भावना से हर कार्य को अन्जाम देता है, जो मध्यवर्गीय पात्र में प्रमुखता प्रदान करती है।

उपन्यास के कविराज रामदास शोषक, क्रूर, दम्भी, ढोंगी, कपटी, शातिर, मिथ्यावादी—दूसरे शब्दों में मनुष्य की खाल में राक्षस हैं। उनका व्यक्तित्व एक ऐसा बन्द कमरा है, जिसमें सहज मानवीय अनुभूतियों के लिए कोई झरोखा ही नहीं बचा है। मूल चरित्र के प्रति न्यास-भावना के तहत या इस सन्दर्भ में भोक्ता के आक्रोश पर हावी हो जाने वाले स्रष्टा के कला-विवेक की वजह से लेखक द्वारा यदि चैडविक प्रपात के नीचे उसके कलाकार हृदय की झलक भी उपस्थित नहीं की गई होती तो उसके चेहरे पर लिपटे तारकोल में से मनुष्य जैसे लगते किसी चेहरे को पहचानना तक कठिन हो जाता।

(घ) रामानन्द

उपन्यास में रामानन्द नायक चेतन का बड़ा भाई है। एक विचित्र-सी शुष्कता की सीमा को पहुँची हुई वीतरागिता उनकी आकृति से सदैव टपकती रहती है। पिता की डाँट-डपट, मार-पीट, माँ के गिले-शिकवे, पत्नी के ताने, मोहने और रोना-रूठना कोई भी

वस्तु उसकी निर्लिप्तता को भंग नहीं कर पाती है। ये मन्द बुद्धि के समान है। पिता की मार से बचने के लिए न ये सतर्क रहते हैं और न हाजिर जवाब ही हैं। पढ़ाई में इनकी रुचि नहीं थी, पर ललित कला के प्रति इनका सहज रुझान था। रामानन्द की शादी एक स्टेशन मास्टर की पुत्री चम्पावती से हो गयी थी। ताश और शतरंज में उनकी अपूर्व प्रतिभा थी। पत्नी के ताने तथा बेकारी से ऊबकर इन्होंने कराची के डेंटल कॉलेज से एल.डी.एस.सी. का डिप्लोमा ले लिया और डेन्टिस्ट बन गये तथा लाहौर जाकर प्रैक्टिस करने लगे।

लाहौर में प्रैक्टिस करने के बाद भी इनकी वीतरागिता में कोई अन्तर नहीं आया। जब भी पत्नी के ताने-उलाहने सुनने पड़ते, चुप ही रहे। चेतन के शब्दों में, "ऐसे समस्त अवसरों पर भाईसाहब के लिए भोजन विष बन जाया करता। किसी-न-किसी तरह दो-चार कौन निगल कर उठ खड़े होते, छड़ी उठाते और चुपचाप बाहर निकल जाते।"[20] गौण पात्र होने पर भी रामानन्द उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक पात्रों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अप्रधान पात्र

'गिरती दीवारें' उपन्यास में गौण पुरुष पात्र भी हैं जो कथानक के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इन पात्रों से उपन्यास में सामाजिक दृष्टिकोण का चित्र उभरता है। ऐसे पात्रों में चेतन नायक के पिता के परम मित्र देसराज, नायक का मित्र अनन्त आदि हैं जो सामाजिकता का दायित्व निर्वाह करते हैं।

गर्म राख (1952)

'गर्म राख' अश्क जी का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें आर्थिक तथा नैतिक स्तर पर खड़े हुए निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यास के कथानक की पृष्ठभूमि विभाजन के पूर्व का लाहौर है और इसका नायक शिक्षित सामाजिक जीवन की ह्रासशील मान्यताओं का प्रतीक है। उपन्यास के पात्रों—कवि, सम्पादक, अध्यापक, प्रकाशक, सुधारक, विद्यार्थी, मजदूर और मालिक आदि की व्यक्तिगत तथा वर्गगत समस्याओं का निरूपण करते हुए लेखक जीवन की उस राख की ओर संकेत करते हैं जिसमें अभी ऊष्णता विद्यमान है।

(क) जगमोहन

'गर्म राख' उपन्यास के तीन प्रमुख पात्र हैं—जगमोहन, सत्या और हरीश। इनमें से जगमोहन एक ऐसा पात्र है, जिसके लिए लेखक ने भरसक कोशिश की है कि वह जरा भी असाधारण न बने। वह तत्कालीन निम्न-मध्यवर्गीय युवकों के चरित्र का प्रतिनिधि या टाइप चरित्र हो। वह साधारण सामाजिकता की घुटनभरी परिस्थितियों में बढ़ा-पला है, वही परिस्थितियाँ, वही संस्कार, वही छाप, कमजोरी और विशेषताएँ लिए हुए, "जगमोहन निम्न-मध्यवर्ग के उन लाखों युवकों में से एक था जो बचपन में 'बच्चे' और जवानी में 'युवक' नहीं होते, बचपन ही से जिन पर प्रौढ़ता का रंग चढ़ जाता है। जो एक कदम आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं, फिर पीछे रख लेते हैं और कई बार इसी आगे-पीछे में जिन्दगी के दिन पूरे कर देते हैं। जिनके बचपन में न खिलन्दरापन होता, न जवानी का अल्हड़पन। बचपन में सब कुछ भूलकर खेलना और जवानी में सब कुछ भूलकर प्रेम करना जो नहीं जान पाते।"[21] ऊँचे स्वप्न और स्वल्प साधन। फलत: मानसिक विकृतियों और ग्रन्थियों का शिकार। जीवन के संघर्ष तथा आर्थिक प्रतियोगिता या सामाजिक रुकावटों ने जिसकी हर महत्त्वाकांक्षा के आगे एक प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। वह खुलकर हँस नहीं सकता, रो नहीं सकता, जो उसकी प्रतिभा, व्यक्तिगत रुचि, सभी को दिन-रात कुचलती रहती है, ऐसी एक मानसिक घुटन उसके दिमाग में घर कर गयी है और जिसने उसके अत्यन्त स्वाभाविक सम्बन्ध, प्रेम को भी एक अपराध या पाप की तरह स्वीकार करने को विवश कर दिया है—

> **"छिपकली सी यह मुहब्बत**
> **आज के युग की लजीली,**
> **भीरू, अपने नाम ही के सहम-से जो सिमट जाये।**
> **तिमिर से आच्छन्न कोनों और अन्तरों से सरक कर झाँकती है।"**[22]

ऐसा क्यों है? वह सोचता है। प्रस्तुत से वह समझौता नहीं कर पाता और अप्रस्तुत उसे मिल नहीं पाता-यही उसके प्रेम की ट्रेजडी है, क्योंकि प्रस्तुत को वह झुठला नहीं सकता। "दूरो उससे बहुत दूर थी, पर सत्या जी नितान्त निकट थी और अपनी निकटता की याद वे उसे दिलाये रखना चाहती थी। उसे न जाने क्यों यह भ्रम हो गया है कि यह नारी, जो इतने दिनों से उसके गिर्द मकड़ी का जाला बुनने जा रही है, उसकी सारी प्रतिभा

का रक्त चूस जायेगी। एक अनचाहे संग को निभाने के लिए वह बाध्य हो जायेगा और उसे जीवन भर बाध्य रहना पड़ेगा।"[23] इसलिए शायद उनके लिए उसके हृदय में प्रेम न था। होता भी तो विवाह करने की उसकी स्थिति न थी। वह साफ अपने पत्र में सत्याजी को लिख देता है, "मुझे यदि आपसे प्रेम होता तो मैं इतना परेशान न होता, पर मुझे आपसे प्रेम नहीं है। शायद आप समझें, चूँकि आपने आत्मसमर्पण कर दिया है, इसलिए आप मेरी नजर से गिर गयी हैं और मैं आपसे घृणा करने लगा हूँ। मैं आपसे घृणा नहीं करता।"[24] और यही नहीं कि उसके अपने प्यार का ज्वार सदैव उतार पर रहा, चढ़ाव उसने देखा ही कहाँ? वह कभी-कभी सोचने लगता है, "यह कैसा प्रेम है जो आदमी को सब कुछ भुलाकर अपने में तल्लीन कर लेता है। उसके प्रति सत्या का और हरीश के प्रति दुरो का प्रेम भी क्या वैसा नहीं है? स्वयं उसे क्यों वैसा प्रेम नहीं होता? दूरो से उसे प्रेम ही सही पर क्या वह उसी प्रकार अन्धा है, उन्मादी है, जैसा किट्टी के प्रति लेविन का या ब्रौन्स के प्रति अन्ना का?"[25] और इसी उलझन में उपन्यास को गति मिलती है।

उपन्यास का नायक जगमोहन कवि है लेकिन जीवन के हर पहलू की तरह कविता के प्रति भी ईमानदार नहीं है। प्रेम के विषय में उनका कहना है, "वास्तव में समाज की वर्तमान व्यवस्था में प्रेम करते हुए भी उसे निभाना बड़ा कठिन है। मानव की सबसे पहली आवश्यकता पेट की भूख सम्बन्धी है। भरे पेट और फालतू समय वाला वह निधड़क और बेधड़क प्रेम कहाँ? हमारे निम्न-मध्य वर्ग में तो और भी नहीं—भूख के बाद प्रेम का नम्बर आता है।"[26] ऐसी स्थिति में कविता उसके लिए एक नशे की चीज है, हृदय की पुकार नहीं। "जिस प्रकार आदमी चिन्ताओं से मुक्त होने के लिए नशा करने लगता है, मैं कविता ले बैठता हूँ मस्तिष्क एकाग्र होकर चिन्ता मुक्त हो जाता है।"[27] जगमोहन संकोचशील स्वभाव तथा कातर मन का युवक है। सामाजिक बन्धनों से भय खाकर अपनी भीरूता पर आवरण डालने के लिए फैज की पंक्तियों का आश्रय लेता है।

आर्थिक संघर्षों के बीच वह किसी प्रकार बी.ए. करके एम.ए. की पढ़ाई के लिए साधन की खोज में है। उसके स्वप्न ऊँचे हैं, परन्तु साधन के कारण मानसिक विकृतियों और ग्रन्थियों का शिकार हो जाता है। फलस्वरूप वह अपने को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाता है।

नायक जगमोहन की स्थिति उस बच्चे के समान है जिसे शक्कर में लपेटकर कोई ऐसी कड़वी चीज खिलाई जा रही हो जिसके बारे में इसे पता नहीं हो। इसे पूरी तरह पता है कि सत्या जी इसे पाने के प्रयत्न में है फिर भी कई बार उधर झुक जाता है फिर उसके परिणाम को सोचकर घबरा उठता है। इस तरह जगमोहन अपने जीवन के सम्बन्ध में निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति के समान कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाता है। यह अनिश्चय ही उसका निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक व्यक्तित्व है।

जगमोहन के रूप में अश्क जी ने एक ऐसे सामाजिक युवक का चित्र दिया है जो प्रौढ़ भले ही न हो, लेकिन सचेत तथा जागरूक अवश्य है। जीवन के प्रति उसकी दृढ़ आस्था तथा सुलझा हुआ दृष्टिकोण भावुकता के प्रवाह में बह जाने से उसे बार-बार बचा लेता है। जीवन में सफलता प्राप्ति का उद्देश्य उसे कभी-कभी दूसरों के प्रति निर्मम तक बना देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोटी की समस्या उसके लिए सर्वोपरि हो, लेकिन किसी तरह भी रोटी मिले, तो उसे यह स्वीकार नहीं, अपनी इच्छा के अनुसार स्वाभिमान के साथ वह उसे प्राप्त कर सके, यह वह चाहता है। सफलता के लिए भी हर उचित-अनुचित साधन काम में वही नहीं लाना चाहता, इसलिए प्रोफेसर कपूर की ट्यूशन और सत्या का प्रेम वह बड़ी कठोरता से तज देता है।

(ख) हरीश

हरीश को लेखक ने भगवान् बुद्ध का अवतार बनाकर प्रस्तुत किया है। एक रात उन्हें जैसे बोध हुआ कि यह सारी व्यवस्था कैसी है, "उन्हें पता चल गया कि उनके पिता कैसे रुपया कमाते हैं और सहसा उन्हें उस सारी की सारी व्यवस्था से घृणा हो आयी। उन्होंने फैंसला कर लिया कि वे उसका अंग न बनेंगे। फिर तो हर जगह वे उपन्यास में विश्वकोष की तरह सामने आते हैं। इस प्रश्न का सही और स्वस्थ दृष्टिकोण से उत्तर उनके पास है। उनके जीवन का हर पहलू जैसे निश्चित हो कि किस समय वे क्या करेंगे? जरा प्रेम हृदय में आया तो पीठ थपथपा देंगे, नहीं तो लेक्चर झाड़ देंगे।"

उपन्यास में हरीश का चरित्र-चित्रण उदार रूप में किया गया है। कहीं-कहीं तो वह नायक होने का भ्रम पैदा करता है। इसका विश्वास साम्यवाद में है। उपन्यास में इसका

चित्रण एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में किया गया है। जीवन को देखने की इसकी दृष्टि साफ, कटी-फटी और युक्तिसंगत है। यह समाज कल्याण में विश्वास करता है।

उपन्यास में हरीश की दृष्टि में रोटी का स्थान सर्वोपरि है, प्रेम का स्थान द्वितीय। यद्यपि दुरो उससे प्रेम करती है, परन्तु प्रेम के लिए हरीश के पास अवकाश नहीं है। मजदूरों की भलाई और उसके माध्यम से अपने दल की लोकप्रियता और परिणामस्वरूप अपनी ख्याति का ध्यान ही उसे हमेशा परेशान किये रहता है। किसी छोटे मजदूर नेता में जितने गुण-दोष होने चाहिए वे सभी हरीश में हैं। अपनी सिद्धान्तवादिता तथा सरगर्मियों के कारण वह उपन्यास में काफी प्रमुख हो गया है। वह भौतिक स्तर पर प्रगतिशील है। इसका हृदय व्यक्ति चिन्तन के संस्कारों से मुक्त नहीं है। जगमोहन जिस प्रेम को छिपकली-सा कहता है वह प्रेम हरीश के अनुसार हमारी वासना, अज्ञान और उसी कारण पुरुष-स्त्री के सहज सम्बन्ध पर लगी वर्जनाओं के कारण है।

उपन्यास में हरीश को समाजवादी आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्ति के रूप में अंकित किया गया है। हरीश के चरित्र में वे गुण थे कि वह सच्चे अर्थों में आज के समय की माँग के अनुरूप हीरो बन सकता।

(ग) कवि चातक

भावुक हृदय कवि चातक अपनी अरसिक पत्नी के कारण कुण्ठित है। घर के कुरूप वातावरण से मुक्ति पाने के लिए उनकी छटपटाहट विकृत भले लगती हो लेकिन है सहज और स्वाभाविक। जब वे हर नव-परिचित युवती को अपनी भावी प्रेयसी के रूप में देखते हैं और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए झट कविता लिखने बैठ जाते हैं तो उनकी स्थिति हास्यास्पद लगने लगती है लेकिन जब वे (अपने को बायलन समझकर) एक हाथ से माथे की लटें पीछे करते हुए किसी लड़की की ओर प्रोत्साहन पाने के लिए आगे बढ़ते हैं और उपेक्षित होते हैं तो उनके जीवन की विडम्बना दयनीय हो उठती है। इतना होते हुए भी चातक जी की जीवन के प्रति आस्था है, संघर्ष के प्रति विश्वास है। चातक जी के जीवन का क्रम प्राय: ऐसा है कि एक बार असफल होने पर वे पलायन का मार्ग ढूँढते हैं और उससे निराश होने पर नये संघर्ष में लग जाते हैं। ऊपर से चातक एक

जन के कवि लगते हैं लेकिन गहराई से देखने पर जीवन संघर्ष तथा सहज मानव मूल्यों के प्रति उनकी आस्था स्पष्ट हो जाती है।

चातक जी प्रेम को सर्वोपरि स्थान देते हैं तथा रोटी की समस्या को गौण, जबकि जगमोहन रोटी की समस्या को सर्वोपरि स्थान देता है और प्रेम को गौण मानता है। कवि चातक नक्की स्वरों में बोलने वाली अनपढ़ पत्नी से ऊबे हुए प्रेरणा की तलाश में सदा नई नारियों से प्रेम करने का प्रयत्न करते हैं। यही इनकी साहित्य साधना है। कविता करने का तो इन्हें मर्ज-सा है। सत्या नामक नई कहानी लेखिका पर डोरे डालने के लिए ही कवि ने 'संस्कृति-समाज' नामक संस्था की स्थापना कर डाली।

यथार्थ कवि 'चातक' का घर में बीबी होते हुए भी हर नारी के लिए उत्पन्न हो उठने वाला साहित्यिक प्रेम, जो उनसे कविताएँ लिखवाता है, रावण को आदर्श प्रेमी बताता है, जिसने प्रेम के लिए सब कुछ निछावर कर दिया है। उमर खयाम के अनूठे प्रेम की आकांक्षा करता है, जिसमें उसने एकान्त पेड़ की डाली के नीचे एक रोटी कविता पुस्तक, शराब और नागिन-सी जुल्फों वाली साकी की माँग की है।

लेखक ने चातक जी के चरित्र को अपनी पूरी तन्मयता और संवेदना से गढ़ा है, इसमें सन्देह नहीं। अपनी तमाम खामियों-खूबियों, हास्यास्पदता और भोलेपन के बावजूद चातक जी का चरित्र 'गर्म राख' का एक अविस्मरणीय चरित्र है।

अप्रधान पात्र

पण्डित धर्मदेव वेदालंकार तथा शुक्ल जी ये दोनों ही पात्र 'गर्म राख' उपन्यास के ऐसे गौण पात्र हैं जो कथानक के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इन पात्रों के माध्यम से मानवीय चरित्र के कई अछूते पहलूओं पर प्रकाश पड़ता है।

शहर में घूमता आईना (1963)

सन् 1963 ई. में प्रकाशित उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का यह छठा बृहद्काय उपन्यास है। 'शहर में घूमता आईना' 'गिरती दिवारें' और 'बाँधों न नाव इस ठांव' के बीच की कड़ी है, किन्तु वह अपने में स्वतन्त्र भी है। अश्क जी ने जिन पात्रों की दृष्टि 'शहर में घूमता आईना' के लिए की है, वे 'गिरती दीवारें' से चेतन तक चलते हैं।

चेतन

इस उपन्यास का नायक चेतन 'गिरती दीवारें' के चेतन का नया चेहरा है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास के चेतन का पहला रूप जीवन को भोगने की देन है, दूसरा भोगे हुए जीवन की स्मृति का परिणाम है। यह एक हाथी है जो सारे जालन्धर में घूमता है। इस उपन्यास में चेतन आईने का प्रतीक है। इसमें दोहरा प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। चेतन जालन्धर, पंजाब, भारत के समाज का एक विचित्र स्थिति वाले आज के विश्व का आईना है जो देख और दिखा रहा है। यह आईना चेतन की मनोदशा के रंग में रंगा हुआ है।

चेतन के सम्बन्ध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान का विचार है, "चेतन हर व्यक्ति को झेलता है और हर दृश्य को जीता है। उसमें किसी से जूझने की शक्ति ही नहीं है, इसलिए वह आईना है, जिसमें जालन्धर के समस्त जीवन के बिम्ब पड़ते हैं।"[28]

उपन्यास का प्रारम्भ स्मृति शैली के द्वारा होता है। चेतन को अचानक सवेरे जग जाने से नीला के विवाह की याद आती है तथा अपने विवाह के पूर्व की भूमिका का भी स्मरण हो जाता है। जब वह विवाह के लिए चन्दा को देखने स्कूल तक जाता है। नीला के विवाह की उसकी असफलता एवं अधेड़ मिलिट्री अकाउण्टेण्ट से उसके विवाह की स्मृति चेतन को व्याकुल कर देती है। इस व्याकुलता से छुटकारा पाने के लिए वह शहर में निकल पड़ता है। सुबह सात–साढ़े–सात बजे से सायं तक की घटनाओं को तथा उससे सम्बन्धित चेतन पूर्व स्मृति में घटी घटनाओं का उल्लेख इस उपन्यास में किया गया है। कथानक में पूर्वा पर सम्बन्धों का अभाव है। उपन्यास में सर्वत्र चेतन की हीनता ग्रन्थि का उल्लेख है। उसे अपने साथियों के उच्च पदों पर पहुँच जाने का द्वेष है। वह सामान्य मानव का गुण होता है। इसमें लेखक की दृष्टि यथार्थवादी है। उसे सामान्यतर बातों का भी ध्यान है।

उपन्यास में चेतन की दमित एवं अतृप्त इच्छाओं से जागृत मनोग्रन्थियों को उद्‌घाटित करने के लिए अश्क जी ने ऐसे पात्र एवं वातावरण का निर्माण किया है, जिससे चेतन के उस ग्रन्थि की पुष्टि होती है। अमीचन्द, हरसरन, अमरनाथ तथा नन्दलाल आदि मित्रों सम्बन्धी उपकथानक का निर्माण मात्र चेतन की हीनता ग्रन्थि के प्रोत्साहन के लिए किया गया है। चेतन बचपन से ही ईर्ष्यालु है। चेतन अपने मित्रों की तुलना में अपने को पीछे देखकर उनसे आगे बढ़ने की सोचता है। चेतन सब पर हावी होना चाहता है, "बार–

बार उसके मन में आता था कि तत्काल लाहौर जाए, दैनिक समाचार-पत्र की नौकरी छोड़, किसी तरह एम.ए. में दाखिला ले ले, फर्स्ट डिविजन पास हो और किसी कॉलेज में प्रोफेसर हो, किताब पर किताब लिखे ... यहाँ तक कि उसकी ख्याति का सूरज अपनी किरणें देश में ही नहीं, विदेश में भी फैला दे और जब उसकी रोशनी अपने दफ्तरों के संकुचित अन्धेरे में, गुलामी की बेड़ियों में जकड़े, कुर्सियाँ तोड़ते हुए उसके अफसर मित्रों तक पहुँचे तो उन्हें अपनी हीनता का आभास मिले।"[29] लेखक ने इस ग्रन्थि का विकास अनेक रूपों में इस उपन्यास में किया है। चेतन बचपन से ही इसका शिकार है।

लेखक ने चेतन के माध्यम से एक ऐसे समाज का उद्‌घाटन करना चाहा है, जो दमित इच्छाओं के कारण मानसिक हीनता के भाव से ग्रसित है। अभावात्मक प्रवृत्ति की उनकी कैंची है। लेखक का उद्देश्य जालन्धर शहर के वातावरण में उक्त समाज की कुण्ठाओं को व्यक्त करना है।

उपन्यास में चेतन काम और अर्थ की कुण्ठाओं से ग्रस्त है, इस सन्दर्भ में उपन्यासकार का कथन है, "वह तो चाहता था कहीं ऐसी जगह जाएँ, जहाँ उसका मन नीला के विरह, अपनी पीड़ा, अमीचन्द की डिप्टी कलेक्टरी और उसके सन्दर्भ में अपनी हीनता के एहसास को एकदम भूल जाए।"[30] यही चेतन की समस्या है वह इसे ही हल करने के लिए घर से निकल पड़ता है और जालन्धर की बस्तियों, गलियों और सड़कों की गश्त लगाने में व्यस्त हो जाता है।

चेतन यौन कुण्ठाओं और बौद्धिक दृष्टि से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रतियोगात्मक भावनाओं का प्रतीक है। चेतन के सम्बन्ध में डॉ. मक्खनलाल शर्मा के विचार हैं, "चेतन यौन और अर्थ की विकृतियों का शिकार है। उसकी मुख्य समस्या अपने से संघर्ष करने की है। एक ओर उसका अहम् है और दूसरी ओर उसकी प्राकृतिक माँगे हैं। प्राकृतिक माँगों को वह झुठलाने का प्रयास करता चला जाता है, किन्तु उसका वैयक्तिक अहम् इतना विस्तृत नहीं है कि वह इस विष को पचा सके और इसका कारण यह है कि उसे अपने अहं के साथ जोड़ने में सफलता नहीं मिल रही है। उसकी वृत्ति समस्याओं के बाध्य-रूप से परिचित होकर रह जाने की है। वह अपने मित्र के रूप में उन पर हँस सकता

है। (यद्यपि यह भी है उसके लिए बहुत कठिन) किन्तु उनके भीतर के सत्य तक पहुँचने की जिज्ञासा उसमें नहीं है।"[31]

जगदीश चन्द्र माथुर ने 'शहर में घूमता आईना' के नायक चेतन के सम्बन्ध में अश्क को लिखा है, "आपका भटकता हुआ नायक, दो तरह की दृष्टियाँ फेंकता है। एक में तो वह समेट लेता है—मुखड़ों और मुखौटों को, गलियों एवं भवनों को, रंगीनियों और संघर्षों को और दूसरी, अन्धेरे में खोये उस धागे को थामती चलती है जो व्यक्ति की अनुभूतियों में अकुलाहट उदासी और चुनौती को जोड़े हुए हैं, पर जिसके जोड़ने वाले रेशों का आसानी से पता नहीं चलता।"[32] अश्क जी ने इसी सन्दर्भ में स्वीकार किया है कि, "गिरती दीवारें' उपन्यास में कैनवास (चेतन) ने यहाँ एक ऐसे आईने का रूप ले लिया है, जिस पर शहर और उसके वासियों के विभिन्न चित्र उभरते हैं, लेकिन शहर और उसके वासी भी अलग-अलग आईने हैं, जो चेतन को उघारते चलते हैं।"[33]

अश्क जी का कहना है कि उपन्यास के नायक को भले ही मैंने अपनी जिन्दगी की घटनाएँ और संघर्ष दिये हैं, लेकिन जैसाकि मैं पहले भी कह चुका हूँ, चेतन मैं नहीं हूँ। क्योंकि उपन्यास मेरी जीवनी नहीं है। मैंने चेतन को अपना व्यक्तित्व नहीं दिया। मैंने उसे अपनी बात कहने का सिर्फ माध्यम बनाया है और इसी उद्देश्य से बहुत कुछ अपना और कुछ दूसरों का देकर, उसे इस तरह गढ़ा कि जो बात मैं कहना चाहता हूँ वह कह सकूँ अथवा जो जिन्दगी में चित्रित करना चाहता हूँ वह उसके माध्यम से चित्रित हो सके।"[34] इस तरह चेतन उपन्यासकार अश्क का मनोचित्र है।

चेतन 'अश्क' जी का प्रसिद्ध पात्र है—कमजोर, दब्बू, ढुलमुल इस पर भी अपूर्ण जिजीविषा लिए हुए, परम महत्वाकांक्षी। 'गिरती दीवारें' में हमने उसके घरेलू परिवेश और दमित सेक्स की प्रक्रिया देखी, लेकिन 'शहर में घूमता आईना' में लेखक ने उसके जीवन का वह एक दिन चुना है जिसका व्यक्तित्व ऐसे आइने-सा बन गया है कि उस पर जिन्दगी का नन्हें से नन्हा ब्यौरा भी प्रतिबिम्बित हो उठा है और इस प्रक्रिया के माध्यम से लेखक ने शहर के निम्न-मध्यवर्ग की ऐसी तस्वीर आंकी है जो किसी एक शहर की न होकर सारे देश के सामाजिक वर्ग की हो गयी है।

'शहर में घूमता आईना' के अप्रधान–पात्र

अश्क ने 'शहर में घूमता आईना' में ऐसे गौण पात्रों का प्रयोग किया है जो अपने समस्त वर्गीय चरित्रों के साथ उपस्थित हुए हैं। चेतन दिन–भर जालन्धर की सड़कों पर घूमता रहता है और शाम को पत्नी की गोद में लौट आता है। इस अवधि में वह जो कुछ देखता है, अनेक लोगों से मिलता है, उनका चित्र खिंचता है।

इस प्रकार समस्त उपन्यास चरित्रों का जीवित संग्रहालय है जिसमें प्रत्येक पात्र अपनी विशेषताओं सहित उभरकर आता है। बद्दा जैसे मूर्ख, रामदिता से सनकी, चुन्नी चाचा से पागल, दीनानाथ से हकीम तो कहीं योगी जालन्धरी जैसे आडम्बरी, कर्मठ, जागरूक अमरनाथ और गोविन्द राय भी है। सेठ हरदर्शन जैसे अवसरवादी हैं तो पण्डित शादीराम जैसे तुनुक मिजाजी तथा निर्लिप्त भी। घटनाएँ कहीं–कहीं खण्डित हैं, किन्तु उस खण्डता में भी आकर्षण है। वास्तव में 'गिरती दीवारें' का ही विस्तार होने के कारण इस कृति में भी कथाकार जब भी किसी पात्र या घटना को उपस्थित करता है तो उसे अतीत से सम्बद्ध करने के लिए विशेष आयोजन करना पड़ता है। ऐसे ही कई स्थल उपन्यास में जोड़ का मजा देते हैं।

उपन्यास मूलत: व्यक्तिवादी है। कथा विस्तार और पात्रों तथा घटनाओं में उलझा हुआ 'व्यक्तिवाद' कुछ लचकीले आलोचकों को सामाजिक यथार्थवाद–सा दिखता है, यही तो घूमते हुए आईने की विशेषता है। सच में 'शहर में घूमता आईना' निम्न–मध्यवर्ग की बेनकाब सामाजिक जिन्दगी का यथार्थ चित्रण है।

एक नन्हीं किन्दील

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में पात्रों का ऐसा वैविध्य है जो उपन्यासकार के मानवीय शील की पहचान का द्योतक है। इसमें अश्क जी को एक ब्रह्मा की हैसियत प्राप्त है जो पात्रों की विविधता एवं विशिष्टता बनाए रखता है।

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास रूप में वर्णित निम्न–मध्यवर्ग के एक युवक, चेतन की आत्मकथा का तीसरा भाग है, जो पूर्णत: सामाजिक यथार्थ का बोध कराता है। इस वृहदाकार उपन्यास की सफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इसका केन्द्रीय पात्र जिसके चारों ओर जीवन की घटनाएँ घूमती हैं, कहीं भी अस्वाभाविक नहीं लगता। अपनी

सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ वह एक विश्वसनीय पात्र है। जीवन में सामान्य रूप से जिस प्रकार के व्यक्तियों से हमारी भेंट होती है, वह वैसा ही है, लेखक ने कहीं भी उसे असाधारण बनाने का प्रयत्न नहीं किया।

चेतन

चेतन 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है जिसमें वह एक ओर लाहौर के पत्रकार तथा साहित्यिक जीवन से गुजरता है और दूसरी ओर अपने विवाहित जीवन की पेचीदगियों से। उपन्यास में चेतन पेट और सेक्स के स्तर से उठकर अहं की अनुभूतियों से जूझने लगता है। इस विशाल उपन्यास में चेतन अपने जीवन तथा परिवेश से निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क में आता गया है। शिमला से लौटने के बाद उसे मकान की समस्या घेरती है। नौकरी की समस्या उसे अलग परेशान करती है। लाहौर की पत्रकारिता जगत में उसे अलग-अलग तरह के लोगों से सामना करना पड़ता है।

चेतन एक संघर्षशील व्यक्ति है। जीवन के संघर्ष में व्यक्ति प्राय: टूट जाते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ उसे दबा नहीं पातीं। उनके चैलेन्ज को उसने सदैव स्वीकार किया है। संघर्षशील व्यक्ति प्राय: अपने में सिमटकर स्वार्थी और कठोर स्वभाव के हो जाते हैं। इसके विपरीत चेतन अपने चारों ओर के सम्बन्धों के प्रति अत्यधिक सजग है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने भाई, भाभी, सास, ससुर, पत्नी सभी के लिए चिन्तित होकर उनके जीवन की कठिनाइयों को दूर करने में सक्रिय सहयोग प्रदान करता है। संघर्ष और त्याग का यह संयोग उसके चरित्र में जगह-जगह चमक उत्पन्न करता है। उसकी पत्नी चन्दा, जो उस जैसी बौद्धिक और कुशल नहीं है, अपनी सरलता, निस्पृह सेवा-भावना, निश्छलता और मूलभूत भलमनसाहत के कारण पाठकों के ह्रदय को जीत लेती है।

चेतन एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक संघ से जूझता नया आदमी, जो अपनी परम्पराओं और दमघोंटू परिवेश से उबरने की कोशिश में दो कदम आगे बढ़ता है तो एक कदम पीछे हटने के लिए भी मजबूर किया जाता है, जो इतना भाव प्रवण है कि अपने बड़े भाई की दाँतों की डाक्टरी जमाने के लिए अपनी सरल ह्रदया पत्नी (चन्दा) के मायके से मिले जेवर तक बेच देता है। वास्तव में, चेतन मानवता की सर्वोच्च अहंता का प्रतीक है।

मानवीय व्यक्तित्व का एक नायाब नमूना, जिसे अश्क जी ने अनुभव और यथार्थ की जिन्दगी से 'प्रामाणिक' बना कर पेश किया है।

इस उपन्यास में घटनाओं का केन्द्र लाहौर है। अत: वहाँ के शैक्षिक, अखबारी, राजनीतिक और साहित्यिक जीवन का सम्पूर्ण वर्णन पूरे विस्तार के साथ पाया जाता है। चेतन व्यवसाय के रूप में पत्रकारिता को अपनाता है और प्रेरणा के रूप में साहित्य को। क्योंकि वह अपने जीवन में उर्दू से हिन्दी में आता है, अत: पत्रकारिता और साहित्य जगत दोनों का बहुत गहरा अनुभव उसे है और इसी से दोनों क्षेत्रों के अनेक व्यक्तियों के बड़े ही रोचक संस्मरण इसमें पाये जाते हैं। इसके पात्रों में सम्पादक, प्रकाशक, पत्रकार, सेठ, शायर, कवि, कहानीकार, वैद्य, अध्यापक, विद्यार्थी, डॉक्टर और गुण्डे सभी मिलते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द के समान अश्क जी के कथानक की रेखाएँ भी समाज के अनेक अंशों को छूती हुई चलती है।

चेतन का जीवन संघर्षों के बीच से गुजरता है। भाई-भाभी की परेशानियों को झेल ही रहा था कि सास-ससुर की परेशानियाँ आ जाती हैं। ससुर पागल है। उन्हें लाहौर के पागलखाने में भर्ती करवाया गया है। सास-ससुर को लेकर उसे अनेक शारीरिक और मानसिक कष्ट होते हैं। उसकी सास, उसके साथ रहना नहीं चाहती, क्योंकि सामाजिक बन्धन है। वह एक सेठ के यहाँ चौके-बर्तन का काम करती है। उसकी डायरी का यह अंश उसकी स्थिति का सही रूप उभारता है, "मैं क्या करूँ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता, स्थिति वही है, जहाँ मोहिनी से मुलाकात की शाम थी। मेरे श्वसुर धुत्त पागल हैं, मेरी सास नजदीक ही सेठ वीरभान के घर चौका-बर्तन कर सात रुपये महीना पा रही है और मैं स्टेशन मास्टर पण्डित शादीराम का बेटा ही नहीं, लाहौर का प्रसिद्ध जर्नलिस्ट और अफ़साना-निगार हूँ। मेरी सास कभी मेरे यहाँ नहीं आयेगी और न ही मैं इस सूरते हाल से समझौता कर सकूँगा। मैं क्या करूँ। मुहल्ला छोड़ दूँ? शहर छोड़ दूँ? मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?"[35] इन सब बातों से उसके दिमाग में तूफान मचा था और उसे शांत करने का कोई उपाय उसे सूझ नहीं पा रहा था।

इस उपन्यास का नायक चेतन एक ऐसा व्यक्ति है जो जीवन में प्यार करता है और अपने पथ की बाधाओं को दूर करने के लिए कठोर संघर्ष करता है। वह न केवल अपने

जीवन को बल्कि उन लोगों के जीवन को भी, जिससे वह आत्मीयता का अनुभव करता है, जीने योग्य बनाता है। जीवन के पथ में उसे अनेक प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। उनमें से कुछ ने उसके मन पर गहरा प्रभाव छोड़ा है, कुछ ने हल्का। कोई भी व्यक्ति जो उसके जीवन को छूता है, उसके प्रति एक प्रकार की तीव्र प्रतिक्रिया वह व्यक्त करता है। इसमें उसके सम्बन्धी भी हैं, हितैषी भी और शत्रु भी। इस परिवेश के बीच ही उसका जीवन और व्यक्तित्व विकसित होता है। वह जो कुछ है, अपने परिवेश के साथ है।

उपन्यास के नायक चेतन का जन्म एक ऐसे परिवार और परिस्थितियों के बीच हुआ है कि वह अभाव और कष्ट का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। उसके अहं को अनेक कारणों से बार-बार ठेस लगती है। उपन्यास में उसका जीवन कई खण्डों में विभाजित है—घर का जीवन, स्कूल का जीवन, पत्रकारिता का जीवन, एक लेखक का जीवन और सबके ऊपर अपने स्वप्नों का जीवन। कहीं भी तो कुछ ठीक नहीं है। इसी से हम उसे सभी मोर्चों पर कठिन संघर्ष करते और धीरे-धीरे सफल होते पाते हैं।

उपन्यास का नायक चेतन एक निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक युवक है जो अपने मन में महत्वाकांक्षाएँ पालता है। उसकी सास जिस सेठ के यहाँ काम करती है, उसकी बेटी कृष्णा की शादी अमीचन्द से होने वाली है जिससे उसकी कभी नहीं पटी या अमीचन्द का घमण्ड चेतन के अहं को कभी स्वीकार नहीं हुआ। अमीचन्द डिप्टी कलेक्टर हो गया है। कृष्णा डिप्टी कलेक्टर की पत्नी होगी तो चन्दा को भी डिप्टी कलेक्टरानी होना चाहिए, यह बाँध उसे कचोटता रहता है। "वह वास्तव में जरूरत से ज्यादा हस्सास है, उसने सोचा जरा-जरा-सी बात पर उसका दिमाग तन जाता है और चैन आराम-हराम हो जाता है। उसने पिछली रात ही फैसला किया है कि वह कानून पास करके सबजजी कम्पीटिशन में बैठेगा। साल भर तो उसे किसी-न-किसी तरह नौकरी करके दाखिले का प्रबन्ध कर लेना है। वह बेकार ही इन लोगों की बातों को महत्त्व देता है। उसे क्या जिन्दगी भर इस वाहियात वातावरण में रहना पड़ेगा? एक बार वह इससे निकला तो पलट कर इधर झाँकेगा भी नहीं। वह सबजज होगा, सेशन जज होगा और कौन जाने हाइकोर्ट का जज हो जाए।"[36]

चेतन जीवन में बड़े-बड़े खतरे उठाने में तनिक भी देर नहीं करता। वह किसी के द्वारा किया गया थोड़ा अपमान भी सहन नहीं कर पाता। तभी वह लगी नौकरी छोड़ने में

तनिक भी देर नहीं करता जबकि सामने अनिश्चित भविष्य हो, परिवार की आर्थिक स्थिति जर्जर हो, लेकिन खतरे में जीने का नाम ही तो चेतन है।

उपन्यासकार 'अश्क' जी ने 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में चेतन के माध्यम से एक निम्न-मध्यवर्गीय समाज का खाका खींचा है जिसमें रहते हुए व्यक्ति को कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

वैद्य कविराज

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में कविराज रामदास वैद्य एक व्यावहारिक एवं काईयाँ पात्र हैं। वह अपने उद्देश्यों से किसी भी आवश्यकता से अधिक दु:खी व्यक्ति को अपने जाल में फाँसता है तथा उसका शोषण के समान उपभोग करता है। उसकी वाणी में एक छद्म सौजन्य है जो समय पर बहुत ढकने के बावजूद स्पष्ट हो जाता है। शिमला प्रवास के दौरान जब चेतन ने उससे भाई को भेजने के लिए पैसे माँगे थे तो उसने बहाने बनाये थे कि, "देखो अजीज! यदि तुम चाहते हो तो उन्हें लिख दो कि भाईसाहब, अब मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकता और यदि आप नहीं लिख सकते तो मैं लिख देता हूँ।"[37] इस प्रकार के बेढंगे उपदेश से कविराज का स्वार्थी व कपट का घिनौना रूप प्रकट होता है।

शिमला से वापस आने पर चेतन जब किसी काम के सिलसिले में पुन: कविराज से मिलता है तो वे उपदेशों की झड़ी लगा देते हैं और अपने निहित स्वार्थ पर उतर आते हैं, "इतनी ही बात है तो अजीज, तुम कल से दो घण्टों के लिए मेरे यहाँ आ जाया करो, जब तक तुम्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती, मैं तुम्हें बीस रुपया महीना दे दिया करूँगा, अखबार के दफ्तर में दिन-रात खून जलाकर सेहत तबाह करने की सलाह मैं नहीं देता।"[38] चेतन कवि रामदास के यहाँ काम भी करने लगता है। "लेकिन इन थोड़े ही दिनों में कविराज जी को महसूस होने लगा था कि चेतन को दो घण्टों में जितना काम करना चाहिए, उतना वह कर नहीं रहा—याने दस-ग्यारह आने रोज पाने पर उसे वैद्यजी को जितना काम देना चाहिए था—वह नहीं दे रहा और हँसते-हँसते उसने कहा था, भई अजीज, राजकुमार बड़ी जिद कर रहा था कि मुझे चेतन भाई से अंग्रेजी में निबन्ध लिखना सीखना है, वे बहुत अच्छा सिखाते हैं। मैंने उससे कहा था कि बेटा, तुम उनके घर जाकर

एकाध घण्टा पढ़ लिया करना, यहाँ तो उन्हें टाईम कम मिलता है।"[39] इसमें कविराज का उपयोगितावादी ही नहीं, गलीज चरित्र स्पष्ट होता है।

कविराज चालाक, निहित स्वार्थी व एक काईयाँ व्यक्ति है। उसने चेतन को आश्वासन दे रखा था कि वह उसका कहानी-संग्रह छपवा देगा लेकिन कविराज का जो यथार्थ रूप उसने शिमला में तथा बाद में लाहौर आकर देखा था, उसने उसके अन्तर में किसी पवित्र चीज को हमेशा-हमेशा के लिए तोड़ दिया था। "उसका सहज विश्वासी मन उनके प्रति अनायास शंका से भर उठा था। शंका से और क्रोध से उसने तय किया था कि वह अपना कथा संग्रह छपवाने में उनसे किसी तरह की सहायता नहीं लेगा। उसने क्रोध के उस आवेग में वह समर्पण भी फाड़ दिया था जो आरम्भिक श्रद्धा के आवेश में उसने लिखा था।"[40] ये सब कविराज के घोर स्वार्थी व्यक्तित्व को उजागर करते हैं।

कविराज नि:सन्देह 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास का छोटा किन्तु प्रतीक चरित्र है, जो निम्न-मध्यवर्गीय समाज में निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए उसका शोषण कर रहा है।

मिर्जा नईम बेग चगताई

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में मिर्जा नईम बेग चगताई का दिलचस्प चरित्र उजागर हुआ है। जिन्हें पण्डित 'रत्न' मजाक में (चहीम बेग नगताई) कहा करते थे। "वे नायक चेतन को मुसलमानी तहजीब भी सिखलाते हैं, उर्दू प्रयोग की सूझ भी देते हैं।"[41]

मिर्जा का व्यक्तित्व अपने ढंग का और विशिष्ट है। चेतन की दृष्टि में "लम्बा-छरहरा कद, नुकीला चेहरा, पचास-पचपन की उम्र, कहीं छँटी नुकीली खिचड़ी दाढ़ी, कद्रे मोटी, पर चेहरे पर सजती नाक, बड़ी-बड़ी एहसास और हैरतभरी आँखें, मिर्जा जवानी में खासे सुन्दर रहे होंगे। इधर उम्र और संघर्षों के बोझ से वे किंचित झुक कर चलने लगे थे जिससे उनकी गुद्दी के नीचे, कन्धों के बीच एक छोटा-सा कोहान बन जाता था और मिर्जा कुछ कम लम्बे लगते ...। वह जब-जब उनसे मिलता था, उन्हें ऐसे ही देखने लगता था, क्योंकि घोर गरीबी के आवजूद उनके चेहरे से कुछ विचित्र-सा आभिजात्य झलकता था। उनके आचार-व्यवहार में सुरुचि, सम्पन्नता और बोलचाल में नजाकत और नफासत थी। इस सबके बावजूद उनकी तबीयत में एक अनजाना फक्कड़पना

था और यह दिलचस्प बात है कि उस तमाम फक्कड़पने के साथ ही उनके यहाँ कुछ अजीब-सी गम्भीरता थी।"[42] इसमें मिर्जा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उभर जाता है।

उपन्यास में मिर्जा गरीबी और स्वाभिमान को एक साथ जीते हैं। "पैसे के लिए 'छद्म' नाम से कविताएँ लिखते हैं और पारिश्रमिक न मिलने की स्थिति में खजांची सम्पादक और मैनेजिंग डायरेक्टर को बेतहाशा मल्लाहियाँ सुनाने में भी नहीं हिचकते हैं।"[43] "उनका एक रूप एफ.सी. कॉलेज के मुशायरे में देखने को मिलता है, जिसमें उनका खुलापन देखने में आता है।"[44] मिर्जा मौसी जीव है। महफ़िलों में उनका व्यक्तित्व अधिक निखरता है। वे नासिख और आतिश जैसे शायरों के संस्मरण सुनाने में विशेष दिलचस्पी रखते हैं। उनके शेरों को उद्धृत करते हुए वे संस्मरणों को अधिक दिलचस्प बना डालने में माहिर हैं।"[45]

मिर्जा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। कहना तो यह चाहिए कि बहुत ही खराब है। उनकी आर्थिक स्थिति का पता इससे लगता है, "शाम का वक्त है, चेतन दफ्तर से आता हुआ उनके यहाँ जा पहुँचता है। मिर्जा टाट की बनी चार दीवारी में टाट के ही पर्दे के दरवाजे में उसे अन्दर आने को कहते हैं। अन्दर जाकर चेतन देखता है कि पक्की ईंटों की दो पुरानी कोठरियां हैं। उनके सामने बाँसों और टाटों की मदद से थोड़ी जगह घेर कर दो अलग-अलग अहाते बना लिए गये हैं। इधर के अहाते और कोठरी में मिर्जा निवास करते हैं, दूसरे में कोई दूसरा परिवार रहता है। अन्दर कोठरी में से कपड़े की एक पुरानी ईजी चेयर निकाल कर मिर्जा बाहर अहाते में बिछा देते हैं। स्वयं वे जरा-सी लोहे की अंगीठी सुलगा कर शाम के लिए अलमोनियम की छोटी-सी पतली-सी सालन पकाने का प्रबन्ध करते हैं। कुछ अजीब-सी, गोबर-मूत्र, बकरियों की मेंगनियों, कीचड़-सालन और न जाने किस-किस की बू वातावरण में बसी हुई है। लेकिन चंगड़ मुहल्ले में रहने से चेतन के नथूने इस मिली-जुली बू के अभ्यस्त हैं। चेतन को मिर्जा की गरीबी को देखकर अफसोस होता है।"[46]

उपन्यासकार अश्क ने मिर्जा के माध्यम से निम्न-मध्यवर्गीय समाज में किस तरह लोग घोर गरीबी के वातावरण में रह रहे हैं या पल रहे हैं, यथार्थ चित्रण किया है। 'अश्क' चेतन के माध्यम से सोचने पर मजबूर होता है कि, "उसे हैरत होती है कि हिन्दुस्तान का

एक अजीम (अजीम न भी सही), शायर, जिसकी उम्र शेर कहते गुजर गयी, इस कोठरी और गन्दे अहाते में रहने को विवश है। क्या जब वह इस उम्र को पहुँचेगा, वह भी उन्हीं तरह चंगड़ मुहल्ले की गजालत में सड़ रहा होगा।"[47]

कवि चातक

कवि चातक एक दिखावटी बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति है। नायक चेतन उन्हें पहली बार वेदालंकार जी के यहाँ होने वाली संगोष्ठी में देखता है। उस प्रथम दर्शन का चित्र चेतन इस प्रकार उपस्थित करता है, "तभी दरवाजे से दूध धुले खादी के धोती-कुर्ते में सुशोभित गोल-मटोल चेहरे वाले मंझले कद के, नपे-तुले, न मोटे एक महानुभाव प्रकट हुए और फीकी-सी मुस्कान से उन्होंने अपने देर से आने की अस्फुट शब्दों में क्षमा माँगी पर उनकी आवाज आइए चातक जी! आइए कवि जी! में गुम हो गयी।"[48]

चातक जी अपने गीतों की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वे एक दिन चेतन को अपनी 'बिरहन की बसन्त' कविता सुनाते हैं। "गीत खासा लम्बा, भावुकता-भरा और बचकाना है, इसी तरह वे कई कविताएँ सुना डालते हैं। चातक जी नारीधर्मी हैं तभी चेतन को कवि चातक जी की प्रोत्साहन भरी बातें और उनके अत्यन्त सुकोमल, लगभग बेजान से बे-हड्डी के से लिज-लिजे हाथ का संस्पर्श।"[49] याद आता है। अजीब बात है कि चातक जी के सन्दर्भ में उनके हाथ की अपार कोमलता, हड्डी-विहीन सा लिजलिजापन ही उसके दिमाग में आता है। जब तक वे उसके हाथ को अपने हाथ में लिए रहे थे, उसे उनके हाथ की उस निर्जीवता का वैसा एहसास नहीं हुआ था। पर जब माहीराम स्ट्रीट पर खड़े होकर उसने उनसे हाथ मिलाया था तो उसे लगा था जैसे एक बेजान मांस का लोथड़ा-सा उसके हाथ में आ गया है।"[50] यही कवि चातक जी का व्यक्तित्व है।

चातक जी फूहड़ किस्म के व्यक्ति हैं। जब वे चेतन से कहते हैं, "खाना गोल करोगे तो क्या लिखोगे। भूखे भजन न होय गोपाला। भोजन और चोदन इन्हीं दो पर दुनिया का सारा कारोबार निर्भर है। भोजन ही नहीं करोगे तो लिखोगे क्या? संसार की महान् रचनाएँ पेट और सेक्स की भूख ही से नि:सृत हुई है।"[51] इस कथन से कवि चातक के व्यक्तित्व का घटियापन स्पष्ट हो जाता है जो निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक सरोकारों के लिए उचित नहीं है। उपन्यास में कवि चातक जी को विश्व-साहित्य का अध्ययन ही नहीं

ज्ञान भी नहीं के बराबर है। वे केवल मैट्रिक पास थे। उन्होंने टॉलस्टॉय का नाम तो सुना था, पर उनकी कोई रचना नहीं पढ़ी थी। अपने इस अभाव को छिपाने के लिए वे कहते हैं, "हम भाई टॉलस्टॉय-फॉलस्टॉय नहीं पढ़ते, माथे पर लट की लट को दायें हाथ से पीछे हटाते हुए कवि ने कहा, "लोग विदेशी साहित्य पढ़ कर उसका अनुवाद कर देते हैं और समझते हैं कि बड़ा तीर मार रहे हैं। हमारे गुरु ने हमें यह नहीं सिखाया। हम जो महसूस करते हैं, वही लिखते हैं, इसलिए मौलिक लिखते हैं। हमारी कविताएँ स्वानुभूति से जन्म लेती हैं, इसलिए वे किसी दूसरे की नहीं, हमारी और केवल हमारी हैं।"[52]

चातक जी नारी पर अधिक आग्रही दृष्टि रखते हैं। इसके कारणों का पता चेतन को उस समय लगा जब उसने कवि-पत्नी को देखा, "जो लम्बी-तगड़ी होने के बावजूद नकिया कर कुछ अजीब-सी लटकती आवाज में बोलती थी, जिसके श्यामवर्णा, अनगढ़ और असुन्दर सरोप को देखकर चेतन पर कवि के 'चातक मन' का भेद अनायास खुल गया था।"[53]

उपन्यास में कवि चातक को अपनी कविताएँ सुनाने का इतना आग्रह है कि वे सामने वाले की कोई परवाह नहीं करते। चातक जी चेतन को भोजन कराकर वे उसे अपनी कविताएँ सुनाने लगते हैं जिससे वह बेहद ऊब जाता है। कविताएँ सुनाते हुए वे उस पर अपनी टिप्पणी भी करते जाते हैं। उनकी कविताओं में गुणवान, तूफान, बाण, अम्लान, द्युतिमान, कल्याण, सुजान, महानद अन्तर्धान आदि सारे तुक रहते हैं। उनकी कविताओं की भाषा सीधी-सरल तो होती है, लेकिन उनका काव्य पाठक के मन को कहीं से भी स्पर्श नहीं करता।

कवि चातक को कविता लिखने की प्रेरणा अपनी ससुराल में एक सुन्दरी को देखकर हुई थी। कवि को अपने बारे में ढेर सारी गलत फहमियाँ हैं। वे स्वयं कहते हैं, लॉर्ड बायरन के बारे में प्रसिद्ध है कि औरतें उस पर बेतरह मरती थी। "कवि ने कहा हम न तो लॉर्ड हैं, न एरिस्टोक्रेट और न हमारे पास उतनी धन सम्पदा है, पर हमारे सभी मित्र हमें हिन्दी का बायरन कहते हैं।"[54]

चातक के चरित्र नि:सन्देह आज भी निम्न-मध्यवर्गीय समाज में हर कहीं जीवित है।

कश्मीरी लाल 'दाग'

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में कश्मीरी लाल 'दाग' नामक पात्र हैं, जिनके व्यक्तित्व से उपन्यास का नायक चेतन भी बेहद प्रभावित रहा है। कश्मीरी लाल शायर थे। इसका प्रभाव भी चेतन पर था। "कश्मीरी लाल 'दाग' उनके मुहल्ले के ही समान (ब्राह्मण) युवक थे। वे चेतन के बड़े भाई से दो कक्षा आगे पढ़ते थे और चेतन से चार। उम्र में भी वे चेतन से चार-पाँच वर्ष बड़े थे। नजाकत और नफासत पसन्द। नोंकदार नाजुक जूता, लट्ठे का उदुंग पायजामा, गबरून की धारीदार कमीज, चारखाना मोटी खादी का कोट और लटकेदार पगड़ी—रंग गोरा, शरीर लम्बा और छरहरा, होठ पतले, आँखों में अजीब-सी चमक और होठों पर उदास मुस्कान।"[55]

"कश्मीरी लाल मैट्रिक पास कर चुके थे। घोर मन्दी का जमाना था। नौकरी उनकी कहीं लगी न थी। भावुक और भावप्रवण थे। बेकारी और इश्क का धुन उन्हें अन्दर-ही-अन्दर खाये जाता था। हल्का-हल्का ज्वर भी रहने लगा था।"[56] वे चेतन के पिता के साथ दो महीने रहे। उन्हें टी.बी. हो गई थी। उनका रंग कालिमा लिए हुए पीला-पीला था। होठ सूखे और कल्स धँसे हुए थे। आँखों में चमक थी और होठों पर वही उदास-उदास मुस्कान।

कश्मीरी लाल अच्छे कवि और गायक थे। अपनी कविता वे धीमे स्वर में बड़ी दर्द-भरी लय में गाते थे और उनका स्वर बहुत अच्छा था। उनके इन गुणों से चेतन पंजाबी से उर्दू में शेर कहने लगा। कश्मीरी लाल का जीवन और दृष्टिकोण बड़ा ही काव्यात्मक था। वे शांत स्वभाव के अपने में खोये रहने वाले व्यक्ति थे। उनकी कविता के पीछे उनका असफल प्रेम भी था। उनकी सगाई एक सुन्दर लड़की से हुई थी, लेकिन नौकरी न मिलने के कारण उनकी सगाई टूट गयी, जिसका उनके मन पर बहुत गहरा आघात पहुँचा। फिर उन्होंने कहीं और कभी शादी नहीं की। उनके शेरों में यही बात और यही गम किसी-न-किसी रूप में आ जाता है। उनका एक प्रिय मिसरा था—

"रीत है इश्क के दरिया की अनौखी कैसी
डूबते हैं वही जो पार उतर जाते हैं।" [57]

यह शेर अच्छा न होते हुए भी कश्मीरी लाल को अपनी मानसिक स्थितियों का चित्रण लगता है। चेतन को बराबर लगता था कि यही शेर उन्हें खा गया। "वे उन धान-

पान युवकों में से थे जिनकी जीवन–शक्ति सदा किसी सहारे की मोहताज रहती है। जिनमें पुरुषोचित दृढ़ता, इच्छा शक्ति और मुसीबतों और असफलताओं को झेल जाने की चट्टानी क्षमता नहीं होती, बल्कि सहारे की नारी–सुलभ आकांक्षा होती है। कश्मीरी लाल बड़े मेधावी, जवान और भावुक युवक थे। यदि उन्हें अपने पहले प्रेम में असफलता न मिलती तो वे निश्चय ही उस स्नेहमयी की छाया में नयी स्फूर्ति पाकर जीवन में अपना मार्ग ढूँढ निकालते। लेकिन जवानी के प्रभाव में जब नयी लय सपने देखती है, रोमानी इश्क करती है और पंजाब की हर युवती हीर और हर युवक रांझा बन जाता है, उस पहले प्रेम की असफलता कश्मीरी लाल को ले डूबी।"[58]

उपन्यास में मानो कश्मीरी लाल को जिन्दगी से कोई लगाव ही नहीं रह गया था। उनकी जिजीविषा कर गयी थी। वे दुसुआ से स्वस्थ होकर लौटे थे, मगर जालन्धर लौटने के बाद फिर बीमार रहने लगे थे। वे बिस्तर से चिपक गये थे। हड्डियों का ढाँचा भर रह गये थे। इसी स्थिति में कश्मीरी लाल जैसे सम्भावना युवक का अन्त हो गया।

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास के गौण पात्र

'अश्क' जी ने 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास के बारहवें अध्याय में अपने नोटबुक में कई चरित्रों का उल्लेख किया है जो निम्न–मध्यवर्गीय समाज के चलते–फिरते चरित्र–निरूपण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। चौधरी ईश्वरदास, प्रभुदयाल मुस्त, शत्रुघन लाल तीर, जीवन लाल कपूर, पण्डित टेकाराम 'शाही', आजाद लाल, शिवप्रसाद जख्मी, रामचन्द्र यानी भूतना (शिक्षक जाति के प्रतीक), पण्डित रत्न।

बाँधों न नाव इस ठांव (दो भाग) (1974)

'बाँधों न नाव इस ठांव' अश्क जी का एक ऐसा विशाल उपन्यास है जो दो भागों में विभाजित है। इसमें निम्न–मध्यवर्गीय समाज के चरित्रों का अधिक विधान हुआ है। इन वर्गों का खोखलापन इस उपन्यास में देखते ही बनता है। इसमें उपन्यासकार एक ऐसे रचना संसार की यात्रा पर ले चलता है जो परिचित होते हुए भी विस्मय–विमुग्ध करता है।

इस उपन्यास में स्वतन्त्रता पूर्व के लाहौर की जिन्दगी के विभिन्न रंग–रूपों तथा महत्वाकांक्षी युवक चेतन के संघर्षों को सफलतापूर्वक चित्रित कर दिया है। इस विशाल उपन्यास की कथाधारा के केन्द्र में चेतन नामक युवक है जिसके अपने निजी सुख–दुःख

हैं, जिसकी जिन्दगी के अपने संघर्ष हैं तथा लाहौर की जिन्दगी की साहित्यिक तथा सामाजिक चेतना है जिसका चेतन एक अविभाज्य हिस्सा है।

चेतन

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास का नायक चेतन एक निम्न-मध्य वर्ग का सामाजिक प्रतिनिधि है। इसका व्यक्तित्व आर्थिक तथा सेक्स सम्बन्धी कुण्ठाओं से निर्मित है। यह भाव-प्रवण, तुनुक मिजाज और मेहनती युवक है। अपने पिता की बातें इसे हमेशा शक्ति देती रहती है। इस उपन्यास में इसका विचार काफी प्रगतिशील हो गया है। इसमें वह अपार महत्त्वाकांक्षा है। यह सबजज होना चाहता है, मगर पारिवारिक जिम्मेदारियों और आर्थिक तंगी के कारण इसे ट्यूशन करना पड़ता है लेकिन समाज की आर्थिक बनावट के कारण इसको कई तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं। समाज के चालाक लोग इसका शोषण करते हैं। शोषकों की चालाकी को समझकर भी वह कुछ कर पाने में अपने को असमर्थ पाता है।

स्वच्छ जीवन के लिए चेतन अपने परिवेश से संघर्ष करता है और यही संघर्ष इसे लाला हाकिमचन्द के यहाँ ला पटकता है। वहाँ इसकी भेंट एक किशोर वय की भावुक, मनबड़ी लड़की से होती है। इस लड़की चन्द्रा को पढ़ाते समय चेतन की यौवन कुण्ठा उभरकर सामने आती है। ऐसी परिस्थिति में वह अपने को बहुत कमजोर समझने लग जाता है जिसके फलस्वरूप इसे मानसिक द्वन्द्व से गुजरना पड़ता है। अपनी निष्ठा के कारण यह छोटी-छोटी बातों को भी काफी गम्भीरता से लेता है।

चेतन में आत्मविश्वास तथा अहं की भावना निहित है। नीलामकारों के द्वारा दिये गये दो रुपये मन से इसे स्वीकार नहीं है। इन रुपयों के सदुयोग के लिए यह व्यग्र हो उठता है। इसी व्यग्रता में इसे रूमाल बेचने की बात सूझती है। चेतन का रूमाल बेचना इसके आत्मविश्वास का प्रतीक है। यहाँ चेतन के मन में ग्लानि अथवा हीनता की भावना नहीं दिखायी देती है। यह चेतन के चरित्र का एक सशक्त पहलू है। एक आलोचक के अनुसार सारे उपन्यास में अगर किसी घटना ने मुझे प्रभावित किया है तो वह यही है कि "चेतन का रूमाल बेचना मुझे गर्व की बात लगी और इसी कारण वह आगे के सारे उपन्यास में मेरा

मित्र बनकर चलता है। वह गिरा नहीं, झुका नहीं, रूमाल बेचे और ईमानदारी से कमाई की। इसी बात ने उसे मेरा मित्र बना दिया।"[59]

चेतन भक्ति में विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि भक्ति की कुछ अनिवार्य शर्तें हैं, "तर्क को छोड़कर, बुद्धि को छोड़कर, अहं को छोड़कर परम आस्था से भगवान् की शरण में जाना। वह इनमें से किसी को भी छोड़ नहीं पाता था। जब 'भगवान्' ने उसे दिमाग दिया है और वह कुन्द नहीं है, निरन्तर सोचता है, प्रश्न उठता है तो वह क्यों उससे काम न ले? क्यों उसका साथ छोड़े।"[60]

"उपन्यास में चेतन अहंवादी है, अत: इसे गवारा नहीं कि सोचना छोड़ दे। यह तर्क को छोड़ नहीं सकता है, क्योंकि यह एक लेखक है और कर्म को मानता है, किस्मत को नहीं मानता है। चेतन के इस विचार को देखकर इसे नास्तिक कहा जा सकता है, लेकिन साहित्य के अनुसार ... मैं ऐसा नहीं समझता। सवाल किसी चीज को मानने से है। चेतन कर्म को मानता है, वह नास्तिक कैसे?"[61]

मनुष्य होने के कारण चेतन में भी गुण और अवगुणों का मिश्रण स्वाभाविक है। अपनी सोसायटी के लिए चेतन 'समाज' के सम्पादक 'तीर' चौधरी ईश्वरदास, वीर भारत के जख्मी साहब, आजाद लाला, पण्डित शाही और वैद्य कविराज रामदास से भेंट करता है। यह एक संगठनकर्त्ता भी है। सोसायटी की स्थापना में इसका श्रम दर्शनीय परन्तु सोसायटी के उद्घाटन के समय ही उसके भविष्य को लेकर निराश हो जाता है। इस निराशा के कारण वह क्षोभ और ग्लानि से भर उठता है। चेतन स्वयं अपनी दृष्टि में, "झूठ और खुशामद, छल और कपट से मुझे सख्त नफरत है। मुझे आता सब है, मुझ से होता नहीं, मैं बहुत पिनकी हूँ और मेरे स्वभाव के इस दोष ने मुझे सोसायटी के सिलसिले में असफल बना दिया है।"[62]

'बाँधों न नाव इस ठांव' उपन्यास में नायक चेतन अपने अनुभवों से सीखना चाहता है, इसलिए अपने बड़े भाई के रोकने पर भी चन्द्रा को पढ़ाने के लिए शिमला चला जाता है, जबकि जानता है कि वह अपने कई शिक्षकों को पिटवा चुकी है। इसके पीछे चेतन की स्वानुभव की चेतना है। चेतन के व्यक्तित्व का एक भाग नितान्त कोमल और

भाव–प्रवण है। मगर संघर्षों ने इस कोमल भाग को इस्पात–सा कठोर और पत्थर–सा सख्त बना दिया है।

उपन्यास में चेतन निम्न–मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला अत्यन्त साधारण युवक है। अश्क जी की यह खूबी है कि उन्होंने चेतन के साधारण व्यक्तित्व में असाधारण कथा के सूत्र खोजे हैं तथा उनकी जिन्दगी के माध्यम से लाहौर के जीवन का विशाल कैनवास प्रस्तुत कर दिया है।

लाला हाकिम चन्द

उपन्यास में लाला हाकिम चन्द का रूप एक शोषक के रूप में चित्रित हुआ है। ये आर्य समाजी रुझान के होने के साथ ही जालिम प्रकृति और कठोर 'डिसिप्लेनेरियन' है। ये अपने दफ्तर में जूनियर क्लर्क के रूप में भर्ती होकर इस वर्ष में ही अपने सीनियरों को फलांगते हुए सुपरिटेन्डेन्ट बन गये। इनका शरीर खत्म हो गया परन्तु इनकी निष्ठा और तत्परता में कमी नहीं आयी, अपनी इस सफलता के कारण इनमें कुछ दर्प मिला आत्म–विश्वास आ गया और अपनी बात को सर्वोपरि मानने की भावना भी। सुपरिटेन्डेन्ट हो जाने के बाद भी इनकी क्लर्काना बुद्धि नहीं गयी थी। अपने को कल्चर्ड दिखाने के फेर में अपना आचरण ठीक इसके विपरीत करने लगते हैं। चेतन लाला हाकिम चन्द के बारे में सोचता है, "फिर अगर लड़की पास हो गयी तो मेरे दो सौ चालीस तो दे ही देगा, इसकी क्या गारण्टी है, है तो आखिर तू क्लर्क ही चाहे सुपरिटेन्डेन्ट बना घूमता है। जब तूने चन्दे के पाँच रुपये देने से इन्कार कर दिया था और इसके बावजूद दो साथियों को लेकर एलफिन्स्टन पहुँच गया था तभी मुझे खबरदार हो जाना चाहिए था। लेकिन मैं तेरे सूट–बूट के रोब में आ गया।"[63]

लाला हाकिम चन्द क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति हैं। ये गुस्से में अत्यन्त क्रूर हो जाते हैं और गलती करने वालों की अच्छी–खासी पिटाई भी कर देते हैं। चाहे वह इनकी पत्नी हो या जवान लड़की चन्द्रा। इस समय इन्हें अपने कल्चर्ड होने का भी ध्यान नहीं रह पाता है। मगर क्रोध शान्त होने पर इन्हें अपने किये पर घोर पश्चाताप होता है। ये ग्लानि से भर उठते हैं। कुण्ठित एवं विरोधी ध्रुवान्तों के व्यक्ति के रूप में इनका शील निरूपण हुआ है।

उपन्यास में इनका चरित्र एक अलग ही किस्म का है, जो किसी-न-किसी प्रकार से समाज को प्रभावित करता है।

अप्रधान पात्र

'अश्क' जी अपने उपन्यासों में चरित्रों के ऐसे ब्रह्मा हैं, जो उन्हें अपने परिवेश से सही पैदावार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अपने उपन्यास 'बाँधों न नाव इस ठांव' में भी उन्होंने प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त दर्जनों ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जो जीवन और परिवेश के वैविध्य को प्रस्तुत करते हैं। उनमें प्रमुख हैं—चातक जी, कंटक जी, करुण जी, किशलय जी, राय साहब, सूफी हनुमान परसाद लाड़ला के चमत्कारी बाबा लाहौर का सर्वश्रेष्ठ शायर अख्तर सीरानी, 'फिक्रोअमल' के सम्पादक कविराज रामदास बी.ए., 'समाज' के मालिक प्रभुदयाल 'मस्त', मन्दिर के व्यवस्थापक महाशय देव दर्शन हुमायूँ साहब, 'गिरामी' साहब, 'देश' के सम्पादक पं. टेकाराम साही, हुनर साहब और कविरत्न जैसे साहित्यकारों का जीवन्त संस्मरण उपस्थित हुआ है।

राजा महेन्द्रपाल, सरदार जगदीश सिंह, हफ़ीज जालन्धरी, आचार्य देशबन्धु, धर्मदेव वेदालंकार, 'कारवाँ', मस्ताना जोगी, भीष्म, रियासत, जमींदार, 'भूचाल', वन्देमातरम और वीरभारत आदि पात्रों के संस्मरण हैं।

"बाँधों न नाव इस ठाँव' एक ऐसा विशाल मनमोहक चित्र है, जिसके एक छोर पर चेतन है तो दूसरे पर उसकी पत्नी चन्दा। इन दोनों हीरों के बीच वे तमाम लोग हैं, जो चेतन की दुनिया के अंग हैं, जो उसे भटकाते हैं तो उसे राह भी दिखाते हैं। हर पात्र अपने-आप में एक दिलचस्प कहानी है। एक जीती-जागती तस्वीर है, जो आपको पूरी तरह बाँध लेगी। इसमें चेतन का परिवार और उसके पड़ोसी हैं, हुनर साहब और कविराज हैं, चातक जी और धर्म वेदालंकार हैं, सूफी हनुमान प्रसाद और पण्डित रत्न हैं, सांई बाबा और हाकिमचन्द हैं। विभाजन पूर्व लाहौर और शिमला के असंख्यक पात्रों का जुलूस है, जो पाठक की आँखों के सामने से अपनी तमाम रंगारंगी के साथ गुजरता चला जाता है।"[64]

निमिषा

'गिरती दीवारें', 'एक नन्हीं किन्दील' या 'बाँधों न नाव इस ठाँव' के बाद 'निमिषा' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आये पात्रों, स्थितियों और समस्याओं और अश्क

जी के जीवन के स्वयं के तथा उनके उपन्यासों के नायक चेतन के जीवन प्रसंगों की एकता है। इस दृष्टि से इस पर विचार करना एक दिलचस्प व्यक्तित्व होगा तथा यह सिद्ध हो सकेगा कि कैसे अश्क अपने को एक ही अनुभव तथा जीवन स्थितियों को बार-बार उपन्यासों में रूपायित करते हैं।

गोविन्द

'निमिषा' उपन्यास का एकमात्र पुरुष-पात्र गोविन्द है, जिसमें बहुत सारी प्रतिभाएँ एक साथ मौजूद हैं। वे देवनगर के ड्राइंग टीचर हैं। वह एक ऐसा पात्र हैं जिसमें निम्न-मध्यवर्ग की सम्पूर्ण सामाजिक विशेषताएँ अवस्थित हैं। उपन्यास में वह लाहौर का उभरता हुआ युवक कलाकार, उर्दू कवि है, 'दर्द' उपनाम से लिखता है। जितना अच्छा कवि है, उतना ही सक्षम चित्रकार भी है।"[65] खुले कालर की धारीदार कमीज, ग्रे रंग की किंचित क्रीज-विहीन पेन्ट और पेशावरी चप्पल पहने, घुंघराले बाल, गेहुँआ रंग और गहरी उदास आंखें[66] यही व्यक्तित्व है उपन्यास में गोविन्द का।

'निमिषा' में गोविन्द की पहली पत्नी लक्खी है। अपनी पहली पत्नी के सम्बन्ध में निमिषा को एक पत्र में गोविन्द लिखता है कि मैं लाहौर की गहमागहमी को छोड़कर और आर्ट में क्यों आया—"शायद आपको कनक ने बताया हो, डेढ़ वर्ष पहले मेरी बीबी काफी लम्बी बीमारी के बाद चली गयी थी। मैं यह तो नहीं कहता कि मैं उससे प्यार करता था। जब तक वह मेरे साथ रही, मैं सताता ही रहा, लेकिन उसके चले जाने के बाद मुझे पहली बार महसूस हुआ कि मैंने क्या खो दिया है? चार वर्ष मेरा उसका साथ रहा, जिसमें से डेढ़ वर्ष वह बीमार रही। उसे बचाने की मैंने हर मुमकिन कोशिश की, लेकिन उसे बचा नहीं पाया। उसकी बीमारी में मैंने क्या देखा, भोगा और महसूस किया अगर मैं उसे लिखने लगूँ तो उर्दू मुहावरे के मुताबिक, दफ्तर के दफ्तर सियाह हो जाये। उसकी मौत के बाद मैंने तय किया था कि मैं शादी नहीं करूँगा। वैसी भोली-भाली, सीधी-सादी, हँसमुख और धरती की तरह सहनशील पत्नी मैं कहाँ से पाऊँगा और मैंने अपने आपको आर्ट में गर्क कर दिया।"[67]

गोविन्द पहली पत्नी के मरने के बाद शादी नहीं करना चाहता है, लेकिन एक स्कैण्डल व समाज में बदनामी के डर से वह सगाई कर लेता है। वह निमिषा को एक पत्र

में लिखता है, "दर-असल मेरी सगाई नहीं हुई थी। रिश्ते आते थे, लेकिन जैसाकि मैंने लिखा, मैं शादी करना नहीं चाहता था, लेकिन अनचाहे स्कैण्डल से मैं डर गया और मैंने भाई से कहीं और सगाई कर देने पर जोर दिया। उन्होंने दूर के रिश्ते में मेरी सगाई कर दी और मेरे मित्र को विश्वास भी दिया।"[68] और यही कारण था कि गोविन्द ने निमिषा को धर्म बहिन बनाने से मना कर दिया था। परन्तु गोविन्द मन-ही-मन निमिषा को चाहने लगता है और बहुत कोशिशों के बाद भी गोविन्द की सगाई उसके बड़े भाई नहीं तोड़ते हैं इसलिए वह चुपके से निमिषा से विवाह करने का प्रस्ताव करता है—मैंने पुरानी अनारकली के आर्य समाज के प्रधान से बात कर रखी है। मैं चाहता हूँ कि हम आर्य समाज के मन्दिर में अभी जाकर शादी कर लें। भाई साहब शाम को आएंगे। मैं उनसे कह दूँगा कि मैंने शादी कर ली, और राहों वाली सगाई अपने-आप टूट जाएगी। अब तुम देर न करो। उठो और मुझे ये तीनों चीजें खरीदवा दो।"[69] लेकिन निमिषा गोविन्द से स्पष्ट कहती है, इस तरह बिना किसी को बताये मैं शादी नहीं कर सकती। इससे ऐसा लगता है कि गोविन्द बेहद कमजोर व्यक्ति है जो अपने फैंसले स्वयं नहीं ले सकता।

'निमिषा' का देवनगर, जहाँ गोविन्द आर्ट टीचर है और वहाँ अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद सुकून की तलाश में गया है, अश्क के जीवन की घटना है, गोविन्द दूसरी शादी के बाद ट्यूशन के सिलसिले में बंगलौर जाना चाहता है। वह अपने एक मित्र हरभजन को लिखता है, "एक बार मैंने यह भी सोचा था कि मैं तुम्हारे पास चला आऊँ, लेकिन इस बीच बंगलौर जाने का डौल बन गया। मैंने भी सोचा कि बंगलौर बहुत दूर है और मेरी पत्नी वहाँ नहीं पहुँच पाएगी। अगले महीने की पहली तारीख को मैं यहाँ से बंगलौर के लिए चल दूँगा।"[70]

'निमिषा' का गोविन्द असमंजस और दुविधा में रहने वाला व्यक्ति है। उसमें इच्छा शक्ति का अभाव है। खान-पान, वेशभूषा तथा आचार-व्यवहार में वह निमिषा से कमतर है। निमिषा की दृष्टि से वह फूहड़ था। गोविन्द कमजोर आदमी है। वह सामाजिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध सोचता है। करता कुछ नहीं है। गोविन्द के ये शब्द उसके कमजोर व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं, "शायरी भावना की चीज है और भावना जरूरी नहीं कि हकीकत की शक्ल भी ले ले। मन में उबाल उठा, शेरों में उतर गया। चाहता तो मैं जरूर हूँ, लेकिन चाहत को असली जामा पहनाना मुझे आसान नहीं लगता।" गोविन्द ऐसी पत्नी

चाहता है जो उसे कला की ऊँचाइयों तक ले जाने में योगदान दें लेकिन इसके लिए वह कुछ नहीं करता जो उसे करना चाहिए।

गोविन्द जैसे लोग सामाजिक, पारिवारिक बन्धनों को काटने में असमर्थ होते हैं। पारिवारिक बन्धनों में वह घुटता रहता है लेकिन उससे निकलने का कोई प्रयास नहीं करता। वह निमिषा से चोरी-चुपके विवाह करना चाहता है लेकिन भाई-भाभी की इच्छा के विरुद्ध जाने का साहस उसमें नहीं है। निमिषा के विचार में वह बहुत ही विवश और मजबूर आदमी है। यह बात उस समय अधिक स्पष्ट हो जाती है जब गोविन्द के बड़े भाई ने उसे देवनगर भाग जाने की सलाह दी और वह भाग नहीं पाया। वह स्वयं मानता है कि उसमें साहस ही नहीं, निर्णय लेने की शक्ति भी नहीं। अपनी दृष्टि में, "वह वास्तव में बेहद आवेगी, भावुक और चुगद है। उसकी यह मुश्किल है कि वह न सोचकर बात करता है, न समझकर कदम उठाता है, वह तुरन्त संवेगों से परिचलित होता है और जितना कुछ उसने सोच रखा होता है, कई बार क्षणिक आवेश में वह उससे उल्टा आचरण करता है।"[71] वैसे गोविन्द सामान्य किस्म का सरल-सीधा युवक है। वह अपनी दूसरी पत्नी माला से कहता है, "लेकिन झूठ बोलने की मेरी आदत नहीं, मैं न आदमियों को धोखा दे सकता हूँ, न दोहरा जीवन ही जी सकता हूँ ...।"[72]

गोविन्द खुद अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है—"जिन्दगी में कभी जान-बूझ कर मैंने किसी को दु:ख नहीं दिया। हस्सास आदमी हूँ। दूसरे के दु:ख को देखकर दु:खी हो जाता हूँ ... मैं दिल का मजबूत नहीं हूँ। आवेगशील हूँ और भावनाओं की रौ में बह जाता हूँ। खुद तकलीफ पाता हूँ। दूसरों को तकलीफ देता हूँ। झूठ बोलने की कला मुझे आती नहीं ...।"[73]

निश्चय ही गोविन्द निम्न-मध्यम वर्ग का एक ऐसा चरित्र है जो सारी संभावनाओं के बाद भी छोटी-छोटी चीजों में छीजता जाता है, अपने मूल उद्देश्यों से भटकता जाता है। वह एक औसत निम्न-मध्यवर्गीय चरित्र है, शक्तिहीन, अनिर्णय से ग्रस्त। अनिर्णय से ग्रस्त व्यक्ति से उसका उद्देश्य जितना दूर हो सकता है, इसका उदाहरण है गोविन्द। वह नहीं चाहकर भी जीवन के दलदल में उतरता जाता है। वह भी सशक्त नहीं, अश्क जी के अन्य नायकों की तरह निम्न-मध्यवर्गीय कुण्ठा से ग्रस्त व्यक्ति है। जिस चीज को पाना चाहता है, उसको प्राप्त करने का आत्मबल का अभाव उसमें है।

पलटती धारा

'पलटती धारा' उपन्यास 'गिरती दीवारें' महागाथा उपन्यास की छठी कड़ी है, जो उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का शायद सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक के पाँच वर्षों के जीवन का सूक्ष्म चित्रण करते हैं, साथ ही जीवन और समाज के बारे में अपने अनुभवजनित सत्यों को अभिव्यक्त भी करना चाहते थे और इसी उद्देश्य से अश्क जी ने विभाजन-पूर्व पंजाब के एक नगर जालन्धर में रहने वाले युवक चेतन की महागाथा रचनी शुरू की जिसका कार्यक्षेत्र पंजाब के तीन महत्त्वपूर्ण नगरों—जालन्धर, लाहौर और शिमला में फैला हुआ था।

चेतन

चेतन 'पलटती धारा' उपन्यास का महानायक है, जिसके सामने दो विकल्प हैं— लेखक बने या कानून की परीक्षा पास करके सब-जजी के कम्पीटिशन में बैठे। चेतन दूसरा विकल्प चुनता है और हम उसे एक ओर कानून की पेचीदगियों में डूबते-उतरते पाते हैं और दूसरी ओर लाहौर के साहित्यिक समाज में विचरते देखते हैं। इसी के साथ-साथ अपनी पत्नी की बीमारी के सिलसिले में चेतन अपने परिवार के कुछ दबे-छिपे पहलूओं से रूबरू होता है। इन्हीं घटनाओं में अपनी साली नीला के प्रति चेतन के आकर्षण की अन्तर्कथा भी गुँथी हुई है और धर्म तथा अध्यात्म को लेकर चेतन की ऊहा-पोह भी।"[74]

उपन्यास में नायक चेतन शिमला प्रवास से वापस लौटकर अपने घर जालन्धर आता है तो उसे अपने घर में पड़ोसी से झगड़ा होने की बात, कोर्ट कचहरी तक मामला पहुँचने पर पिता को जैसे-तैसे शान्त करके जालन्धर में जहाँ से पढ़ा ... चरित्र प्रमाण-पत्र लेकर लाहौर में लॉ-कॉलेज में प्रवेश ले लेता है।

चेतन लॉ कॉलेज में प्रवेश ले लेता है, परन्तु उसे हर महीने फीस की समस्या आती है जिसकी पूर्ति के लिए वह लाहौर में सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोपराइटर) के बच्चों (काका, काकी) को 13 रुपये प्रतिमाह के हिसाब से ट्यूशन कराता है।

फीस और किताब-कापियों की व्यवस्था करने के बाद चेतन के पास नहीं के बराबर पैसे बचते थे इसके लिए चेतन नहीं चाहते हुए भी चातक जी के कहने पर पन्नालाल के लिए नाटक लिखता है। यहाँ उसके स्वाभिमान पर कदम-कदम पर चोट

पहुँचती है, लेकिन वह आर्थिक तंगी के कारण विवश रहता है और नाटक लिखने के लिए इतिहास के पन्नों में खो जाता है।

चेतन बेहद उतावला और अतिवादी है। धैर्य नाम का गुण उसके किरदार का अंग नहीं है। इसी के वशीभूत चेतन 'सरस्वती' के सम्पादक ठाकुर साहब को लिखता है, "मैं उर्दू का थोड़ा एक मशहूर कथाकार हूँ। सात-आठ वर्षों से उर्दू में कहानियाँ लिख रहा हूँ। इस पत्र के साथ मैं आपको श्री मनोरंजन कृष्ण 'चातक' का एक पत्र भेज रहा हूँ, जिसमें उन्होंने विस्तार से मेरा परिचय दिया है और मेरी कहानी को 'सरस्वती' में छापने की सिफारिश की है लेकिन जो बात उन्होंने नहीं लिखी, वह यह है कि 'प्रेम की वेदी' मेरी पहली हिन्दी कहानी है। उसका उर्दू नाम 'कुर्बानगाह-ए-इश्क' है। यह पहले उर्दू के प्रसिद्ध अदबी हफ्तार 'बहार' में छपी, फिर वहाँ से कई दूसरी पत्र-पत्रिकाओं में उद्धरित हुई। यही कारण है कि मुन्शी चन्द्र शेखर की प्रेरणा और चातक जी की सहायता से जब मैंने हिन्दी-क्षेत्र में पग-धरने की सोची तो पहले इसी को हिन्दी का लिबास पहनाया।"[75]

चेतन को उस समय बहुत खुशी होती है जब उसे इस बात का पता चलता है कि 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक मुन्शी चन्द्र शेखर उसकी 'प्रेम की वेदी' कहानी अपनी पत्रिका में छाप रहे हैं, परन्तु दूसरे ही दिन उसे निराशा भी होती है कि कवि चातक के मना करने पर उसकी कहानी नहीं छप रही है तो उसे अत्यधिक निराशा होती है और सोचने पर मजबूर होता है कि, "चातक ही ने ठाकुर साहब को मेरे खिलाफ पत्र लिखा है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि चतुर बनने की तमाम कोशिशों के बावजूद मैं कितना बेवकूफ हूँ। मैं दूसरों का सहज विश्वास कर लेता हूँ, मार खाता हूँ और फुरसत में पछताता हूँ। क्या मुझे कभी आदमियों की पहचान नहीं आयेगी? मैं ऐसे ही ठगा जाता रहूँगा।"[76]

चेतन अपनी बीमार पत्नी चन्दा की सेवासुश्रुषा करने व परीक्षा की तैयारी के लिए लाहौर से जालन्धर अपने घर आ जाता है, लेकिन उसे यहाँ भी पढ़ाई का उचित वातावरण नहीं मिल पाता है—कारण यह था कि उसकी साली नीला रंगून से अपने जेठ के लड़के त्रिलोक के देहान्त के पश्चात् बस्ती गंजा में आई हुई थी और चेतन के बुलाने पर वह वहाँ चली आयी थी जिससे चेतन का दिमाग अतीत की पुनरावृत्ति करने लगता है। इससे निजात पाने के लिए चेतन अपने पिता के पास बहरामपुर चला जाता है, लेकिन वहाँ

उसे वह परिवेश नहीं मिल पाता है, जो वह सोचकर आया था और वहाँ की रविशों में घूमा करता। वहाँ पर दानी जैसी स्त्रियों से वह अत्यधिक दु:खी रहता है और एक दिन तो उसका हृदय ही हिल गया, जब उसने अपने पिता को कहीं पढ़ने के लिए जगह के लिए पूछा तो पिता ने मालगोदाम में उसे पढ़ने के लिए कहा, लेकिन वहाँ पर दो कबूतरों के जोड़े रहते थे, जिनसे चेतन बहुत परेशान रहता है। उनकी वजह से उसकी ठीक ढंग से पढ़ाई नहीं होती है। पिता को दूसरी जगह व्यवस्था करने के लिए कहने पर पिता ने उन कबूतरों को ही मार गिराया—इस बात से चेतन का हृदय पसीज गया और वह दूसरे दिन ही वापस बहरामपुर से लाहौर पहुँच जाता है। उपन्यास में चेतन धार्मिक अन्धविश्वासों को नहीं मानने वाला, नास्तिक, रूढ़िवादी परम्पराओं पर नहीं चलने वाला, आर्थिक तंगी की वतह से कदम-कदम पर ठोकरें खाता है, पग-पग पर उसके अहं को ठेस लगती है। ये सभी बातें निम्न-मध्यवर्गीय युवक को चरितार्थ करती हैं। जिसे अपने जीवन में ऊपर उठने के लिए कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

उपन्यासकार अश्क जी ने 'पलटती धारा' उपन्यास में बड़े ही सधे हाथों से इस संघर्ष गाथा को चित्रित किया है और भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की ऐसी झांकियाँ प्रस्तुत की है कि हर संघर्षरत युवक को यह अपनी कथा जान पड़ेगी।

अन्य पात्र

'पलटती धारा' उपन्यास में भी अश्क जी ने पात्रों की कमी नहीं छोड़ी है, इसमें भी उन्होंने पात्रों का अम्बार-सा लगा दिया है, जो सभी निम्न-मध्यवर्गीय जीवन जीते हैं। उनमें सर्वप्रथम—शराबी चेतन के पिता पण्डित शादीराम, चेतन का परम मित्र अनन्त, भोला या चतुर, दयावान अथवा क्रूर, सहज और काईयाँ कवि चातक, दगाबाज पन्नालाल, आर्थिक तंगी में भी सहायता नहीं करने वाला उसका भाई रामानन्द। ये सभी उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय समाज की उपज है।

एक रात का नरक

'एक रात का नरक' उपन्यास का नायक स्वयं अश्क ही है। लेखक ने 'इलस्ट्रेड वीकली' में शिमला में लगने वाले सी.पी. मेले का वर्णन पढ़ा है। वर्णन पढ़कर लेखक की यह तीव्र इच्छा होती है कि वह भी मेला देखे। वह मेला देखने जाता है। 'मेला' लोकप्रिय

मालूम होता है। इस बार 28 और 29 मई को मेला लगा। शिमला के बहुत-से लोग मशोबरे गये और वहाँ से उस गहरी घाटी की ओर मुड़े जो कोटी के राणा की रियासत में शामिल है। मेले की एक खूबी पहाड़ की सुन्दर युवतियाँ हैं, जो भड़कीले कपड़े पहने हुए पहाड़ी के एक ओर बैठी हुई मेले में होने वाले खेल-तमाशों और दूसरे कौतुकों को देखती है। सुनते हैं कि प्राचीनकाल में दो दिन के समारोह में शादियाँ पक्की होती थीं और वधुएँ चुनी जाती थी।

"कोटी के राणा सदैव बहुत-से मित्रों को आमन्त्रित करते हैं और अपने अतिथि सत्कार के लिए प्रसिद्ध हैं। शिमला में आने वाले प्राय: सभी लोग, चाहे वे कितने भी कम दिनों के लिए क्यों न आयें, सी.पी. और इसके प्रसिद्ध मेले को अवश्य देखते हैं।"[77]

मेले में राजा की सवारी निकल रही होती है, वह पास में खड़े एक सैनिक से पूछ बैठता है कि राजा कहाँ तक पढ़े हुए हैं। सैनिक उसे धक्का देता है और वह उठकर सैनिक के तमाचा रख देता है। परिणाम यह होता है कि उसे एक तहखाने में कैद कर दिया जाता है। तहखाने में सीलन, अन्धेरा और बू है जिससे उसका दम घुटने लगता है। बार-बार कोई सैनिक या कॉन्सटेबल आता है, दो-चार गालियाँ देकर चलता बनता है। उसे बड़ा अजीब लगता है। सबसे ज्यादा दु:ख तो उसे इस बात का होता है कि उसका कोई कसूर न होने पर भी वह दण्डित किया जा रहा है, फिर दरवाजे पर आहट होती है, उसका दिल धड़क रहा था, सुन रहा था कि पहाड़ के साँप बड़े विषैले होते हैं। उसे याद आता है कि परसों मैं फूल तोड़ रहा था तो मेरे पास से गजभर लम्बा साँप गुजर गया था। साँप का ध्यान आते ही उसे फिर रोमांच हो आता है। उसे सामने अन्धेरे में साँप और बिच्छू नाचते दिखाई देते हैं और रात को बार-बार उसे स्वप्न आते हैं। सुबह होने पर उसे काल कोठरी से छोड़ दिया जाता है, परन्तु समाज के अजगर जैसे विषैले लाला हाकिमचन्द जैसे लोग उस पर अथाह ऋण चढ़ा देते हैं ऊपर से एहसान और दिखाते हैं।

नि:सन्देह निम्न-मध्यवर्गीय युवक पर ऐसी ही छोटी-छोटी बातों के लिए उच्च वर्ग अत्याचार करता है।

प्रमुख स्त्री पात्र : सामाजिक दायित्व बोध

सितारों के खेल

लता

लता 'सितारों के खेल' उपन्यास की नायिका तथा पौराणिक नारी सती अनसूइया की प्रतीक है। अश्क जी ने लता के रूप में एक ऐसी नायिका का सृजन किया है जो एक पंगु पुरुष से बँधी है। वह एक अस्थिर चित्त की युवती है। प्रेम के साथ वह खेल खेलना चाहती है, मगर अन्त में हार जाती है। उसकी लालसा और अस्थिरता ही उसके विनाश का कारण बनती है।

लता अपने वृद्ध पिता की एकमात्र सन्तान है, उसके पिता स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति थे जिस कारण इसे काफी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। यही कारण है कि कॉलेज में पढ़ते समय वह अपने सहपाठी जगत के आडम्बर पर रीझ जाती है और उससे प्रेम करने लगती है। वह वंशीलाल जो उससे प्रेम करता है, उससे घृणा करती है, लेकिन जब जगत का ढोंग प्रकट होता है तो इसके हृदय को आघात लगता है। इसका हृदय बंसीलाल के प्रति अभिभूत होता है। बंसीलाल को नवजीवन प्रदान करने के लिए वह दो बार अपना रक्त भी देती है, मगर बंसीलाल के टूटे हुए दिल और खण्डहर से शरीर को नवजीवन प्राप्त नहीं होता है, विज्ञान ने उसे सहारा नहीं दिया। तब लता बंसीलाल के साथ तीर्थाटन और योगियों की खोज में चल पड़ती है। छावनी का एकांगी जीवन तथा बंसीलाल के सूखे बाल, धँसी आँखें, टूटे और मुड़े हुए बाजू लता को निराश कर जाते हैं। वह कुण्ठा की चरम सीमा पर पहुँच कर बंसीलाल को विष दे देती है। लता के इस कृत्य को एक आलोचक ने उसे 'बिगड़ी हुई आधुनिका की संज्ञा दी है।'[78] तो एक आलोचक ने उसे 'पिशाचनी' कहा है। परन्तु लता न तो एक पिशाचनी है और न देवी, वह मात्र एक नारी है।

लता का बंसीलाल की सेवा करना भारतीय नारी की परम्परा के अनुरूप है तो उसके जहर देने में विदेशी प्रभाव है। मगर यदि वह बंसीलाल को विष नहीं देती और ऊपर से वैसी ही बनी रहती तो उसके अन्तर में न जाने कितनी कुण्ठा उत्पन्न हो जाती और न जाने कितना अन्धकार उसके मन–प्राणों को आच्छादित कर लेता।

उपन्यासकार ने लता के व्यक्तित्व को काफी उभारा है। वह परिस्थितियों की चक्की में पिसकर समाप्त हो जाती है। बंसीलाल के साथ घूमते-घूमते वह अस्वस्थ हो जाती है, उसका शरीर कंकाल मात्र होकर रह जाता है जिसे लेकर वह अपने पिता के पास वापस आती है।

अश्क जी के अनुसार कुण्ठा की चरम सीमा पर कोई भी तरुणी शिक्षिता हो या अशिक्षिता, वैसा ही आचरण करती है जैसा लता ने किया। वह किसी भी विषय पर अपने स्वतन्त्र विचार रखती थी तथा निर्भीक होकर उसे व्यक्त भी करती थी। स्त्री तथा पुरुष के सम्बन्ध में भी उसके अपने विचार थे। स्वतन्त्र वातावरण में पलने के कारण स्त्री के सम्बन्ध में उसके विचार काफी स्वतन्त्र थे, "पुरुषों को क्या अधिकार हैं कि वे स्त्री पर किसी तरह का अत्याचार करें। स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं ... यदि पुरुष के साथ वैसा ही सलूक करें।"[79] पुरुष के सम्बन्ध में भी उसके अपने विचार हैं। उसकी दृष्टि में "ये पुरुष सब वासनाओं के दास हैं।"[80] परन्तु लता के सम्बन्ध में जगत के विचार हैं, "वह कभी सफल न बन सकेगी।"[81]

लता का चरित्र अतृप्त प्रेम तथा कुण्ठा के तन्तुओं से निर्मित है। इसे जीवन में बार-बार असफलता ही हाथ लगती है। जीवन में सफलता इससे कोसों दूर है। लता के अन्तिम शब्द जिसमें पश्चाताप है और जो करुणा से भरे हृदय को छू लेते हैं, "बंसीलाल को विष देकर मैंने पाप किया या पुण्य वह मैं नहीं जानती, डॉक्टर साहब। पर यह अच्छा ही हुआ। उसके और मेरे मध्य जो पर्दा-सा छा गया था। मौत ने उसे हटा दिया और उस पर्दे के हट जाने पर वह और मैं फिर आमने-सामने हो गये हैं।"[82] ये पंक्तियाँ लता की मानसिकता को सही शब्द देती हैं।

राजरानी

राजरानी सेवा और त्याग की प्रतिमा तथा बंसीलाल की छोटी बहन है। यह सेवा और त्याग के लिए अपने को सदा जलने वाली भट्टी बनाये रखती है। जीवन में आने वाले तूफानों के प्रति सन्तुलन इसके शील वैशिष्ट्य हैं। यह डॉक्टर अमृतराय से प्रेम करती है, कभी भी अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं करती है। डॉक्टर के प्रति आकर्षित होकर भी यह उस ओर से मुँह मोड़ लेती है, क्योंकि लता भी अमृतराय से प्रेम करती है। ओंकार शरद

के शब्दों में, "अपने यदि बंसीलाल के प्रति किये लता के एहसानों को याद कर वह सदा उसे अपने सामने इसलिए रखती है कि वह कहीं से एहसान फरामोश न हो जाये।" लता की अनुपस्थिति में वह मलिक बाबू के दु:खों को भी कम करने का प्रयास करती है। लता अपने अन्तिम समय में रानी तथा डॉक्टर अमृतराय को एक सूत्र में बाँध जाती है।

अपने भाई से प्रेम के कारण ही रानी पाँच बार अपने शरीर का गोश्त दे चुकी है। वैसे यह बंसीलाल की छोटी बहन थी, परन्तु बंसीलाल की अव्यावहारिकता ने इसे बड़ी बहन का दायित्व अनजाने में सौंप दिया था। बंसीलाल का प्रत्येक काम समय पर करना अपना कर्त्तव्य समझती थी। वह भाई के शव को देखकर न रोयी, न चिल्लायी, न बेहोश ही हुई, कुछ विचित्र प्रकार की विस्मृति में गुम होकर भौंचक्की-सी खड़ी रह गयी थी। लता की अपेक्षा रानी के विचार अधिक प्रौढ़ हैं। इसने अपनी सेवा से मलिक साहब का दिल जीत लिया और मलिक साहब जो लता के वियोग से दु:खी थे, इसकी सेवा से मुग्ध होकर इसे अपनी पुत्री मानने लगे थे। यह इसके व्यक्तित्व की विशिष्ट उपलब्धि है कि आपने मलिक साहब का दिल जीत लिया।

'गिरती दीवारें'

लाजवन्ती

आत्मभीरू, सेवा, त्याग और ममतामूर्ति लाजवन्ती 'गिरती दीवारें' उपन्यास के नायक चेतन की माँ है जो उस निम्न-मध्यवर्गीय भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो पति के अत्याचारों को चुपचाप सह लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नहीं करती, जो आजन्म शराबी पति की गाली, मार-पीट तथा कामुकता का शिकार बनी रही और गरीबी में ही अपने लड़कों, बच्चों को पालती-पढ़ाती रही।

लाजवन्ती पति-निष्ठा की प्रतिमूर्ति तथा धार्मिक प्रवृत्ति की महिला है। बचपन से ही वह तीव्र बुद्धि की थी। यद्यपि उसका पति शादीराम शराबी, जुआरी तथा निर्दयी था, फिर भी वह अपने क्रूर पति को अपनी समस्त आस्था, श्रद्धा, प्यार और आदर-सत्कार देती थी। वह अपने पति के चले जाने के बाद उस खण्डहर से मकान में अकेली रहती है। पतिदेव बाहर से मकान का ताला लगा जाते हैं। वह दिनभर अपनी ददिया सास की जमायी

चक्की पीसती रहती है। चक्की ही उसके एकान्त का मित्र है। यह सब उसे खटकता नहीं, क्योंकि इसे वह अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानती है।

एक दिन लाजवन्ती अपने पति से जल्दी घर लौटने का आग्रह करती है, पति प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और लौटते हैं, आधी रात को। "प्यास विह्वला लाजवन्ती एक पड़ोसिन से पानी माँगकर पी लेती है तो पति मुँह पर थप्पड़ जमा देता है, इतना होते हुए भी उसके मन में अपने पति के प्रति जरा भी आक्रोश नहीं है।"[83] उल्टे इसके लिए अपने पति से क्षमा माँग लेती है। इस बात की ये पंक्तियाँ साक्षी हैं, "तब चेतन की माँ ने अपने पति के पैरों में झुककर क्षमा माँग ली थी और वचन दिया था कि भविष्य में कभी ऐसा अपराध नहीं करेगी।"[84] इस प्रकार 'गिरती दीवारें' उपन्यास की लाजवन्ती भारतीय पत्नी और माता की जीती-जागती तस्वीर हैं।

चन्दा

चन्दा 'गिरती दीवारें' उपन्यास के नायक चेतन की धर्मपत्नी है। साथ ही अत्यन्त सरल, समझदार और आत्मिक सुषमा से सम्पन्न नारी है। यद्यपि वह अधिक सुन्दर तथा शिक्षित नहीं है, फिर भी अत्यन्त भोली-भाली, उदार, विनम्र, सीधी-सादी और संकोचशील है। चेतन की इच्छा पर वह कम परिश्रम में ही रत्न की परीक्षा पास कर लेती है। चेतन को साफ-सफाई पसन्द है, लेकिन चन्दा को इससे कोई लगाव नहीं है। यही कारण है कि चन्दा चेतन का वास्तविक प्यार नहीं ले सकी। "... गौने से पहले अपने विवाह के पहले दिन ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा वह उसकी मोटी-मुटल्ली पत्नी अपनी उस साधारण दिखायी देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर तक निहायत नाजुक और भावुक हृदय रखती है।"[85]

नायक चेतन को चन्दा पसन्द नहीं है, फिर भी चन्दा में कुछ ऐसे गुण हैं जो चेतन की घृणा को प्रेम में बदल देते हैं और चेतन को अपनी पत्नी के स्वभाव के कारण उस पर गर्व होता है। उपन्यासकार चन्दा के एकाकी उदात्तरूप का वर्णन करना चाहता है, पर चन्दा का चरित्र उतना उभर नहीं पाया है। "उपन्यासकार प्रस्तुत उपन्यास में चन्दा की कहानी कहना चाहता था जिसकी झलक मात्र उपन्यास के इस वर्तमान रूप में दिखा पाया।"[86]

डॉ. इन्द्रनाथ मदान के विचार में, “लेखक ने गिरती दीवारें उपन्यास के वृहत् संस्करण की प्रेरणा रोम्या रोलां के ‘ज्यों क्रिस्तोव’ से प्राप्त की थी। उनका उद्देश्य चन्दा के उदात्त चरित्र को उभारना था जो शरीर से असुन्दर और आत्मा से सुन्दर थी।”[87] चन्दा का चरित्र इन पंक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है, “चन्दा उन लड़कियों में से नहीं जो पति के मार्ग का रोड़ा बन जायें। सरल, सीधी, समझदार लड़की है, तुम्हारी पढ़ाई में किसी प्रकार बाधा न डालेगी।”[88]

चन्दा अपने पति चेतन को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर लेती है और उसकी राह में बाधा बनकर नहीं आती। अपने सौन्दर्य के अभाव को अपनी आत्मिक सुषमा से भर देती है। चन्दा भारतीय सामान्य पत्नी का प्रतिनिधित्व करती है।

कुन्ती

कुन्ती ‘गिरती दीवारें’ उपन्यास के समाज की युवा विधवा नारी का प्रतीक है। प्रारम्भ में कुन्ती का रुदन चेतन के प्रति और चेतन का कुन्ती के प्रति था। किन्तु सामाजिक बन्धन के कारण ये मिल नहीं पाये। कुन्ती का विवाह हुए अधिक दिन नहीं हुए थे कि उसका पति मर गया। उसके दो बच्चे थे। उसके सिर पर एक बोझ सा आ गया। समाज में विधवा नारी की स्थिति निराशाजनक और दयनीय होती है। कुन्ती की स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं थी। उसकी स्थिति का करुण चित्र इन शब्दों में साकार हो उठा है, “बस, अलविदा! अब मैं तुम्हारी ओर देख नहीं सकूँगी। पति की छत्रछाया में रहने वाली स्त्री हँस-बोल सकती है, चाहे तो प्रेम कर सकती है और यदि चाहे तो सन्तान तक पैदा कर सकती है, समाज उसे कुछ न कहेगा, लेकिन विधवा नहीं।”[89] कुन्ती भारतीय समाज की विधवा की करुण गाथा है।

नीला

नीला ‘गिरती दीवारें’ उपन्यास में नायक चेतन की धर्मपत्नी चन्दा की छोटी बहन है। सुन्दर तथा चंचल है। चेतन की साली है। चेतन के शब्दों में, “नीला आग थी।”[90] अपनी सगाई के लिए चेतन जब चन्दा को देखने जाता है तो इसकी भेंट नीला से होती है। उस समय से ही चेतन नीला को अपने मन के स्तर पर चाहता है। नीला ही इस उपन्यास की केन्द्र बिन्दु है। नीला के प्रति चेतन का आकर्षण उसके विवाह के बाद भी समाप्त नहीं

होता। वह भोली और सरल लड़की है। जीजा से स्नेह करती है। उसकी शादी रंगून के विधुर मिलिट्री अकाउण्टेण्ट से हो जाती है। चेतन नीला के चेहरे से यह अन्दाजा लगाना चाहता है कि वह इस अनमेल-विवाह से प्रसन्न है या अप्रसन्न। पर वह पाता है कि नीला के चेहरे पर राग-द्वेष, उल्लास, विषाद, सुख-दुःख का कोई भी भाव नहीं है। वह चुपचाप बैठी थी। नीला के इस अनमेल-विवाह ने चेतन को विक्षिप्त कर दिया। जब चेतन यहाँ आया था तो वह नीला से बात करना चाहता था पर उसने नीला को एकदम शांत पाया। उसकी चंचलता गायब हो गयी थी। "पर वह तो ऐसे यन्त्र चालित-सी घूमती थी, जैसे विवाह उसका नहीं किसी दूसरी सर्वथा अपरिचित लड़की का हुआ था। चेतन से वह कन्नी काटती रही। सहेलियों, बहनों, भावजों या पड़ोसिनों से घिरी रही। दो एक संक्षिप्त शब्दों का एक-आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनों में कोई बात न हो सकी थी।"[91]

चन्दा के शब्दों में, "आप बेकार यह सोचते हैं कि आपके कारण नीला की शादी वहाँ हुई ... नीला बहन जो चाहती थी फिर आप नीला को नहीं जानते। वह बहुत दुःख मनाने वाली नहीं। वह जीजाजी के साथ चला ले जायेगी।"[92]

'गर्म राख'

सत्याजी

सत्याजी 'गर्म राख' उपन्यास की नायिका है। सुरेन्द्रपाल ने सत्याजी को 'धीरा नायिका' कहा है।[93] सत्याजी अपने विद्यालय में अध्यापिका का काम किया करती है। वहीं इनकी भेंट उपन्यास के नायक जगमोहन से होती है। जगमोहन इन्हें 'संस्कृति-समाज' के लिए निमन्त्रित करने आया था। वह मौन, गम्भीर, रूखी, रसीली, रहस्यमयी युवती है। ये ऊपर से शुष्क तथा उदासीन दिखायी पड़ती है। ये कभी दूसरे को नजर भर नहीं देखती थीं। यही कारण है कि चातक भी इनके पास भटक नहीं पाये।

नायिका सत्याजी में सन्तुलित आचार वृत्ति है, जिससे यह कई बार जगमोहन की आर्थिक सहायता करती है। चूँकि सत्याजी संसार की चतुर नारी है, इसलिए जगमोहन को अपनी सहायता तथा गुणों से जीतकर अपना भविष्य बनाना चाहती है। इसमें निष्ठा है, बुद्धि है, क्रियात्मकता है और अभिमान है। अभिमान की रक्षा के लिए यह नितान्त भौंडे,

अग्राह्य पुरुष के प्रतिरूप में स्वीकार करने में हिचकती हैं। यद्यपि ऐसा करना इनके लिए अत्यन्त दारुण हो उठता है। बौद्धिक तथा मानसिक उलझन सदा इनके साथ रहती है।

सत्याजी जगमोहन को किसी भी कीमत पर प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प है। इन्हें अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास है। इसलिए दूसरों की ओर निगाह उठाकर भी न देखने वाली सत्याजी की जगमोहन के प्रति आत्मसमर्पण तक कर देने में तनिक भी संकोच नहीं करती है। जगमोहन को प्राप्त करने की सत्याजी की व्याकुलता और विवशता कुछ ऐसी है कि बरबस इनके प्रति मन सहानुभूति से भर उठता है। सत्याजी जगमोहन में ही अपना उपयुक्त जीवनसाथी देखती है। पर सत्याजी का हमेशा तना हुआ रूप जगमोहन को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाता है। सत्याजी स्वत व मुँह खोलकर जगमोहन से शादी का प्रस्ताव रखती हैं पर जगमोहन इन्हें अन्यत्र शादी कर लेने का उपदेश देता है। निराश सत्याजी अफ्रीका के एक काले-कलूटे मेजर के साथ, जिसे इन्होंने देखा तक नहीं था, विवाह करने की स्वीकृति दे देती है।

विवाह के पूर्व ये अन्तिम बार जगमोहन से सहानुभूति प्राप्त करने की आशा से मिलती है, परन्तु निराशा ही हाथ लगती है। विवाह के बाद जब वे अफ्रीका जा रही थी तो उन्हें उम्मीद थी कि जगमोहन विदा करने अवश्य आएगा लेकिन वह वहाँ भी नहीं पहुँचता है और निराश होकर अफ्रीका चली जाती है।

सत्याजी की बाहरी गम्भीरता एवं रूखेपन के भीतर इतनी भावुकता, प्रेम की तीव्रता तथा प्रेम के लिए सर्वस्व निछावर कर देने की भावना निहित है।

दुरो

'गर्म राख' उपन्यास में दुरो एक भावुक लड़की है। सुरेन्द्र पाल ने इसे 'मुग्धा नायिका' कहा है।[94] यह बहुत कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठा और समाज को यथातथ्य पहचानने वाली पात्र है। यह अपने व्यक्तित्व को किसी छाया से आवृत्त नहीं होने देती है। पण्डित रघुनाथ या दाताराम उसके पास भटक नहीं पाते हैं। वह अपने और जगमोहन के कर्त्तव्यों के बीच वैयक्तिक प्यार को नहीं आने देती है। इसमें संघर्ष की भावना है। सामाजिक अनीति के प्रति रोष और प्रतिकार की क्षमता है।

यह हरीश से प्रेम करती है और उसके लिए सब कुछ करने को तैयार रहती है। कई बार तो यह हरीश की प्रतिच्छाया लगने लगती है। अपने विचार, दृष्टिकोण तथा हरीश के बात करने के ढंग तक को अपना लेती है। आत्मविश्वास इसमें कूट-कूट कर भरा है। छिछोरेपन के प्रति बेझिझक आक्रोश इसमें है जो कि इसके चरित्र के लिए रक्षा-कवच है। यही कारण है कि चातक और शुक्ला जी भी इसकी ओर देख तक नहीं सकते थे।

दुरो भौतिक स्तर पर प्रगतिशील है, परन्तु इसका हृदय व्यक्ति चिन्तन के संस्कारों से मुक्त नहीं है।

'बड़ी-बड़ी आँखें'

वाणी

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास की वाणी वय: सन्धि की अवस्था प्राप्त कर इस मुग्धा बालिका की वास्तविक बालपन की सरलता के साथ उसके हृदय में मूक प्रेम के उद्वेग अथवा उसकी संयमित संकोचशील अभिव्यक्ति के चित्रण में हमें यहाँ उपन्यासकार अश्क जी की गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। छविनाथ पाण्डेय ने लिखा है कि, "वाणी संगीत से प्रेम करती है लेकिन उसका प्रेम समुद्र के तट से टकराने वाली लहरें नहीं, बल्कि समुद्र की अगाध जलराशि है जो समस्त नदियों का जल समेटकर भी अपनी मर्यादा पर अटल रहती है। कहीं भटकती नहीं, कहीं फिसलती नहीं और एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं होती। वाणी का प्रेम अश्क जी के ही शब्दों में 'भावना' के सहारे जीवन के सागर में तैरने और कभी गोते न खाने वाला अभिन्न, अडिग, अनमोल प्रेम है।"[95]

उपन्यास में वाणी की चेष्टाओं तथा क्रिया-कलापों के साथ मानसिक दशा के भी अनेक चित्र अंकित हुए हैं। बड़े दिन के समारोह में लगभग पहली ही मुलाकात में वाणी का संगीत के पास बैठना और उर्ध्वगा दृष्टि से उसे देखते रहना, उसे अजीब-सा प्रतीत होता है। संगीत, जिसे अब तक बच्चों की पंक्ति में ही गिनता था, उसकी बातों से आश्चर्य करने लगता है। वह सोचता है, "इसने इस छोटी-सी उम्र में कहाँ से देखना सीख लिया। ... कह रही थी, मैंने कई बार सुना है आपको गाते, इस आशा में कि आप गायेंगे, मैं गयी-गयी रात तक जागा करती हूँ।"[96] किन्तु कुछ ही क्षण बाद जिस आकर्षक तथा मुग्ध

भावों से ओत–प्रोत होकर वह अपने पिता से संगीत को गाने के लिए कहने का अनुरोध करती है, वहाँ उसके भोलेपन के ही दर्शन होते हैं।

यों तो वाणी उस उम्र में पहुँच गयी है, जब अमूमन लड़कियों में समर्पण की भावना के विकास में देवाजी की कहानियों का असर भी था, जिन्हें उसने बचपन में पढ़ा था। उन्हीं कहानियों की नायिकाओं से उसने देखना, बोलना, हृदय की भावनाओं का आँखों में भरना और अपने सामने बैठे व्यक्ति के हृदय में अपनी दृष्टि को उतार देना सीखा था। प्रायः इस उम्र की लड़कियों की प्रेम भावना बेहद अशरीरी, वायवी और प्लेटॉनिक होती है, जो उदात्त आदर्श व प्रेमी के लिए बड़े–से बड़ा उत्सर्ग करके उसके हितों से तदाकार होने की वृत्तियों से प्रणोदित होती है। नायक संगीत के प्रति वाणी का प्रेम भी वैसा है। उसे पिता ही क्या किसी से भी डर नहीं। तभी वह बिना किसी भय के संगीत को देवनगर देवाजी तथा उसके प्रति प्रेम के विषय में पत्र लिखती है, "इस नगर का नाम देवनगर है, पर यह वास्तव में राक्षस नगर है। दार जी के उपदेश असर में गिरी बून्दों सरीखे हैं। चाहे आपने मुझे जो स्नेह दिया है, वह एकदम पवित्र है, पर जिनके दिलों में मैल है। वे इसे अपवित्र समझते हैं।"[97] किन्तु उसके स्नेह मिश्रित प्रेम में वासना की जरा भी गन्ध नहीं है। कैशार्य–चपलता को भी उसने बेहद अनुशासित कर लिया है। परायों के दुःख–दर्द के प्रति उसकी संवेदना ने संगीत को भी नयी दृष्टि प्रदान की है।

यहाँ तक कि वह नवी के दुःख को भी अपना ही दुःख समझती है। स्वयं संगीत वाणी के आभार को प्रकट करते हुए कहता है, "तुम नहीं जानती तुम्हें खो देने का ख्याल भी कितना तकलीफ देह है, कितना दम घोंटने वाला है, लेकिन तुमने जो आँखें मुझे बख्शी हैं, दूसरों के दुःख–दर्द को महसूस करने की जो शक्ति प्रदान की है, यह उसी का तगादा था कि मैं यों भाग जाऊँ, लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हारी उन बड़ी–बड़ी आँखों की याद जिन्होंने मेरी आत्मा को आँखें दी हैं, 'देववाणी' के आदर्श पर चलने की प्रेरणा दी है, जीवन भर मेरा पथ उजेला रखेगी।"[98]

संगीत के इन शब्दों में वाणी के चरित्र का उत्कर्ष सामने आता है। दो बड़ी–बड़ी आँखों वाली वाणी कम उम्र में ही जिन महान् आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती है, वह भारतीय नारी के सर्वथा अनुरूप है। "वह भावुक समझदार और सरल हृदय बालिका है,

लेकिन उसकी सबसे बड़ी ट्रेजडी है कि वह देवनगर के 'आदर्श समाज' की सामन्ती रूढ़ियों और पूँजीवादी मान्यताओं के दो पाटों के बीच पिस रही है। उपन्यासकार ने इसके चित्रण में काव्य जैसी मधुरता और भावोद्वेग ढाल दिया है।"[99] निःसन्देह इस उपन्यास में वाणी द्वारा भारतीय नारी के अनुरूप महान् आदर्शों का प्रतिनिधित्व हुआ है।

देवी जी

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास में देवाजी की धर्मपत्नी को देवनगर के सभी लोग देवीजी ही कहकर पुकारते हैं। ये इस उपन्यास की महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिनकी सोच और कर्म पूरे कथानक को क्रियाशील रखता है। देवीजी का चरित्र कामरूप के उस जादूगरनी-सा है जो प्रत्येक पात्र को भेड़ या बकरी बनाकर रखने में ही रस लेती है। इन्हें देव सैनिक माताजी कहते हैं। नायक संगीत सिंह से यह नाराज रहती है और तीरथराम से खुश, क्योंकि तीरथराम चापलूसी में लगा रहता है परन्तु संगीत के अहं को यह स्वीकार नहीं है। देवाजी के प्रेक्टिकल स्कूल की माताजी मैट्रन है और वहाँ इनकी ही चलती है। इस कारण वहाँ का वातावरण विषाक्त हो उठा है, क्योंकि माता के अर्द्ध सामन्ती विचारों के कारण वहाँ पक्षपात, दिखावा, छल-कपट, ऊँच-नीच एवं स्वार्थ का प्राबल्य हो गया है। यद्यपि देवाजी ने इसकी स्थापना इस विचार से की थी कि वहाँ बच्चों का स्वाभाविक ढंग से मानसिक विकास होगा। चूँकि माताजी का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा है कि यह अपने पति पर हावी है, इसलिए यहाँ चलती इन्हीं देवीजी की है। इन्हें जो सुबह उठकर नमस्ते न करे उसकी ये दुश्मन बन जाती हैं। इसी नमस्ते के कारण यह रामा थापा और संगीत से नाराज रहती हैं।

सन्तोष सिंह के माताजी के सम्बन्ध में विचार हैं, "माताजी यहाँ के सब देव सैनिकों और मुल्जिमों को अपना व्यक्तिगत नौकर समझती है और आशा करती है कि जब भी वे उनके सामने पड़ें, उन्हें नमस्कार करें, एक बार नहीं, जितनी भी बार मिले। माताजी को यदि कोई नमस्कार न करे तो उनके माथे पर बल पड़ जाते हैं।"

अश्क जी के उपन्यास में देवीजी के एक अभिमानी, अहम् से भरी नारी चरित्र का वर्णन किया है, जो पुरुष पर अपने व्यक्तित्व के कारण शासन करती है।

‘एक नन्हीं किन्दील’

अपने आप में सम्पूर्ण होते हुए भी यह उपन्यास ‘शहर में घूमता आईना’ के बाद सामाजिक चेतना के महाकाव्य ‘गिरती दीवारें’ की कथा को आगे बढ़ाता है और अपने जीवन तथा परिवेश के निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क से विकसित होते हुए नायक चेतन और उसकी सरला पत्नी चन्दा के चरित्रों का अभूतपूर्व खाका खींचता है। कैसे चन्दा अपनी सरलता और सहृदयता के पूरे आकार को पाती है।

चन्दा

चन्दा नायक चेतन की पति–पत्नीत्व की एक आदर्श मिसाल है। वह अपने पति चेतन को उसी रूप में ग्रहण करती है जैसा वह स्वयं है। उसकी किसी भी बात में किसी मीन–मेख की गुंजाइश नहीं आने देती है। चेतन की हर आकांक्षा ही चन्दा के लिए आज्ञा है। चेतन की डायरी का एक पृष्ठ चन्दा के व्यक्तित्व के इस पहलू को उजागर करता है, “कल रात जालन्धर गया था। चन्दा ने न कोई सवाल किया, न ऐतराज, चुपचाप अपने दोनों भारी गहने लाकर मेरे हाथ पर रख दिए। ... और मैं गाड़ी में बैठा लाहौर से जालन्धर तक न जाने कितने सवाल–जवाब दोहराता गया था? ... चन्दा की बात सोचता हूँ तो अचानक भाभी की सूरत आँखों में घूम जाती है ... उसी तरह दो–दो रुपये के लिए लड़ मरने वालियों की सूरत आँखों में घूम जाती है ... जाने चन्दा ने किस माँ का दूध पिया है। दुनिया की जरा–सी हवा भी उसे नहीं लगी। अंग्रेजी शब्द उधार लूँ तो कहना चाहता : शी इज ए ट्रेयर, शी इज ए प्रासलेस ट्रेयर (TREASURE)।”[100] कोई भी नारी यों किसी दूसरे के लिए अपने जेवर कभी नहीं देती है, वह उसे किसी आड़े समय के लिए बचाकर रखती है। लेकिन चन्दा एक ऐसी नारी है जो पति की किसी भी इच्छा का उल्लंघन नहीं करती और अपने सारे जेवर अपने जेठ के व्यवसाय के लिए निर्विकार भाव से पति के हवाले कर देती है। चन्दा उदात्तशील की नारी है जो अपने आठ तोले सोने का हार और कानों के दो बुन्दे चेतन के बड़े भाई रामानन्द के ‘डेन्टल केयर’ के लिए बिना किसी संकोच के अपने पति चेतन के हवाले कर देती है।

नायक चेतन के शब्दों में, “चन्दा ... भोली–भाली हँसमुख औरत है और किसी के लिए मन में हसद पालना उसके बस में नहीं।”[101] चन्दा अपनी बीमार जेठानी की सेवा

करती रहती है। वह जानती है कि उसकी जेठानी को छूत की खतरनाक बीमारी है फिर भी वह इसकी कोई परवाह नहीं करती। वह आसन्न प्रसवा है, लेकिन इसका भी कोई ख्याल उसे नहीं है।"[102]

चन्दा सच्चे अर्थों में चेतन की सहधर्मिणी, सहगामिनी, सखी और मित्र है। चन्दा का शील तो उस वक्त अपने चूड़ान्त तक पहुँच जाता है जब वह काम छोड़कर आये पति को मानसिक शक्ति प्रदान करती है।

चन्दा बैठक में ही बैठी विद्यालय का काम कर रही थी। पति को देखते ही उसकी बत्तीसी खिल गयी, किताबे उसने एक ओर रख दी और उठ खड़ी हुई। चेतन ईजी चेयर में धंस गया। क्या बात है? सहसा चन्दा ने पूछा। आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है? और चेतन पहले के सारे फैंसले भूल गया। झूठ बोलना उसके लिए असम्भव हो गया और बोला, मैंने नौकरी छोड़ दी है—उसने उदासी से कहा। चन्दा की मुस्कान और फैल गयी, फिर क्या हुआ। जैसे अपनी आँखों और वाणी से ही वह उसे दुलारती हुई बोली, "और दस नौकरियाँ मिल जाएंगी।"[103] चन्दा अपनी माँ और पिता के लिए भी अत्यधिक दु:खी है जो लाहौर ही के पागलखाने में भर्ती हैं लेकिन विवश है, वह कुछ करने के लिए। चन्दा 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास की सर्वाधिक सशक्त नारी चरित्र है जिसे लेखक ने बड़े जतन से चित्रित किया है। वह अपने पति की प्रेरणा और शक्ति है।

भाभी : चम्पावती

उपन्यास में नायक चेतन की भाभी व भाई रामानन्द की पत्नी है, चम्पावती। चेतन की भाभी चम्पावती नारी के एक-दूसरे ही पहलू को उजागर करती है। एक पहलू चन्दा के रूप में तो दूसरा रूप भाभी के रूप में।

चेतन की भाभी जिद्दी व अडियल है। वह जिस बात पर अड़ जाती है उससे विचलित नहीं होती। भले ही इसके लिए उन्हें कितनी ही परेशानियों का सामना करना पड़े। इसी अड़ियल रवैये के कारण वह अपने शरीर में यक्ष्मा जैसी घातक बीमारी लगा बैठती है। चेतन को अस्पताल में बैठे-बैठे याद आती है जब भाभी ब्याह कर पहली बार आयी थी, "चेतन जरा-सा घूँघट उठाकर अपनी भाभी का चेहरा देखता है—लम्बी नाक, नुकीला चेहरा, भरे-पूरे कल्ले, गालों पर कश्मीरी सेवों की-सी हल्की स्वाभाविक लाली

और भरपूर जवानी का चिह्न छोटे-छोटे कील, भाभी सुकोमल चाहे न हो पर बड़ी सुन्दर और स्वस्थ है।"[104] वही भाभी लेकिन न जाने इन पिछले तीन महीनों में क्या होता है कि उसका भरा गठा शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। आँखों के नीचे गड्ढे पड़ जाते हैं, गालों पर काली छाइयां उभर आती है और गोरा चिट्ठा चेहरा एकदम साँवला हो जाता है।"[105]

उपन्यास में भाभी जिद्दी स्वभाव की होने के कारण "चेतन से भी किसी बात को लेकर घूँघट करने लगती है तो मरते दम तक ऐसा ही करती है। अस्पताल में भी भाभी किसी से कुछ नहीं बोलती, चेतन से भी नहीं।"[106]

चम्पावती (भाभी) ने अपना रोग भी मायके में जाकर लगाया था। वह पति रामानन्द के मन के विरुद्ध मायके चली जाती है। पति उसकी परवाह नहीं करता तथा वह घुटती रहती है। इसका उसके मन पर प्रभाव होता है, जो उसके स्वास्थ्य का सर्वनाश कर बैठती है। चेतन की माँ (लाजवन्ती) अपनी बहु के लिए कहा करती थी, "इसके बाद भी अपनी बड़ी बहु को लेकर माँ कभी उसके जिद्दी स्वभाव की, कभी उसकी जड़ बुद्धि की, कभी उसके कठकरे जान की शिकायत करती थी और कहती थी वह भी देखेगी, कितने दिन भाई के द्वारों पर पड़ी रहती है और भाई-भाभी उसे राज कराते हैं।"[107] उपन्यास में चेतन की भाभी (चम्पावती) का सामान्य नारी की तरह का स्वार्थी रूप चित्रित हुआ है।

बाँधों न नाव इस ठाँव (दोनों भाग)

चन्दा

'गिरती दीवारें' उपन्यास की कड़ी में 'बाँधों न नाव इस ठाँव' (दोनों भाग) उपन्यास के नायक चेतन की पत्नी है, "वह मोटी-मुटल्ली, गोल-गुलगोथनी युवती। हालाँकि वह उमर में चेतन से एक वर्ष ही कम थी, चेतन तब इक्कीस का होने जा रहा था तो वह बीस की होगी, लेकिन उसे देखकर लड़की कहना चेतन से किसी तरह न होना था। वह लड़की नहीं, भरी-पूरी युवती थी। चेतन को वह अपने से बड़ी लगती थी, बड़ी और मेच्योर हैं।"[108]

चन्दा को अपने पति चेतन पर थोड़ा भी अविश्वास नहीं है। अपना सम्पूर्ण विश्वास चेतन पर डालकर वह तनावहीन, शांत और स्थिर रहती है। अपने पति को पूरा विश्वास सौंपकर नितान्त चिन्ता-मुक्त होकर रहती है। यही कारण है कि चेतन की नौकरी

छूट जाने पर भी न वह उसे उलाहना देती है, न उस पर व्यंग्य ही करती है। वरन् यह कहती है कि, "फिर क्या हुआ और दस नौकरियाँ मिल जायेंगी...।"[109]

चन्द्रा के इस एक वाक्य से चेतन के मन में अदम्य उत्साह भर जाता है और वह चिन्ता से मुक्त हो जाता है। काफी दौड़-धूप के पश्चात् भी जब चेतन को काम नहीं मिलता है तो वह काफी निराश हो जाता है, पर चन्दा उसे यहाँ भी उत्साहित करती है और कहती है, "आज नहीं तो कल मिल जायेगा। आप घबराते क्यों है? आटे की आप चिन्ता न कीजिए। आप कहिए तो मैं दस दिन का प्रबन्ध कर दूँगी। आप थक गये होंगे, रजाई ले लीजिए। मैं चाय लाती हूँ।"[110] ये शब्द चन्दा के यथार्थ शील की अभिव्यक्ति करते हैं कि वास्तव में चन्दा जैसी नारियाँ अपने घर-बार को संभालती है।

नायक चेतन की पत्नी चन्दा अत्यन्त ही सरल स्वभाव की युवती है। चेतन जब कहता है कि, "चन्द्रा सुन्दर है, खुदसर है, लाड में पली है, ट्यूटरों से पिटवा देती है तो यह सिर्फ हँस कर रह जाती है।"[111] चन्दा के मन में किसी प्रकार का सन्देह और ईर्ष्या नहीं होती है। उस समय भी उसके मन में चेतन के प्रति अगाध विश्वास झलकता है।

चन्दा के सम्बन्ध में चेतन के ये विचार उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं, "सुख-दुःख सबको सहज भाव से ले लेना, न जाने उसने कब और कैसे सीख लिया था। उस झील के पानी में कभी तूफान न उठते थे, बस एक शान्त विस्तार था और अतुल गहराई। चेतन ने कई बार उस पानी में तूफान देखना चाहा, वह दिन-दिन-भर लड़ा-झगड़ा, बोला-चिढ़ा था, पर उस प्रशांत जल में लहर तक न उठी थी और गहराई चेतन कभी उनकी थाह न पा सकता था।"[112]

उपन्यास की चन्दा भोली, सरल, हँसमुख व सीधी-सादी युवती है। इसे अपनी नहीं, दूसरों की चिन्ता हमेशा लगी रहती है। इसे अपने अभावों की न तो शिकायत है, न कभी इसके लिए अपने पति चेतन को उलाहना देती थी। चन्दा एक हँसमुख, उदार, दुःखों को सहने वाली, समझदार युवती है, मानो यह 'बाँधों न नाव इस ठांव' उपन्यास की आत्मा हो।

चन्द्रा

चन्द्रा एक उच्च-मध्यवर्गीय अफसर की रूपगर्विता, उद्दण्ड लड़की है, जो कितनी ही बार अपने ट्यूटरों को पिटवा चुकी है। डॉ. रामानन्द के शब्दों में, "चन्द्रा लाड़-प्यार में पली सुन्दर और खूबसूरत लड़की है।"

चन्द्रा दिखने में जितनी सुन्दर है उतनी बुद्धि की तीक्ष्ण नहीं है। वह दो बार मैट्रिक में फेल हो चुकी है। उसका मन पढ़ने में नहीं लगता है। जब चेतन उसे पढ़ाता रहता है वह बराबर उसका चेहरा देखती रहती है। वह एक उदमाती लड़की है जो पढ़ना छोड़ हँसना-हंसाना चाहती है, नायक चेतन की दृष्टि में, "वह सहज बातें करना चाहती है, हँसना-हँसाना चाहती है, छेड़ती है और चाहती है मैं भी उसे छेड़ूँ। पढ़ना वह नहीं चाहती। ऐसी मुंहजोर उदमाती लड़की तो मैंने कभी नहीं देखी। पिछले कुछ दिनों में जिस तरह उसने शेखी और शरारत शुरू की है, मैं हैरान रह गया हूँ। हो सकता है, मेरा तजुरबा उतना न हो, पर लड़कियाँ जिन्हें हमारे यहाँ शील-संकोच की देवियाँ कहा जाता है, यह सब कर सकती है—अगर कोई मुझसे कहता तो मैं विश्वास न करता...।"[113]

उपन्यास में कहीं पर भी चन्द्रा को कोई किसी बात का संकोच नहीं है। वह अपने प्रेम का प्रदर्शन चेतन से करती है। वह उसे काफी बढ़ावा भी देती है। अन्त में इसके लिए पिटती है। उपन्यासकार ने इसका व्यक्तित्व काफी उद्दण्ड रूप में अंकित किया है।

'निमिषा'

निमिषा

'निमिषा' उपन्यास की नायिका निमिषा जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ही माता-पिता की मृत्यु ने उसकी सोच में प्रौढ़ता दे दी जो उसकी सहेली कनक से अलग है। उसकी कविता और कला में रुचि है, इसी कारण वह गोविन्द की ओर आकृष्ट होती है, जिससे वह अपने अतीत और वर्तमान को खोलकर गोविन्द के सामने रख देती है—"मैं बारह-तेरह वर्ष की थी, जब मेरे माता-पिता मुझे अनाथ छोड़कर परलोक सिधार गये और अपने खाते-पीते और सम्पन्न सगे-सम्बन्धियों के बावजूद मैंने पाया कि मैं नितान्त अकेली हूँ। उसके बाद मैंने जो देखा है, मैं ठीक से व्यक्त नहीं कर सकती। पग-पग पर अपमान और

अवहेलना के जो कर्चो के लगे हैं उनसे दिल पत्थर हो गया है तो भी कभी–कभी बुरी तरह टीस उठती है इसलिए बी.टी. करके यहाँ चली आयी।"[114]

इस प्रकार उपन्यास के नायक गोविन्द के समक्ष अपने को स्पष्ट नहीं करती, शील के आधार तत्वों को भी खोलती है। यही है जो उसे जीवन में कोई भी निर्णय लेने में कोई अनिश्चय नहीं उत्पन्न होने देता। अपने चाचा–चाची पर आश्रित होने पर भी अपने निर्णय लेने के अधिकार को छोड़ नहीं देती। लेकिन वह दूसरे के अधिकार–क्षेत्र में भी प्रवेश नहीं करती।

निमिषा गोविन्द से प्यार ही नहीं करती, प्यार के सम्बन्ध में उसकी अपनी समझ भी है। वह विवाह को उसी प्रेम से जोड़ती है। विवाह से जुड़े कर्मकाण्ड को वह कोई महत्त्व नहीं देती। वह गोविन्द को एक पत्र में लिखती है, "आपने लिखा है कि मैं विवाह कर लूँगी तो हमारी दोस्ती कैसे निभेगी? अरे भाई, यह कोई ऐसी बात नहीं जो पलक झपकते हो जाये, विवाह के सिलसिले में मेरे विचार दूसरे हैं। अग्नि के सामने चार मन्त्र पढ़ लिए जाएँ, चार बच्चे हो जाएँ तो विवाह नहीं हो जाता। जब तक दिल ही एक सूत्र में न बँधे तो विवाह कैसा? और दिलों का बँधना कुछ वैसा आसान नहीं।"[115] निमिषा के विचारों में एक क्रान्तिधर्मिता है। वह प्यार और विवाह को सही सन्दर्भों में समझाती है, उसका गोविन्द से रहन–सहन का स्तर ऊँचा है, ज्यादा पढ़ी–लिखी और बड़े घर की बेटी है, उसकी रुचियाँ और इच्छाएँ ऊँची हैं, फिर भी वह गोविन्द के कलाकार को प्यार करती है, उसके वैवाहिक सूत्र में बन्धना चाहती है।

निमिषा के व्यक्तित्व में एक साथ दो विरोधी गुण हैं। गोविन्द एक पत्र में उसे लिखता है, "तुम बहुत भावुक हो, लेकिन अजीब बात है कि उतनी ही शक्ति–सम्पन्न भी। मैं उतना भावुक नहीं लेकिन कमजोर ढुलमुल हूँ।" [116] यही कारण है कि गोविन्द का पत्र पाकर वह भावुक हो गयी थी, उस पर नशा हावी हो गया था और अपने इसी स्वभाव के कारण वह बहुत ही विवश और मजबूर आदमी को अपना विश्वास सौंप बैठी थी। ठीक इसके विपरीत गोविन्द द्वारा एक बारगी अकेले में आर्य समाज मन्दिर में विवाह करने के प्रस्ताव को नकार जाती है, क्योंकि उसके भी अपने कुछ दायित्व हैं। वह उस क्षण भी इसे भूल नहीं जाती। उसके इस कदम को ताईद करती हुई उसकी प्रिन्सीपल कहती है, "यह

गोविन्द पुरुष होकर भी कायर है और तुम नारी होकर भी वीर हो तो इसमें शर्म की क्या बात है। आई एम प्राउड ऑफ यू ... आई एम श्योर एवरी थिंग विल बी ऑल राइट।"[117] ऐसे ही विचार निमिषा के प्रति गोविन्द का है, "बिना निमिषा को पहले से कुछ भी आभास दिये, बिना स्थिति बताये, बिना उसे कॉन्फीडेंस में लिए, यूँ उसके सामने वैसा प्रस्ताव रखना, महज एक रोमानी बचपनापन था और यदि निमिषा ने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और एक दिन की मोहलत माँगी तो इसका यही मतलब है कि अपनी तमाम रोमानियत के बावजूद वह ज्यादा जिम्मेदार, व्यवहार कुशल और दृढ़ इच्छा शक्ति रखने वाली है।"[118]

निमिषा मुसीबतों के बीच पली है। इसलिए कोई भी कठिनाई उसे बेचैन नहीं कर पाती। उसमें हर चीज सहन करने की अपार क्षमता है। उसकी दृढ़ता के सामने गोविन्द कमजोर साबित होता है। वह अपने एक पत्र में निमिषा को लिखता भी है, "इस गोरखधन्धे से निकलने की एक ही राह मुझे सुझाई देती थी पर तुम नहीं मानी। मैं तुम्हारी बात नहीं करता तुम मजबूत इरादे वाली लड़की हो, मैं जानता हूँ, तुम मेरी जगह होती तो डंके की चोट अपनी-सी कर लेती, लेकिन मैं परिवार से बँधा, कमजोर आदमी हूँ, मैं नहीं कर सकता।"[119]

निमिषा क्षणिक आवेश में न कोई निर्णय लेने, न बदलने वाली, किसी गहरी लेकिन तेज नदी की तरह वह ऊपर से शांत, स्थिर और सौम्य दिखती थी और उसके अन्तर में तेज बहने वाली धारा का पता पाना कठिन था। उसमें जबरदस्त इच्छा-शक्ति थी और इस सबके साथ कुछ अजीब-सी व्यावहारिक सुरुचि।[120] निमिषा की यही व्यावहारिक सुरुचि उसे गोविन्द की बहु को देखने के लिए ले आती है। यहीं वह पाठक की दृष्टि में बहुत ऊपर उठ जाती हैं।

नि:सन्देह निमिषा का व्यक्तित्व अतुल गहराइयों और आसमानी ऊँचाइयों का सन्तुलन बिन्दु है। उसके व्यक्तित्व की अपनी पहचान है जो उसे सबसे अलग कर देती है। वह समझदार और गम्भीर भावप्रवण और स्वाभिमानी और उम्र के मुकाबले में अपेक्षाकृत प्रौढ़ है।

कनक

कनक निमिषा की सहेली है। वह उच्चवर्ग की लड़की है। उसकी कला में अभिरुचि है, लेकिन वह जानती है कि, "प्यार और पीड़ा के बिना कला का जन्म नहीं होता। मेरी जिन्दगी में न तो कोई प्यार है, न दुःख न पीड़ा। मैं तो महज वक्त कटी के लिए शौकिया चित्र बनाती हूँ। मेरे चित्रों में वह बात कैसे आये जो उसके चित्रों में है।"[121] गोविन्द के चित्रों की प्रशंसिका होने पर भी वह उससे प्यार और विवाह नहीं कर सकती, क्योंकि बीच में उसका वर्ग चरित्र आड़े आता है। वह एक गर्वीली और हाइब्री लड़की है। उसमें बेहद दिखावा है। वह अपने-आपको बहुत समझने वाली और प्रबल अन्तर-विरोधों की स्वामिनी मानती है। एक दिन जिसकी प्रशंसा करती दूसरे दिन उसकी आलोचना करने लगती। उसके अहं को यह भी गवारा न था कि कोई उससे नाराज होकर उससे मिलना छोड़ दे। उसके सम्बन्ध में निमिषा के ये विचार उसके व्यक्तित्व की एक्स-रे रिपोर्ट प्रस्तुत करता है—"तुम्हारी यह ट्रेजेडी नहीं कि तुमने दुःख और संघर्ष नहीं देखा, तुम्हारी यह ट्रेजेडी है कि तुम दूसरों का दुःख महसूस भी नहीं कर सकती, तुम्हारे पास रेखाएँ खींचने और उसमें रंग भरने की प्रतिभा भले ही हो, लेकिन संवेदना और सेंस्टिविटी का अभाव होने से तुम अच्छे चित्र नहीं बना सकती। जो किसी दूसरे का दुःख-दर्द महसूस नहीं कर सकता, वह उनकी कृतियाँ नहीं सृज सकता।"[122]

डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण के अनुसार, "कनक आत्म-मुग्ध लड़की है। अपने को श्रेष्ठ चित्रकली होने का मुगालता पालती है।"[123] कनक का व्यक्तित्व निमिषा के व्यक्तित्व के एकदम विपरीत है।

'पलटती धारा'

यह उपन्यास 'गिरती दीवारें' का छठा खण्ड है जिसमें उपन्यासकार अश्क ने मध्यवर्गीय नारी का यथार्थ चित्रण अंकित किया है।

लाजवन्ती

'पलटती धारा' उपन्यास में लाजवन्ती उपन्यास के नायक चेतन की माँ है। जो धार्मिक प्रवृत्ति की महिला और पतिनिष्ठा की मूर्तिमान है। बाल्यकाल से ही वह तीक्ष्ण

बुद्धि की तथा परिवार में आर्थिक संकट होते हुए भी अपने परिवार का पालन-पोषण व अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने में कभी भी पीछे नहीं हटी।

उपन्यास में नायक चेतन ने लाजवन्ती का यथार्थ चित्रण इन शब्दों में अंकित किया है, "उसकी सारी जिन्दगी तकलीफों, मुसीबतों अपरम्पार संघर्ष, चिन्ता और फिक्र में बीती थी। जाने उस पतले छरहरे, सूखे, सिकुड़े तन में कैसी अद्‌भुत शक्ति थी। वह दिन-प्रतिदिन ही नहीं, रात-पर-रात काम करती थी। दो-चार दिन बिना खाना खाये रह सकती थी। उसने कभी डॉक्टर की दवा नहीं ली थी। छोटी-मोटी बीमारी वह तुलसी की पत्ती और दाल-चीनी की चाय या बनफसे के काढ़े या सौंफ का अर्क या ऐसे ही किसी घरेलू नुक्से से दूर कर लेती थी। जाने कैसी चट्टानी इच्छाशक्ति, कैसा प्रबल हठ उसके यहाँ था। सख्त से सख्त मुसीबत में भी उसे कभी परेशान नहीं देखा था। कभी उसकी आँखों में आँसू नहीं देखे। जबकि पिता कभी-कभी उसे पीटकर अधमुई कर देते थे। दिक्कत यह भी थी कि वह औरत को अपने ही पैमाने से तौलती थी और उस पैमाने पर लाखों में शायद एक औरत ही पूरी उतरे।"[124] इस प्रकार की भारतीय नारी का चित्रण शायद ही कहीं मिले जो अपने सम्पूर्ण सुखों को भूल कर जीती है।

लाजवन्ती रूढ़िवादी संकीर्णताओं में जकड़ी हुई है। नायक चेतन जब अपनी बीमार पत्नी के कामों में हाथ बँटाता है तो उसको यह अच्छा नहीं लगता है और कहती है, "तूँ भुंजे बैठा फर्श साफ कर रिहा ऐ ते तेरी बहु ही कुर्सी ते बैठी हिड़हिड़ कर रहीए। कोई लोक लाज दा वी ख्याल ए कि नई। की जागूती बहु लै आया-ए-कि ओस नूं कुर्सी ते बिठा के आप पेया झाड़ू दे रिहा ऐं।"[125]

नायक चेतन अपनी पत्नी और साली नीला के साथ सुबह-सुबह जब घूमने जाता है तो वह लाजवन्ती को अच्छा नहीं लगता है। लाजवन्ती शिमला प्रवास से लौट अपने पुत्र चेतन द्वारा पाप की कमाई से जब साड़ी ले आता है तो उसे किसी गरीब ब्राह्मण को दे देती है। लाजवन्ती धर्मपरायण व दान-पुण्य में विश्वास रखती है। चेतन द्वारा लाये फलों में से सबसे पहले वह किसी गरीब ब्राह्मणों को खिलाना अपना धर्म समझती है। "वह सदा कहती थी कि जुल्म सहना तो पाप है, लेकिन स्वयं किसी पर जुल्म करना, उससे भी बड़ा पाप है और आदमी को उस पाप का फल जरूर मिलता है।"[126]

इस प्रकार 'पलटती धारा' उपन्यास में अश्क जी ने एक भारतीय माँ (जो अभावों, मुसीबतों व आर्थिक संकट में फँसी है) की यथार्थ दर्दभरी कहानी प्रस्तुत की है।

अन्य नारी पात्र

उपन्यास के नायक चेतन की सीधी-सादी, भोली-भाली, गुल-गोथली पत्नी चन्दा, होठों में से झाँकते हुए दाँतों से मोती वाली उसकी साली नीला, दानी जैसी स्त्रियाँ—ये सभी निम्न-मध्यवर्गीय महिलाएँ हैं जो भारतीय सामाजिक नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

(ब) कालजयी पात्र सृष्टि और उनमें व्याप्त जिजीविषा एवं विद्रोह

उपेन्द्रनाथ अश्क की समाज सम्प्रक्ति इतनी गहरी है कि प्रत्येक उपन्यास में कथा का विस्तार स्वत: ही होता चला जाता है। अनगिनत पात्रों को लेकर रचा गया संसार इतना विशद् है कि अश्क जी के सामाजिक अनुभवों को देखकर आश्चर्य होता है। पाठक जिन विषयों को जानना चाहता है, अश्क जी उससे आगे बताते चलते हैं। वे किसी पात्र, घटना या परिस्थिति की तह में जाये बिना नहीं छोड़ते। इतने सघन अनुभव कम-से-कम हिन्दी साहित्य में तो प्रेमचन्द के बाद अन्य किसी लेखक में नहीं हैं। यही कारण है कि अश्क जी अपने उपन्यासों को लिखकर स्वयं को ही दुहराने-तिहराने लगते हैं। असल में अपने भोगे हुए अनुभवों की समृद्धि और जन-सामान्य से हार्दिक जुड़ाव ही रचना को यथार्थ और कालजयी बनाता है। यह प्रदर्शन अश्क जी में सघन मात्रा में है।

अश्क के उपन्यासों के सैंकड़ों पात्रों की सूची में से कुछ पात्र ऐसे हैं, जिनमें जीवन स्थितियों के विरुद्ध संघर्षपूर्ण रूप से मिलता है। उनके पहले उपन्यास 'सितारों के खेल' में बंसीलाल, लता, डॉ. अमृतराय, राजरानी और मलिक साहब, 'गिरती दीवारें' में चेतन, लाजवन्ती, कविराज रामदास, 'गर्म राख' में जगमोहन, सत्या, हरीश, दूरो व चातक, 'बड़ी-बड़ी आँखों' में संगीत और वाणी, 'पत्थर-अल-पत्थर' में हसनदीन और खन्ना साहब, 'शहर में घूमता आईना' में चेतन, 'एक नन्हीं किन्दील' में चेतन, कविराज, मिर्जा नईम वेग चगताई, चन्दा, कवि चातक, कश्मीरी लाल राग, चौधरी ईश्वरदास, शत्रुघन लालतीर, जीवन लाल कपूर, पंडित टेकाराम शाही, आजाद लाल, शिवप्रसाद जख्मी, भूतना (रामचन्द्र), 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दोनों खण्ड में) चेतन, लाला हाकिमचन्द,

'निमिषा' में गोविन्द व निमिषा और 'पलटती धारा' उपन्यास में नायक चेतन, लाजवन्ती इन सभी में संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह का अद्‌भुत मिश्रण मिलता है। समाज के बँधे-बँधाये ढर्रे को तोड़ने और प्रगतिशील समाज का निर्माण करने की इनकी इच्छा ही इन्हें सैंकड़ों पात्रों से अलग करती है और यह बताती है कि जीवन उन लोगों का नहीं है जो धारा के साथ बहते रहने को विवश हैं वरन् यह तो उन लोगों के द्वारा ही जिया जाता है, जिनमें अपूर्व हिम्मत, साहस तथा क्षमता है। निश्चय ही ऐसे पात्र जीवन में न्यून हैं तो साहित्य में भी न्यून होंगे।

चेतन में संघर्ष और जिजीविषा की जो मात्रा मिलती है वह उसे अमर चरित्र के रूप में चित्रित करती है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में वह उन परिस्थितियों से जूझता है जो समाज में व्याप्त हैं। "आर्थिक विषमता तथा प्रेम सम्बन्धी कुण्ठा, जिनसे साधारण व्यक्ति जूझता है और अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए उनसे टकराता है।"[127] बाह्य जीवन की अपनी पराजय से आक्रान्त होकर चेतन पहले प्रकृति की गोद में शरण लेता है, फिर कला-रचना में संतोष पाना चाहता है। उसके घर का वातावरण बेहद कटु है। शराबीपिता (शादीराम), निकम्मे बड़े भाई (रामानन्द), लड़ाकू भाभी (चम्पावती) और उनके अलावा उसकी अपनी पत्नी चन्दा, जिसे वह पत्नी के रूप में स्वीकार तो कर लेता है, किन्तु उसके प्रति भीतर से उन्मुक्त नहीं हो पाता। बाहरी जीवन और भी कठोर है। पहले वह एक स्कूल का मास्टर बनता है, फिर परिस्थितिवश समाचार-पत्र की नौकरी करता है और उसके श्रम तथा प्रतिभा का बुरी तरह दोहन किया जाता है। लेखक ने उपन्यास में ऐसे चरित्रों की भीड़ खड़ी की है जो मिल-जुलकर और अलग-अलग जोंक की तरह चेतन के शरीर से चिपटे उसका रक्त चूसते रहते हैं। इन सारी लोकों में कविराज रामदास, चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का भला करने और उनकी प्रतिभा को चूसने वाली एक सबसे मोटी, सबसे चिकनी और सबसे चालाक जोंक है।"[128]

कविराज रामदास चेतन से स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें लिखवाते हैं और उसे नाममात्र का पारिश्रमिक देकर अपना घर भरते हैं। उपन्यास माला में अस्तित्व की रक्षा के लिए बाहरी जीवन की परिस्थितियों से चेतन का संघर्ष महाकाव्यात्मक विस्तार के साथ चित्रित हुआ है। वह वस्तुतः चेतन की जिजीविषा है, जो उसे हरा कर निष्क्रिय नहीं बैठने देती। एक के बाद एक नौकरी छोड़ते हुए, एक के बाद एक बहुरुपिए और धूर्त के चरित्र

का पर्दाफाश करते हुए वह उनसे निपटने का संकल्प लेता है, यद्यपि उसका यह संकल्प पूरा नहीं हो पाता और परिस्थिति-वश उसे बार-बार उसके चंगुल में फँसना पड़ता है। यह सिलसिला भी 'बाँधों न नाव इस ठांव' तक जारी रहता है।

फिर इस उपन्यास माला में अर्थ अपने अहं की समस्याओं से चेतन के संघर्ष का बड़ा ही यथार्थ और जीवन्त चित्रण हुआ है। यह संघर्ष अकेले चेतन का संघर्ष नहीं है, वरन् हर निम्न-मध्यवर्गीय युवक का सामाजिक संघर्ष है। जैसा यथार्थ है—चेतन अन्त तक इस संघर्ष से उभर नहीं पाता। 'बाँधों न नाव इस ठांव' के दूसरे भाग में चेतन लाला हाकिमचन्द की भड़की 'चन्द्रा' की ट्यूशन स्वीकार करके इसीलिए उनके साथ शिमला जाता है कि कुछ पैसे एकत्र करके लॉ कॉलेज लाहौर में प्रवेश ले सके, किन्तु लाला हाकिमचन्द भी एक वैसा ही जोंक है, जिसके चंगुल से वह किसी प्रकार बचकर निकलता है और लॉ कॉलेज में प्रवेश लेने की उसकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है। सम्पूर्ण उपन्यासमाला में बाहरी जीवन की कठोरतम परिस्थितियों से चेतन के संघर्ष का विशद् चित्रण है और जैसाकि हमने कहा, इस संघर्ष में परिस्थितियाँ ही चेतन पर हावी रहती हैं और अर्थ के संघर्ष में वह असफल ही रहता है। उसके चरित्र का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह अन्त तक हार नहीं मानता, पुन: नये सिरे से संघर्ष की तैयारी शुरू कर देता है। उसका अहं बार-बार खण्डित होता है। उसका मन बार-बार विद्रोही होता है, किन्तु जैसा कि निम्न-मध्यवर्ग की नियति है, उसका एकाकी विद्रोह अन्ततः उसी के भीतर शांत हो जाता है।

कामजन्य समस्याओं के चित्रण के क्रम में चेतन की दबी कुण्ठाएँ उघड़ती हैं। अपनी आदर्शप्रियता में वह नीला के पिता को सलाह देता है और एक दिन उसे नीला के विवाह का निमन्त्रण मिलता है। नीला के पिता उसका विवाह एक अधेड़ मिलिट्री एकाउण्टेन्ट से कर देते हैं जो रंगून में नौकर था। चेतन नीला के विवाह में सम्मिलित होने के लिए जाता है और जब वह तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था की नीला के अधेड़ पति को देखता है तो एक गहरी अपराध भावना उसके मन में बैठ जाती है। उसे लगता है कि जैसे नीला के जीवन का विनाश करने का दोषी वही है। अपनी अपराध भावना से ग्रस्त चेतन ससुराल में एक कमरे में पड़ा रहता है। नीला की विदाई के समय भी पत्नी द्वारा बार-बार कहने के बावजूद उसकी हिम्मत नीला के सामने जाने की नहीं होती।

विषम जीवन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष और जीवन के प्रति उद्दाम जिजीविषा चेतन को सामान्य से ऊपर उठाती है। अश्क जी ने इस पात्र की संरचना किसी अवतारवाद या चमत्कारपूर्ण ढंग से न करके शुद्ध मानवीय आधार पर की है, इसलिए उसकी कमजोरियों को भी वे छिपाते नहीं हैं, वरन् बताते हैं कि एक आदमी संघर्ष की भावना और जिजीविषा के होते किस प्रकार उन परिस्थितियों से ऊपर उठता है, जिन स्थितियों में सामान्य व्यक्ति टूट जाता है।

'सितारों के खेल' उपन्यास के बंसीलाल, लता, डॉ. अमृतराय और राजरानी ऐसे पात्र हैं जिनमें संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह मिलता है। लता पौराणिक सती का आधुनिक रूप है और बंशीलाल उस कोढ़ी तथा पंगु पति का प्रतीक है। लता के जीवन को एक आकस्मिक घटना के उपरान्त, जिसके कारण बंशीलाल पंगु बन जाता है, उसके साथ बाँध कर लेखक मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर लता के चरित्र का विश्लेषण करता है। लता के चरित्र तथा जीवन में सामन्त युगीन मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह की भावना परिलक्षित होती है।

'बंसीलाल' का चरित्र एक भावुक तथा उत्कृष्ट प्रेमी का चरित्र है। लता पर मुग्ध होकर अपने जीवन का बलिदान करने वाला यह व्यक्ति एक दिन अपनी प्रेयसी से तिरस्कृत होकर अपने मकान की तीसरी मंजिल की खिड़की से छलांग लगा देता है और घायल होकर तथा विकलांग बनकर अस्पताल में प्रविष्ट किया जाता है, जहाँ लता जी-जान से उसकी सेवा-सुश्रुषा आरम्भ करती है। इसके विपरीत बंसीलाल के उन्माद तथा त्याग ने लता पर गहरा प्रभाव डाला, जिसके फलस्वरूप वह बंसीलाल के बलिदान के चित्र से स्नेह करने लगी। लता की भावुकता ने कालान्तर में वास्तविकता का रूप धारण किया। बंसीलाल के बलिदान का चित्र अस्पष्ट होने लगा और उसके मांस-पिण्ड का चित्र भयंकर रूप धारण करके उभरने लगा। इस स्थिति में लता के जीवन में तीसरा व्यक्ति डॉ. अमृतराय के रूप में आया। अमृतराय, जो अपने जीवन में तीन विभिन्न नारियों के सम्पर्क में आ चुका था, लता के त्याग पर इतना मुग्ध हो गया कि एक दिन साहस बटोरकर उसने लता के प्रति अपना प्रेम-भाव प्रकट कर ही दिया। परन्तु बंसीलाल का जीवित मांस-पिण्ड दोनों के बीच दीवार की तरह खड़ा हुआ था। इस दीवार को तोड़ने के लिए लेखक ने बंसीलाल को लता के हाथ से विष दिलवाया परन्तु नियति के कठोर विधान ने डॉक्टर

और लता का गठबन्धन न होने दिया। लता का भयंकर रोग से ग्रस्त होना तथा मरने से पहले उसका डॉक्टर से बंसीलाल की बहिन राजरानी से विवाह करने का अनुरोध करना।

उपन्यास का वातावरण विवशता तथा निराशा की भावनाओं से व्याप्त है। इसी कारण सम्भव है, उपन्यास का नाम 'सितारों के खेल' अथवा भाग्य के खेल रखा गया हो। बंसीलाल, लता तथा अमृतराय का प्रेम प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण असफल हो जाता है। नियति का विधान कठोर अवश्य है, नारी न देवी है और नहीं दानवी है उसका निजी व्यक्तित्व है जो पौराणिक युग में दमित था, परन्तु जिसका विकास आधुनिक व्यक्तिवादी युग में अनिवार्य है।

'राजरानी' का संघर्ष व्यक्तिगत विद्रोह का प्रतीक है। वह अपने भाई बंसीलाल के लिए अपने शरीर का मांस देती है फिर भी वह ठीक नहीं हो पाता है तो उसे बड़ी उदासी होती है। वह हर परिस्थिति में संघर्ष करने वाली रही है। जब लता बंसीलाल को विष दे देती है, तब भी वह कठोर रहती है और यथार्थ सत्य से पीछे नहीं हटती है। लता की अनुपस्थिति में वह मलिक साहब की सेवा-सुश्रुषा करती है। उसी का परिणाम होता है कि वह सब कुछ प्राप्त कर लेती है।

'लाजवन्ती' 'गिरती दीवारें' उपन्यास के नायक चेतन की माँ में जिन्दगी का वह अहं संघर्ष मौजूद है जो भारतीय नारी का संघर्ष होता है कि वह किस तरह से अभावों में रहती हुई अपने पारिवारिक वातावरण से संघर्ष करती है। अपने शराबी पति के हर जुल्म सहकर भी अपने बच्चों का पालन-पोषण करने में किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ती है। अपनी महत्त्वाकांक्षा को चिर-स्थायी बनाने के लिए उसी वातावरण में संघर्ष करती हुई वह उन सभी को सहज रूप से स्वीकार कर लेती है जैसा उसका पति चाहता है। उसका संघर्ष आधुनिक नारी का प्रतीक भी है।

'गर्म-राख' उपन्यास के जगमोहन, सत्या, हरीश, दुरो, चातक ऐसे पात्र हैं जिनमें संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह मिलता है। ये चरित्र रोमानी होते हुए भी जनसंघर्ष एवं नये युग की स्थापना में विश्वास करते हैं। 'चाँदनी रात और अजगर' के चरित्र विश्वास और साहस के साथ मानव की अभिनव शक्ति के गीत गाते हैं। 'गर्म राख' का एक चरित्र कवि चातक एक-दूसरे पात्र जगमोहन से कहता है, "वर्तमान संघर्ष में वह अपनी सौन्दर्योपासक

वृत्ति खो चुका है। गर्म राख में खोयी हुई चिनगारी की तरह वह अनायास चमक उठेगा।"[129] "एक समय था जब बी.ए. पास करते ही युवकों के लिए नौकरी के दरवाजे खुल जाते थे। आज बी.ए. की वकत मैट्रिक से अधिक नहीं।"[130] "अब सर्दियों की बरसाती रात की दुनिया है और भीगे से कम्बल-सा है यह जीवन।"[131] लेकिन आशा यही है कि सुबह होगी, सूरज निकलेगा और यह कम्बल सूखेगा। इसीलिए जगमोहन कहता है कि बिना इस समाज का ढाँचा बदले हम जैसों के लिए कुछ नहीं हो सकता। 'गर्म राख' उपन्यास में अश्क जी ने एक जगमोहन नामक पात्र के आधार पर निम्न-मध्यवर्गीय युवक की यौन सम्बन्धी कुण्ठाओं का चित्रण किया है। जगमोहन अपनी साधन-हीनता और सामाजिक विपन्नता के बीच आकांक्षा और महत्त्वाकांक्षा की गुत्थी सुलझाता रह जाता है। चारित्रिक दृढ़ता का भी इस युवक में अभाव है। प्रेम करता है और तोड़ देता है। दूसरी प्रेमिका की तलाश उसे बराबर रहती है और वह सामाजिक जीवन दर्शन से बहुत दूर हटकर अवसरवादी बन जाता है।

'दुरो' में संघर्ष की आग है, सामाजिक अनीति के प्रति रोष और प्रतिकार की क्षमता है। हरीश का उदात्त रूप उपन्यास में स्पष्ट है पर संघर्ष का नेतृत्व इसलिए नहीं खुल पाता कि संघर्ष प्रस्तुत में दूर तक नहीं खुला और जिस प्रकार उसमें उसकी भूमिका-मात्र सूचित हुए, हरीश की क्रियमाणता भी भूमिका से आगे नहीं बढ़ी।

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास में देवाजी, संगीत सिंह, वाणी और तीरथराम ऐसे पात्र हैं जिनमें संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह मिलता है। नायक संगीत सिंह में उसकी गहरी आन्तरिक चुभन, वेदना और आत्मग्लानि छिपी हुई है। मोती से सफेद दाँतों वाली और खुलकर हँसने वाली उसकी पत्नी का मधुर साहचर्य, आखिर मौत ने एक लम्बी बीमारी देकर छीन ही लिया और विवाह के पहले कुछ वर्ष की व्यामोहावस्था को एक क्रूर झटका लगा। मन की अशांति दूर करने के लिए वह देवनगर आया, लेकिन विडम्बना तो यह रही कि यहाँ उसे और भी कचोटती अशांति मिली। किन्तु मन्थर गति का पहला झटका बड़े दिन की शाम को आयोजित उस समारोह में लगता है, जब वाणी संगीत सिंह के निकट बैठकर अपने पिता, चचेरे भाई और तीरथराम को हैरत में डाल देती है। यही उसकी झुकी-झुकी आँखों की ऊर्ध्वगामी दृष्टि के पैनेपन का परस संगीत सिंह को बहुत गहरे जाकर छू लेता है। उसे अपने संतृप्त मन को सहला जाने वाले स्नेह की एक क्षीण आभा

के दर्शन तो होते हैं, किन्तु तीरथराम की ओर से आने वाले भावी संघर्ष के संकेत को वह नजरअंदाज नहीं कर पाता है, “सामने के स्तम्भ से लगे तीरथराम से मेरी आँखें चार हुई। वह निर्निमेष हमारी ओर देख रहा था—भौंहे चढ़ी और आँखें तनी थीं और उसके चेहरे पर एक काला-सा बादल घिर आया था।”[132]

जिस कदर डाइनिंग हॉल और बाहर मैदान की छिटपुट मुलाकातों के साथ संगीत के प्रति वाणी का हमदर्दी और स्नेह मिश्रित प्रेम उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया, तीरथराम की जासूसी उतनी ही सजग और सरगर्म होती गयी और विद्वेष की कड़ुवाहट स्पष्ट होती चली गयी। तीरथराम, हरमोहन आदि की ओर से व्यक्तिगत स्तर पर पल रही ईर्ष्या और जलन की चरम परिणति ‘एप्रिल फूल’ की उस घटना से मिलती है, जिसमें नाबालिग लड़की को बहकाने का झूठा अभियोग गढ़कर संगीत का सरेआम मजाक उड़ाया गया। इस प्रसंग से घटनाक्रम जिस पर्यवसान की ओर मुड़ता है, वह शायद कुछ समय के लिए थम जाता है। यदि इसके पूर्व ही वैचारिक और सैद्धान्तिक स्तर पर नबी के दाखिले को लेकर देवाजी और संगीत के बीच मन-मुटाव की दरार न पड़ गयी होती। वाणी की सहानुभूति और स्नेह इस दरार को भर देते हैं, किन्तु जब फिर देवसैनिकों की ओर से नबी को नौकरी से अलग करने का आग्रह बढ़ता जाता है तो संगीत उसे निकालने की बजाय स्वयं ही देवनगर छोड़कर चला जाना श्रेयस्कर समझता है। यही उसकी प्रमुख विशेषता है कि वह अन्त तक उन सभी से संघर्ष करता रहता है।

संगीत उपन्यास का प्रमुख पात्र है। उसके जीवन में अपने कुछ सिद्धान्त है, आदर्श हैं, जिसके लिए वाणी के प्रेम तक को ठुकरा देता है। वह निम्न-मध्यवर्ग का ही कमजोर इन्सान है, आदर्शों का पुतला नहीं। वह एक ऐसा इन्सान है, जिसकी जिन्दगी में चन्द उसूल हैं, जिसे वह अपने व्यक्तित्व से इसलिए नहीं अलग करना चाहता, क्योंकि वह अपनी आत्मा का हनन कर आत्म-प्रवंचना का शिकार नहीं बनना चाहता।

संगीत इस वर्ग का आदर्शवादी युवक है जो आदर्श पर चलने के लिए छटपटा रहा है और वाणी एक युवती है जो संगीत को इस विकट पथ पर चलने के लिए उत्साह और स्नेह प्रदान करती है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उसके अन्तर की बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो बड़े-बड़े सपने देखती हैं। उपन्यास में जीवन-चित्रण देवनगर नामक संस्था से

सम्बन्ध है, जिसके संचालक देवाजी, उनकी पत्नी और अन्य देव सैनिक हैं जो प्रेम के आधार पर समाज का नव-निर्माण करना चाहते हैं। सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में, "उपन्यास का स्वरूप कथानक जीवन में आदर्श तथा यथार्थ का संघर्ष दिखाता हुआ पाठक के मन को आशा, नैराश्य, आनन्द, अवसाद, प्रेम, विद्वेष, विश्वास, विद्रोह तथा स्वभाव और परिस्थितियों की समानान्तर रेखाओं के मध्य से ले जाकर उसे मानव भावना की नींव पर आधारित एक ऐसे देवनगर में विचरण करता है, जहाँ स्वर्ग और नरक एक-दूसरे से आँख-मिचौनी खेलते से प्रतीत होते हैं और व्यक्ति के खोखले स्वप्न सामूहिक परिस्थितियों की ठोस निर्मम चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। लेखक की धारणा है कि समाज को बदलने के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न विफल होकर रह जाते हैं और जो नेतागण इस उद्देश्य को साकार रूप देने में प्रयत्नशील हैं, वे अपने आदर्शों को आवश्यकता पड़ने पर विकृत रूप देने से नहीं हिचकिचाते हैं।

'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास का नायक हसनदीन कश्मीर की घाटी में तेरह-चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर हिम-मण्डित शिखरों से घिरी अल पत्थर की जी मोह लेने वाली सौन्दर्यपूर्ण झील को देखने जाने वाले विजिटरों और उन्हें उस झील तक ले जाने वाले एक आस्तिक घोड़ावान की कहानी है जो नियति के हाथों अपने को विवश पाता है और अपने सारे कर्मों का सम्बन्ध खुदा से जोड़कर सन्तोष कर लेता है। इस प्रकार जैसे वह अपनी जिन्दगी की कडुवाहट, व्यथा, उद्वेलन, परिस्थितियों की विषमताओं की चोटें एवं जलालत को झुठलाने की कोशिश करता है, हसनदीन और उसके जैसे तमाम निम्नवर्गीय लोगों का यही भाग्य है, जिसे अश्क जी ने इस उपन्यास में पूर्ण सशक्तता एवं यथार्थता से उभारा है।

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में चेतन की व्यक्तिगत समस्याओं-अन्तर्संघर्षों की कहानी है। उपन्यास में चेतन सोचता है कि नीला से उसका प्रेम, फिर उसी के कारण नीला का एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से विवाह हो जाना, ये सब उसके अपराध और दुःखभाव का कारण है। वात-चक्र के लगातार घूमने वाले तृण-पात की तरह बीसियों विचार उसके दिमाग में बवण्डर मचाते थे।

इसके अलावा चेतन अपनी दूसरी समस्या से भी परेशान था और वह है उसकी नौकरी। इन्हीं मन:स्थितियों में वह घर से बाहर निकल पड़ता है। रास्ते में न जाने कितनी घटनाएँ उसके मस्तिष्क में सजीव होने लगती हैं, विभिन्न व्यक्तियों से मिलना-जुलना और वह वर्तमान जीवन में जीता हुआ अतीत की ओर मुड़ने लगता है। पर तभी उसे अपनी हीन दशा पर अत्यन्त क्षोभ होता है। उसे यह देखकर अपार दु:ख होता है कि उसके साथी जो उससे कहीं पीछे थे, आज कितना आगे बढ़ गये हैं और वह अभी भी आर्थिक विषमताओं में फँसा अपना जीवन दु:खमय ढंग से व्यतीत कर रहा है। चेतन उन सारे निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक तरुणों का प्रतीक बनकर उभरता है, जो इन या उन कारणों से अपने को टूटा हुआ-निराश पाते हैं। फलस्वरूप कुण्ठा, निराशा, घुटन एवं वैषम्य के दम घोंटू वातावरण में वे दिशाहारा की भाँति भटकने लगते हैं। मानव इस प्रक्रिया में पूर्ण रूप से टूट जाता है। पर इससे पहले कि चेतन टूट जाय, अश्क जी ने पर्याप्त कलात्मकता से उसे टूट कर बिखरने से बचाया है। उसकी पत्नी चन्दा उसकी आँखों के सामने छाये निराशा एवं घुटन के आवरण को मूलोच्छेदन करती है और तभी चेतन यह समझ पाता है कि यह जीवन खोने के लिए नहीं है, जीने के लिए है, वरन् उन विशमताओं से समझौता कर आशा के प्राणवान सम्बल के आश्रय पर जीने के लिए है।

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में चेतन एक संघर्षशील व्यक्ति है। जीवन के संघर्ष में व्यक्ति प्राय: टूट जाते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ उसे कहीं दबा नहीं पाती। उनके चैलेन्ज को उसने सदैव स्वीकार किया है। संघर्षशील व्यक्ति अपने में सिमटकर प्राय: स्वार्थी और कठोर स्वभाव के हो जाते हैं। इसके विपरीत चेतन अपने चारों ओर के सम्बन्धों के प्रति अत्यधिक सजग हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने भाई-भाभी, सास-ससुर, पत्नी सभी के लिए चिन्तित होकर उनके जीवन की कठिनाइयों को दूर करने में सक्रिय सहयोग प्रदान करता है। संघर्ष और त्याग का यह संयोग उसके चरित्र में जगह-जगह चमक उत्पन्न करता है। उसकी पत्नी चन्दा जो उस जैसी बौद्धिक और कुशल नहीं है, अपनी सरलता, निस्पृह सेवा-भावना, निश्छलता और मूलभूत भलमनसाहत के कारण पाठकों के हृदय को जीत लेती है।

नायक चेतन एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक संघर्ष से जूझता नया आदमी, जो अपनी परम्पराओं और दमघोंटू परिवेश से उबरने की कोशिश में दो कदम आगे बढ़ता है

तो एक कदम पीछे हटने के लिए भी मजबूर किया जाता है जो इतना भाव-प्रवण है कि अपने बड़े भाई की दाँतों की डॉक्टरी जमाने के लिए अपनी सरल-हृदया पत्नी के मायके से मिले जेवर तक बेच देता है। वास्तव में चेतन मानवता की सर्वोच्च अहन्मन्यता का प्रतीक है, मानवीय व्यक्तित्व का एक नायाब नमूना, जिसे अश्क जी ने अनुभव और यथार्थ की जिन्दगी से प्रामाणिक बनाकर पेश किया है।

उपन्यास में चेतन का जन्म ऐसे परिवार और परिस्थितियों के बीच हुआ है कि वह अभाव और कष्ट का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। उसके अहं को अनेक कारणों से बार-बार ठेस लगती है। उपन्यास में उसका जीवन कई खण्डों में विभाजित है। घर का जीवन, स्कूल का जीवन, पत्रकारिता का जीवन, एक लेखक का जीवन और सबसे ऊपर अपने सपनों का जीवन, कहीं भी तो कुछ ठीक नहीं है। इसीसे हम उसे सभी मोर्चों पर कठिन संघर्ष करते और धीरे-धीरे सफल होते जाते देखते हैं। अत: 'एक नन्हीं किन्दील' निरन्तर संघर्ष के भीतर से विकसित होने वाले जीवन यात्रा का एक अलौकिक अंश है।

'बाँधों न नाव इस ठांव' उपन्यास के पहले खण्ड में तकलीफ और तनाव चेतन के जीवन संघर्ष की कथा है। चेतन एक बेरोजगार युवक है। शादी-शुदा है। यह कानून की परीक्षा पास कर मजिस्ट्रेट बनने की महत्त्वाकांक्षा संजोए हैं। वह एक लेखक व स्वाभिमानी व्यक्ति है तथा अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए ही वह 'भूचाल' पत्र की नौकरी जीवनलाल के मुँह पर दे मारता है। उसका बड़ा भाई दन्त चिकित्सक है पर चेतन की मदद करने लायक नहीं कमा पाता। अत: चेतन के समक्ष मुख्य समस्या उसके अस्तित्व की रक्षा की है। वह आजीविका कमाने के लिए कोई काम पाने की गरज़ से लाहौर के साहित्यकारों के पास जाता है। उनकी छोटी-छोटी कारिस्तानियां चेतन के सामने स्पष्ट हो जाती हैं क्योंकि हरेक अपनी शर्तों पर चेतन की सहायता करना चाहता है। चेतन इस वर्ग के लोगों से प्राप्त अपमान को पी जाता है पर किसी के सामने झुकता नहीं। चेतन अपने जीवन में तकलीफों और तनावों को झेलता हुआ कभी ट्यूशन करता है, पत्रों के लिए लिखता है, रूमाल बेचता है, टुच्चे साहित्यकारों की दुरभिसन्धियों के बीच अपना काम निकालता है। साहित्यिक संस्था चलाने के लिए चन्दा इकट्ठा करता है। जैसे-जैसे वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करने के लिए पैसा एकत्र करने की कोशिश करता है उसकी

तकलीफें और तनाव बढ़ते जाते हैं। उसका संघर्ष कई स्तरों पर व्यक्तित्व स्तर पर अपना तथा पत्नी का गुजारा करने लायक पैसों का जुगाड़, नौकरी की तलाश तथा स्वाभिमान की रक्षा, साहित्यिक स्तर पर स्वयं को लेखक के रूप में स्थापित करने तथा टुच्चे साहित्यकारों से निपटने की समस्या, पारिवारिक स्तर पर भाई और माँ से तालमेल बैठाने की समस्या आदि।

'एक रात का नरक' उपन्यास का नायक स्वयं अश्क है जो एक बार शिमला में सीपी मेला देखने जाता है। वहाँ के यथार्थ सत्य को अश्क जी यथार्थ में देखना चाहते थे कि वहाँ की रियासत के राजा आज भी प्राचीन परम्पराओं का निर्वाह करते हैं। लेकिन उसे संयोग से दूसरी ही परिस्थिति से गुजरना पड़ता है। राजा की सवारी निकल रही होती है। वह पास में खड़े एक सैनिक से पूछ बैठता है कि राजा कहाँ तक पढ़े हुए हैं। सैनिक उसे धक्का देता है और वह उठाकर सैनिक के तमाचा रख देता है। परिणाम यह होता है कि उसे एक तहखाने में कैद कर दिया जाता है। तहखाने में सीलन, अँधेरा और बू है जिससे उसका दम घुटने लगता है। जेल से छूटने के बाद समाज के घृणित व्यक्ति लाला हाकिम जैसे लोग छुड़ाने के नाम पर उस पर अथाह कर्जा चढ़ा देते हैं। अत: सारांश रूप में कहा जा सकता है कि एक साधारण व्यक्ति को ऊपर उठने के लिए जीवन में क्या-क्या संघर्ष करने पड़ते हैं? और वहाँ के अत्याचारों को सहन करने के लिए अपनी सभी भावनाओं को दफन कर दिया जाता है।

'निमिषा' उपन्यास में गोविन्द का संघर्ष व्यक्तिगत संघर्ष है। अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् वह स्वच्छन्द वातावरण में निवास करने के लिए देवनगर चला जाता है। पत्र के माध्यम से उसकी मुलाकात निमिषा नामक लड़की से होती है जो गोविन्द के विवाह के विषय में पूछती है परन्तु गोविन्द आनन-फानन में अपने परिवार वालों से संघर्ष कर अकेला ही निमिषा से विवाह करना चाहता है। उसके लिए निमिषा तैयार नहीं होती है और गोविन्द को पूर्व निश्चित किये गये विवाह को ही स्वीकार करना पड़ता है। उसकी दूसरी पत्नी माला से उसका व्यक्तिगत संघर्ष जारी रहता है जो नहीं चाहते हुए भी विवाह कर लेता है। वह अपनी पत्नी माला से निजात पाने के लिए सुनसान राहों में घूमता-फिरता रहता है।

उपन्यास की नारी पात्र निमिषा अपना जीवन घोर नैराश्य, विषाद व संघर्षपूर्ण जीवन जीती है क्योंकि बचपन में ही उसके माता–पिता इस संसार को छोड़कर स्वर्गलोक चले जाते हैं। इसके बाद निमिषा को वह वातावरण नहीं मिल पाता है जो उसे मिलना चाहिए। लेकिन फिर भी वह अपने जीवन को ऊपर उठाती है। वह जीवन के प्रत्येक कदम पर अपने–आप से समझौता करती है। इसी का परिणाम था कि वह रैनाला में हैड मजिस्ट्रेट बन सकी। अपने माँ–बाप का प्यार ना पाकर भी वह जीवन से समझौता करती है और इसी संघर्ष में वह गोविन्द को भी अकस्मात् विवाह के लिए मना कर देती है कि विवाह में सभी शामिल हों, वह तभी विवाह करेगी अन्यथा नहीं। अश्क जी ने निमिषा में वे सभी संघर्ष दिखाये हैं जो एक संघर्षशील नारी में होते हैं।

'पलटती धारा' उपन्यास में चेतन का जीवन एक संघर्षशील जीवन है। लॉ–कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए उसके सामने आर्थिक समस्या आ जाती है। जैसे–तैसे कर वह अपनी माँ से फीस की रकम तो जमा करा देता है परन्तु लाहौर में रहने, किताबों, कापियों और अपने खर्च के लिए उसके पास कुछ नहीं बचता है। इसके लिए चेतन जगदीश प्रोपराइटर के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाता है। चातक जैसे कवियों के सम्पर्क में न आना चाहते हुए भी अपनी समस्या के लिए उसके लिए नाटक लिखता है और उसे पग–पग पर अपमानित होना पड़ता है लेकिन वह मजबूर होता है उसका संघर्ष अपनी माँ, पिता व पत्नी चंदा से भी है जो उचित वातावरण नहीं मिलने पर वह इधर–उधर भटकता रहता है।

निष्कर्ष

उपेन्द्रनाथ अश्क जी के उपन्यासों का केनवास बहुत ही विस्तृत है। 1990 से लेकर सन् 1996 तक के काल को रचना में बाँधना कोई मामूली काम नहीं है। यह असाधारण कार्य उन्होंने उन पात्रों के जीवन को पुन: सृजित करके किया है, जो आजीवन विद्रोह, जिजीविषा और संघर्ष को अपना मूल मन्त्र मानकर समाज की बुराइयों को दूर करने में लगे रहे। इस प्रकार के पात्र समाज में कम नहीं होते हैं। इसलिए साहित्य में भी उनकी संख्या उसी के अनुरूप महत्त्व रखती है। अत: अश्क जी के उपन्यासों में आये इस प्रकार के पात्र हिन्दी उपन्यास साहित्य का गौरव है। अश्क जी ने उपन्यास कला के माध्यम से समाज को, समाज में नवयुवकों को यह सन्देश पहुँचाया है कि अपने स्वाभिमान की

रक्षा करते हुए हमें निरन्तर संघर्ष करते रहना चाहिए और सामाजिक बुराइयों को दूर कर समाज को स्वच्छ व उन्नति के शिखर पर पहुँचाना चाहिए तभी जाकर सभी का जीवन सुखद और मंगलमय बनेगा।

सन्दर्भ

1. भैरव प्रसाद — नाटककार अश्क, पृ. 462
2. भैरव प्रसाद — नाटककार अश्क, पृ. 461
3. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 20
4. शिवदान सिंह चौहान — साहित्यानुशीलन, पृ. 232
5. डॉ. बेचन — आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ. 177
6. ओंकार शरद — सितारों के खेल : एक विवेचन, पृ. 11
7. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 78
8. ओंकार शरद — सितारों के खेल : एक विवेचन, पृ. 11
9. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 721
10. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 103
11. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 196
12. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी — हिन्दी कथा साहित्य, पृ. 179
13. शिवदान सिंह चौहान — साहित्यानुशीलन, पृ. 233
14. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार 'अश्क', पृ. 135
15. डॉ. सुरेश सिन्हा — हिन्दी उपन्यास : उद्‍भव और विकास, पृ. 17-18
16. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 122
17. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 181
18. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 343
19. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 231
20. अश्क — आस्था और भी है, पृ. 79
21. अश्क — गर्म राख, पृ. 121-122
22. अश्क — गर्म राख, पृ. 208
23. अश्क — गर्म राख, पृ. 508
24. अश्क — गर्म राख, पृ. 453
25. अश्क — गर्म राख, पृ. 500

26. अश्क — गर्म राख, पृ. 208
27. अश्क — गर्म राख, पृ. 230
28. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — आज का हिन्दी उपन्यास, पृ. 100
29. अश्क — शहर में घूमता आईना, पृ. 156
30. अश्क — शहर में घूमता आईना, पृ. 123
31. डॉ. मक्खनलाल शर्मा — 'आलोचना-35 (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक) जनवरी-1966, पृ. 159
32. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव : अपने पाठकों और मित्रों से, पृ. 11
33. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव : अपने पाठकों और मित्रों से, पृ. 11
34. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव : अपने पाठकों और मित्रों से, पृ. 17
35. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 548
36. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 765-66
37. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 7
38. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 49
39. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 57
40. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 420
41. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 58-59
42. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 62-63
43. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 64
44. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 65-67
45. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 68-70
46. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 70-71
47. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 71
48. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 452
49. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 469
50. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 469-470
51. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 564
52. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 565
53. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 567
54. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 577
55. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 324
56. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 333

57. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 338
58. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 338
59. डॉ. मक्खनलाल शर्मा — 'आलोचना', 31 अक्टूबर-दिसम्बर, 1974, पृ. 73
60. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव।
61. डॉ. मक्खनलाल शर्मा — 'आलोचना', 31 अक्टूबर-दिसम्बर, 1974, पृ. 45
62. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 102
63. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 224
64. अश्क — 'बड़ी-बड़ी आँखें' में बाँधों न नाव इस ठांव का परिचय
65. अश्क — निमिषा, पृ. 14-19
66. अश्क — निमिषा, पृ. 71
67. अश्क — निमिषा, पृ. 92
68. अश्क — निमिषा, पृ. 94
69. अश्क — निमिषा, पृ. 157
70. अश्क — निमिषा, पृ. 294-95
71. अश्क — निमिषा, पृ. 218-19
72. अश्क — निमिषा, पृ. 225
73. अश्क — निमिषा, पृ. 256
74. अश्क — पलटती धारा, पृ. कवर पेज
75. अश्क — पलटती धारा, पृ. 124
76. अश्क — पलटती धारा, पृ. 196
77. अश्क — एक रात का नरक, पृ. 7
78. उपन्यासकार अश्क : उपन्यास मेरी दृष्टि में, पृ. 121
79. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 58
80. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 58
81. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 59
82. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 233
83. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 117
84. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 117
85. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 129
86. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 37
87. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 37
88. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 46

89. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 113-114
90. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 199
91. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 575
92. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 575
93. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 201
94. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 201
95. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 210
96. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 42
97. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 145
98. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 159
99. राजीव सक्सेना — उपन्यासकार अश्क, पृ. 276
100. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 278-79
101. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 383
102. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 385
103. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 777
104. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 296
105. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 296
106. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 307
107. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 318
108. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 23
109. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 19
110. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 64 (भाग एक)
111. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 656
112. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 519 (प्रथम भाग)
113. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव, पृ. 183 (भाग दो)
114. अश्क — निमिषा, पृ. 142
115. अश्क — निमिषा, पृ. 172
116. अश्क — निमिषा, पृ. 78
117. अश्क — निमिषा, पृ. 162
118. अश्क — निमिषा, पृ. 173
119. अश्क — निमिषा, पृ. 103
120. अश्क — निमिषा, पृ. 194

121. अश्क — निमिषा, पृ. 55
122. अश्क — निमिषा, पृ. 22
123. डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण — उपन्यासकार 'अश्क', पृ. 98
124. अश्क — पलटती धारा, पृ. 201-202
125. अश्क — पलटती धारा, पृ. 210
126. अश्क — पलटती धारा, पृ. 416
127. डॉ. सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास, पृ. 121
128. शमशेर बहादुर सिंह — उपन्यासकार अश्क : अश्क आधी मंजिल पर, पृ. 139
129. अश्क — गर्म राख, पृ. 63
130. अश्क — गर्म राख, पृ. 119
131. अश्क — गर्म राख, पृ. 174
132. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 233

❑

पंचम अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना के विविध वर्ग

(अ) निम्न वर्ग

(ब) मध्यम वर्ग

(स) उच्च वर्ग

पंचम अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना के विविध वर्ग

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' सामाजिक परिवेश में मध्य एवं निम्नवर्ग के प्रति अत्यधिक संवेदनशील उपन्यासकार हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में विशद् एवं गहन सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास शृंखला की कड़ियों में स्वतन्त्रता से पूर्व यथार्थ भारत विभाजन से पूर्व के जालंधर, लाहौर व शिमला की भूमि पर हो रहे मानव (मनुष्यता) के हाहाकार ने उन्हें झकझोरा था। इसलिए वे मनुष्य के विखंडन, नैतिक ह्रास, संवेदनशील वातावरण एवं नृशंस स्वार्थों की लड़ाई का चित्रण करते हैं। यह वह समय था जब वे अपनी लेखनी की धार धर रहे थे। इस प्रयत्न में थे कि लाख कोशिशों के बाद भी मनुष्यता का ह्रास नहीं होने पावे। अत: उपन्यास 'गिरती दीवारें' शृंखला के नायक चेतन का अपना जीवन संघर्षशील, आर्थिक विषमता और वैमनस्यता के भावी संसार के निर्माण का और वास्तविकता का है। उनके जीवन की कहानी निरन्तर संघर्ष और जिजीविषा की है। 'गिरती दीवारें' शृंखला की यह जिजीविषा अश्क जी के जीवन दर्शन का मूल रही है। उनके प्रत्येक उपन्यास में यह जिजीविषा सिर चढ़कर बोलती है।

उपन्यास साहित्य में सामाजिक परिवेश जितना जीवन्त होता है वह उतना ही सफल उपन्यास माना जाता है। इसके लिए जीवन के प्रति गहरी और सूक्ष्म दृष्टि का होना आवश्यक है। जिस लेखक के पास गहरी और सूक्ष्म दृष्टि का अभाव होगा वह उतना ही सतही लेखक होगा। अन्ततः लेखन की सामग्री तो सामाजिक जीवन से ही मिलती है और सामाजिक जीवन कोई वायसी वस्तु है नहीं, जिसकी घर बैठे कल्पना की जा सके। अश्क जी प्रेमचन्द की परम्परा के अग्रणी कथाकार है। प्रेमचन्द सामाजिक जीवन के यथार्थ

रचनाकार हैं। उनके कथा साहित्य में अपने युग की विभीषिका चित्रित हुई है। कहा जाता है कि यदि स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास नष्ट हो जाये तो भी प्रेमचन्द के कथा साहित्य के आधार पर उसकी पुनर्रचना हो सकती है। यह बात प्रमुख नहीं है कि किस प्रकार इतिहास लेखन साहित्य के माध्यम से सम्भव होगा। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि प्रेमचन्द अपने समय से इस सीमा तक जुड़े हैं कि युग इतिहास का लेखन उनके लेखन के आधार पर किया जा सकता है। किसी भी बड़े लेखक की यह महत्त्वपूर्ण कसौटी है।

अश्क जी इस कला की कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनके उपन्यास 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्हीं किन्दील', 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दो भाग), 'पलटती धारा', 'गर्म राख', 'एक रात का नरक', 'छोटे-बड़े लोग', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'चन्द्रा', 'निमिषा', 'एक नन्हीं लौ' और 'पत्थर-अल-पत्थर' अपने समय के इतिहास लेखन के प्रति प्रामाणिक तथ्य जुटाने के लिए पूर्णतया सक्षम है। यही नहीं बल्कि उनके उपन्यासों में जो समान वर्ग, वर्ण और अन्य सांस्कृतिक परम्पराओं के जीवन्त वर्णन और विभाजन मिलते हैं, वे उन्हें पूरी तरह सामाजिक चेतना का प्रखर वक्ता घोषित करते हैं। उनकी दृष्टि सदैव समाज पर रही। समाज में हो रहे विकास के साथ-साथ पतन को भी वे उसी ईमानदारी से उठाते हैं तथा यह एक संयोग ही नहीं है कि उनके बृहत् उपन्यास 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'एक रात का नरक' और 'निमिषा' के पात्र लेखक हैं। अश्क जी किसी-न-किसी रूप में स्वयं उपस्थित रहकर समाज की प्रगति से खुश होते हैं और पतन से दु:खी। यह एक अनोखा पहलू है कि अश्क जी खुशी में बल्लियाँ नहीं उछालते और दु:ख में 'ढेरों आँसू नहीं बहाते' बल्कि इतिहास और सामाजिक अध्ययन से उन सूत्रों को तलाश करते हैं जिनके कारण ये स्थितियाँ बनी। ऐसे अवसरों पर उनका ज्ञान रचनात्मकता पर हावी नहीं होता वरन् सारे तथ्यों के बावजूद रचनात्मकता ही बरकरार रहती है। अश्क जी की यह विशेषता अपने समकालीनों में उन्हें श्रेष्ठ बनाती है। यह गुण उनके मानवतावादी दृष्टिकोण की देन है।

डॉ. सुरेश सिन्हा इस विशेषता के बारे में लिखते हैं, "उपन्यासों का जो भी उद्देश्य हो लेकिन यदि लेखक के पास अपना कोई मानवतावादी दृष्टिकोण नहीं है तो समाज की विघटनकारी शक्तियों एवं प्रतिक्रियावादी तथ्यों का चित्रण करने एवं नवीन मूल्यान्वेषण करने का दावा भी अपने आप में झूठा हो सकता है।"[1]

अपने युग के प्रति सचेत रहकर ही लेखक समकालीन जीवन की चुनौतियों का सामना कर सकता है। स्वाधीन भारत में जिस द्रुत गति से विकास हुआ, विकास के दुष्परिणाम भी सामने आये। इन सब स्थितियों का तथ्यात्मक आकलन करने में लेखक की अपनी सामाजिक दृष्टि काम करती है। स्वाधीनता के बाद ग्रामीण जीवन पर उपन्यास लिखने वाले दो बड़े कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन हैं। नागार्जुन के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'बलचनमा' में उनकी साम्यवादी दृष्टि से निस्सृत लोक का चित्रण है। जो शोषण के विरुद्ध बलचनमा जैसे खेतीहर श्रमिक को संघर्ष के लिए खड़ा करता है। यह उपन्यास अपनी समस्त विशेषताओं के बावजूद सामाजिक यथार्थ का ईमानदार प्रयास नहीं कहा जा सकता है। जबकि रेणु जी के 'मैला आँचल' में स्वाधीन भारत के राजनीतिक दलों की आपाधापी, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि के साथ गाँव की शांत जिन्दगी में आयी राजनीतिक हलचल का यथार्थ अंकन हुआ है। 'बलचनमा' में नागार्जुन एक पात्र के द्वारा उस स्थिति का वर्णन करते हैं, जिसमें सामाजिक शोषण समाप्त हो सके तथा रेणु जी उन राजनीतिक दलों को गाँव से ले जाते हैं जो सारे देश के भाग्य विधाता हैं और अन्त में अपने भाग्य का विधान भी नहीं बना पाते। दोनों लेखकों में यह अन्तर्दृष्टि, विचार और दर्शन का अन्तर है, जिसे समझे बिना किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है।

उपेन्द्रनाथ अश्क एक पात्र को खड़ा करके सारे समाज का नियंता बना डालने की भूल नहीं करते। वे समाज के प्रतिनिधि पात्रों का चयन करते हैं और युग सत्य को उन्हीं की गतिविधियों–संवादों के द्वारा व्यक्त करते हैं। अपने सामाजिक परिवेश के चित्रण का यह उपयुक्त ढंग है। इसके माध्यम से युग सत्य तो प्रकट होता ही है, साथ ही वे पात्र भी अस्तित्व ग्रहण करते हैं जो अपने युग की विभीषिका के संवाहक बनते हैं। सामाजिक परिवेश के चित्रण के लिए अश्क जी समाज को वर्गीय आधार पर बाँटते हैं, यह विभाजन यथार्थवादी है। वास्तविक रूप में आर्थिक आधार ही व्यक्ति की मन:स्थिति का निर्धारण करता है। इसलिए आर्थिक आधार पर समाज का विभाजन उपयुक्त है। धनी और निर्धन के बीच बँटा यह समाज जिन दारुण स्थितियों को भोग रहा है, वे महत्त्वपूर्ण हैं।

सामाजिक परिवेश के प्रति चैतन्य भाव जिन लेखकों में सर्वाधिक मिलता है वे कालजयी रचनाएँ देने में सक्षम रहे हैं। प्रेमचन्द (सेवासदन), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (चंद हसीनों के खतूत), चतुरसेन शास्त्री (हृदय की परख), राधिकारमण प्रसाद सिंह,

भगवती प्रसाद वाजपेयी, ऋषभचन्द सैन, सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, निराला, रेणु, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, नागार्जुन, नरेश मेहता आदि की रचनाएँ इसका प्रमाण है। कहने का अभिप्राय यह है कि सामाजिक परिवेश से अलग रहकर न कोई रचना जीवन्त बन सकती है और न वह जनजीवन में अपना प्रभाव ही छोड़ सकती है। उपेन्द्रनाथ अश्क इस दृष्टि से जीवन्त व सफल लेखक हैं कि समाज की हर एक परिस्थितियों पर उनकी बहुत गहरी पकड़ रही है। इसलिए उनकी रचनाएँ अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है। समाज को वर्गीय आधार पर परख उन्होंने जो सारांश दिये हैं वे युग की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

समाज की वर्गीय संरचना का मूल आधार पूँजीवाद है। सामन्ती युग में यह वर्ग विभाजन नहीं था। वहाँ तो केवल जमींदार और उसकी प्रजा ही थी। जमींदार राजा-महाराजाओं के प्रति और राजा-महाराजा अंग्रेजों के प्रति उत्तरदायी होकर गरीब जनता का शोषण कर रहे थे। यह शोषण कितना विकट था, इसका अनुमान लगाना भी दु:खदायी है। अंग्रेजों ने आते ही सबसे पहला काम 'फूट डालो और राज करो' के तहत हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़ा दिया। जो दो धर्म भारत में भाईचारे से रह रहे थे, जो देश के विकास में कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रहे थे आपस में ही उलझने लगे और विकास की जगह विनाश के उपाय सोचने लगे। दरअसल ब्रिटिश सरकार भी यही चाहती थी कि दो कौमों में एकता स्थापित न हो पाये, वे ताकत न पायें। इस एकता में फूट पड़ने से अंग्रेज निश्चिंत होकर अपना शासन संचालन करने लगे। धर्म के आधार पर फूट डालकर उन्होंने देश की उस प्राचीन व्यवस्था को खत्म किया, जिसमें ढाका जैसे औद्योगिक नगर शामिल थे। किसी समय भारत का मैनचेस्टर कहलाने वाला ढाका धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। लगातार अकाल-महामारी की शिकार जनता का अनेक स्तरों पर शोषण होता रहा। जमींदार, राजा व सामंत अपने प्रभुत्व को बचाये रखने के लिए अंग्रेजों की मनमानी के आगे नतमस्तक ही रहे। अंग्रेजों ने न केवल भारतीय उद्योगों को नष्ट किया, अपितु यहाँ के परम्परागत लघु उद्योगों पर भी कुठाराघात किया।

सन् 1925 के बाद ब्रिटेन, अमेरिका और जापान औद्योगिक दृष्टि से अत्यधिक विकास कर रहे थे। वहीं भारत में अंग्रेजों की नीति उद्योग विरोधी रही। सन् 1927 में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को दिया गया अनुदान वापस ले लिया और दूसरी ओर

विरोध के बावजूद भारतीय रुपये का अवमूल्यन कर भारतीय उद्योग की कमर ही तोड़ दी। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को एकाएक भयानक झटका लगा और इसका प्रभाव केवल नगरों तक ही नहीं, गाँवों में भी पहुँचा और गाँव की अर्थव्यवस्था भी इसने छिन्न-भिन्न कर डाली। हिन्दुस्तानी कृषकों के पास जो संचित स्वर्ण था उसे बेचने के लिए वे बाध्य हुए।

सन् 1927 से 1937 तक चलने वाले इस आर्थिक संकट ने देश में विषमता का नंगा नाच किया। इससे भारतीय जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। सन् 1931 से 1935 के बीच इंग्लैण्ड ने भारत से कम-से-कम 3 करोड़ 20 लाख ओंस सोना ऐंठ लिया। जिसका मूल्य 20 करोड़ 30 लाख पोण्ड आंका गया। अर्थ संकट से पहले इंग्लैण्ड के सुरक्षित कोष में कुल जितना सोना था, यह मात्रा उससे भी अधिक थी। सन् 1936 से 1937 के बीच भारत से 3 करोड़ 80 लाख पोण्ड मूल्य का सोना इंगलैण्ड भेजा गया। इस प्रकार 1931 से 1937 के सात वर्षों के दौरान कुल 24 करोड़ 10 लाख पोण्ड मूल्य का सोना ब्रिटेन भेजा गया। वही निर्धन जनता की मामूली बचत थी, इंग्लैण्ड पहुँच गयी।"[2]

निरन्तर शोषण और अत्याचारों की शिकार भारतीय जनता के दु:खों की कोई सीमा नहीं थी। लेकिन अच्छी बात यह थी कि किसी प्रकार की निराशा जन मन में नहीं थी। पूरी तरह स्वाधीनता पाने के लिए कटिबद्ध भारतीय जनता अनेक स्तरों पर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लड़ रही थी।

पूँजीवाद ने अमीर और गरीब के बीच मध्य वर्ग को जन्म दिया। यह वर्ग वह है, जिसके नेत्र सदैव उच्च वर्ग के विलास पर टिके रहते हैं और पैर निम्नवर्ग की अंतहीन गरीबी के कीचड़ में। औद्योगिकीकरण के साथ उद्योगों में कलम का काम करने वाले बाबूओं की आवश्यकता अनुभव हुई। यह बाबू वर्ग ही मध्य वर्ग था। बाद में अनेक स्थानों पर अनेक स्तरों पर इसकी आवश्यकता हुई। "उपन्यास पूँजीवादी युग का महाकाव्य है। यह इस नये युग की ऐसी आवश्यकता है जिसकी पूर्ति करने में युग की अन्य प्रचलित साहित्यिक विधाएँ असमर्थ हैं। उपन्यास का सम्बन्ध वास्तविक जीवन से है। यह महान् घटनाओं की खोज करता है। उसका रचना क्षेत्र तो दैनिक जीवन की साधारण घटनाएँ हैं।"[3] इसी पूँजीवादी युग में दैनिक जीवन के साधारण पात्रों को लेकर उनकी साधारण सी दिखने वाली घटनाओं को लेकर उपन्यास का सृजन किया जाता है।

इसलिए आधुनिक पूँजीवादी युग में समाज में तीन वर्ग स्पष्टत: बन गये हैं—उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। विचित्र स्थिति यह है कि ये तीनों वर्ग एक-दूसरे के पूरक न होकर विरोधी बन गये। लेकिन चूँकि विभाजन रेखा गहरी है, इसलिए शोषण के मुद्दे पर भी तीनों के अपने विचार व मत हैं। उच्चवर्ग सोचता है कि वह मध्य और निम्नवर्ग को रोजगार देता है इसलिए वह खड़ा है। उसी के कारण इनका अस्तित्व है। वही देश की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। लेकिन अफसोस यह है कि उसके मानस में यह बिल्कुल नहीं है कि वह अपने से नीचे वालों का शोषण कर रहा है और शोषण करके ही अनाप-शनाप पूँजी एकत्रित कर रहा है।

यह विचित्रता ही है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त युवक अपनी विवशता के कारण कम पैसे पर इसके यहाँ नौकरी कर रहा है और साथ ही अपनी कॉलर को सफेद ही बनाये रखने के लिए शोषण की मशीन में तेल का काम कर रहा है। हालाँकि शोषण उसका भी कम नहीं हो रहा है, लेकिन निम्न वर्ग से ऊँचा दिखने और प्रतिष्ठा सम्मान की झूठी इच्छाओं में भ्रमित होने के कारण वह यथास्थितिवादी हो गया है। निम्नवर्ग के अधिकारों की माँग और उनकी लड़ाई को ऐसी हिकारत भरी नजरों से देखता है जितनी हिकारत भरी नजरों से उसका मालिक उसे देखता है। यह मध्यवर्ग स्वयं में छद्म है। आर्थिक आधार पर दु:खी, मानसिक रूप से पराधीन और शारीरिक श्रम के नाम पर नपुंसक यह मध्यवर्ग शोषण की निरन्तरता का कारण बना हुआ है। निम्न वर्ग के अपने अंतहीन कष्ट हैं। रात-दिन परिश्रम करने के बाद भी पेट भर रोटी के लिए तरसता यह वर्ग कथाकारों की संवेदना का प्रमुख विषय रहा है। आर्थिक रूप से निर्बल और शारीरिक रूप से सफल यह निम्नवर्ग समाज के विकास में सदैव अग्रणी रहा है।

उपेन्द्रनाथ अश्क जी के उपन्यासों में वर्ग विभाजन बहुत ही स्पष्ट है। सामाजिक परिवेश को वर्गों में बाँटकर जीवन्त किया गया है। उनके उपन्यासों में आये वर्गीय चित्रण को तीनों वर्गों के आधार पर ही परखा जा सकता है।

उच्च वर्ग

उच्च वर्ग का चरित्र-चित्रण विकास, रोजी-रोटी की समस्याओं में नहीं हुआ है। उनको चरित्र विरासत में मिला होता है। उनकी भावनाएँ, संवेदनाएँ अलग हैं। प्रेमचन्द से

पूर्व के उपन्यासों का उच्च वर्ग जमींदारों, पण्डितों, मिल–मालिकों आदि से निर्मित हुआ और उनका चरित्र पैसे बटोरने के मामले में ही उभरा। धीरे–धीरे उच्च वर्ग में नर–नारी दोनों सामने आने लगे।

अश्क जी के उपन्यासों में उच्च वर्ग बहुत कम मात्रा में है। जहाँ गरीबी के कारणों और उनके नियामकों को जनता के सामने नंगा करने की स्थिति बनती है वहाँ के उच्च वर्ग के पात्रों की क्षुद्र–वृत्ति का वर्णन करते हैं। इस वर्णन में उनकी घृणा भी सम्मिलित होती है। अपने उपन्यास 'सितारों के खेल' में लता का जगत के प्रति झुकाव देखकर लता के पिता मलिक बाबू ने यही अनुभव किया कि उसके साथ लता की शादी क्यों न कर दी जावे? परन्तु देवता स्वरूप उस वृद्ध लता के पिता को यह ज्ञात नहीं था कि जगत के हृदय में उस राक्षस का निवास है जो सदा प्रेम करके उसे वासना के रूप में पा जाना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। इसके साथ ही वह लता में ऐसे गुण भी नहीं पा रहा था जिन्हें वह वास्तव में अपनी पत्नी में देखना चाहता है। वह चाहता था ऐसी पत्नी, जो उसको देवता माने, उसकी आज्ञा को वेद वाक्य समझे, उसके लिए जीवन तक अर्पण कर दे जो पतिव्रता को और जो उसकी सेवा को ही स्वर्ग समझे।"[4] बिना बताये वह अपने गाँव चला जाता है और वहाँ से ही पत्र के रूप में मेघदूत सुनाने वाले जगत की वास्तविकता प्रकट हो जाती है। उच्च वर्ग की यह अमानवीय भूमिका समाज को गर्त में ले जा रही है। दुनिया की हर वस्तु पर अधिकार करने और श्रेष्ठ दिखने की लालसा में उच्च वर्ग ने गरीबों का जीना हराम कर दिया है।

अश्क जी ने अपने विशाल उपन्यास 'गिरती दीवारें' की माला में उच्च वर्ग की समाज विरोधी विकृत सोच को चित्रित कर प्रतिनिधि रूप में उसकी भूमिका को रेखांकित किया है। नायक चेतन का कविराज रामदास के साथ शिमला में रहने पर जो उद्बोधन होता है उसे हम निम्नस्थ पंक्तियों में पूर्ण रूप से देख सकते हैं––"शिमला जाने से पहले कविराज चेतन को आश्वासन देता है वह उसकी कहानियों के संग्रह छपवाने के लिए कागज की व्यवस्था कर देगा। चेतन भावावेश में आकर इतना प्रसन्न होता है कि मन–ही–मन उस संग्रह को कविराज को समर्पित करने की सोच लेता है। यहाँ तक कि वह मन में वह मसौदा भी तैयार कर लेता है, लेकिन यह श्रद्धा, यह मिथ्या मोह अधिक देर तक बना नहीं रहता। यद्यपि कविराज बोलने में बहुत कुशल है तथा उनकी बातें आदर्शवादी

प्रतीत होती है। उनकी बातें सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति सच्चा-ईमानदार और मेहनती होगा। जब वे चेतन को उपदेश देते हैं, "उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए, कविराज ने अपने भाषण को जारी रखते हुए कहा, लगातार कोशिश, मेहनत, निष्ठा और लगन के अलावा इस बात की भी जरूरत है कि हम अपने हाथ के काम को सब्र के साथ पूरा करें। उसी में रस पायें। काम को काम की खुशी के लिए करें। जब हम अपने हाथ के काम को खत्म कर लें तो हमारा मन खिन्न न हो, बल्कि प्रसन्न हो, यह खूबी उन्हीं लोगों में होती है जिन्होंने सफलता प्राप्ति को अपनी जिन्दगी का लक्ष्य बना लिया हो।"[5]

परन्तु धीरे-धीरे उन पर से आदर्श का खोल उतरता जाता है और वह असली रूप में सामने आ जाते हैं। वे मन्दिर में जाकर पुजारी को कहते हैं कि "बचपन से ही मेरी इच्छा थी कि मैं बड़ा होकर ऐसा पेशा अपनाऊ जिसमें जनता की ज्यादा-से-ज्यादा सेवा हो सके। जब मैंने बी.ए. पास कर लिया और जिन्दगी में कुछ काम करने का सवाल पैदा हुआ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा की रोगियों की सेवा करनी चाहिए और मैंने वैद्य बनने का फैंसला कर लिया।"[6] यह कहकर उन्होंने मंदिर के पुजारी को एक रुपया दिया और साथ ही प्रत्येक माह एक रुपया भिजवाने का आश्वासन दिया, परन्तु दूसरे ही साँस यह भी कह दिया कि, "मैं बच्चों के पालन-पोषण पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि उस पुस्तक का इतिहास इस दीवार पर लिखवा दिया जाये। ताकि यहाँ आने वाले महानुभाव इससे लाभ उठा सके। पुण्य का काम है अगर आप ... और इस प्रकार धर्म की आड़ लेकर उन्होंने पुस्तक का विज्ञापन उस मन्दिर की दीवार पर लगा दिया।"[7]

इस घटना से चेतन के समक्ष दो सत्य प्रकट हुए। प्रथम तो यह कि वह जो पुस्तक लिख रहा है, वह कविराज रामदास के नाम से छपेगी और दूसरा रामदास निहायत ही धूर्त प्रकृति का व्यक्ति है जो अपने स्वार्थ के लिए धर्म का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकता तथा इसी प्रकार वह प्रत्येक वर्ष किसी युवा साहित्यकार को पहाड़ पर लाकर उससे पुस्तक लिखवाकर उसका शोषण करता है।

चेतन अब उसकी वास्तविकता को जान चुका था। अत: उसके प्रति चेतन का सारा आदर क्षण भर में समाप्त हो गया। उसे अपनी स्थिति का आभास हो गया कि वह भी

यादराम की तरह कविराज का नौकर है। इस वास्तविकता से परिचित होते ही चेतन का मन रामदास के प्रति क्रोध से भर गया और उसने गाली निकालते हुए मन–ही–मन कहा–

"हरामजादा! चेतन ने मन–ही–मन दाँत पीसकर कहा, तू मुझे बिल्कुल उल्लू समझता है पर अब मैं तेरी बातों में आने से रहा।"[8] और मन्दिर से जाते समय कविराज के पीछे–पीछे अन्दर चलने लगे तो, उसका आक्रोश इस रूप में निकला–"जाओ, भागो! कविराज के पीछे चलते हुए मन–ही–मन चेतन ने बन्दरों से कहा, "तुम्हें क्या मालूम है कि इस शख्स की प्रकट दया माया के अन्दर एक खून का प्यासा शोषक भी छिपा है। अच्छा है कि यहाँ तुम महावीर की छत्रछाया में रहते हो। यहाँ तुम्हें भोजन भी मिल जायेगा और श्रद्धा भी, पर अगर कभी तुम रुल्दू भट्टे तक इनके पीछे–पीछे चले जाओ तो इनकी दया माया का सारा भरम तुम पर खुल जायेगा।"[9] और सोचने लगता है कि यह धर्म क्या पूँजी का दूसरा रूप नहीं? चेतन ने सोचा पूँजी ही की तरह यह हजारों गरीबों के खून–पसीने की कमाई पर फल–फूल कर मोटा नहीं हो रहा क्या?"[10]

पहली बार चेतन की भावना कठोर यथार्थ से टकराती है और टकराकर चूर–चूर हो जाती है। वह विद्रोह नहीं कर सकता क्योंकि वह आश्रित है। अत: केवल यही सोच कर रह जाता है, "उन निराश क्षणों में जब उसकी आँखों से कल्पना का पर्दा हट गया तो उसने सारे संसार को उसके यथार्थ रूप में देखा। उसने पाया कि उसके इर्द–गिर्द जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं, एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं, दूसरे में पीड़ित हैं शोषित हैं। यह एहसास कि यह पीड़ित और शोषित हैं, उसे खिन्न किये दे रहा था।"[11]

इस प्रकार कविराज रामदास के आदर्शों की पोल धीरे–धीरे खुल जाती है। शोषक वर्ग की यह एक विशेषता है कि वह अत्यन्त व्यवहार कुशल और मृदुभाषी होता है। कविराज में वे समस्त गुण हैं। कविराज रामदास अत्यन्त मृदुभाषी है। यही कारण है कि चेतन को उसकी वास्तविकता का पता चल जाने पर भी वह उन्हें छोड़कर शिमला से वापस नहीं आ पाता अपितु उनकी पुस्तक लिखकर ही वापस आता है। साथ ही, "कविराज तथा उसकी पत्नी की 'सहृदयता', सहृदयता तो दूर उनकी दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था।"[12] इन्हीं अनुभवों से वह समाज व्यवस्था तथा वर्ग चेतना का यथार्थ रूप पहचान लेता है। अपने नायक को शोषक–

शोषित की वर्ग–विषमता तक पहुँचा कर भी उपन्यासकार ने अपने पात्रों को पूर्णतया दो वर्गों में नहीं बाँटा। जहाँ कविराज रामदास का शोषक तथा धूर्ततापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है वहाँ लेखक उसके हृदय के कोमल पक्षों को भी प्रकट करना नहीं भूलता। लेखक इन क्षणों का उपयोग चेतन के चिंतन को और भी सही मार्ग दिखाने के लिए प्रेरित करता है।

"कविराज जग रहे थे और चेतन सोचता था ... इसने अवश्य कभी–न–कभी प्रेम किया है। चाहे उस प्रेम की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गई हो लेकिन वह एकदम बुझ नहीं गई, कहीं उस व्यावहारिकता, चतुराई, व्यापार, प्रवंचना, छल–कपट के नीचे दबी पड़ी है।"[13]

इसी से उसका भावुक हृदय महास्वार्थी, धूर्त कविराज रामदास से समझौता करता दिखाई पड़ता है। वह सर्वदा व्यक्ति–व्यक्ति के बीच की सामाजिक तथा आर्थिक विषमता की अनेक दीवारें देखता रहता है और देखता ही रह जाता है। उन्हें गिराकर अपना मार्ग प्रशस्त करने में वह कमजोरी महसूस करता है।

इसी प्रकार जयदेव, यादराम (कविराज के नौकर) और कविराज के बीच में पड़ी आर्थिक विषमता की दीवारें दिखायी पड़ती हैं। इन्हीं परस्पर दीवारों के मध्य में उपन्यास का अन्त होता है जो करुण वातावरण छोड़ता है।

गर्म राख

'गर्म राख' उपन्यास में उच्च वर्ग का रोटी की समस्या से कोई वास्ता नहीं। जैसे– "तरक्की तो करा दोगे बाबूजी, पर इससे हमारा क्या भला होगा...? कुछ ऐसा करो बाबूजी जिससे हमको भी खाने के दो टुकड़े मिलते रहे।"[14]

सेक्स की समस्या निम्नवर्ग के सामने है जो विकृत रूप में दिखाई पड़ती है। उच्च वर्ग के सामने यदि है तो केवल मात्र विलास के रूप में। कवि चातक के यहाँ कुछ अजीब–सी घुटन जगमोहन को महसूस हुई थी... "यह कैसा प्रेम है? ... यह कैसी भूख है? ... केवल एक दृष्टि विनिमय अथवा एक भेंट पर वे ऐसे गीत लिख सकते हैं, जिनके शब्द–शब्द से रास सरीखा प्रेम रस टपकता है।"[15] उच्च वर्ग की वासना के रूप को भी उपन्यासकार ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है, "पिछली शाम पण्डित जी की आँखों में उसने विचित्र–सी लालसा की जो झलक देखी थी उसे देखकर जगमोहन को पूरा निश्चय हो

गया था कि वे सत्याजी को कॉलेज में ले लेंगे। जगमोहन ने पहले ही कुछ बुजुर्गों की आँखों में वासनाजनित लालसा की झलक देखी थी। उसका एक मित्र था कुलवन्त। उसके पिता अवकाश प्राप्त कानूनगो थे ... बच्चे जब खेलते-खेलते उनके निकट से गुजरते तो एकाध को पकड़कर वे अपनी बगल में भींच लेते। उनके गालों को चूम लेते और तब उनके अपने गाल सुर्ख हो जाते। उनकी आँखों में कुछ वैसी ही वासनाजनित लालसा तमतमा उठी।"[16]

एक नन्हीं किन्दील

इस उपन्यास में नायक चेतन की उस कहानी को प्रस्तुत किया गया है जिसमें वह अपने चारों ओर की विषम परिस्थितियों, महत्वाकांक्षाओं, सपनों एवं मानसिक चिन्ताओं के साथ उच्च वर्ग के शोषण प्रधान वातावरण का बिना किसी हिचकिचाहट के सामना करता हुआ अपना उतार-चढ़ाव का जीवन व्यतीत करता है। नायक चेतन जब शिमला में धूर्त कविराज रामदास के शोषण का शिकार बन जालन्धर में साली नीला की शादी रंगून के विधुर से होती देख इस नये घाव के लिए मुहल्ला कल्लोबानी से अपने घर वापस आ जाता है। घर में माँ और पत्नी के प्यार को पाने पर भी वह अतीत के दु:ख से दूर रहते हुए कार्यक्षेत्र में लगकर उसे भूल जाना चाहता है। फलस्वरूप वह लाहौर आ जाता है। लाहौर आकर घर की समस्या के साथ नौकरी की समस्या का भी उसे सामना करना पड़ता है।

वह कविराज के विषय में सोचने लगता है जिसने उसे भाई साहब को पैसे न भेजकर घर की समस्या का सामना करने के लिए विवश कर दिया। पैसे न देते हुए भी वे उसे उपदेश देना अपना गौरव समझते हैं। "यदि तुम लगातार किसी की सहायता करो तो वह यह नहीं सोचेगा कि तुम उस पर कोई एहसान कर रहे हो, बल्कि वह तुम्हारे इस सद्व्यवहार के पीछे कोई प्रयोजन ढूँढ निकालेगा। ... यह कि तुम नितान्त मूर्ख हो और वह परम् चतुर होने के नाते तुम्हें बेवकूफ बना रहा है, कि मूर्खों को मूर्ख बनाना चतुर लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार है।"[17] इसी उपदेश के कारण ही चेतन को लाहौर में फिर अपने-आपको जमाना पड़ता है।

विषमता कितने पापों की जननी है, इसका अनुमान कम ही व्यक्ति लगा पाते हैं– "हमारे बीच आज जो लड़ाई-झगड़े, मारकाट, लूट-खसोंट, मुकदमेबाजी तथा जालसाजी

का बाजार गर्म है, इसका एकमात्र कारण यही विषमता राक्षसी है।" [18] नायक चेतन कविराज रामदास की कटुता, खिन्नता, अवसाद तथा शोषण के समान ही कवि 'करुण' का कहना है, "अब उन साधु सन्तों, महन्तों, वर्ण-व्यवस्थापकों, समाज के संचालकों, जमींदारों, साहूकारों, पूँजीपतियों, सत्ताधारियों तथा मजहब परस्तों आदि से विनम्र शब्दों में क्षमा-याचना करना मैं अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता हूँ कि जिनके कुकृत्यों की ओर मुझे भर्त्सनापूर्ण शब्दों में संकेत करना पड़ता है। ... आज नहीं तो कल, युग बदलने वाला है, तो क्यों न हम समय रहते अपना हृदय परिवर्तन करें, अपने को बदलें और ऐसे नेक समाज का निर्माण करें, जहाँ न कोई ब्राह्मण हो, न अछूत, न जमींदार हो, न पूँजीपति, न शासक हो, न शासित, सब एक समान हों।"[19]

बाँधों न नाव इस ठांव (दो खण्ड)

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपने उपन्यासों में जितना उच्च वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है, वैसा अन्य दुर्लभ प्रतीत होता है। जितना यथार्थ चित्रण 'बाँधों न नाव इस ठांव' के दोनों भागों में चित्रित किया है उतना और किसी भी उपन्यास में नहीं किया है। उपन्यास के प्रथम खण्ड में चेतन अपनी नौकरी से त्याग-पत्र देने के बाद आर्थिक तंगी की वजह से रूमाल बेचने जैसा कार्य करता है। जो पण्डित रत्न जैसे सभ्य व्यक्ति को अच्छा नहीं लगता है। पण्डित रत्न काम दिलाने के लिए चेतन को (मस्तान जोगी) के मालिक सूफी हनुमान प्रसाद के यहाँ ले जाता है, परन्तु वह काम के बदले लाहौर के जर्नलिस्टों के बारे में जासूसी करवाना चाहता है। यहाँ उच्च वर्ग का मध्यम वर्ग के प्रति शोषण ही हो रहा है, जो काम के बदले कुछ भी करवाना चाहते हैं। जैसा कि उपन्यास में सूफी साहब चेतन से इस तरह का शोषण करते हैं, "मैं तुम्हारे बारे में लगातार सोचता रहा हूँ, अगर तुम थोड़ी मदद कर दो तो मैं पचास रुपये महीना तुम्हें देता रहूँगा।"

"तुम दो बरस से लाहौर के जर्नलिस्टों की सोहबत में रहते हो, बहुतों को अन्तरंगता से भी जानते होंगे। अगर तुम मुझे रोज उनकी राजनीतिक सरगर्मियों के बारे में आकर बता जाया करो, वो लिखते क्या है और सोचते क्या है तो मैं तुम्हें पचास रुपये महीने दे दिया करूँगा।"[20]

इसी प्रकार चेतन 'मेरी और तुम्हारी' सोसायटी के लिए मेम्बर बनने के लिए उच्च वर्ग के राजा महेन्द्रनाथ, लाला हरकिशन लाल, सरदार जगदीश सिंह, अफीज जनघरी, आचार्य देशबन्धु, हुमायूँ के मालिक सम्पादक मियाँ बशार अहमद और लाला हाकिम चन्द जैसे लोगों से इस आशा में मिलता है कि वे सोसायटी के लिए ज्यादा-से-ज्यादा रुपया देंगे, परन्तु उन सभी लोगों से चेतन को अपमान के अलावा और कुछ भी नहीं मिला बल्कि चेतन को यह सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा कि ये सब लाला और राजा चोर-चोर मौसेरे भाई हैं।"[21] और जब चेतन मेरी और तुम्हारी सोसायटी का उद्घाटन कराने के लिए व उसके सभापतित्व के पद के लिए उच्च वर्ग के लोगों से मिलता है तो कोई भी व्यक्ति अपने पास समय नहीं होने का रोना रोते हैं। चेतन हार कर हुनर साहब के पास पहुँचता है तो हुनर साहब उच्च वर्ग के इन सभी लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, "अरे! इन राजा-नवाबों के चक्कर में मत पड़ो। साइकिल दौड़ाते-दौड़ाते तुम्हारी हालत खस्ता हो जायेगी। फिर बड़े लोगों को बुलाओगे तो दरवाजे बड़े करने पड़ेंगे। हमारी सोसायटी अभी उनका बोझ नहीं सँभाल सकती।"[22]

उपन्यास के दूसरे खण्ड में एक उच्च-मध्यवर्गीय अफसर की रूपगर्विता, उद्दण्ड लड़की और जिम्मेदारियों के बोझ से संत्रस्त, निम्न-मध्यवर्गीय भीरू युवक चेतन की एक प्रणय कथा को श्री उपेन्द्रनाथ अश्क जी ने बड़े सधे हाथों से चित्रित किया है। चेतन सब-जज बनने की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करने के लिए लाला हाकिमचन्द की लड़की चन्द्रा की ट्यूशन करके उसके परिवार के साथ शिमला पहुँचता है। यहाँ पर उसे उच्च वर्ग के लाला हाकिमचन्द जैसे लोगों की वास्तविकता का पता चलता है कि किस प्रकार अपनी उच्चता के अहम् में वे अपनी पत्नी तक को पीट देते हैं।

शिमला प्रवास के दौरान एक बार चेतन लाला हाकिमचन्द के परिवार के साथ घूमने जाता है। वहाँ पर एक दुकान पर नाश्ता करने के क्रम में लालाजी की पत्नी की प्लेट से एक समोसा नीचे गिर जाता है, जिसे उठाकर वह वापस अपनी प्लेट में रख लेती है, जो लालाजी को पसन्द नहीं आया। वहाँ कुछ नहीं कहने और घर पहुँचते ही पत्नी को गन्दी, अश्लील गालियाँ देने और पीटने लगे। इस उच्चता का यथार्थ चित्रण अश्क जी ने इस प्रकार रेखांकित किया है कि हर किसी का दिल दहल जाता है। चेतन अपने कमरे में

बैठा–बैठा लाला द्वारा अपनी पत्नी को व बच्चों को पीटने की आवाज इस प्रकार सुनता है, “तुमने नीचे गिरा हुआ समोसा उठाकर प्लेट में रख लिया है। यही सिखाया है ... देखने वाले क्या कहते होंगे कि ये लोग कैसे नादीदे, कमीने, कंजूस और भुक्कड़ हैं ... यह भी नहीं देखा कि तुम्हारी बेटी का ट्यूटर बैठा तुम्हारी इस बदतमीजी को देख रहा है (निरन्तर मुक्के और लातें ...)।”[23]

उपन्यास में चेतन जिससे परास्त और पराजित होता है वह है आर्थिक प्रश्न। शुरू से ही इस मोर्चे पर वह कमजोर सिद्ध होता है। शिमला में उच्च वर्ग के साथ रहते उसकी मानसिकता में भी एक उच्च अहं का भ्रम उत्पन्न होता है जो सी.पी. के मेले में (‘एक रात का नरक’ के) सिपाहियों द्वारा गिरफ्तार कर लिए जाने पर हवालात के अंध नरक में पीड़ित किये जाने के बाद चकनाचूर हो जाता है और बदले में लाला हाकिमचन्द जैसे उच्च वर्ग के लोग उस पर आर्थिक बोझ डाल देते हैं और रही–सही कसर लाला के लांछन और अपमान के बाद पूरी हो जाती है।

इस प्रकार अश्क जी ने प्रस्तुत उपन्यास में उच्च वर्ग का मध्यम वर्ग के प्रति भरपूर शोषण का प्रस्तुतीकरण एक खास अंदाज में किया है और इसी अपमान को सहकर और पीकर उच्च वर्ग के लोगों से छुटकारा पाकर वापस अपने घर आ जाता है।

बड़ी–बड़ी आँखें

‘बड़ी–बड़ी आँखें’ उपन्यास में जब संगीत देवनगर को पहुँच कर रास्ते की कठिनाइयों का वर्णन देवसेना के प्रधान सेनापति श्री देवाजी (सरदार देवेन्द्रसिंह) से करता है तो देवा जी कहते हैं, “पत्थरचट्टी तक तो सड़क गनीमत है ... यह डेढ़ मील का रास्ता जरा परेशान करता है। बरसात खत्म हो गयी है। इन सर्दियों में हम सड़क जरूर बना देंगे।”[24]

उच्च वर्ग वाले अपने से नीचे वालों के लिए हमेशा यही सोचकर चलते हैं मानो यह मेरे लिए ही बना है। संगीत जी जब देवनगर में देवाजी के घर पहुँचता है तो देखता है कि, “बरामदे में वाणी की माँ खड़ी अपने नौकर धीरसिंह से जूतों पर पॉलिश करा रही थी। बिल्कुल ऐसा लगता था जैसे बूट–पॉलिस का नहीं, किसी सैनिक मोर्चे का निरीक्षण कर रही हो।”[25] इसी क्रम में जब संगीत जी देवाजी की पत्नी को ‘माँजी’ कहकर पुकारते हैं तो

उसे यह भी अच्छा नहीं लगता बल्कि यह कहने पर विवश हो जाती है, "क्या मैं इतनी बूढ़ी हूँ कि माँजी कहलाऊँ?"[26]

इसी प्रकार संगीत जी जब देवा जी से लेख लेने जाता है तो वहाँ पत्थरचट्टी के कुछ किसान जिनकी गेहूँ की बालियाँ ओलों की मार से बिछ गयी हैं वे खाने के लिए देवाजी से आर्थिक सहायता माँगने आते हैं तो देवाजी सहायता देने में असमर्थता जताते हुए कहते हैं कि, "देवमण्डल के स्थायी फण्ड का बहुत-सा रुपया प्रेक्टिकल स्कूल बनाने में लग गया है ... पाँच को स्कूल का उद्‌घाटन हो रहा है। उधर से निबट जायें तो आपके लिए कुछ सहायता की व्यवस्था करें।"[27] कितना यथार्थ सत्य भरा हुआ है। देवा के शब्दों में मानो वे निम्न-मध्यवर्ग का मजाक उड़ा रहे हों और जब प्रैक्टिकल स्कूल का, "उद्‌घाटन उत्सव का दिखावा समाप्त हो जाने के बाद रामा-थामा के बच्चे हीरा और नबी का अस्तित्व माताजी को प्रैक्टिकल स्कूल के मक्खन ये बाल सरीखा खटकने लगा। प्रैक्टिकल स्कूल में दाखिल होने वाले बच्चे उच्च-मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते थे—डाक्टरों, अफसरों, ठेकेदारों और व्यापारियों के बच्चे थे। चुस्त, चाक-चौबन्द, साफ-सुथरे और लाड़ों पले। अधिकांश उनमें बिगड़े हुए थे। दोनों गरीब बच्चे उनसे पिट जाते, अपमानित होते और माताजी दूसरे बच्चों को समझाने के बदले उन्हीं पर खींझती और निरन्तर देवाजी से अनुरोध करती कि वे हीरा को स्कूल से हटा दें। जब देवाजी किसी तरह तैयार न हुए तब माताजी ने उन्हें उन्हीं की भाषा में कहा कि बच्चा हीन भाव से जीवन भर दबा रहेगा। उसका व्यक्तित्व उभर न पायेगा, आप स्कूल के एक टीचर को अलग से पढ़ाने के लिए चाहे लगा दें पर उसे स्कूल में न रखें।"[28] और एक दिन नबी को स्कूल से बाहर निकाल दिया जाता है तो संगीत जी इस सम्बन्ध में मघवार साहब से बात करते हैं तो मघवार साहब कहते हैं, "मैं उसे कभी प्रैक्टिकल स्कूल से निकालने न देता पर जिस लड़के पर माताजी की कुदृष्टि हो और वह किसी धनाधीश का बच्चा न हो तो उसे यहाँ रखना उसकी आत्मा को कुचल देने के बराबर है इसीलिए मैंने दोनों बच्चों को यहाँ से चले जाने दिया।"[29] यहीं पर मघवार साहब की विवशता और उच्चता का आभास होता है।

'देववाणी' के सम्पादक 'देवमण्डल' के सम्पादक और देवसेना के प्रधान सेनापति श्री देवाजी (सरदार देवेन्द्रसिंह) ने मुगलकालीन एक बड़ी जागीर के वीरान खण्डहर पर

एक ऊँचा सपना लेकर 'देवनगर' की स्थापना की है। वह सपना है जिसमें उच्चता की बू आती है, "फिर तंग मकानों के पास गन्दी नालियाँ न बहें, बागों की छाया में सुन्दर भवन हों, गरीबों से घिरा कोई अकेला ... चाँदी की ईंटों को सिर पर उठाए, चोरों से छिपाता न फिरे बल्कि सभी पेट भर खाएँ और विकास के सपने देखे। दिन चढ़े, किरणों के सुस्पर्श से लोग जागे, खुले माथे, मुस्कराती आँखों और फैली बाहों से एक-दूसरे का स्वागत करें, प्रभात में जगी चिड़ियों की तरह एक-दूसरे को बुलायें, हँसें-खेलें और अपने-अपने स्वभाव के अनुसार जीवन का उद्देश्य ढूँढ़ें।"[30]

देवाजी के आशीर्वाद से पहले संगीत बहुत प्रभावित होता है पर धीरे-धीरे देवनगर का आन्तरिक वातावरण और छोटी-छोटी बेगिनती घटनाएँ उसका विश्वास डिगा देती है। वह देखता है कि देवनगर में घूसखोरी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता और अत्याचार के साथ शोषण का बोलबाला है जिसकी ओर से देवाजी की आँखें बन्द हैं। गाँव में तबाही आती है, लोग बर्बाद हो जाते हैं। पकी खड़ी फसल पत्थर की मार से नष्ट हो जाती है। पर यहाँ स्कूल का उत्सव मनाया जाता है और कहा जाता है, "देहात की तबाही को देखकर मन नहीं होता कि हम प्रैक्टिकल स्कूल के उद्घाटन का उत्सव मनायें, लेकिन मौत का एक ही जवाब है जिन्दगी! नाश का एक ही उत्तर है निर्माण, इसलिए हम आस-पास की इस तबाही में घिरे रहकर भी जीवन और निर्माण के इस पर्व को स्थापित नहीं कर रहे।"[31] इसलिए ऐसे प्रसंग उपन्यास को एक भिन्न पथ पर ले जाते हैं और उसे आज की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का प्रतीक बना देते हैं। हमारे आज के कांग्रेसी नेता भी तो यही करते और कहते हैं कि जिनकी प्रवृत्ति शोषण है, पर जो राग समाजवाद का अलापते हैं। एयर कण्डीशन बँगलों में निवास कर और लग्जरी कारों में घूमकर पैसे ऐंठने वाले निरीह, असहाय, शोषित एवं संत्रस्त जनता को त्याग, परिश्रम एवं सहनशीलता का पाठ पढ़ाते हैं। निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की यही तो विडम्बना है कि उसीके पसीने और श्रम की कमाई ये कांग्रेसी नेता समाजवाद के नाम पर पूँजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति वाले लोगों के साथ मिलकर उड़ा रहे हैं और जनता की कमर शोषण और टैक्सों के भार से टूट चुकी है। अब उसकी आखरी साँस ही उखड़ने को बाकी है जिसे यह बनावटी कांग्रेसी समाज ले डूबेगा। अश्क जी ने उपन्यास में इस स्थिति का बड़ा ही यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण किया है।

पत्थर–अल–पत्थर

'पत्थर–अल–पत्थर' उपन्यास का नायक हसनदीन किस प्रकार उच्च वर्ग के व्यक्तियों के शोषण का शिकार होता है, इसे बहुत ही घृणित चित्र के रूप में लेखक ने प्रस्तुत किया है कि उसे अपनी मेहनत से रुपया कमाने के लिए भी दरोगा साहब जैसे लोगों का सहारा लेना पड़ता है। सफेदपोश खन्ना साहब का ओछापन उभरता जाता है और "जब कैमरे का स्टैण्ड खो देने के आरोप में हरनाम सिंह और उसके अन्य साथी सिपाही हसनदीन के पाँच–सात थप्पड़ और लात घूसे जमाकर उसे हवालात में भेज देते हैं और खन्ना साहब द्वारा दिये गये सत्रह रुपये आपस में बाँट लेते हैं और हसनदीन की बीबी को बुलाकर समझाते हैं कि वह कहीं से पचास रुपये पैदा करे तो हसनदीन छूट सकता है। क्योंकि सरकार पैसेन्जरों को तकलीफ देगी तो पैसेन्जर आयेंगे नहीं और घाटी के लोग भूखे मरेंगे, स्टैण्ड तो उन्हें खरीदकर देना ही पड़ेगा।"[32] हसनदीन की ट्रेजडी को तो मुकम्मल कर ही देती है। हरनाम सिंह और उसके साथियों की यह पत्थर दिली और कमीनापन खन्ना साहब के उस ओछेपन को हल्का भी कर देते हैं जिसके चित्रण के लिए लेखक ने पूरे उपन्यास में एक–एक रेखा सतर्कतापूर्वक बड़ी कुशलता से खींची है।

पलटती धारा

'पलटती धारा' उपन्यास में पन्नालाल जैन जैसे उच्च वर्ग के लोग कवि चातक के साथ मिलकर नायक चेतन को खाने के बहाने से घर बुलाते हैं और नाटक लिखने के लिए मजबूर करते हैं और कदम–कदम पर उसे उपहास का पात्र बनाते हैं। उच्च वर्ग का मध्य वर्ग के प्रति यह एक घिनौना अपराध है।

निमिषा

इस उपन्यास में निमिषा की एक सहेली है कनक। वह उच्च–मध्यवर्ग की लड़की है। उसकी कला में अभिरुचि है लेकिन वह जानती है कि "प्यार और पीड़ा के बिना कला का जन्म नहीं होता। मेरी जिन्दगी में न तो कोई प्यार है न दुःख न पीड़ा। मैं तो महज वक्त कटी के लिए शौकिया चित्र बनाती हूँ। मेरे चित्रों में वह बात कैसे आये जो उसके चित्रों में है।"[33]

मध्यमवर्ग

मध्यम वर्ग और उपन्यास एक-दूसरे की आवश्यकता के रूप में जन्मे हैं। औद्योगिकीकरण की देन के रूप में मध्यवर्ग हमारे सामने है और मध्य वर्ग के जीवन की त्रासदियों को रेखांकित करने के रूप में उपन्यास। दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी कथा साहित्य का पहला उपन्यास 'परीक्षा गुरु' लाला श्री निवासदास द्वारा रचित (1882) मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। 'परीक्षा गुरु' से लेकर आज तक के उपन्यास मध्यवर्ग की जीवन-स्थितियों का लेखा-जोखा ही रहे हैं। प्रेमचन्द किसान समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाते हुए मध्यवर्ग से अछूते नहीं रहे। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'कर्मभूमि' एवं 'गबन' जैसे उपन्यासों की कथा-वस्तु मध्यवर्गीय जीवन की रही है। मध्यवर्ग छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, धन-लालसा, आगे बढ़ने की अंधी दौड़ एवं अपनी संकरी सीमाएँ उपन्यासों का विषय रही हैं। स्वाधीनता के बाद के उपन्यासों में तो विशेष रूप से मध्य वर्ग उभर कर सामने आया है। इसका कारण यह है कि मध्य वर्ग का जीवन बहुत विस्तृत है। उसके जीवन में हर पल अनेक त्रासदियाँ घटित होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि उन्हें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये। यह काम उपन्यास के अलावा और कहीं संभव नहीं है।

उपेन्द्रनाथ अश्क जी मूलत: मध्यवर्गीय समाज को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की ओर ही विशेषरत रहे हैं। अब तक उनके 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'बड़ी-बड़ी आंखें', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'शहर में घूमता आईना', 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दो भाग), 'एक नन्हीं किन्दील', 'एक रात का नरक', 'निमिषा' और 'पलटती धारा' उपन्यासों में मध्यवर्ग अपने विस्तृत रूपों में चित्रित हुआ है। उनका बृहत् उपन्यास 'गिरती दीवारें' शृंखला की कड़ी में 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्हीं किन्दील', 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दो भाग) और 'पलटती धारा' के महानायक मध्यवर्गीय चेतन हैं। इस पात्र के माध्यम से उपे नाथ अश्क जी ने मध्यवर्गीय जीवन की विराट झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं, जिनका यहाँ यथार्थ चित्रण किया गया है।

सितारों के खेल

इस उपन्यास का कथानक भारतीय मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन का सकरुण चित्र है। बंसीलाल इस कथानक का एक ऐसा विचित्र पात्र है जिसके दैन्य, नैराश्य और दारिद्रय के सूत्र में घटनाओं की जाली बुनी गई है। कॉलेज में वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है। वैवाहिक पद्धति पर पूर्वी और पाश्चात्य दृष्टिकोण से विचार होता है। लता और जगत भारतीय संस्कृति के अनुसार नैतिकता की दृढ़ नींव पर खड़े पुरातन वैवाहिक आदर्शों का समर्थन करते हैं। दीनता और बेबसी के तूफानी झंझावातों से सताया हुआ बंसीलाल इस प्रतियोगिता में भविष्य की सम्पूर्ण आशाओं और हार्दिक आकांक्षाओं को मानों कुचलने के लिए ही भाग लेता है। वह हमारे जीर्ण-शीर्ण और जर्जर वैवाहिक नियमों के विरुद्ध यूरोपीय आदर्शों का समर्थन करता है। बीच-बीच में जगत के प्रति उसकी व्यक्तिगत चुटकियाँ ही उसके भावी कष्ट का मूल कारण बन जाती है। उधर लता जगत के आडम्बर पर रीझ जाती है। फिर जवानी का नशा, जगत की विनोद प्रिय बातें और दो हृदयों का मूक आकर्षण लता अपने पिता की एकमात्र सन्तान। वह मलिक बाबू के जीवन की टिमटिमाती रोशनी थीं और उसे ज्योतिर्मय रखने के लिए वे सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत थे। जगत के प्रति लता के आकर्षण को अनुभव कर उन्होंने कहा कि उसी से लता की शादी कर दी जाये किन्तु देवता स्वरूप उस वृद्ध पिता को यह ज्ञात नहीं था कि जगत के हृदय में एक भीषण राक्षस है, जो 'प्रेम' को वासना के रूप में निगल जाना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। अन्त में मेघदूत सुनाने वाले जगत का पाखण्ड प्रकट हो जाता है और लता के हृदय में एक तूफान सा मच जाता है। फिर बंसीलाल के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है किन्तु वह कब? जब गरीब बंसीलाल लता के तिमंजिले मकान की खिड़की से गिरकर अपने शरीर को नष्ट-भ्रष्ट कर पट्टियों में लिपटा हुआ अस्पताल में पहुँचता है, परन्तु श्रद्धा में भी हिस्सा बाँटने पहुँच जाते हैं डॉ. अमृतराय। बंसीलाल को नवजीवन प्रदान करने के लिए लता ने अपना रक्त दिया और बंसीलाल की बहन राजरानी ने अपने शरीर का मांस, परन्तु बंसीलाल के टूटे दिल और खण्डहर शरीर में नवजीवन नहीं आया। विज्ञान से हारकर लता ने तीर्थाटन करना चाहा और वह बंसीलाल तथा अमृतराय के साथ योगियों की खोज में चल पड़ी। लाख चेष्टा की गयी किन्तु बंसीलाल के घाव न मिट सके। उसके सूखे बाल, धँसी हुई आँखें, टूटे हुए और मुड़े हुए बाजू लता को निराशा के

अतिरिक्त भेंट ही क्या दे सकते थे। वह इन संतापों से काँप जाती है और डॉक्टर की भावनाओं को साकार स्वरूप प्रदान करती है। प्राणों से प्रिय बंसी को विष पिला देती है और शायद उसके साथ ही अपने मंगलसूत्र को भी तोड़ देती है। बस यही स्थान तो कथानक का मध्य बिन्दु है और यहीं से उपन्यास अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर मुड़ता है। बंसीलाल की बहन राजरानी धर्मशाला में पहुँच जाती है और बंसीलाल की आशाओं के साथ-साथ उसके पार्थिव शरीर को दफना कर सब लाहौर लौट आते हैं। किन्तु लता, जिसका कंकाल ही शेष रह गया था, अब और अधिक इन कष्टों का सामना न कर सकी। वह अस्वस्थ होकर मंजिल की ओर मुड़ गयी। डॉ. अमृतराय को बुलाकर उसने कहा, "डॉक्टर साहब भावुकता छोड़ दीजिए ...। भटकने के लिए आप नहीं बने। बंसीलाल था भटकने के लिए। मैं थी भटकने के लिए। संसार सागर को पार करने के लिए भावुकता के चम्पू काम नहीं आते। मझधार में चाहे वे भले ही बहा ले जायें, किन्तु पार ले जायेंगे, ऐसी संभावना नहीं। हमने भावुकता के चम्पू का सहारा लिया, अंजाम आपके सामने है तब आप ऐसा क्यों करें।"[34] फिर खाँसकर उसने कहा, "बंसीलाल को मार कर पाप किया या पुण्य, यह मैं नहीं जानती, डॉक्टर साहब। पर यह अच्छा ही हुआ। उसके और मेरे मध्य जो पर्दा सा छा गया था, मौत ने उसे हटा दिया और उस पर्दे के हट जाने पर वह और मैं फिर आमने-सामने हो गये।"[35]

लता के ये वाक्य कितने सत्य और संवेदनशील हैं। एक-एक शब्द से मानव जीवन का वास्तविक चित्रण होता है और वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। अन्त में लता डॉक्टर से अनुरोध करती है कि वह रानी को अपनी चिरसंगिनी बना लें और अमृतराय के आँखों से बहते हुए आँसू इस कारुणिक प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं और इसके बाद उपन्यास की वास्तविक नायिका लता, अपनी अन्तिम खाँसी के साथ अपनी हसरतों को कुचलती हुई निर्जीव-सी होकर मृत्यु की गोद में सो जाती हैं। यही है इस उपन्यास के मध्यवर्गीय अश्रुप्लावित जीवन का संक्षिप्त कथानक।

लेखक ने अपने वक्तव्य में स्वयं लिख दिया है कि प्रस्तुत उपन्यास विषय प्रधान है। इसमें भारतवर्ष की वैवाहिक समस्या, प्रेम, भावुकता और सामाजिक स्वतन्त्रता पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। पात्रों के मुँह से जो बातें कहलवायी गई हैं वो सचमुच लेखक के विचारों को स्पष्ट कर देती हैं। लता ने अन्तिम सन्देश जो राजरानी को दिया है वह

उल्लेखनीय है, "और देखों, मेरी तरह स्वतन्त्र रहकर न भटकना। प्रकृति ने जिस उद्देश्य से स्त्री-पुरुष का सृजन किया है उसी उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है।"[36]

इस संक्षिप्त अन्तरण से ही लेखक के सुलझे हुए विचार ज्ञात हो जाते हैं और यही साहित्यकार की सफलता है कि उसकी भावनाएँ व्यक्त होकर पाठक को अपने प्रवाह में बहा ले जाय।

गिरती दीवारें (मध्यवर्गीय जीवन का महाकाव्य)

निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के प्रामाणिक कथाकार के रूप में उपेन्द्रनाथ अश्क हिन्दी जगत् में एक लम्बे अरसे से ख्यात हैं। उनका वृहत् उपन्यास 'गिरती दीवारें' के विभिन्न खण्ड हैं। 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना' (1962), 'एक नन्हीं किन्दील' (1969), 'बाँधों न नाव इस ठांव' (दो भाग) (1974) और 'पलटती धारा' पाँचवाँ व अन्तिम खण्ड है।

'गिरती दीवारें' में लेखक ने चेतन नामक एक निम्न-मध्यवर्गीय टाईप चरित्र की अवतारणा की है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने समूचे हिन्दी जगत् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। इस पर हिन्दी जगत् के लगभग सभी मान्य समीक्षकों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की थी। कुल मिलाकर सभी इस बात पर सहमत रहे कि इस उपन्यास में पहली बार निम्न-मध्यवर्गीय जीवन अपनी सारी गहराई और व्यापकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मन-मस्तिष्क का बन्धन है जो उसके अनुभवों के समानान्तर बढ़ती हुई गिरती है जिनके गिरने से वह जीवन की यथार्थता को देखने और समझने में धीरे-धीरे सफल होता है। जिनके गिरने से उसके मस्तिष्क का अन्धकार दूर होता है और यथार्थता के ज्ञान का प्रकाश उसके कोने अन्तरे जगमगाता है। दिल और दिमाग की दीवारों का टूटना क्योंकि नि:स्वप्न होता है और वे धीरे-धीरे गिरती है इसलिए उनकी धड़धड़ाहट सुनाई नहीं देती। "यह दीवारें उसके और उसकी पत्नी चन्दा के मध्य ही नहीं नीला और त्रिलोक के मध्य भी हैं और जब चेतन और भी सोचता है तो वह अनुभव करता है कि नीला और त्रिलोक के मध्य ही नहीं बल्कि इस परतन्त्र देश के सभी स्त्री-पुरुषों, तरुणों-तरुणियों, वर्गों और जातियों के मध्य भी ऐसी ही अगणित दीवारें खड़ी हैं। कविराज में और उसमें, उसमें और जयदेव में, जयदेव में और यादराम में इन दीवारों का कोई अन्त

नहीं। उस तिमिराच्छन्न निस्तब्धता में चेतन अगणित प्राणियों की मूक सिसकियाँ सुनाता है जो इन दीवारों में बंद है और निकलने की राह नहीं पा रहे हैं। इन दीवारों की नींव कहाँ है? ये कब गिरेंगी? कैसे गिरेंगी?"[37] यहीं उपन्यास एक प्रश्न बन जाता है।

मध्यवर्गीय समाज की चेतना हीन भाषित होकर अपने अहं पर आरोपित नहीं हो सकतीं और चेतन इन्हीं गिर रही दीवारों के बीच बार-बार कुचला-घसीटता चला जाता है। 'अर्थ' और 'प्रेम' की दो विशाल दीवारें गिरकर चेतन को अस्वस्थ एवं निष्क्रिय-सा कर देती है, परन्तु वह उसके मलबे-अवशेष से निकलकर जीवन की स्वस्थ राह पर अग्रसर होने के लिए प्रयासरत होता है। उसका यह प्रयास उसकी मध्यवर्गीय चेतना का उपलब्ध प्रमाण है जहाँ उसे प्रेरणा ही प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रथमत: वह चेतन प्रकृति के पर्यावरण से अपने आपको पालने के लिए निवेदित होता है और अन्ततः कला की संजीवनी उसकी मूर्च्छा भंग करती है जिससे उसका अहं कुत्सित नहीं होता बल्कि और प्रेरणा एवं बल पाता है। यह अहं उसका पात्र एक साध्य नहीं रहता पर फिर भी वह साध्य मानवीय मंगल एवं जीवन की विकास यात्रा का उपलब्धि रूप में साधन बनता है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग के वैवाहिक जीवन, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं, कुण्ठाओं, विडम्बनाओं, सद्‌वृत्तियों, कुवृत्तियों, ग्रन्थियों और विकृतियों के चित्रण का प्रयास किया है। अश्क के विचारानुसार उपन्यास में कहानी महत्त्व नहीं रखती, महत्त्व रखता है निम्न-मध्यवर्ग के वातावरण का चित्रण और उस वातावरण के अँधेरे में अपनी प्रतिभा के विकास का पथ खोजने वाले जागरूक अति भावप्रवण युवक की तड़प और उसका मानसिक विकास और वह युवक है चेतन, उपन्यास का नायक जिसकी पृष्ठभूमि में समस्त मध्यवर्गीय समाज चित्रित हुआ है। उसमें उस एक मध्यवर्गीय परिवार विशेष की कथा है जो धीरे-धीरे समग्र मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। चेतन उसी एक मध्यवर्गीय परिवार विशेष का युवक है। वह समझ नहीं पाता कि अन्ततोगत्वा जीवन में उसे क्या करना है कि उसकी प्रतिभा जीवन में किस मार्ग को पकड़कर विकसित होगी, वह कभी इस मार्ग को पकड़ता है और कभी उसको, कभी एक ओर सरपट भागता है, कभी दूसरी ओर। वह कथाकार, कवि, उपन्यासकार, संगीतज्ञ, चित्रकार, अभिनेता सभी कुछ बनना चाहता है। उम्र के इसी भाग के जोश, बलबलों, आशाओं, निराशाओं, कल्पना के पारस को छूकर एक क्षण में बन

उठने वाले और यथार्थता की ठोकर से दूसरे क्षण ढह जाने वाले बूँद-बूँद के सपनों और निम्न-मध्यवर्गीय युवक के अन्तर और बाह्य के द्वन्द्वों को उपन्यास का यह भाग दर्शाता है। बहुत-से मध्यवर्गीय युवक जीवन भर अपने ध्येय अथवा मार्ग का निर्णय नहीं कर पाते और उनकी प्रतिभा अन्धेरे में टामकटोये मारते खत्म हो जाती है। कुछ पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। कुछ किसी छोटे-बड़े दफ्तर की फाइलों में उसे समाप्त कर देते हैं। बिरले ही अपनी प्रतिभा के विकास का ठीक माध्यम चुन पाते हैं। चेतन कुछ बनेगा या नहीं ... अश्क अपरिचित है और यह भविष्य का प्रसंग है, परन्तु आधुनिक युग का चेतन समाज की उन स्थूल दीवारों के साथ-साथ सूक्ष्म दीवारों से भी बँधा है।

'गिरती दीवारें' जो इस उपन्यास माला का पहला उपन्यास है। चेतन बी.ए. पास कर लेता है। 'पलटती धारा' में जो इस माला का अन्तिम व पाँचवाँ उपन्यास है, वह लॉ कॉलेज में प्रवेश ले लेता है। (बीच में दो-तीन वर्ष वह नौकरी भी करता है।) यह और बात है कि इस उपन्यास माला के लिखने के क्रम में अश्क स्वयं जिन्दगी की एक यात्रा सम्पन्न कर चुके थे और यह भी प्रकट बी.ए. पास करने के बाद चेतन की संघर्षशील जिन्दगी के इन तीन वर्षों का विस्तृत ब्यौरा देते हुए लेखक ने बड़ी कुशलता से उसके जन्म से लेकर यौवन में पदार्पण करने तक उसकी तकलीफदेह जिन्दगी की विस्तृत झलक भी दे दी है।

इस उपन्यास माला के माध्यम से चेतन और चेतन के माध्यम से समूचे निम्न-मध्यवर्ग की जिन्दगी को निकट से देखने का प्रयास करेंगे और इस बात को भी पहचानने और प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे कि आखिर इस उपन्यास माला में चेतन और निम्न-मध्यवर्ग की जिन्दगी क्या और कैसी है और उसके माध्यम से लेखक हमें अपने खुद के चेहरे और जिन्दगी के आमने-सामने कितनी दूर तक खड़ा कर सका है। अपने इस वृहद् उपन्यास के पहले दो खण्डों में ('गिरती दीवारें' और 'शहर में घूमता आईना') उपन्यासकार ने कथा नायक चेतन के चरित्रांकन द्वारा दो मूल समस्याओं को उठाया है। "आर्थिक विषमता तथा प्रेम सम्बन्धी कुण्ठा जिनसे साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति जूझता है और अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए उनसे टकराता है।" बाह्य जीवन की अपनी पराजय से आक्रान्त होकर चेतन पहले प्रकृति की गोद में शरण लेता है, फिर कला रचना में संतोष पाना चाहता है। उसके घर का वातावरण बेहद कटु है। शराबी पिता, निकम्मे बड़े भाई, लड़ाकू भाभी और उनके अलावा उसकी अपनी पत्नी चन्दा, जिसे वह पत्नी के रूप

में स्वीकार तो कर लेता है, किन्तु जिसके प्रति भीतर से उन्मुख नहीं हो पाता। बाहरी जीवन और भी कठोर है। पहले वह एक स्कूल मास्टर बनता है, फिर परिस्थितिवश समाचार-पत्र की नौकरी कर लेता है। लेखक ने उपन्यास में बाहरी दुनिया में फैले आर्थिक शोषण के बाजार का बड़ा ही रोमांचक चित्र उपन्यास में दिया है। शोषण के इस बाजार का प्रचार 'बाँधों न नाव इस ठांव' तक है। बाहरी जीवन के संघर्ष में चेतन एक के बाद एक समाचार-पत्र में नौकरी करता है और उसके श्रम तथा प्रतिभा का बुरी तरह दोहन किया जाता है। लेखक ने उपन्यास में ऐसे चरित्रों की भीड़ खड़ी की है जो मिल-जुलकर और अलग-अलग जोंक की तरह चेतन के शरीर से चिपटे उसका रक्त चूसते रहते हैं। इन सभी जोकों में वैद्य कविराज, रामदास, चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का भला करने और उनकी प्रतिभा को चूसने वाली एक सबसे मोटी, सबसे चिकनी और सबसे चालाक जोंक है। यहीं चेतन की आर्थिक विपन्नता उसे वहाँ के एक प्रसिद्ध कविराज रामदास के चंगुल में ला फँसाती हैं जो स्नेह का अभिनय करके उसे स्वास्थ्य लाभ के लिए शिमला ले जाते हैं। वह चेतन से बच्चों के स्वास्थ्य रक्षा के विषय पर एक पुस्तक लिखने के लिए कहते हैं परन्तु जब चेतन को ज्ञात होता है कि वह पुस्तक कविराज के नाम से ही प्रकाशित होगी तो उसका मन किसी तरह धूर्त कविराज के चंगुल से निकल भागने को करता है।

कविराज रामदास बातचीत का इतना मीठा और स्वार्थ का ऐसा चौकस है कि चेतन उसके समक्ष अपने आपको निरूपाय पाता है। ऐसी स्थिति में एक बार कविराज रामदास शिमला में चेतन को लेकर झरने पर जाते हैं और वहाँ की मनोहारी संगीत ध्वनि से प्रेरित होकर गीत गाने लगते हैं, "लंघ आ-जा पत्तन झनां दा यार। लंघ आ-जा पत्तन झनां दा।"[38] कविराज गा रहे होते हैं और चेतन सोचता है यह शख्स जिसे वह केवल एक चालाक व्यापारी, एक हृदयहीन शोषक समझता था, अपने सीने में दिल भी रखता है। इसने यकीनन ही कभी-न-कभी प्रेम भी किया है। चाहे अब उस प्रेम की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गयी हो लेकिन वह एकदम बुझ नहीं गयी, कहीं उस वणिज-व्यापार, दुनियादारी, चालाकी, चाबुक-दस्ती, छल-कपट के नीचे दबी पड़ी है ... कितना दर्द है इस कंठ में, कितना सुन्दर है वह गीत, कितना गीला, कैसा मनुहार है इसमें ... आयुर्वेदाचार्य के स्थान पर वे गायकाचार्य क्यों नहीं बने? उसके पास ऐसा गला होता तो वह यकीनन एक मशहूर गायक बनता। इतना अमृत, इतना मिठास। यह कहीं

बन्द करके रखने की चीज है। वह तो पागल-सा गाता फिरता, अपनी तानों से इर्द-गिर्द की फिजा को गुंजाता फिरता, रस की धारें बहाता फिरता। इस प्रकार सुनते-सुनते नयी श्रद्धा से उसका मन प्लावित हो उठता। वह भूल जाता है कि कविराज शोषक हैं, व्यापारी हैं, दुनियादार हैं। उसके सामने रह गया केवल उनका कलाकार जो अनायास अपने सारे आवरण उतार कर गा उठा था, रह गया केवल मानस जो इस स्वच्छन्द स्थान में अपने अस्वाभाविक बन्धनों से मुक्त होने के लिए तड़फड़ा उठता है एक गायक का रूप रह जाता है जो अनायास इसके सागर उड़ेल रहा होता है।"[39] उपन्यास माला में अस्तित्व की रक्षा के लिए बाहरी जीवन की परिस्थितियों से चेतन का संघर्ष महाकाव्यात्मक विस्तार के साथ चित्रित हुआ है। वह वस्तुत: चेतन की जिजीविषा है जो उसे हार कर निष्क्रिय नहीं बैठने देती। एक के बाद एक नौकरी छोड़ते हुए एक के बाद एक बहुरुपिये और धूर्त के चरित्र का पर्दाफाश करते हुए वह उनसे निपटने का संकल्प लेता है यद्यपि उसका यह संकल्प पूरा नहीं हो पाता और परिस्थितिवश उसे बार-बार उनके चंगुल में फँसना पड़ता है। यह सिलसिला भी 'बाँधों न नाव इस ठांव' तक जारी रहता है।

फिर इस उपन्यास माला में अर्थ अपने अहं की समस्याओं से चेतन के संघर्ष का ही यथार्थ और जीवन्त चित्रण हुआ है। यह संघर्ष अकेले चेतन का संघर्ष नहीं है, वरन् हर निम्न-मध्यवर्गीय युवक का संघर्ष है। जैसा यथार्थ है—चेतन अन्त तक इस संघर्ष से उभर नहीं पाता। इस उपन्यास माला के चौथे खण्ड 'बाँधों न नाव इस ठांव' के दूसरे भाग में चेतन लाला हाकिमचन्द की लड़की की ट्यूशन स्वीकार करके इसीलिए उनके साथ शिमला जाता है कि कुछ पैसे एकत्र करके लॉ कॉलेज में प्रवेश ले सके, किन्तु लाला हाकिमचन्द भी एक वैसी ही जोंक है, जिनके चंगुल से वह किसी प्रकार बचकर निकलता है और लॉ कॉलेज में प्रवेश लेने की उसकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है। लेकिन 'पलटती धारा' उपन्यास में परिस्थितियों से संघर्ष करके जैसे-तैसे वह लाहौर में लॉ कॉलेज में प्रवेश ले ही लेता है। समूची उपन्यास माला में बाहरी जीवन की कठोरतम परिस्थितियों से चेतन के संघर्ष का विशद चित्रण है और जैसाकि हमने कहा, इस संघर्ष में परिस्थितियाँ ही चेतन पर हावी रहती हैं और अर्थ के संघर्ष में वह असफल ही रहता है। उसके चरित्र का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह अन्त तक हार नहीं मानता, पुन: नये सिरे से संघर्ष की तैयारी शुरू कर देता है। उसका अहं बार-बार खण्डित होता है। उसका मन बार-बार

विद्रोही होता है किन्तु जैसी कि निम्न मध्यवर्ग की नियति है, उसका एकाकी विद्रोह अन्ततः उसी के भीतर शांत हो जाता है।

जहाँ तक कामजन्य समस्याओं के चित्रण का प्रश्न है 'गिरती दीवारें' उपन्यास में उनका स्वरूप अधिक स्पष्ट है। चेतन कुन्ती को हृदय से प्यार करता है किन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाता, यह कुण्ठा उसके मन में स्थायी बन जाती है। उसके बाद वह एक के बाद एक (प्रकाशो और केशर) जैसी कई लड़कियों के सम्पर्क में आता है और अपनी कामजन्य उच्छृंखलता को प्रदर्शित करता है। उसका आदर्शवादी मन अन्ततः उसे समझाता है कि विवाह कर लेना ही अच्छा है और वो न चाहते हुए भी चन्दा से विवाह कर लेता है। जब वह अपनी भाभी के साथ पत्नी चंदा को देखने जालन्धर के बस्तीगंजा में गया था। उसी समय चन्दा के साथ स्कूल से लौटती हुई उसे एक अन्य लड़की भी दिखायी पड़ी थी। बाद में उसे पता चला कि वह चन्दा की चचेरी बहन और उसकी साली नीला है। चेतन इस लड़की के प्रति आकर्षित होता है और ससुराल में विवाह के एक अवसर पर वह नीला के निकट आता है। नीला साली के नाते से सहज हास-परिहास करती है और इस क्रम में चेतन की दबी कुण्ठाएँ उघड़ती हैं, जो मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ सत्य है।

अपनी आदर्शवादिता में वह नीला के पिता को सलाह देता है कि वे जल्दी से ही उसका विवाह कर दें और एक दिन उसे नीला के विवाह का निमन्त्रण मिलता है। नीला के पिता उसका विवाह एक अधेड़ मिलिट्री अकाउण्टेण्ट से कर देते हैं, जो रंगून में नौकर था। चेतन नीला के विवाह में सम्मिलित होने के लिए जाता है और जब वह तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था की नीला के अधेड़ पति को देखता है तो एक गहरी अपराध-भावना उसके मन में बैठ जाती है। उसे लगता है कि जैसे नीला के जीवन का विनाश करने का दोषी वही है। वह नीला से क्षमा-याचना करना चाहता है, किन्तु वह उसके सामने नहीं आती। अपनी अपराध भावना से ग्रस्त चेतन ससुराल में घर के एक कमरे में पड़ा रहता है। नीला की विदा के समय भी पत्नी चन्दा द्वारा बार-बार कहने के बावजूद उसकी हिम्मत नीला के सामने जाने की नहीं होती। वह सोचता है कि, "जब नीला सगे-सम्बन्धियों से मिलकर ताँगे में बैठ जायेगी तो वह उसके हाथ में शगुन दे आएगा। अन्ततः विदा के कुछ क्षण पूर्व जब नीला छत पर आकर हाथ जोड़े चौखट में आ खड़ी होती है और आर्द्र स्वर में कहती है कि, "जीजा जी नमस्ते, मेरी भूल चूक क्षमा कर दीजिएगा" और वह तेजी से मुड़ने को

होती है कि वह (चेतन) उसका हाथ थाम लेता है। "नीला मुझे माफ कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है और वह उसके चरणों में झुक जाता है।"[40] लेकिन उसे थाम कर "जीजाजी आप क्या करते हैं।"[41] कहती हुई वह सिसकी को दबाती हुई भाग जाती है। बाद में पत्नी चंदा के बार-बार समझाने पर भी नीला के इस विवाह का दोषी वह नहीं है, परन्तु उसके मन की अपराध भावना नहीं जाती और वह कसक उसके हृदय को सदैव गहराई में जाकर कसोटती रहती है। समय गुजरने पर वह अपने को नियंत्रित करके अपनी पत्नी की ओर उन्मुख होता है और पत्नी से उसे सहज प्रेम की प्राप्ति होती है, किन्तु कुल मिलाकर मध्यवर्गीय जैसे अर्थ-सम्बन्धों में चेतन हारता है, उसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र में भी पराजित ही होता है। काम के क्षेत्र में तो मध्यवर्गीय चेतन समझौता कर लेता है किन्तु अर्थ के क्षेत्र में उसका संघर्ष जारी रहता है।

शहर में घूमता आईना

इस उपन्यास का पात्र चेतन उस आइने की तरह है जिसमें सब कुछ दिखायी पड़ता है। लेखक ने चेतन का चित्रण उसी आईने के रूप में किया है। पूरे जालंधर शहर का चित्र उसी पात्र विशेष के माध्यम से किया गया है। चेतन स्वयं एक पात्र नहीं, बल्कि मध्यवर्गीय पात्र का नमूना है। उसकी समस्याएँ चाहे मध्यवर्गीय हो या सामाजिक प्राय: सामान्य मनुष्य की समस्याएँ हैं। लेखक ने बहुत निकट से उसको देखा है। मध्यवर्गीय समाज के चित्रण की यथार्थता को ध्यान में रखते हुए डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है, "उपन्यास में लेखक ने जो कथा प्रस्तुत की है, वह कोई खास महत्त्व नहीं रखती। इसमें महत्त्वपूर्ण है लेखक द्वारा खींचा गया निम्न-मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न रूपों, विविध स्तरों तथा कारणों का संकेत करते हुए पूरे कस्बे की जिन्दगी को मूर्त कर दिया है।"[42]

नीला के अनमेल-विवाह से व्यथित चेतन दिन-भर जालंधर की सड़कों पर घूमता है। उसके माध्यम से जालन्धर का निम्न-मध्यवर्गीय समाज प्रतिबिम्बित होता है। वह देखता है कि उसके सब साथी भौतिक दृष्टि से उससे कहीं आगे निकल गये हैं। वह दु:खी होता है। चन्दा उसे समझाती है, चेतन निश्चय करता है कि उसके पास जो है वह उसे बेहतर बनाने की कोशिश करेगा, जो नहीं है उसकी चिन्ता नहीं करेगा और यही

मध्यवर्ग की नियति है। चेतन का जीवन दो कुण्ठाओं से घिरा है, एक काम की और दूसरी अर्थ की। सारे उपन्यास की घटनाएँ जिस धुरी पर घूमती हैं वे निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती हैं। वह तो चाहता था, कहीं ऐसी जगह जाये जहाँ उसका मन नीला के विरह, अपनी पीड़ा, अमीचन्द की डिप्टी कलेक्टरी और उसके संदर्भ में अपनी हीनता के एहसास को एकदम भूल जाये।" अत: यह कहा जा सकता है कि 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग की 'बेनकाब जिन्दगी' का यथार्थ चित्रण किया गया है।

एक नन्हीं किन्दील

इस उपन्यास का नायक चेतन एक भावप्रवण निम्न-मध्यवर्गीय युवक है, जिसके संघर्षों, उलझनों के इर्द-गिर्द फैले यथार्थ को रूपायित किया गया है। अश्क जी ने अपने इस उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन के तीन प्रमुख संचालक सूत्र 'पेट-सेक्स-अहम्' में से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संचालक सूत्र अहम् के महत्त्व को चित्रित किया है। अहम् पर ठेस नायक चेतन के जीवन की धारा को बदल देता है। इस उपन्यास का कथानक चेतन के जीवन की धारा को बदल देता है। इस उपन्यास का कथा नायक है चेतन ... एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक संघर्षों से जूझता नया आदमी, जो अपनी परम्पराओं और दम-घोंटू परिवेश से उबरने की कोशिश में दो कदम आगे बढ़ता है तो एक कदम पीछे हटने के लिए मजबूर किया जाता है जो इतना भावप्रवण है कि अपने बड़े भाई की दाँतों की डॉक्टरी जमाने के लिए अपनी सरल हृदया पत्नी के मायके से मिले जेवर तक बेच देता है। वास्तव में, चेतन मानवता की सर्वोच्च अहंता का प्रतीक है, मानवीय व्यक्तित्व का एक नया नायाब नमूना, जिसे अश्क जी ने अनुभव और यथार्थ की जिन्दगी में 'प्रामाणिक' बनाकर पेश किया है।

उपन्यास में चेतन एक ओर लाहौर के पत्रकार तथा साहित्यिक जीवन में से गुजरता है और दूसरी ओर अपने वैवाहिक जीवन की पेचीदगियों में से। यहीं चेतन की पत्नी चन्दा का सरल, मोहक, सहृदय व्यक्तित्व रूपाकार होता है। चेतन को लाहौर के कई शायरों से पराजित होना पड़ता है तो मिर्जा नईम बेग चगताई शायरों से परिचय भी होताहै। चेतन के कॉलेज जीवन का चित्र भी जीवंत रूप से चित्रित हुआ है जिसमें रामकिशोर जैसे गुण्डे लड़के से चेतन के झगड़े का भी वर्णन है। इसमें लाहौर की उर्दू पत्रकारिता की

खूबियाँ, खामियों, आर्थिक स्थिति पत्रकारिता में लगे लोगों का स्तर उसकी ऊब आदि का विशद वर्णन किया गया है। चेतन ने अपनी डायरी में एक जगह लिखा है, "मुझे उर्दू रोजनामों और हफ्तेवारों के अक्सर एडीटरों, ट्रांसलेटरों और अखबार के अपने शायरों पर तरस आता है। ये लोग कितने भूखे हैं? भूखे और नादीदे हैं। ये समाज को सुधारने, और उसमें इन्कलाब लाने के सपने ही लोगों को देते हैं, बड़े जोशीले मजमून लिखते हैं, लेकिन खुद उनकी सोच समझ और अमल का दायरा इतना तंग और मध्द (सीमित) है कि मुझे कभी-कभी लगता है मैं कहाँ आ फँसा? इस माहौल से स्कूल की फ़िजा कैसी बुरी है? ऐसी ऐडीटरी से मास्टरी क्या बेहतर नहीं? ... लेकिन अब अगर इस दलदल में आ फँसा हूँ तो इससे कुछ पाये बिना इसे नहीं छोड़ूँगा, हाँ मैं इसमें सदा नहीं रह सकूँगा। भाई साहब लाहौर आ ही गये हैं। जिस दिन उनकी दुकान चल निकली और मेरे सिर पर छत का सहारा हुआ मैं इस दमघोंटू माहौल से निकल जाऊँगा। इस अखबारी जिन्दगी के तजुरबे घाटे में रहेंगे। मुझे अगर अदीब (लेखक) बनना है तो जिन्दगी के बुरे और तकलीफ देह तक रूबात से कन्नी काटकर काम नहीं चलेगा। जो कुछ रास्ते में आएगा, उसे आँखें खोलकर देखूँगा फिर चाहे वह कितना भी भयानक, घिनावना, गलीज और नफरत, अंगेज क्यों न हो।"[43] चेतन ने अपनी डायरी में लाहौर की पत्रकारिता तथा साहित्यिक क्षेत्र में कार्यरत लोगों पर टिप्पणी तैयार की है जिससे इस जीवन का सही चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। ये चरित्र चौधरी अफजल बेग जैसे व्यक्तियों के हैं जो चेतन को काम के बदले रुपये नहीं देते हैं और बार-बार परेशान करते हैं और दूसरे चौधरी ईश्वरदास, महाशय प्रभुदयाल 'मस्त', शत्रुघ्न लाल 'तीर', जीवनलाल कपूर, पण्डित टेकराम शाही आजाद लाला और जख्मी हैं।

चेतन अपने विद्यार्थी जीवन को भी याद कर लेता है जिसमें अपने शिक्षक रामचन्द्र यानी 'भूतना' की याद सबसे ज्यादा साफ है। 'भूतना' का व्यक्तित्व अश्क ने बड़े ही जीवन्त रूप से उभारा है। इसमें सारे विद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं की सही स्थिति का पता चल जाता है। 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास के पात्र चन्दा सरल और सहृदय ही नहीं है, वह उदार भी है। तभी तो वह चेतन के कहने पर अपने जेवर जेठ की दुकान के लिए दे देती है। यह किसी भी नारी के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसलिए चेतन उसे बहुत प्यार करता है। अपना पहला कहानी संग्रह कितने अरमान से समर्पित करता है।

चेतन अपने बड़े भाई की दुकान के लिए तो परेशान रहता ही है साथ ही अपनी भाभी के लिए भी परेशानी में पड़ जाता है। भाभी से उसकी कभी नहीं पटी। भाभी अपनी जिद्द में अपने पति से रूठ कर मायके चली गई और दो-तीन महीनें के बाद बीमार पड़ गई। पत्र आने पर चेतन के बड़े भाई पत्नी की ओर से उदासीन रहते हैं। वे टी.बी. का शिकार हो जाती हैं। उसके इलाज में चेतन की परेशानी बढ़ जाती है। इसी तरह वह अपने ससुर के पागलपन और अपनी सास का एक सेठ के यहाँ नौकरी करना, जहाँ उसके साथी अमीचन्द की शादी होने वाली है, को लेकर खासा मानसिक तनाव में जीता रहता है। यहाँ उसका अहम् अधिक जाग्रत रूप में दिखाई पड़ता है। अपने अहं को वह कभी पराजित रूप में नहीं देखना चाहता है। इसके लिए भले ही उसे कितनी कठिनाइयाँ क्यों न उठानी पड़ें और वह उठाता है।

चेतन पर कश्मीरी लाल 'दाग' का काफी असर है।। इसलिए एक पूरा अध्याय उसके लिए लगाया गया है। वैद्यों की चर्चा, बीमारियों तथा औषधियों के अन्वेषण के सम्बन्ध में भी विशद् रूप से विचार हुआ है। ये छोटे-छोटे ब्यौरे कितने महत्त्वपूर्ण हैं यह इस उपन्यास में सिद्ध है।

चेतन अपने प्रथम कहानी संग्रह के प्रकाशन के लिए कितने झूठ-सच करता है। वह हिन्दी क्षेत्र में अपने आपको प्रतिष्ठित करना चाहता है इसके लिए वह हिन्दी साहित्यकारों के संसर्ग में आता है और उनकी गोष्ठियों में भी भाग लेता है। वहाँ उसे पण्डित धर्मदेव वेदालंकार, आचार्य देशबन्धु नीरवजी, रामेश्वर 'करुण' शुक्लाजी, किसलयजी से परिचय होता है। वह कवि चातक के निकट सम्पर्क में आता है। उसकी कविताएँ उनता है लेकिन उनकी उपेक्षा से उसे निराशा भी होती है। अश्क ने कवि चातक के व्यक्तित्व पर विशद् रूप से प्रकाश डाला है तथा उसके व्यक्तित्व के विरोधाभासों पर गहरा व्यंग्य भी किया है। चेतन अपने को हिन्दी क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने के लिए अपनी पाण्डुलिपि कृपाल देवी से शुद्ध करवाता है।

उपन्यासकार ने विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में चलने वाली राजनीति तथा कुचक्र को बड़े तीखे ढंग से लिया है। हिन्दी के नामधारी साहित्यकारों को ढपोलशंखी रूप पर गहरा व्यंग्य किया है जैसे मुनीन्द्र जी और धर्मदेव वेदालंकार जी पर। वेदालंकार के

विवाह के पूर्व उनकी कमर दर्द का तो ऐसा मजाब बनता है कि पाठक मुग्ध हो जाता है। उसके सूट-बूट पर भी चुटकी ली गई है। इस तरह 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास मध्यवर्गीय चेतन के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं, जीवन-चक्रों का दस्तावेज तो है ही साथ ही लाहौर की हिन्दू-पत्रकारिता तथा साहित्यिक माहौल का खरा चित्र भी है। इसमें बार-बार मध्यवर्ग के चेतन का अहम् उभर कर आता है। सारांशत: यह कहा जा सकता है कि 'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास मध्यवर्गीय युवा पति-पत्नी के संघर्ष की प्रभावपूर्ण गाथा है।

बाँधों न नाव इस ठांव

उपन्यास खोलते ही सब-जज बनने का सपना संजोये निम्न-मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी युवक चेतन से साक्षात्कार होता है जो 'वंदेमातरं' और 'भूचाल' की उपसम्पादकी छोड़ फिलहाल बेकार है और कर्त्तव्य परायण पत्नी चन्दा के स्नेह के सहारे जीवित है। वह नीलामकारों, उठाईगीरों को झेलता साहित्यकारों, पत्रकारों के जंगल में भटकता है। कहीं बैठ नहीं पाता तो लाहौर की अनारगली में फेरी लगाकर रूमाल बेचता है। उसे झंडू फार्मेसी के लिए दवाओं के सूची-पत्र और जड़ी-बूटियों के नामों का अनुवाद करते देखते हैं। बेकारी में एक लम्बी और मनोरंजक बारात भी कर लेता है और धीरे-धीरे उसके जीवन की गाड़ी जब साहित्यिक लाइन पर आती है तो वह सोसायटी 'फोर यू एण्ड मी' नाम की साहित्यिक संस्था की योजना के पीछे उसका ब्रोशर और रसीद बही लिए लाहौर के हिन्दी-उर्दू साहित्यकारों के यहाँ बड़े-बड़े लोगों के यहाँ उपेक्षा, ठोकर, अपमान, निराशा और पश्चाताप के कड़वे घूँटों को पी-पीकर चक्कर लगाता दिखाई देता है। सृजनात्मक शक्ति कुंद होती जा रही है। कुछ रचने के लिए कहीं छपने के लिए बिलबिला रहा है। नाव किसी घाट बँध नहीं पाती है। सब-जजी के सपनों की सिद्ध-पीठ की तलाश में सोसायटी का भार मित्रों को सौंप चेतन शिमला पहुँचता है।

लाला हाकिमचन्द की पुत्री चन्द्रा का ट्यूटर बनकर, दहशत में भी है कि इस अनिंद्य युवा सुन्दरी के पूर्व ट्यूटरों की भाँति वह भी पिट न जाये। बहुत सजग है चेतन फिर भी आधुनिकतम अभिजात सुविधाओं के साथ केनमोर कॉटेज में रहते उस उद्‌माती मुँहजोर चन्द्रा के 'प्रेम' और 'हाय' को झेलते उसमें जो उच्च अहं का मोह विकसित होता

है उसे लेकर वह द्वन्द्वग्रस्त हो जाता है। पार्टी पिकनिक के मजे बहुत हैं पर एक मेले में अपनी छोटी-सी भूल के कारण उसे राजा के सिपाहियों द्वारा गिरफ्तार कर लिये जाने पर हवालाती तहखाने के अत्यन्त कड़वे और विक्षोभकारक सत्य का सामना भी करना पड़ता है। मगर उसके सामने सबसे बड़ा संकट उस ट्यूशन के भँवर से नैतिकता ओर यथार्थ के संघर्ष से चन्द्रा के प्रेम और सौंदर्य की 'चूहेदानी' से निकल भागना है। अत्यन्त सावधान है चेतन किन्तु एक-एक दिन काट कर भी अन्तिम छोर पर पहुँचते एक दुर्घटना का शिकार हो जाता है। लांछन लग ही जाता है, पिटता वह नहीं है परन्तु पीड़ा उससे अधिक झेलता है। शिमला से वापसी अभिशप्त हो जाती है। यही मध्यवर्गीय नियति है। इस वर्ग का व्यक्ति ऊँचे-ऊँचे घाटों के सपने भर देख सकता है। अपनी जीवन-नौका को ऐसी किसी तरह बाँध नहीं सकता है।

'बाँधों न नाव इस ठांव' उपन्यास में श्रमजीवी साहित्यकार पत्रकार के रूप में उभरे उस निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति चेतन का चित्रण है जो उच्च वर्ग की ललक-लालसा से अपूर्ण है। वह बीसवीं शताब्दी के इस वर्तमान उत्तरार्द्ध की उस खण्डित औसत मानवीय-चेतना का प्रतीक है जो आस्था आदि मूल्यों के खो जाने के संकट को झेल रहा है। वह उत्कट जिजीविषा से पूर्ण है। अनवरत उदग्न, भागमभाग में श्लघ, विविध लोगों से मिलने टकराने और उन्हें सहने की आपाधापी में डांवाडोल मध्यवर्गीय मान्यताएँ, वर्जनाएँ, कुण्ठाओं और आदर्शों में जकड़ा नैतिक, दुर्बल और उद्देश्यनिष्ठ सुविधाजीवी लोगों के घाट पर अपनी नांव बाँधने की याचक मुद्रा से परिपूर्ण बाहर से खुशामद करता है और भीतर से गाली देता है। "स्याला! सारा लिबरिज्म स्टेट बनाये रखने का दूसरा नाम है।"[44] सोसायटी के चन्दे के लिए बीमा एजेन्ट की आशावादिता और धैर्य लिए वह चक्कर काटता है। असफलता और अपमान की अनुभूति होने पर झुँझलाकर कभी सोचता है उसमें और उठाईगिरों में कोई अन्तर नहीं, कभी सोचता है फेरी लगाकर रूमाल बेचना इससे अधिक सम्मानजनक है, कभी सोचता है यह वेश्यावृत्ति से गयी गुजरी दलाली है। कला और साहित्य के माध्यम से ही रोजी-रोटी और गुजारे के लिए वह छटपटाता रहता है। मंजिल की तलाश में जो व्यक्तियों और वस्तुओं से टकराता है वह वास्तव में उसके आत्मोन्वेषण की प्रक्रिया है। उपन्यास के प्रथम भाग के अन्त में वह निष्कर्ष पर पहुँचता है कि, "आज की दुनिया में गरीब लेखक की कोई कद्र नहीं।"[45] यह उपन्यास की केन्द्रीय

पीड़ा है। कमजोर और मजबूर होने का उसका ऐसा द्रादक है कि पाठकीय चित्त हिल जाता है। चन्द्रा के सम्पर्क को वह 'चूहेदानी में फँसे होने' जैसा सोचता है। भय, आशंका, विवशता, अपमान, चतुराई और निडरता की एक साथ अनुभूति है, तलवार की धार पर आगे बढ़ने जैसी सतर्कता है और कुल मिलाकर निम्न–मध्यवर्ग की मानसिकता का एक प्रामाणिक दस्तावेज है, जिसकी पहली शर्त ईमानदारी है। चेतन चन्दे का एक रुपया नहीं खाता है। दूसरी दफा नैतिकता है। वह सोचता है कि, "चन्द्रा उसके साथ भागने को तैयार हो जाये तो क्या वह भाग सकता है।"[46] उत्तर नकारात्मक होता है। तब अपने को डरपोक ओर नामर्द भी मान लेता है। हीनता और उच्चता का एक खास एहसास काम करके पछताना, आदर्शबोध और ऋण अदायगी की चिन्ता आदि इस वर्ग की मानसिकता की अन्य दफाएँ हैं। कलात्मक उन्मेष के प्रभाव से चेतन में कुछ अतिरिक्त विशेषताएँ भी आ जाती हैं। चमत्कारी बाबा को उनके समूचे प्रभाव व्यूह से निकल कर मुँह पर ही जादूगर कह देता है और आर्थिक लाभ के लिए साथियों पर जासूसी करने के सूफी साहब के प्रस्ताव को ठुकरा देता है। नि:सन्देह अश्क जी का चेतन ऐसा प्रामाणिक निम्न–मध्यवर्गीय चेतन है जो उभरने की प्रक्रिया में है।

पलटती धारा

इस उपन्यास में नायक चेतन को आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है। उसको कदम–कदम पर इस बात का एहसास होता रहता है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति धन के अभाव में कुछ भी नहीं कर सकता, जिसकी वजह से उसका आगे बढ़ने का विकास अवरुद्ध हो जाता है और वह आगे बढ़ता हुआ वापस खाई में ही गिरता है। ठीक यही चेतन के साथ होता है। जैसे–तैसे करके चेतन ने लॉ कॉलेज में प्रवेश तो ले लिया लेकिन अब उसके सामने एक और भयंकर समस्या यह आ गयी कि खाने–पीने, रहने और किताबों के लिए रुपये कहाँ से आयेंगे। इन सबके समाधान के लिए जगह–जगह चेतन पैसे कमाने के लिए ट्यूशन करता है। वह भी पढ़ाई में थोड़ा वक्त निकालकर। इसके लिए उसे कई बार अपमानित भी होना पड़ता है और अपना स्वाभिमान भी गँवाना पड़ता है।

छुट्टियों में चेतन यह सोचकर लाहौर से जालन्धर वापस इसीलिए आ जाता है कि वह बीमार पत्नी के साथ रहकर और उसकी सेवा–सुश्रुषा करके ठीक ढंग से पढ़ाई कर

सकेगा। मगर उसका परिणाम उल्टा होता है क्योंकि वहाँ पर उसकी साली नीला आ जाती है जिसका सानिध्य पाकर चेतन सब कुछ भूल जाता है और उससे निजात पाने के लिए अपने पिता के पास बहरामपुर पहुँच जाता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् उसे वहाँ भी अपने मन को शान्ति नहीं मिल पाती है और वह वापस लाहौर आ जाता है। इस प्रकार यह मध्यवर्गीय युवक की जीवनगाथा ही है कि वह कुछ बनना तो चाहता है परन्तु उससे कहीं पर भी उसके अनुरूप उचित वातावरण नहीं मिल पाता है और यही मध्यवर्गीय युवक की नियति है। इस प्रकार इस उपन्यास माला में चेतन के अहं का और उसके माध्यम से निम्न–मध्यवर्ग की अर्थ कामजन्य कुण्ठाओं का और उससे सम्बन्धित जिन्दगी के तमाम उतार–चढ़ावों का व्यापक चित्रण हुआ है।

उपन्यास माला (गिरती दीवारें, शहर में घूमता आईना, एक नन्हीं किन्दील, बाँधों न नाव इस ठांव (दो खण्ड) और पलटती धारा) में कथा का अंश बहुत कम है। अधिकांशतः वातावरण और परिस्थितियों का चित्रण किया गया है या फिर उसमें निम्न–मध्यवर्गीय और दूसरे वर्गों के चरित्रों की एक चकित कर देने वाली भीड़ है। अश्क जी की सारी सफलता परिस्थितियों, वातावरण तथा भाँति–भाँति के चरित्रों के चित्रण में देखी जा सकती है। यही सब मिल–जुलकर इस उपन्यास माला को निम्न–मध्यवर्गीय जीवन का महाकाव्य सिद्ध करते हैं। अतः समग्रतः अश्क की इस उपन्यास माला को 'मध्यवर्गीय जीवन के महाकाव्य' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

गर्म राख

इस उपन्यास का नायक जगमोहन है जिसके माध्यम से लेखक ने निम्न–मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को उठाया है तथा व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि से उनका विश्लेषण किया गया है। 'गर्मराख' उपन्यास में आर्थिक तथा नैतिक स्तर पर उखड़े हुए निम्न–मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसका नायक शिक्षित मध्यवर्ग के जीवन की ह्रासशील मान्यताओं का प्रतीक है। उपन्यास के पात्रों—कवि, सम्पादक, अध्यापक, प्रकाशक, सुधारक, विद्यार्थी, मजदूर और मालिक आदि की व्यक्तिगत तथा वर्गगत समस्याओं का निरूपण करते हुए लेखक जीवन की उस राख की ओर संकेत करते हैं जिसमें अभी ऊष्णता विद्यमान है।

जगमोहन सत्या के प्रेम में उलझकर उससे मुक्ति पाता है और दुरो का प्रेम पाने के लिए आतुर रहता है। वह आर्थिक विषमताओं, सामाजिक मान्यताओं तथा व्यक्तिगत कुण्ठाओं के कारण सत्या से सम्बन्ध विच्छेद कर अपनी कायरता तथा भीरूता का परिचय देता है। सत्या को जगमोहन से गहरा अनुराग है और जगमोहन के प्रति उसका आत्मसमर्पण इस अनुराग का प्रमाण है। परन्तु जगमोहन दूरो के प्रति आसक्त है और दुरो हरीश के प्रति। वास्तव में जगमोहन का चरित्र जो उपन्यास का के बिन्दु है, मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक है जो जलकर राख बन चुका है। उपन्यास का वातावरण असफलता, निराशा, कुण्ठा आदि के भावों में व्याप्त है। जगमोहन, सत्या, कवि चातक, हरीश, दुरो, धर्मदेव वेदालंकार का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण सामाजिक रूढ़ियों से टकराता है। उनके तथा अन्य पात्रों के व्यक्तिगत स्वार्थ उनके जीवन की तुच्छता का परिचय देते हैं। हरीश तथा दुरो का जन-आन्दोलन में भाग लेना भी पलायन मात्र है। उपन्यास की सफलता मध्यवर्गीय समाज के सीमितजीवन की मार्मिकता तथा सूक्ष्मता के साथ अंकित करने में है।

मध्यवर्ग का व्यक्तिवादी जीवन दर्शन परास्त होकर अवसरवादी रूप धारण कर लेता है। उसका आदर्शवादी दृष्टिकोण यथार्थ के धरातल पर उपयोगितावाद में परिणत हो जाता है। उसके प्रेम का रोमांटिक स्वरूप वासनामय बन जाता है। जगमोहन तथा सत्या के पारस्परिक सम्बन्ध का विकास तथा ह्रास मध्यवर्ग की उन मानसिक उलझनों तथा नैतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति करता है जिनमें बँधकर भारतीय युवक और युवतियाँ अपनी इच्छाओं को कुण्ठित तथा दमित पाती हैं। लेखक की धारणा है कि, "मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक विषमता और जाति-पाँति के बन्धनों में प्रेम प्राय: एकाकी ही रहता है। दिल की जलन केवल एक ओर ही होती है। दूसरे को पता भी नहीं चलता।"[47] जगमोहन की काव्य पंक्तियाँ इस धारणा को स्पष्ट तथा पुष्ट करती है, "छिपकली-सी यह मुहब्बत आज के युवक की लजीली, भीरू, अपने नाम ही के सहम-से जो सिमट जाये। तिमिर से आच्छन्न कोनों और अतरों से सरक कर झाँकती है।"[48] जगमोहन और सत्या के साहस तथा त्याग का जगमोहन के चरित्र में अभाव है। गाँधीवादी कवि चातक जिनका चरित्र उपन्यास में उभरकर आता है, श्रीमती कर्मा को रावण के प्रेम का रहस्य बताते हैं और क्रान्ति के गीत गाते हैं।"[49] सत्या का विवाह एक कुरूप तथा धनी व्यक्ति से सम्पन्न होता है। यह विवाह सत्या की जगमोहन में अटूट आस्था का परिचायक है। समाज पर गहरी

चोट है। जगमोहन तथा सत्या के जीवन में आत्म-हत्या की भावना विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है। जगमोहन की विचारधारा उसे कायरता तथा भीरूता के लिए कचोटती है। उसके घाव को गहरा बनाती है। प्रेम भी मानव की कैसी विवशता है। सत्या जगमोहन को चाहती है, जगमोहन दुरो को चाहता है, दुरो हरीश को चाहती है और हरीश अहं तथा जनता से प्रेम करता है। हरीश प्रेम में मानव के विकास को खोजता है और अपने मन को बहलाने का प्रयत्न करता है परन्तु संसार में प्रेम के अतिरिक्त और भी दुःख हैं। वह जीवन की राख में दबी चिनगारी की खोज में है।

आधार कथा के साथ-साथ अनेक अन्य पात्रों के प्रेम तथा रोमांस का वर्णन करके आधुनिक युग के निम्न-मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुषों के प्रेम उनकी विषमता, विवशता आदि को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रायः सभी प्रमुख पात्रों का प्रेम परिस्थितियों की 'गर्म राख' के नीचे दबा-सा प्रतीत होता है।

बड़ी-बड़ी आंखें

यह अश्क जी का चौथा उपन्यास है, जो आज के मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ और आदर्श में विरोध को अंकित करता है। संगीत इस वर्ग का आदर्शवादी युवक है जो आदर्श पर चलने के लिए छटपटा रहा है और वाणी एक ऐसी युवती है जो संगीत को इस विकट पथ पर चलने के लिए उत्साह और स्नेह प्रदान करती है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें उसके अन्तर की बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो बड़े-बड़े सपने देखती हैं। उपन्यास में जीवन-चित्रण देवनगर नामक संस्थान से सम्बन्धित है जिसके संचालक देवाजी, उनकी पत्नी और अन्य देव सैनिक हैं, जो प्रेम के आधार पर समाज का नव-निर्माण करना चाहते हैं।

लेखक की धारणा है कि समाज को बदलने के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न विफल होकर रह जाते हैं और जो नेतागण इस उद्देश्य को साकार रूप देने में प्रयत्नशील हैं वे अपने आदर्शों को आवश्यकता पड़ने पर विकृत रूप देने में नहीं हिचकिचाते हैं। देवाजी का चरित्र इस धारणा का प्रतीक है और उनके देव सैनिक उनकी अनुकृति मात्र करना तो जानते हैं, परन्तु उनमें आदर्श का पालन नहीं जानते। उनमें मानव स्वभाव की सभी दुर्बलताएँ विद्यमान हैं, जो प्रायः इस प्रकार के आश्रमनिवासियों में पायी जाती हैं। देवाजी आदर्शवादी होते हुए भी एक निर्बल नेता हैं जो मध्यवर्गीय समाज की विचारधारा के

अनुकूल अपने आदर्शों से समझौता करके चले जाते हैं और लेखक कहता है, "समझौता जीवन की शर्त सही पर जीवन में कुछ तो ऐसा हो जहाँ आदमी किसी से समझौता न कर सके।"[50] इस दृष्टिकोण को विभिन्न चरित्रों, संकेतों तथा प्रतीकों द्वारा लेखक ने उपन्यास में निरूपित करने का प्रयास किया है।

अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु से दु:खित शान्ति की खोज में देवनगर आया हुआ संगीत सिंह कुछ महीनों में ही वहाँ के व्यक्तियों के ओछे व्यवहार से ऊब जाता है। देवा जी की पन्द्रह-सोलह साल की नन्हीं बीमार-सी लगने वाली लड़की वाणी के प्रेम में कविता लिखने वाला तीरथराम संगीत सिंह से बुरी तरह ईर्ष्या करने लगता है क्योंकि वह देखता है कि वाणी उसी की ओर उन्मुख है। वह हरमोहन, सुदर्शन सिंह आदि का गुट बनाकर संगीत को बदनाम करने, उसे अपमानित करने का सदैव प्रयत्न करता रहता है। उन्मुक्त और पवित्र प्रेम के हिमायती देवाजी भी वाणी के इस स्नेहाकर्षण से प्रसन्न नहीं हैं। देवाजी की पत्नी जिन्हें देव सैनिक माताजी कहते हैं, अपने पति पर हावी है इसलिए वहाँ चलती तो माताजी की है और उन्हें जो सुबह उठकर नमस्ते न करे, दिन में दो-एक बार जाकर उनके दरबार में हाजरी न दे, वे उनकी दुश्मन बन जाती है। तीरथराम उनकी चापलूसी में रहता है। अतएव वाणी के प्रति उसके अशोभनीय आचरण को भी वह पचा ले जाती है। किन्तु संगीत सिंह से वह नाराज रहती है क्योंकि वह चापलूसी नहीं कर पाता। उन्हीं के कारण सेना के सिपाहियों में खाई पड़ती जा रही थी और वहाँ स्पष्टतया दो पार्टियाँ बन गई थीं, एक तो तीरथराम, हरमोहन, सुदर्शन सिंह आदि चापलूसों की, और दूसरी मघवार साहब, नन्दलाल आदि सच्चे एवं उत्साही कार्यकर्त्ताओं की। देवाजी ने बच्चों का जो 'प्रैक्टिकल स्कूल' खोल रखा है, माताजी उसकी मैट्रन है। अतएव वहाँ भी पक्षपात, दिखावट एवं यथार्थ की प्रबलता है। 'प्रैक्टिकल स्कूल' का उद्देश्य तो यह था कि वहाँ सभी प्रकार के बच्चे बिना भेद-भाव के रहे। उनका स्वाभाविक ढंग से मानसिक विकास हो, किन्तु संगीतसिंह का गरीब नौकर गुलाम नबी वहाँ से इसलिए निकाल दिया गया कि उसमें चोरी की आदत थी। उस बुरी आदत को छुड़ाने का प्रयत्न न करके उस बच्चे को ही बहिष्कृत कर दिया गया।

'अप्रैल फूल' बनाने के बहाने तीरथराम आदि ने संगीतसिंह को बेइज्जत एवं अपमानित किया जिससे वह अत्यधिक अशान्त हो उठा। माताजी ने वाणी को प्रैक्टिकल

स्कूल के छात्रावास में रखकर उसकी भी गतिविधि को नियंत्रित कर दिया। ऐसे ही दिखावटी एवं दमघोंटू वातावरण से ऊबकर संगीतसिंह वहाँ से चला जाता है। देवनगर से विदा होता संगीतसिंह सोचता है, "देवाजी सचमुच उदार स्वप्न दृष्टा है लेकिन देवाजी की इच्छा और उदारता के बावजूद देवनगर का कुछ बनने वाला नहीं इसका मुझे विश्वास हो गया था। देवनगर मुझे उस देश-सा लगता, जिसका प्रधानमन्त्री उदारतम्, स्वप्नशील और भविष्यद्रष्टा हो पर जिसके दफ्तरों में भ्रष्टाचार और स्वजन-पालन का दौर-दौरा हो। उस प्रधानमन्त्री की अच्छाई स्वप्नशील और भविष्य दर्शन के बावजूद उस देश का क्या बन सकता है? यदि वह एक सिरे से लेकर दूसरे तक सारे समाज को नहीं बदल सकता तो उसे एक के बाद एक समझौता करना पड़ेगा। उसके सपने और आदर्श धरे के धरे रह जायेंगे और देश रसातल में चला जायेगा।"[51] कहना न होगा कि आज भी भारतीय राजव्यवस्था का यह यथार्थ विश्लेषण है। देवनगर के समान ही यहाँ भी दीवारों के बाहर एक ईंट पक्की है, अन्दर से सब कच्ची है। लीप-पोतकर सुन्दर बना दी गई हैं। ऊँचे आदर्शों से प्रेरित प्रतिष्ठापित निकेतनों, आश्रमों, सदनों, बागों के आन्तरिक खोखलेपन के कारणों को देखना हो तो हम देवनगर देख लें। मनुष्य की निम्नतम प्रवृत्तियाँ ऊँचे सपनों को सत्य नहीं होने देतीं। फिर बड़े सपने देखने के लिए बड़ी आँखें चाहिए और यदि दृष्टि संकुचित है तो बड़े सपने कभी साकार नहीं हो सकेंगे। उपर्युक्त उद्देश्य के प्रतिफलित करने में उपन्यास का कथानक पर्याप्त सफल सिद्ध हुआ है।

किन्तु कथानक में रूमानी स्वर भी नितान्त स्पष्ट है और कथा की मनोरंजकता बहुत कुछ उसी भाग पर अवलम्बित है। यहाँ भी प्रेम का त्रिकोण बन ही गया है। तीरथराम, वाणी को प्यार करता है, वाणी संगीतसिंह को प्यार करती है और यद्यपि संगीतसिंह को वाणी के स्नेहार्द्रता स्वयं सरस कर जाती है किन्तु उसका वास्तविक प्रेम तो अपनी दिवंगत पत्नी के प्रति ही है। तीरथराम का प्रेम वासनाजनित एवं उच्छृंखल है, वाणी का प्रेम नवनीत या स्निग्ध, कोमल पवित्र एवं मूक है। अपनी दिवंगत पत्नी के प्रति संगीतसिंह का प्रेम दाम्पत्य रस की स्मृति से करुण है। वाणी के प्रति उसका आकर्षण शरीर का नहीं सहानुभूति का है। अपने अन्य उपन्यासों के विपरीत अश्क जी ने इस उपन्यास में प्रेम को किंचित भिन्न भूमि दी है किन्तु इस प्रेम कथा का प्रभाव प्रसन्दिग्ध है।

प्रस्तुत उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज में मरणशील आदर्श के चित्रण द्वारा व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से व्यक्तिवादी विचारधारा को स्पष्ट तथा पुष्ट किया गया है।

पत्थर–अल–पत्थर

यह अश्क जी का पाँचवाँ उपन्यास है जिसमें खन्ना साहब मध्यवर्ग के उस कंजूस विजीटर के प्रतीक हैं जिन्हें कश्मीर के सौन्दर्य से कोई वास्ता नहीं। वे कश्मीर आये हैं अल–पत्थर की प्रसिद्ध झील को एक बार देख लेने की लालसा लिए हुए ताकि वे यह कह सके कि उन्होंने गुलमर्ग, विलनमर्ग आदि के साथ वह झील भी देख ली है। वहाँ का सौन्दर्य क्या है? इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। इसके साथ ही पहली बार हिन्दी उपन्यासों में यह चीज उभरकर आयी है कि वहाँ की निर्धन और असहाय जनता की खुदा में परम आस्था है।

निमिषा

'निमिषा' उपन्यास का नायक गोविन्द मध्यवर्गीय पात्र है जो नियति के हाथों इतना अधिक दु:खी है कि अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् अपने मन की शान्ति के लिए देवनगर में एक आर्ट–टीचर की नौकरी का पेशा अपनाता है। पत्रों के माध्यम से वहाँ पर उसकी मुलाकात निमिषा नामक लड़की से होती है जो स्वयं भी 'रेनाला' के एक स्कूल में हैड मिस्ट्रेस है। पत्रों के माध्यम से दोनों एक–दूसरे के निकट आते हैं। परिस्थितियों के हाथों मजबूर गोविन्द खुली किताब की तरह अपनी जिन्दगी का एक–एक पन्ना पढ़कर निमिषा को सुनाता है और इतना भाव–विभोर हो जाता है कि वह आनन–फानन में निमिषा से विवाह करने के लिए कहता है, क्योंकि गोविन्द में वह शक्ति नहीं है कि वह अपने भाई का सामना कर सके, इसलिए वह उनकी अनुपस्थिति में शादी करना चाहता है। इसके पीछे एक कारण यह भी था कि गोविन्द की सगाई हो चुकी थी जिससे गोविन्द शादी नहीं करना चाहता था, परन्तु नियति के हाथों गोविन्द की शादी निमिषा से नहीं होकर माला जैसी फूहड़ लड़की से हो जाती है जिसे गोविन्द कभी पसन्द नहीं करता है जिससे छुटकारा पाने के लिए गोविन्द को कई बहाने बनाने पड़ते हैं और माला से निजात पाने के लिए वह बंगलौर के एक धनी सिक्ख ठेकेदार सरदार गुरमीत सिंह के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने के लिए बंगलौर चला जाता है।

गोविन्द माला से विवाह तो कर लेता है परन्तु उसका मन निमिषा के लिए भटकता रहता है और वह स्वप्न में देखता है कि, "निमिषा ने कहा था कि वह उसकी सारी दुविधा समस्त भटकन दूर कर देगी ... निम्मा मुझे उबार लो ... निमिषा ... निमिषा...।"[52] निमिषा उपन्यास की नायिका है जो गोविन्द के समान ही मध्यवर्गीय पात्रा है, वह भी गोविन्द की तरह ही परिस्थितियों की मारी है जो बचपन में ही अनाथ हो जाती है और जीवन के दो पाटों के बीच पिसती रहती है। निमिषा अपने चाचा के पास रहती है परन्तु उसकी चाची से उसकी बनती नहीं है, इसलिए वह 'रेनाला' में हैडमिस्ट्रेस की नौकरी कर लेती है। वहाँ पर उसकी मुलाकात गोविन्द से पत्रों के माध्यम से होती है और वह जीवन के नजदीक आती है। वह गोविन्द को अपने विषय में बताती है और जिसे गोविन्द हकीकत समझ बैठता है और निमिषा से विवाह के लिए कहता है परन्तु निमिषा गोविन्द की तरह भावुक नहीं है। वह इस तरह के प्रस्ताव के लिए मना कर देती है और गोविन्द से कहती भी है कि वह अकेली विवाह नहीं कर सकती क्योंकि, "बिना बताये कहीं शादी कर लूँगी तो चाचा बहुत अपमानित महसूस करेंगे ... उन्होंने मुझ अनाथ को पाला और पढ़ाया है ... फिर मेरी नौकरी का भी सवाल है। इस तरह बिना किसी को बताये मैं नहीं कर सकती शादी। मेरे मामा और मौसियाँ तो खैर दूर रहते हैं लेकिन लाहौर में चाचा-चाची के अलावा मेरी दादी जिन्दा है, फूफी है, उसकी लड़कियाँ हैं, दामाद हैं, मेरी सहेलियाँ हैं, मिसेज शर्मा हैं। आप कल का रखे तो मैं आज शाम सबको इत्तला दे दूँगी। मैं नहीं कहती कि सब शादी में शामिल हो ही जायेंगे। ... लेकिन मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जायेगा।"[53] सचमुच निमिषा ने ऐसा कहकर मध्यवर्गीय जिन्दगी की एक जीती-जागती तस्वीर पेश कर दी है जो आज की एक शिक्षित लड़की के लिए मिसाल है और अन्त में निमिषा गोविन्द से शादी तो नहीं करती है परन्तु उसके विवाह की बधाई और उसे सपरिवार 'रेनाला' में आमन्त्रित करती है और यही मध्यवर्गीय नियति भी है।

यथार्थ सत्य के रूप में 'निमिषा' उपन्यास के ये दोनों मध्यवर्गीय पात्र मध्य वर्ग के जीवन की जीती-जागती तस्वीर पेश करते हैं जो यथार्थ में परिणित होता है। इस प्रकार इसमें जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने की पूरी चेष्टा है। एक ओर तो यथार्थ की समस्त कटुता और भीषणता है, दूसरी ओर उससे जूझकर उबरने का भाव है।

एक रात का नरक

इस उपन्यास का नायक स्वयं अश्क ही है, जो मध्यवर्गीय पात्र है। वह शिमला में सी.पी. का मेला देखने पण्डित तेजभान आदि पार्टी के साथ जाता है। लेखक की यही तीव्र इच्छा थी कि वह पहाड़ी मेले के गीत इकट्ठे करके लायेगा। रास्ते चलते-चलते पार्टी के सभी लोग मध्यवर्गीय लोगों का मजाक उड़ाते हुए आगे बढ़ते हैं। मेले में पहुँचकर लेखक पहाड़ी गीत इकट्ठे करने के लिए पार्टी से अलग हो जाता है परन्तु वह एक ऐसे मोड़ पर पहुँच जाता है जहाँ मध्यवर्गीय व्यक्तियों का मजाक उड़ाया जाता है। लेखक के यह पूछने पर कि "क्योंकि यह आपके राणा कहाँ तक पढ़े होंगे।"[54] इतनी-सी बात के लिए लेखक पर गाली-गलोच, मेले में लड़कियों को छेड़ने का अभियोग और सिपाही के साथ मार-पीट का झूठा इल्जाम लगाकर लेखक को एक तंग काल-कोठरी में बन्द कर दिया जाता है। तब उसे मध्यवर्गीय जीवन का एहसास होता है और उन नर पिशाचों के बारे में पता चलता है कि कैसे कमजोर व्यक्तियों पर वे जुल्म करते हैं।

सुबह होने पर लेखक को उस रियासत के राणा के सामने पेश किया जाता है। वहाँ पर भी उसको मजबूर होकर यही कहना पड़ता है, "हुजूर गलती हो गई है, माफ कर दो, आगे से ऐसा नहीं होगा।"[55] उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है। वहाँ से छूटने के बाद लाला हाकिमचन्द लेखक पर इतना भार डाल देते हैं कि-मैंने आपको छुड़ाने के लिए क्या-क्या नहीं किया और यहीं पर मध्यवर्गीय जीवन को ठेस पहुँचती है और वह निराशा में आगे बढ़ता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क जी के उपन्यासों में मध्यवर्ग का जो विशद् चित्रण मिलता है, उसमें विभिन्न जाति, धर्म, नौकरी-पेशा, व्यापार आदि से जुड़े स्त्री-पुरुष हैं। हर पात्र की अपनी विशेषता है जो इनके व्यवसाय और पारिवारिक परिवेश से जुड़ी हुई हैं। अश्क जी का मन बार-बार उन पात्रों को कुरेदता है और उन्हें उनके प्रतिनिधि रूप में खड़ा करता है।

मध्यवर्गीय जीवन की जितनी व्यापक झांकियाँ अश्क जी के उपन्यासों में मिलती हैं वे सब अन्यत्र दुर्लभ हैं। लगता है जैसे वे मध्यवर्ग की हर त्रासदी से सीधे जुड़े हुए हैं और उसे अपने पाठकों को विस्तार से बताना चाहते हैं। जिस मध्यवर्ग का जन्म औद्योगिक युग की देन है जो मध्यवर्ग, उच्च और निम्न वर्ग को जोड़ने की कड़ी के रूप

में कार्य करता है, जिसका अस्तित्व अपने तक सीमित रहने में है वही मध्यवर्ग सामाजिक जीवन की गति को पूरी तरह प्रभावित करने में आज सक्षम हैं। उसका अपना समाज है, जीवन दर्शन है, जीवन के प्रति उत्तरदायी है, वहीं मध्यवर्ग अश्क जी ही नहीं, स्वाधीनता के बाद हर लेखक के साहित्य में प्रमुख रूप से आया है और अपनी महती भूमिका निभाता रहा है।

निम्न वर्ग

द्वितीय महायुद्ध के बाद निम्न-मध्यवर्ग की स्थिति चरमरा गई थी परन्तु निम्न वर्ग वैसा का वैसा ही रह गया था। इस वर्ग का कोई आर्थिक स्तर नहीं होता है। इस वर्ग के प्राय: सभी लोगों का आर्थिक स्तर समान होता है। फलस्वरूप वहाँ अनपेक्षित आकांक्षाएँ नहीं उत्पन्न होती हैं। अपने श्रम के आधार पर इनकी सामान्य स्थिति होती है। स्तर से कुछ ऊँची ही उठ जाती है। समाज में इनका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं होता। फलत: इनके अन्दर किसी भी प्रकार की कुंठाओं का उदय नहीं होता। ये मध्यवर्ग के समान कुंठाग्रस्त नहीं होते। प्रत्येक लेखक की सहानुभूति निम्नवर्ग के प्रति होती है। राज्याश्रित कवियों को छोड़कर अन्य कवियों की प्रतिबद्धता निम्नवर्ग के प्रति ही रही है। वास्तव में साहित्य का मूल उद्देश्य दमित, शोषित और उपेक्षित वर्ग के अधिकारों की लड़ाई लड़ना है, उनके शोषण और अन्याय के विरुद्ध जन-चेतना जाग्रत करने के लिए उचित अवसर प्रदान करना है, उस निर्णायक लड़ाई में सहभागी बनना है जिसकी विजय शोषण की पराजय के रूप में होती है। प्रेमचन्द से लेकर आज तक के यथार्थवादी साहित्य में निम्नवर्ग के प्रति भरपूर सहानुभूति मिलती है। इसलिए 'गोदान' के होरी जैसे पात्र अनेक रूपों में हिन्दी उपन्यासों में भरे पड़े हैं। अपने निजी व्यक्तित्व और अपार क्षमताओं वाले ये पात्र कथा साहित्य की ही नहीं, हिन्दी जगत् की अमूल्य निधि हैं।

अश्क जी के उपन्यासों में निम्न वर्ग बड़ी संख्या में मिलता है। अश्क जी मूलत: तो मध्यवर्ग के लेखक हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में निम्न वर्ग की तलाश करनी पड़ती है फिर भी जिस रूप में वह मिलना चाहिए नहीं मिलता, परन्तु अश्क जी ने सामान्य रूप से तीनों ही वर्गों—उच्चवर्ग, मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग को अपनी लेखनी से रेखांकित किया है।

अश्क जी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की बहुरंगी छवियाँ अंकित करने के क्रम में समय-समय पर मध्यवर्ग से विशेष रूप से निम्न-मध्यवर्ग से जुड़े मजदूर, किसान तबके की तस्वीरें भी उतारी हैं। 'पत्थर-अल-पत्थर' से पहले अश्क 'डाची' और 'कांकड़ा का तेली' जैसी कहानियाँ तथा 'देवताओं की छाया में' जैसा एकांकी लिख चुके थे जो ग्रामीण सर्वहारा वर्ग के यथार्थ को चित्रित करता है। इसके अलावा 'गिरती दीवारें' की चेतन की माँ लाजवन्ती, यादराम, मन्नी, चेतन और 'गर्म राख' की सत्याजी, 'बड़ी-बड़ी आँखें' की वाणी और नबी, 'निमिषा' की माला (नायक गोविन्द की दूसरी पत्नी) में भी अश्क ने शहरी मजदूरों और ग्रामीण किसान मजदूरों की झाँकियाँ दिखायी हैं लेकिन यह सब जैसे एक तैयारी था।

निम्न वर्ग का एक नया रूप उनके उपन्यासों में मिलता है कि मध्यवर्ग की दारुण स्थितियों से संघर्ष करता पात्र निम्न वर्ग की सीमा रेखा तक आ जाता है और वहीं का बनकर रह जाता है। ऐसे अनेक पात्र हैं जो मध्यवर्ग में जन्म लेते हैं लेकिन आर्थिक परिस्थितियों के कारण निम्नवर्ग में आ जाते हैं। उनके 'गिरती दीवारें' उपन्यास की लाजवन्ती इसी प्रकार की प्रमुख स्त्री पात्र हैं जो अपने शराबी पति के सभी अत्याचारों को सहन कर अश्लील वातावरण में रहने के लिए विवश है। रहने का यह तरीका निम्नवर्ग का है, मध्यवर्ग का नहीं। 'पत्थर-अल-पत्थर' में पहली बार अश्क ने निम्न वर्ग के एक सर्वहारा पात्र को उपन्यास का नायक बनाकर समाज में सताये जाने वालों की निरीहता और बेबसी का चित्रण किया गया है। 'पत्थर-अल-पत्थर' का 'हसनदीन' निम्न वर्ग का नायक है जो मुँशी प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' के 'होरी' की तरह का एक प्रतीक है। उस भूमिहीन किसान वर्ग का जिसकी आहट 'गोदान' में सुनायी देती है।

'पत्थर-अल-पत्थर' कश्मीर के एक प्रमुख पर्यटन स्थल गुलमर्ग के एक दरिद्र धर्म परायण भूमिहीन मजदूर किसान हसनदीन की कहानी है जो गुलमर्ग की सैर के लिए आने वाले सैलानियों को किराए पर घोड़े उपलब्ध कराता है और साथ में गाइड का काम करता है। चूँकि 1947 के बाद पर्यटन एक 'उद्योग' बन गया है इसलिए हसनदीन को स्थानीय अधिकारियों, विशेष रूप से पुलिस के हवलदारों को खुश करना पड़ता है क्योंकि पुलिस के इन सिपाहियों की कृपादृष्टि पर ही उसकी आय निर्भर है।

हसनदीन निम्नवर्ग तथा उसके अकथनीय सौन्दर्य में रेंगने वाली गरीबी तथा असहायता का प्रतीक है। उसकी नियति उस वर्ग की नियति है जिसमें वह जी–मर रहा है। अभावग्रस्त हसनदीन की मनोवृत्तियों के प्रकाश में कथा की भूमिका तैयार होती है और उसके कार्यकलाप तथा खन्ना साहब से उसे गति मिलती है। उसकी गरीबी और निरीहता पर खन्ना साहब की हर चोट सामाजिक शोषण–प्रक्रिया को प्रत्यक्ष करती है।

हसनदीन एक अत्यन्त निरीह गरीब और अपने हर भले–बुरे का निमित्त भगवान् को मानने वाला आस्थावान व्यक्ति है। उपन्यास के पहले परिच्छेद में ही वह खुदा के हुजूर में झुका हुआ दुआ माँग रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में घोड़ेवान हसनदीन के जीवन की एक दिन की कहानी है। यह मात्र एक दिन की कहानी नहीं होकर उसके और उसके वर्ग के सम्पूर्ण जीवन की कहानी है। वह खन्ना साहब एवं उसके पूरे परिवार को घोड़े पर बिठाकर टंगमर्ग ... से अल पत्थर की झील को दिखाने ले जाता है। उप्पल साहब तथा उनकी भतीजी भी आगे–आगे दूसरे घोड़ेवान के घोड़े पर जा रहे हैं। घोड़े के साथ चलता हुआ हसनदीन अपने अतीत तथा वर्तमान के बारे में सोचता जा रहा है। इससे उसकी स्थिति का सही बोध होता है। शाम को जब उन्हें अपने गन्तव्य पर पहुँचाता है तब तक उसे बुखार हो जाता है। अन्त में उनका ओछापन प्रकट होता है। उप्पल जो सहज–उदार निराभिमानी और सरल व्यक्ति है और खन्ना जो सम्पन्नता और उदारता का ढोंग रचते हैं, वास्तव में वे बहुत क्षुद्र, नीच और अनुदार प्रकृति के व्यक्ति हैं। यहाँ मध्यवर्ग के खोखलेपन को उघाड़कर सामने लाया गया है।

दो दिन के अथक परिश्रम के बाद भी जब उसे कानी कौड़ी भी नहीं मिलती है तथा वह बेईमान सिपाहियों द्वारा निरपराध हवालात में बन्द कर दिया जाता है, तब भी वह खुदा से कोई शिकायत न करके अपने कष्टों को दूर करने की ही प्रार्थना करता है। 'पत्थर–अल–पत्थर' घोड़ेवान हसनदीन की दर्दगाथा है। मध्यवर्गीय छिछोरेपन तथा उनके द्वारा निम्न वर्ग के शोषण की कहानी पत्थर को भी दरका देने की क्षमता रखती है। अश्क ने अपने उपन्यास 'पत्थर–अल–पत्थर' में निम्नवर्ग के पात्र हसनदीन का प्रामाणिक चित्र उपस्थित किया है। वह अथक परिश्रम करता है और उसकी भगवान् के प्रति अटूट आस्था है। इसके फलस्वरूप उसे प्राप्त होती है मात्र निराशा। वह निराश होकर टूटता है मगर फिर अपने कार्य में व्यस्त हो जाता है। यह निम्नवर्ग का वर्गगत चरित्र वैशिष्ट्य है।

यहाँ निम्नवर्ग मध्यवर्ग के द्वारा शोषित होता है। हसनदीन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। 'पत्थर-अल-पत्थर' में चित्रित निम्नवर्ग की स्थिति स्वाभाविक और मार्मिक है।

'एक नन्हीं किन्दील' उपन्यास में निम्नवर्ग के परिवेश का स्पष्ट चित्र उभारा गया है। "पैसा अखबार स्ट्रीट से जब ताँगा लॉ कॉजेज की ओर चला तो सहसा वह अपना चिर-परिचित इलाका छोड़ते हुए चेतन का मन उदास हो आया। पीपल बेहड़ा में लाला दीवानचन्द्र हलवाई की वे सीली अंधेरी कोठरियां, वे उपलों से अटी दीवारें, वे बदबूदार नालियाँ, चंगडानियों की वे कुफ्रतोड़ गालियाँ, वह धूल और गर्द-गुबार भरी स्ट्रीट, उसमें रहने वाले वे गरीब लोग, वह सारे का सारा माहौल, जिसके बीच उसने दो वर्ष बिताये थे, उसे हठात् प्रिय हो आया...।"[56]

निम्न वर्ग की जीवंत यात्रा के रूप में अश्क जी की सबसे प्रखर सृष्टि 'निमिषा' उपन्यास की माला है जो बचपन से ही अभावों में जीती है और जब गोविन्द से विवाह करती है, तो गोविन्द की पूर्व परिचित निमिषा से बातचीत करना तो क्या, उसे देखना भी पसन्द नहीं करती है। उल्टे अपने पति को निमिषा को वेश्या बताते हुए यह कहती है कि, "वही रण्डी जिसने आप पर टोना कर रखा है, जिसके ध्यान में दिन-रात गुम रहते हो और अपनी परनीता (परिणिता) से दो बात भी नहीं करते।"[57] पति गोविन्द के बार-बार समझाने पर कि निमिषा ऐसी लड़की नहीं है, जैसा तुम सोचती हो। क्यों उस बेचारी को गालियाँ देती हो। ऐसा कहते ही माला ने फिर चिल्लाना शुरू कर दिया, "क्यों वो इस ब्याह के साक्षी नहीं है? कहीं से भगा कर लाये हो मुझे? कई दिनों से मैं देख रही हूँ आप सीधे मुँह बात नहीं करते। आप पर उस रण्डी ने जादू कर रखा है। इस बार मैं राहों जाऊँगी तो टोना कराके लाऊँगी।"[58] निम्न वर्ग की माला जैसे फूहड़, गँवार और ठस महिला यथार्थ रूप में जरूर कहीं ना कहीं जी रही है। निम्न वर्ग और निम्न-मध्यवर्ग के अपने पात्र अश्क जी के उपन्यासों में अपने सम्पूर्ण वर्गगत चरित्र के साथ विकास पाते हैं और कथा संरचना में अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ते हैं।

अश्क जी का लेखन बहुआयामी है। समाज के अनेक स्तरों पर उनकी दृष्टि कथा की तलाश करती है और उन स्थितियों तथा पात्रों का चयन करती है जो अपने युग को प्रतिनिधि के रूप में चित्रित करते हैं। यही कारण है कि अश्क जी मध्यवर्ग पर अपना

अमिट प्रभाव छोड़ते हुए एक वर्ग के कथाकार बनकर नहीं रह पाये। वे समाज के तीनों वर्गों को उनके वर्ग चारित्र्य के साथ अंकित करते हैं। स्वाधीनता के बाद के कथाकारों में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। वे पूर्णत: मध्यवर्ग के कथाकार बनकर रह जाना पसन्द करते हैं। प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के लेखकों में जीवन समग्रता के साथ आता है। अश्क जी में भी वही परम्परा फली-फूली है। इसलिए वे समग्र जीवन के कथाकार हैं, किसी वर्ग और किसी विशेष प्रवृत्ति के प्रति उनका अनाकर्षण उन्हें स्वस्थ समाज उद्देश्य और वैज्ञानिक परम्परा से जोड़ता है।

सन्दर्भ

1. डॉ. सुरेश सिन्हा — हिन्दी उपन्यास, पृ. 580
2. रजनी पामदत्त — आज का भारत, पृ. 180
3. राल्फ फॉक्स — उपन्यास और लोकजीवन, पृ. 38
4. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 44-45
5. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 230
6. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 232
7. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 233
8. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 230
9. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 230
10. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 231
11. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 231
12. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 251
13. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 256
14. अश्क — गर्म राख, पृ. 420
15. अश्क — गर्म राख, पृ. 322
16. अश्क — गर्म राख, पृ. 103-104
17. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 29
18. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 589
19. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 594

20. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 108-109
21. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 349
22. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 591
23. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (दूसरा खण्ड), पृ. 84
24. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 7
25. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 51
26. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 51
27. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 116
28. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 113
29. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 152
30. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ.
31. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 115
32. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 259-260
33. अश्क — निमिषा, पृ. 8-9
34. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 200
35. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 200
36. अश्क — सितारों के खेल, पृ. 202
37. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 392
38. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 255
39. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 256
40. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 390-391
41. अश्क — गिरती दीवारें, पृ. 391
42. डॉ. तहसीलदार दूबे — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, पृ. 134
43. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 159
44. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 340
45. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 412
46. अश्क — बाँधों न नाव इस ठांव (पहला खण्ड), पृ. 520
47. अश्क — गर्म राख, पृ. 159
48. अश्क — गर्म राख, पृ. 227
49. अश्क — गर्म राख, पृ. 357

50. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 151
51. अश्क — बड़ी-बड़ी आंखें, पृ. 158-159
52. अश्क — निमिषा, पृ. 317
53. अश्क — निमिषा, पृ. 157
54. अश्क — एक रात का नरक, पृ. 85
55. अश्क — एक रात का नरक, पृ. 140
56. अश्क — एक नन्हीं किन्दील, पृ. 25
57. अश्क — निमिषा, पृ. 301
58. अश्क — निमिषा, पृ. 302

❑

षष्ठ अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों का एक विवेचन

षष्ठ अध्याय

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों का एक विवेचन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मुँशी धनपत राय प्रेमचन्द के बाद सामाजिक सरोकारों से सम्बद्ध रचनाएँ देने में उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का स्थान सर्वोपरि एवं अन्यतम है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' स्वाधीन भारत के ऐसे उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाओं में कल और आज के समाज के चित्र प्रामाणिक प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं। 'अश्क' जी ने अपने साहित्य में अपने ही जीवन की अनुभूतियों को साहित्य का विषय बनाया है।

"भारतीय नगरों के मध्य वर्ग के इतने विभिन्न प्रकार के पात्र और किसी लेखक ने कदाचित ही अंकित किए हों। यह कार्य वही लेखक सम्पन्न कर सकता है, जो अपने परिवेश और उसके जीवन तथा पात्रों में रस लेता हो और उनकी सब बुराइयों और दुर्बलताओं के बावजूद उन्हें प्यार करता हो, जो उनके हाथों प्रवंचनाएं झेल कर चाहे आत्मतोष के लिए उन पर फिकरे कसता हो, उनका मजाक उड़ाता हो, पर जो भीतर ही भीतर कहीं उनकी मानवीयता को भी पहचानता हो और उससे सहानुभूति रखता हो।"[1]

सितारों के खेल (1940)

यह 'अश्क' जी का सन् 1940 ई. में प्रकाशित प्रारम्भिक उपन्यास है, पर अपने इस उपन्यास को प्रारम्भ करने से पूर्व 'अश्क' जी उर्दू-हिन्दी संसार में एक प्रमुख कहानीकार के रूप में ख्याति पा चुके थे। यही कारण रहा है कि यह उपन्यास प्रारम्भिक प्रयत्नों के दोषों से मुक्त है और उत्कृष्ट कहानी की तरह से ही पाठक का मन-मस्तिष्क अपने में बाँध लेता है।

प्रथम संस्करण की आलोचना करते हुए मुँशी प्रेमचन्द के मासिक पत्र 'हंस' (बनारस) ने लिखा था—विश्व कवि वाल्ट हिटमैन की दो अमर पंक्तियाँ—

COMRADE! THIS IS NO BOOK.

WHO TOUCHES THIS TOUCHES A MAN!

यह पंक्ति 'अश्क' जी के उपन्यास 'सितारों के खेल' पर पूर्णतया खरी उतरती है।

अर्थात् "साथियो! यह पुस्तक नहीं, जो इसे स्पर्श करता है वह मानव हृदय को छू लेता है। 'सितारों के खेल' नामक उपन्यास में जीवन के सुख-दुःख, हास-अश्रु, विनोद-संताप का जो सुन्दर, सजीव और मर्मस्पर्शी वर्णन है, वह 'अश्क' की कला को आदर्श के रूप में व्यक्त करता है।"[2] यही कारण है कि 'सितारों के खेल' उपन्यास पाठकों को शुरू से अन्त तक अपने से पृथक् नहीं होने देता। उपन्यास को पढ़ते समय पाठक को ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह किसी छविगृह में चित्र देखने में तल्लीन है। पाठक उपन्यास में अपने आपको इस प्रकार डुबा लेता है कि वह बाहर की ओर दृष्टिपात ही नहीं करता और न ही किसी प्रकार के संताप में अपने को बहाना चाहता है। उपन्यास में जीवन की दारुण परिस्थितियों से बाहर निकलने का आशापूर्ण संदेश देना भी साहित्यिक का प्रधान कर्त्तृव्य है। 'सितारों के खेल' में भी इसी भावना का प्रकाश पाया जाता है क्योंकि उसकी भावनाएँ हृदय को स्पर्श करती हैं।

'सितारों के खेल' उपन्यास का कथानक भारतीय समाज के पारिवारिक जीवन का सकरुण चित्र है। इस उपन्यास का नायक बंशीलाल इस कथानक का एक ऐसा पात्र है जिसके दारिद्र्य, दैन्यता एवं नैराश्य के सूत्र में घटनाओं की जाली सी बुनी गई है।

उपन्यास का आरम्भ कॉलेज में वाद-विवाद प्रतियोगिता से होता है। वाद-विवाद का विषय 'वैवाहिक पद्धति पर पूर्वीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण' होता है। उपन्यास के पात्र लता और जगत भारतीय संस्कृति के अनुसार नैतिकता की दृढ़ नींव पर खड़े पुरातन वैवाहिक आदर्शों का समर्थन करते हैं। लता के विचारों से सहमत होता हुआ जगत कहता है—"मिस लता ने नैतिक दृढ़ता की नीवों पर खड़े अपने पुराने मकान को अथवा नैतिक

पतन की नींव पर निर्मित होने वाले इस भव्य प्रासाद को।"[3] दीनता ओर बेबसी के तूफ़ानी झंझावातों से सताया हुआ बंशीलाल इस प्रतियोगिता में भविष्य की सम्पूर्ण आशाओं और हार्दिक आकांक्षाओं को मानो कुचलने के लिए ही भाग लेता है।

वह जगत और लता के विपक्ष में यही कहता है—"वास्तव में कभी का जीर्ण-जर्जर हो चुका है, इसकी नींवें हिल चुकी हैं, इसकी दीवारों में दरारें आ गई हैं, कौन जाने कब यह सब कुछ भड़भड़ा कर धराशायी हो जाये।"[4] इसी प्रकार उसकी जगत के प्रति व्यंग्य भरी व्यक्तिगत चुटकियाँ ही उसके भविष्य में कांटें बो देती हैं और इसी बहस ने उसके भाग्य का निर्माण कर दिया। "वह स्टेज से उतरा तो मित्रों ने उन्हें बधाइयाँ दीं, किन्तु उसके चेहरे पर किसी प्रकार का उल्लास न था। अपनी हार उसने लता की आकृति पर लिखी देख ली थी।"[5] इसी बहस के परिणामस्वरूप लता जगत के झूठे आडम्बर पर रीझ जाती है। "जवानी एवं सुन्दरता के नशे में अपने को झूठे प्रेम में खो देती है। जगत की विनोदप्रिय बातें एवं दो हृदयों का परस्पर मूक आकर्षण ही उन दोनों को निकटतम लाता जाता है।"[6]

लता अपने पिता की एकमात्र सन्तान। वह मालिक बाबू के जीवन की टिमटिमाती रोशनी थी। पिता उसे प्रसन्न रखने के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत थे। जगत के प्रति लता के आकर्षण को अनुभव कर उन्होंने कहा कि उसी से लता की शादी कर दी जाये, किन्तु देवता स्वरूप उस वृद्ध पिता को यह ज्ञात नहीं था कि जगत के हृदय में एक भीषण (भयंकर) राक्षस का निवास है। जो 'प्रेम' को 'वासना' के रूप में निगल जाना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। इसके साथ ही वह लता में ऐसे गुण भी नहीं पा रहा था, जिन्हें वह वास्तव में अपनी पत्नी में देखना चाहता है। "वह चाहता था ऐसी पत्नी, जो उसको देवता माने, उसकी आज्ञा को वेद वाक्य समझे, उसके लिए जीवन तक अर्पण कर दे, जो पतिव्रता हो और जो उसकी सेवा को ही स्वर्ग समझे।"[7]

अन्त में मेघदूत सुनाने वाले जगत का पाखण्ड प्रकट हो जाता है और लता के हृदय में एक तूफान सा मच जाता है फिर बंशीलाल के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है— "किन्तु वह कब? जब गरीब बंशी लता के कोठे से गिरकर अपने शरीर को नष्ट-भ्रष्ट

कर पट्टियों में लिपटा हुआ अस्पताल में पहुँचता है तब।"[8] वहीं अस्पताल में डॉ. अमृतराय भी बंशी के हृदय प्रदेश के भावी नखलिस्तान को सम्पूर्ण बर्बाद करने के लिए पैदा हो जाते हैं और वहीं आ जाती है कथानक के आँसुओं को पोंछने के लिए बंशीलाल की बहन राजरानी। बंशीश्लाल को नवजीवन प्रदान करने के लिए और साथ ही पिता की आज्ञा को ठुकराते हुए लता ने अपना रक्त दिया और बहन राजरानी ने अपने शरीर का मांस। इतना त्याग करने पर भी उसके टूटे हुए दिल और जर्जर (खण्डहर) से शरीर में नवजीवन का अंकुर प्रस्फुटित न हो सका। विज्ञान से थककर लता ने तीर्थाटन करना चाहा और बंशीलाल तथा डॉ. अमृतराय के साथ वह योगियों की खोज में निकल पड़ी। अथक प्रयास के बाद में बंशी के घाव न मिट सके।

उसके सूखे बाल, तेजहीन चेहरा, टूटे और बेजान मुड़े हुए हाथ-पाँव को देखकर लता उत्साहहीन हो जाती थी।[9] इन संतापों से दुःखी वह डॉ. अमृतराय की भावनाओं को साकार रूप देने के लिए प्राणों से भी प्रिय बंशी को विष खिला देती है और धीरे-से यह भी कहती है—"सो जाओ बंशीलाल! मैं ही तुम्हें इस नरक में खींचकर लाई हूँ, मैं ही तुम्हें इससे मुक्त करती हूँ।"[10]

बस यही स्थान तो कथानक का केन्द्र बिन्दु है और यहीं से उपन्यास अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर परिसमाप्ति को प्राप्त है।

बंशीलाल की बहन राजरानी धर्मशाला में पहुँच जाती है और बंशीलाल की आशाओं के साथ-साथ उसके पार्थिव शरीर को भी दफना कर सब लाहौर लौट आते हैं।

किन्तु लता, जिसका कंकाल ही शेष रह गया था, अब और अधिक इन कष्टों का सामना नहीं कर सकी। वह अस्वस्थ होकर मंजिल की ओर मुड़ गयी। डॉ. अमृतराय को बुलाकर कहती है, "आप क्यों भटकेंगे, भावुकता छोड़ दीजिए, भटकने के लिए आप नहीं बने, बंशीलाल था भटकने के लिए, मैं थी भटकने के लिए...। बंशीलाल को मारकर पाप किया या पुण्य, यह मैं नहीं जानती डॉक्टर साहब। पर यह सब अच्छा ही हुआ। उसके और मेरे मध्य जो पर्दा सा छा गया था, मौत ने उसे हटा दिया और उस पर्दे के हट जाने पर वह और मैं फिर आमने-सामने हो गये।"[11]

ये वाक्य कितने सत्य और संवेदनशील हैं। एक-एक शब्द से मानव जीवन का वास्तविक चित्रण हो जाता है और वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। अन्त में लता अपने पिता को तसल्ली देते हुए कहती है—"मेरी एक विनय है पिताजी! मेरे मरने के बाद जरा भी दुःखी मत होना। राजरानी को अपनी बेटी बनाना। उस अनाथ, अबोध लड़की का इस संसार में कोई नहीं, माँ नहीं, बाप नहीं और अब तो भाई भी नहीं, बंशीलाल का यह ऋण मुझ पर रह गया है, इसे पूरा कर देना।"[12] वह डॉ. अमृतराय से कहती है—"विवाह करके यहीं रहना इसी घर में अपने पिता से मैं यही कहे जाती हूँ। रानी से उन्हें बेटी जैसा स्नेह हो गया है।...मैं अपने पिता को सुख न दे सकी, आप दोनों इस कमी को पूरा कर देंगे। अपने पिता को सुखी देख मेरी आत्मा सुखी होगी और अपनी बहन का सुख देखकर बंशीलाल की रूह भी सुख मानेगी।"[13]

अन्त में लता डॉ. अमृतराय से अनुरोध करती है कि वह रानी को अपनी चिरसंगिनी बना लें और अमृतराय के आँखों से बहते हुए आँसू इस कारुणिक प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद उपन्यास की वास्तविक नायिका लता अपनी अन्तिम खाँसी के साथ ही अपनी हसरतों को कुचलती हुई निर्जीव सी होकर मृत्यु की गोद में सो जाती है। यही है इस उपन्यास 'सितारों के खेल' का अश्रु प्लावित संक्षिप्त कथानक जो पत्थर दिल पाठक को भी द्रवित कर देता है।

'अश्क' जी ने अपने वक्तव्य में स्वयं लिख दिया है कि प्रस्तुत उपन्यास विषय प्रधान है। इसमें भारतवर्ष की वैवाहिक समस्या, प्रेम, भावुकता और सामाजिक स्वतन्त्रता पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। पात्रों की जुबान से जो बातें कहलायी गयी हैं वे सचमुच लेखक के विचारों को स्पष्ट कर देती हैं। लता ने अन्तिम संदेश, जो राजरानी को दिया है, वह उल्लेखनीय है—"देखो, मेरी तरह स्वतन्त्र रहकर न भटकना। प्रकृति ने जिस उद्देश्य से पुरुष-स्त्री का सृजन किया है, उसी उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है।"[14]

उपन्यास 'सितारों के खेल' का मुख्य उद्देश्य ही है कि स्वतन्त्र प्रेम की अपेक्षा वैवाहिक प्रेम ही अच्छा है। लता डॉ. अमृतराय से कहती है—"खुला रहकर प्रेम भटक

जाता है, आवारा रहकर सूख जाता है, बंधन में ही वह सार्थक होता है, बंधकर ही वह पनपता है।"[15]

कला की दृष्टि से 'सितारों के खेल' एक समृद्ध उपन्यास है। उपन्यासकार की कल्पना ने इस उपन्यास में अनोखे ढंग से ही उड़ान भरी है, जो वस्तुत: चमत्कारिक है, जहाँ उपन्यास का अन्त होता दिखायी पड़ता है, वहीं से पाठक के लिए एक नये मार्ग के लिए मोड़ निकल आता है। इससे कौतूहल की सृष्टि होती है। नायक बंशीलाल के जीवन और मरण के बीच की अवस्था एक सुन्दर सी कल्पना ही है। उस दशा में लता का बंशीलाल के अंग-अंग शरीर की सेवा करना भारतीय नारियों के गौरव को उच्च स्थान प्रदान करता है, किन्तु सेवा से निराशा होने पर उसके जहर देने में आधुनिक परिस्थितियों तथा विदेशी भावनाओं का समावेश हो जाता है। उपन्यास के अनेक शब्द चित्र बड़े ही सुन्दर एवं आकर्षक हैं। भाषा भी बड़ी ही सजीव है।

गिरती दीवारें (1947)

'गिरती दीवारें' 'अश्क' का विशाल (महान) उपन्यास है। ड्यूक विश्वविद्यालय, डरहम (अमेरिका) के हिन्दी प्राध्यापक श्री रमेश शौनक के प्रश्नों तथा 'अश्क' जी द्वारा दिये गये उत्तरों का यह सम्पादित प्रारूप 'अश्क' जी के वृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' के तीन खण्डों में—'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना' और 'एक नन्ही किन्दील'। बाद में इस शृंखला में एक और उपन्यास जोड़ा गया 'बांधो न नाव इस ठाँव' (दो भाग) की विषय वस्तु, शिल्प, रचना प्रक्रिया और भाषा शैली का एक सर्वांगीण प्रामाणिक और प्रासंगिक अन्वेषण प्रस्तुत करता है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास के विषय में शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है—"यह 'अश्क' जी का महान् उपन्यास है जिसमें उन्होंने एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक चेतन के संघर्षों और सपनों, इच्छाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं, परिवेश और विकसित होते उसके चरित्र का अभूतपूर्व खाका खींचा गया है।"

अपनी वस्तुगत गहराई और शैलीगत नवीनता के कारण यह हर पाठक को उसकी अपनी कहानी मालूम पड़ता है और लिखा है—'गिरती दीवारें' की शैली और टेकनिक इतनी सुन्दर, पुष्ट, परिष्कृत और कलापूर्ण है कि निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के 'गोदान' की यथार्थवादी परम्परा में 'अश्क' का यह उपन्यास एक और साहसपूर्ण कदम है। सम्भवत: इस कथन में अत्युक्ति नहीं है कि 'गिरती दीवारें' हिन्दी की यथार्थवादी परम्परा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गणना करने योग्य है।'

'गिरती दीवारें' शरबत का गिलास नहीं कि आप उसे एक ही घूँट में कण्ठ के नीचे उतार लें। कॉफी के तख्त प्याले की तरह आपको उसे घूँट-घूँट पीना होगा। पर कॉफी की तख्त-शारीनी (कटु-मिठास) का जो शख्स आदी हो जाता है, वह फिर शरबत की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।[16]

'गिरती दीवारें' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यास का प्रथम संस्करण सन् 1947 में प्रकाशित हुआ। साथ ही इसे यथार्थवादी उपन्यास की संज्ञा दी है। उपन्यास का नायक चेतन उस घर में जन्म लेता है, जिसमें धर्मभीरु माँ लाजवन्ती और शराबी पिता शादीराम हैं। तृतीय श्रेणी बी.ए. पास करने के पश्चात् वह चालीस रुपये माहवार का स्कूल अध्यापक बन जाता है। "युवावस्था में चेतन का मन भी समुद्र की लहरों की भाँति तरंगें मारने लगता है। वह सहज ही पास की गली में रहने वाली लड़की कुन्ती से प्यार करने लगता है। दोनों लुक-छिप कर प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं।"[17]

अध्यापक की नौकरी से अब लाहौर के समाचार-पत्रों में कहानियाँ लिखने तथा अनुवाद कार्य से अपनी जीविका जुटाते हुए, वह अपनी प्रतिभा के विकास का पथ प्रशस्त करने का प्रयास करता है। इस क्षेत्र में उसे पूरे दिन मेहनत करने के पश्चात् चालीस रुपये मासिक मिलता है।

इसी दौरान उसके माँ-बाप उसकी शादी एक साधारण सी, पर अत्यन्त सरल हृदय रखने वाली पण्डित दीनबन्धु की मोटी मुटल्ली लड़की चन्दा से उसका विवाह तय कर देते हैं। यद्यपि चन्दा का रंग-रूप चेतन को पसन्द नहीं है, वह शादी नहीं करना

चाहता पर कठोर निर्दय पिता शादीराम और ममता की देवी माँ लाजवन्ती के आदेश को टाल नहीं सकता।

पिता का विरोध न कर चेतन लाहौर चला जाता है। लाहौर के चंगड़ मोहल्ले में रहने पर उसकी काम वासना प्रकाशो और केशर नामक दो लड़कियों द्वारा बढ़ती है तो वह सोचने लगता है—"जब वासना उसके मन में कहीं दबी पड़ी है, जब उसमें संयम का अभाव है तो क्यों न समाज के बने विधान के अनुसार वह खूँटे से बँध जाये।"[18] उसके रूढ़िगत संस्कारों ने उसे यह भी सोचने के लिए बाध्य कर दिया—"इधर-उधर खेतों में मुँह मारना, उगती-बढ़ती पौध को दूषित करना, पकड़े जाने पर दण्ड पाना, अपमानित होना, क्या सभ्य-सुसंस्कृत मानव के लिए यही उचित है?"[19]

इस प्रकार अपने में वासना के अंकुर फूटते देख चन्दा से विवाह का समझौता करना पड़ा। चन्दा की छोटी बहन नीला उसे प्रारम्भ से ही आकर्षित करती है, परन्तु जैसा रूढ़ियों से बँधे समाज में होता है, चेतन को अपने भाग्य से समझौता करना पड़ता है। नीला के प्रति चेतन का आकर्षण और चेतन के प्रति नीला का आकर्षण, एक अत्यन्त जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है। चेतन नीला को अपने मन से निकाल नहीं पाता। "एक बार जब चेतन अपनी ससुराल में जाकर बीमार पड़ जाता है, नीला उसकी सेवा-सुश्रूषा करती है और यह निकट साहचर्य उसकी इच्छाओं को दुर्दमनीय रूप से उभार देता है। वह एक दिन नीला को बलात् अंक में लेकर चूम लेता है। नीला अपने को छुड़ाकर भाग जाती है और उसका खाना-पीना छूट जाता है, लगातार रोती रहती है, सम्भवत: यह सोचकर कि भाग्य की विडम्बना के आगे उसे सिर झुकाना पड़ेगा, चेतन उसे नहीं मिल सकता।"[20]

इधर चेतन आत्मग्लानि से भरकर नीला के पिता को सारी घटना बताकर चन्दा को लेकर वहाँ से चल पड़ता है, परन्तु इस छोटी-सी घटना की टीस दोनों के मर्म में बार-बार जीवन भर उठती रही और नीला जैसे अपने से ही बेसुध होकर अपनी छाया बनती गई और चेतन आत्मग्लानि और अपने दाम्पत्य जीवन में सौन्दर्य के अभाव से उत्पन्न आकांक्षा के बीच द्वन्द्व में पड़ा अपने जीवन की आर्थिक परिस्थितियों से ही जूझता रह जाता है।

इस संघर्ष और द्वन्द्व भरे जीवन में चेतन को कतिपय विचित्र और कुरूप अनुभव होते हैं। अखबारों के दफ्तरों में काम करके वह अपना स्वास्थ्य खो बैठता है, ऐसे ही अवसर पर लाहौर के प्रसिद्ध वैद्य रामदास से उसकी भेंट हो जाती है। अपने स्नेह का अभिनय करके वे चेतन को अपनी बातों में फँसा लेते हैं, जो उससे पुस्तक लिखवाकर अपने नाम से छपाने पर आतुर हैं।

शिमला में स्वास्थ्य लाभ के बहाने पर अपने स्वप्न को पूरा करवाना चाहता है। वहाँ वे चेतन से बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा के विषय पर एक पुस्तक लिखवाते हैं। पचास रुपये महीने पर चेतन तीन मास के अन्दर उन्हें पुस्तक लिखकर दे देता है। पुस्तक वैद्यराज (कविराज) रामदास के नाम से ही प्रकाशित होगी, यह चेतन को बहुत पहले मालूम हो जाता है और तब से उसका मन किसी प्रकार इस धूर्त वैद्यराज के चंगुल से निकल भागने को आतुर है, परन्तु रामदास बातचीत का इतना मीठा और तलब का ऐसा चौकस है कि चेतन उसके आगे निरुपाय हो जाता है। वह चेतन से और भी पुस्तकें अपने से लिखवाता, यदि नीला के विवाह की सूचना पाकर व शिमला से किसी प्रकार जान छुड़ाकर भाग न निकलता।

शिमला स्वास्थ्य प्रवास के दौरान चेतन को "सुख के स्थान पर दुःख ही मिलता है, जिसके कारण उसका स्वप्न संसार टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसको जिस जागृत अवस्था का बोध होता है, वह प्रचार एवं उद्देश्य के पचड़े में नहीं पड़ती, बल्कि मानव की चेतनावस्था जीवन विकास का स्वाभाविक निचोड़ ही प्रस्तुत करती है।"[21]

शिमला में नायक चेतन का कविराज रामदास के साथ रहने पर जो उद्‌बोधन होता है, उसे हम निम्नस्थ पंक्तियों में पूर्ण रूप से देख सकते हैं—

"उसने (चेतन) सारे संसार को उसके यथार्थ के रूप में देखा। उसने पाया कि उसके इर्द-गिर्द जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं तो दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं।"[22]

साथ ही "कविराज तथा उसकी पत्नी की सहृदयता, सहृदयता तो दूर उनकी दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था।"[23]

शिमला में अपनी भोली साली नीला के विवाह की सूचना पाकर चेतन वापस आ जाता है।

नीला का विवाह एक अधेड़ और कुरूप व्यक्ति से हो जाता है। चेतन नीला से एकान्त में मिलकर उससे क्षमा माँगना चाहता है, पर नीला जैसे अपने अस्तित्व ही को भूल चुकी है। वह गुम-सुम अलग बैठी रहती है। केवल विदा होने के पहले वह आँखों में आँसू भरे, चेतन के कमरे में आती है और आर्द्र स्वर में चेतन से अपनी भूल-चूक के लिए क्षमा माँग लेती है और जब चेतन अपने कसूर के लिए क्षमा माँगता हुआ नीला के चरणों में झुक जाता है, नीला जीजाजी, आप क्या करते हैं? कहकर अपनी सिसकी को दबाती हुई नीचे भाग जाती है।

रात को चन्दा गहरी नींद में सो रही थी और नायक चेतन लेटा हुआ सोच रहा था——"उसे लगा कि यह अंधकार की दीवार उसके और उसकी पत्नी के मध्य ही नहीं, नीला और त्रिलोक (नीला के जेठ का लड़का) के मध्य भी है, बल्कि इस परतन्त्र देश के सभी स्त्री-पुरुषों, तरुण-तरुणियों, वर्गों और जातियों के मध्य ऐसी ही अनगिनत दीवारें खड़ी हैं——कविराज में, जयदेव और यादराम (कविराज के साधारण नौकर) में——इन दीवारों का कोई अन्त नहीं। उस तिमिराच्छन्न निस्तब्धता में चेतन ने अनगिनत प्राणियों की मूल सिसकियाँ सुनीं, जो इन दीवारों में बन्द थीं और निकलने की राह न पा रही थीं। इन दीवारों की नींव कहाँ है? ये सब गिरेंगी और कैसे गिरेंगी...?"[24]

"और चेतन निम्न-मध्य वर्ग के उस चेतन प्राणी का सहज प्रतीक बन जाता है, जो इन बन्द दीवारों की नींव की थाह पाने के लिए और यह जानने के लिए कि वे कैसे गिरेंगी, सप्रश्न हो उठा है।"[25]

'गिरती दीवारें' उपन्यास में अश्क जी ने अपनी शैली, कला और चित्रण और मानवीयता के कारण निश्चय ही यह कृति हिन्दी में अपना एक अनुपम और महत्त्वपूर्ण गौरव को प्राप्त है।

अश्क जी ने इस उपन्यास में चेतन, चेतन के उग्र, कठोर शराबी पिता शादीराम, आत्मभीरू, त्याग, सेवा और ममता की मूर्ति माँ लाजवन्ती, नवागत यौवन और सौन्दर्य से दीप्त साली नीला, सरल हृदय पत्नी चन्दा, धूर्त वैद्यराज कविराज रामदास और दादी गंगादेवी, बड़े भाई रामानन्द, भाभी चम्पावती परिवारेतर पात्रों में सबसे प्रथम पिता के मित्र देशराज, बनारसीदास, पागल चाचा चुन्नी हैं। भाई के निकट राजाराम, स्वयं चेतन के निकट जीवन में परोक्ष रूप से आने वाले अन्य पात्र मित्र अनन्त, कुन्ती, हुनर साहब, यादराम आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण इतना स्वाभाविक, सजीव और मार्मिक किया है कि वे पात्र स्मृति में घर बना लेते हैं। साथ ही जालन्धर, इलावलपुर, लाहौर और शिमला के वे स्थान, जहाँ पर इस उपन्यास में वर्णित घटनाएँ घटी हैं, उनका चित्रण भी अत्यधिक सजीव हुआ है।

एक प्रकार से अश्क जी की यथार्थवादी शैली की यह विशेषता है कि उन्होंने वातावरण का परिवेश का चित्रण इतना विशद और सूक्ष्म किया है, जितना हिन्दी साहित्य के इतिहास में किसी लेखक ने नहीं किया और 'गिरती दीवारें' उपन्यास पढ़ते समय पाठक को सहज ही तुर्गनेव, दास्तोवस्की और गोर्की के उपन्यासों का स्मरण हो आता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का उपन्यास 'गिरती दीवारें' अत्यन्त सबल और सफल कला का उपन्यास है और यदि उपन्यास सम्राट् मुँशी प्रेमचन्द का 'गोदान' और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग) हिन्दी में अमर रहेंगे तो उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का उपन्यास 'गिरती दीवारें' की अमरता पर भी आँच नहीं आयेगी और ना ही साहित्य में कोई इस पर अंगुली उठायेगा यह कथा प्रेक्षक (Flash back) उपन्यासकार का अपना ढंग है।

चेतन संक्षिप्त

'चेतन संक्षिप्त' 'अश्क' जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'गिरती दीवारें' का संक्षिप्ततम छात्रोपयोगी संस्करण है, जो लगभग 208 पृष्ठों में विभाजित है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास में कथा-सूत्र का जो ढीलापन था, उसे लेखक ने एकदम कस दिया है। इस सब परिष्कार से उपन्यास पहले से कहीं अधिक मनोरंजक, सरल और उपादेय हो गया है।

चेतन शराबी पिता और ममता की देवी, धर्मभीरू माँ लाजवन्ती के शादी के आदेश को टाल नहीं सका और—"तंग आकर आखिर एक दिन चेतन चुपचाप अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए बस्ती गजां जालन्धर की एक निकटवर्ती बस्ती"[26] में जाकर "ढीली-ढाली, सुस्त, मझौले कद और मोटी-मुटल्ली"[27] पण्डित दीनबन्धु की लड़की चन्दा को देख आता है।

लेकिन चेतन तो पास में ही रहने वाली लड़की कुन्ती से प्यार करता है और पिता का विरोध न कर वह लाहौर चला जाता है। जाने से पहले वह अपने मित्र अनन्त को पत्र देता है, "अनन्त मैं लाहौर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गयी...चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आकर मैंने 'ना' कर दी थी। माँ ने एक सपना देखा था...एक सुन्दर लक्ष्मी सी लड़की वस्त्राभूषणों से सजी उसके चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गयी...यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है...विडम्बना देखो कि एक बार देखी हुई उसी लड़की को फिर से देखने गया...अब लाहौर में कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा...कोई ठिकाना नहीं। 'देशसेवक' लाहौर के सम्पादक पण्डित दीनानाथ स्थानीय हिन्दू सभा के दफ्तर से आये थे...मैं अपनी वर्तमान नौकरी से ऊब गया हूँ...और फिर हुनर साहब तो वहाँ हैं हीं...।"[28]

चेतन लाहौर के चंगड़ मोहल्ले में रहते हुए समाचार पत्रों में कहानियाँ और अनुवाद कार्य से अपनी जीविका के विकास का पथ प्रशस्त करने का प्रयास करता है। इस क्षेत्र में उसे कड़ी मेहनत के पश्चात् चालीस रुपये मासिक मिलता है। "दिन के बारह से छः बजे तक और रात को नौ बजे से दो बजे तक दैनिक पत्रों के सम्पादक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते हैं। जब थक जाते हैं तो आपस में अश्लील और गंदे मजांक करते हैं। चरित्र ही विवर्ण मुख, उनींदी, खुमार भरी आँखें, अत्यधिक मोटे या बिल्कुल मरियल और हर तरह से भूखे लाहौर के हिन्दी-उर्दू पत्रों में काम करने वालों में से अधिकांश को मैंने ऐसा ही पाया।"[29]

लाहौर पहुँचने पर चेतन ने अपने मित्र अनन्त को कई दिनों तक पत्र नहीं लिखा। एक दिन अनन्त को चेतन का पत्र प्राप्त होता है जिसमें चेतन ने लिखा था—

"...यह भी कोई जीवन है? सोचता हूँ, क्या मैं इसीलिए घर से भागा था...? आठ घण्टे बिना सिर उठाये अंग्रेजी तारों का अनुवाद करता हूँ, पढ़ता हूँ और फिर जुल्म यह है कि इतने काम के बावजूद सम्पादक साहब चाहते हैं कि मैं अब प्रति सप्ताह एक कहानी साप्ताहिक अंक के लिए लिखा करूँ।...और मैं सोचता हूँ क्या जीवन में मेरा यही उद्देश्य था?"[30]

चेतन को लाहौर गये अभी साल भर ही हुआ था कि उनके बड़े भाई रामानन्द (बुढ़ऊ) लाहौर चंगड़ मोहल्ला डेण्टिस्ट प्रेक्टिस के लिए पहुँचते हैं। वहाँ चेतन और रामानन्द में यह समझौता होता है कि मैं आपकी दुकान जमाने में पूरी मदद करूँगा, बदले में आप मेरी शादी करा देंगे। क्योंकि "लाहौर के गली-मोहल्लों में किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे का लेना आसान बात नहीं। साथ में कोई स्त्री होनी चाहिए। चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ...हो।"[31] और यह सब मैंने कह रखा है कि मेरी तो पत्नी है अभी परीक्षा दे रही है।

और चेतन के भाई ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चेतन की शादी करा दी थी, अब चेतन का भी कर्त्तव्य बनता है कि वह भी अपना वचन पूरा करे और लाहौर में दुकान खोलने में उसकी सहायता करे।

लेकिन शादी के बाद चेतन अपनी पत्नी चन्दा को लाहौर नहीं ले जा सका। इसके पीछे कई कारण—माँ के दिल में बहू को घर के काम-काज में दक्ष करने का जो शौक था वह शीघ्र ही पूरा हो गया और दो महीने में ही माँ ने घोषणा कर दी कि—"यह नई बहू तो बड़ी बहू से भी गयी-गुजरी है। वह जुबान की कड़वी हो, लड़ती-झगड़ती हो, पर काम तो करती थी, यह तो बस गुम-सुम पत्थर। अजगर की भाँति खाना और सोना जानती है। काम के नाम पर सिफर है।"[32]

और एक दिन जब चेतन लाहौर से जालन्धर आया तो माँ के कठिन समय से हारी थकी उसकी पत्नी ने बस्ती चलने की इच्छा प्रकट की थी। उसकी ऊबाहट को लक्ष्य कर चेतन ने कहा था—"मैं जानता हूँ, तुम्हारा दिल यहाँ नहीं लगता। मैं तुम्हें आज ले चलूँ

लाहौर, पर अभी भाभी गयी हैं...जब तक यहाँ रहना है, यह सब कुछ सहते हुए ही रहना है।"[33]

और चेतन अपनी पत्नी चन्दा को बस्ती गजां छोड़ते हुए अपनी साली नीला से कहता है—"मेरी माँ देवी है...उसने हमारी खातिर अनेक कष्ट सहे हैं। दु:खों के कारण उसमें जान तक भी नहीं रही...मेरी सदा यही अभिलाषा रही है कि मैं उसे प्रसन्न रख सकूँ...इसीलिए चाहता हूँ कि उससे कुछ न कहकर चन्दा को ही कुछ दिन के लिए बस्ती छोड़ दूँ...भाभी की माँ को शिकायत थी कि वह लड़ती है, झगड़ालू है, कर्कशा है, लेकिन तुम्हारी बहन तो ऐसी नहीं। उसमे और कुछ न हो, सरलता, सहृदयता, विनम्रता तो कूट-कूट कर भरी हुई है। मैं सोचता था कि मैं न सही, माँ तो खुश होगी, लेकिन...।"[34]

चन्दा को बस्ती गजां छोड़ने के पाँच-छ: महीने के बाद ही चेतन ने अपनी पत्नी को लाहौर बुला लिया था। अपनी भाभी के रूखे व्यवहार के कारण और अपने वैवाहिक जीवन के चार महीने पश्चात् ही एक दिन चेतन अपने मित्र अनन्त को पत्र लिखता है—"...मैंने शादी कर ली...तुम ठीक कहते हो। मैं डरपोक हूँ। मेरी दशा उस व्यक्ति की-सी है, जो एक हिंसक पशु से डरकर दूसरी ओर भागता है तो उसके सम्मुख दूसरा आ जाता है।

मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ...अपने चरित्र से गिर रहा हूँ...दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दण्ड पशु को अपनी एक निज की क्यारी बना दूँ।...मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों में मुँह मारना ही अधिक रुचता है। दूसरे की आलमारी में लगी हुई पुस्तकें अनन्त बड़ी अच्छी लगती हैं। उन्हें पढ़ने को जी चाहता है। उन्हें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, पर जब हम उन्हें खरीद लेते हैं तो वे प्राय: अनपढ़ी और उपेक्षित हमारी आलमारियों में पड़ी रहती हैं।

मेरे मन में सदैव द्वन्द्व मचा रहता है। चन्दा सीधी-सादी, भोली-भाली लड़की है। सहृदय, भावुक और उदार है, किन्तु मुझे उसके ये गुण नहीं भाते...मैं अनायास ही नीला से उसकी तुलना करने लगता हूँ...।[35]

चेतन अचानक चन्दा के आ जाने से पत्र लिखना बन्द कर देता है और अपनी पत्नी चन्दा को शिक्षा पर एक छोटा-सा भाषण सुना देता है और एक दिन चेतन अपने इलावलपुर ससुर के ननिहाल मामा की पोती कान्ता के विवाह में शामिल होने के लिए अपनी पत्नी के साथ जाता है।

चेतन अपनी ससुराल में जाकर बीमार पड़ जाता है। उसकी साली नीला उसकी सेवा-सुश्रूषा करती है और यह निकट साहचर्य उसकी इच्दाओं को दुर्दमनीय रूप से उभार देता है। चेतन आत्मग्लानि से भरकर नीला के पिता को सारी घटना बताकर अपनी पत्नी चन्दा को लेकर वहाँ से चल पड़ता है परन्तु इस छोटी-सी घटना की टीस दोनों के मर्म में बार-बार जीवन भर उठती रही।

चेतन आत्मग्लानि और अपने इस असम्बद्ध, असंगत, अस्त-व्यस्त विचारों की उलझने में फँसा, दाम्पत्य जीवन में सौन्दर्य के अभाव में उत्पन्न आकांक्षा के बीच द्वन्द्व में पड़ा अपने जीवन की पारिवारिक व आर्थिक परिस्थितियों से ही जूझता रह जाता है।

इस संघर्ष और द्वन्द्व भरे जीवन में चेतन को कतिपय विचित्र और कुरूप अनुभव होते हैं। अखबारों के दफ्तरों में रात-दिन काम करते-करते वह अपना स्वास्थ्य खो बैठता है। ऐसे ही अवसर पर लाहौर के प्रसिद्ध वैद्य कविराज रामदास से उसकी मुलाकात हो जाती है। अपने स्नेह का अभिनय करके वे चेतन को अपनी बातों में फाँस लेते हैं।

चेतन भी कविराज रामदास वैद्य से इतना प्रभावित होता है कि वह अपने मित्र अनन्त को पत्र लिखता है जिसमें अपने सम्पादक और उन जैसे अनगिनत लोगों की नीचता का उल्लेख करते हुए कविराज की सहृदयता, करुणाद्रता और दयाशीलता पर छोटा-मोटा निबन्ध लिख डाला।

"मेरी भेंट सचमुच ही एक महान् आत्मा से हुई है...अरे वही जिन्होंने यौन सम्बन्धी पुस्तकें लिखी हैं...मैं तो पहली भेंट में ही उनका भक्त हो गया। ऐसी सहृदय, महान्, उदार आत्मा पायी है उन्होंने।"[36] और उसे शिमला ले जाते हैं।

शिमला में वे चेतन से 'बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा' के विषय पर एक पुस्तक लिखवाते हैं। पचास रुपये महीने पर चेतन तीन मास के अन्दर उन्हें पुस्तक लिखकर दे

देता है। पुस्तक वैद्यराज कविराज रामदास के नाम से ही प्रकाशति होगी, यह बात चेतन को पहले ही पता चल जाती है और तब से उसका मन किसी प्रकार इस धूर्त वैद्यराज के चंगुल से निकल भागने को करता है, लेकिन कविराज रामदास बातचीत का इतना मीठा, सहृदय और स्वार्थ का ऐसा चौकस है कि चेतन उसके सामने निरुत्तर हो जाता है। वह सोचने लगता है कि वह शोषित है और कविराज शोषक। इस अनुभूति ने चेतन को झकझोर डाला था। और अपनी पुरानी स्मृतियाँ नई बनकर उसके सामने आ रही थीं और वह रोया हुआ-सा हो उठता था—"उसे लगता था, जैसे सारी दुनिया में वह अकेला है और सारी दुनिया उसका शोषण करने पर तुली हुई है।"[37]

चेतन अपनी खिन्नता, दुःख, अवसाद और निराशा पर विजय पाने में सर्वथा असफल था—"उसने सारे संसार को यथार्थ रूप में देखा, उसने पाया कि उसके आस-पास जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं, दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं। यह ज्ञान कि वह पीड़ित है, शोषित है, उसे खिन्न किए दे रहा था।"[38] और कविराज चेतन से और भी पुस्तकें अपने नाम से लिखवाता, यदि अपनी साली नीला के विवाह की सूचना पाकर चेतन शिमला से किसी प्रकार जान छुड़ाकर भाग न निकलता। शिमला प्रवास के दौरान चेतन दुर्गादास व नारायण आदि से भी परिचित हुआ था।

नीला का विवाह रंगून के एक अधेड़ विधुर मिलिट्री अकाउन्टेन्ट से हो जाता है। चेतन नीला से एकान्त में मिलकर क्षमा माँगना चाहता है, पर नीला जैसे अपने अस्तित्व ही को भूल चुकी है। वह चुपचाप अलग बैठी रहती है, केवल विदा होने के पहले वह आँखों में आँसू भरे, चेतन के कमरे में आती है और आर्द्र स्वर में चेतन से अपनी भूल-चूक के लिए क्षमा माँग लेती है और चेतन जब अपने कसूर के लिए क्षमा माँगता हुआ नीला के चरणों में झुक जाता है—"नीला मुझे क्षमा कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है। नीला, जीजाजी आप क्या करते हैं? यह कहकर अपनी सिसकी को दबाती हुई नीचे भाग जाती है।"[39]

नीला की शादी हो जाने पर चेतन अपनी पत्नी चन्दा को वापस जालन्धर ले आता है। रात को चन्दा गहरी नींद में सो रही थी और चेतन लेटा हुआ सोच रहा था—उसे लगा

कि यह अंधकार की दीवार उसके और उसकी पत्नी चन्दा के मध्य ही नहीं, नीला और त्रिलोक (नीला के जेठ का लड़का) के मध्य भी है, बल्कि इस परतन्त्र देश के सभी स्त्री-पुरुषों, तरुण-तरुणियों, वर्गों और जातियों के मध्य ऐसी ही अनगिनत दीवारें खड़ी हैं। उस तिमिराछन्न निस्तब्धता में चेतन ने अनगिनत प्राणियों की मूक सिसकियाँ सुनीं, जो इन दीवारों में बन्द थीं। इन दीवारों की नींव कहाँ है? ये कब गिरेंगी और कैसे गिरेंगी? चेतन निम्न-मध्यवर्ग के उस चेतन प्राणी का सहज प्रतीक बन जाता है, जो इन बन्द दीवारों की नींव की थाह पाने के लिए और यह जानने के लिए वे कैसे गिरेंगी?

'अश्क' जी के उपन्यास 'गिरती दीवारें' और उसके संक्षिप्त संस्करण 'चेतन संक्षिप्त' की गणना हिन्दी की यथार्थवादी परम्परा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में की गई है।

गर्म राख (1952)

'गर्म राख' उपन्यास उपन्यासकार 'अश्क' का सन् 1952 में प्रकाशित 'सितारों का खेल' और 'गिरती दीवारें' के बाद तीसरा वृहद् उपन्यास है। 'गिरती दीवारें' उपन्यास का केन्द्र बिन्दु नायक चेतन है, अन्य पात्र तो नाममात्र के ही हैं। यहाँ तक कि वे यदि कुछ भी कार्य करते हें तो नायक के सम्पर्क में आकर ही उसे पूर्ण करते हैं और यही स्थिति 'गर्म राख' उपन्यास में भी नायक जगमोहन के द्वारा ही कथाकार सामाजिक विषमताओं को प्रकट करवाता है।

'गर्म राख' उपन्यास के सम्बन्ध में प्रकाश चन्द्र गुप्त ने लिखा है—"'अश्क' जी के इस वृहद् उपन्यास में आर्थिक तथा नैतिक स्तर उखड़े हुए निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का अत्यन्त यथार्थवादी चित्रण उपलब्ध होता है। प्रेम की भूख और पेट की भूख यही दो महान् धुरियां हैं, जिनके इर्द-गिर्द अधिकांश लोगों का जीवन घूमता है, लेकिन प्रेम-प्रेम में अन्तर है। प्रेम मारता भी है, जिलाता भी है, निष्क्रिय भी कर देता है और कार्यरत भी, मौन भी होता है और मुखर भी। इस उपन्यास में प्राय: उसके सभी रंग हैं।

इन सभी रंगों का निरुपण 'अश्क' जी ने अपने उपन्यास 'गर्म राख' में किया है जो इस प्रकार चित्रित है—सत्या अपनी ही चलायी कन्या पाठशाला की अध्यापिका है,

गम्भीर, समझदार और साधारण सुन्दर उसके प्रति प्रकट-अप्रकट रूप से अनेक पुरुष अनुरक्त हैं। एक पत्रिका में छपे उसके चित्र से आकृष्ट होकर कवि 'चातक' संस्कृति-समाज की स्थापना करते हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य पहले सत्या, फिर अन्य नारियों को अपनी ओर खींचना है। उसकी बैठक में सत्या तरुण कवि जगमोहन से मिलती है। जगमोहन सत्या की ओर आकृष्ट होता है। आकर्षण के जादू का वस्तुत: दोनों के सम्बन्ध में अभाव ही है और इस अभाव का कारण जगमोहन साधारण निम्न-मध्यवर्ग की घुटन से पूर्ण परिस्थितियों में पल कर युवक बनता है। जगमोहन निम्न-मध्य वर्ग के उन लाखों युवकों में से एक था जो बचपन में 'बच्चे' और जवानी में 'युवक' नहीं होते, बचपन ही से जिन पर प्रौढ़ता का रंग चढ़ जाता है। जो एक कदम आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं...जिनके बचपन में खिलन्दापन होता है, न जवानी में अल्हड़ता। बचपन में सबकुछ भूलकर खेलना और जवानी में सब कुछ भूलकर प्रेम करना जो नहीं जान पाते।"[40] यद्यपि उसका भावात्मक प्रभाव जगमोहन पर अधिक प्रकट है। सत्या दृष्टा-सृष्टा की भाँति उस बढ़ते हुए असर को जैसे देखती है, जागरूक होकर उसका विधान करती है। मोहन का राग मोह में परिणत नहीं हो पाता और शीघ्र अपने ऊपर डाला हुआ पाश वह तोड़ देता है और प्रकट रूप से अपने पत्र में सत्या जी को लिख देता है—"हमारा वैवाहिक जीवन नरक सरीका हो जायेगा...मैं स्वयं दूसरे के प्रति ऐसे ही विवश हूँ, पर मेरा आपके साथ यों रहना उस विवशता का अनुचित लाभ उठाना है और यह मैं आपका और आपका अपमान समझता हूँ।"[41]

उधर सत्या के कांग्रेसमना पिता के कानों में कन्या की असंगत अनुरक्ति की खबर पहुँचती रहती है, जिससे वे उसका विवाह कर देने को लाहौर आ पहुँचते हैं। एक धनी मेजर का विवाह विज्ञापन समाचार पत्र में पढ़कर वे सत्या से उस दिशा में स्वीकृति माँगते हैं। जगमोहन की उदासीनता से सत्या पहले से ही कुछ उद्विग्न है, फिर तभी उसका वह असंस्कृत पत्र भी पहुँच जाता है, जिससे सत्या के प्रति अपने प्रेम के अभाव की घोषणा तो करता ही है, उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना भी अस्वीकार, उसका अपने यहाँ

आना वर्जित करता है। सत्या खीझकर अफ्रीकावासी भौंडे, काले, कुरूप, अर्धान्ध मेजर से विवाह कर अफ्रीका चली जाती है।

जगमोहन से अन्त में जाते समय स्टेशन पर छोड़ने का अनुनय करती है। जगमोहन वहाँ जाना तो अस्वीकार कर देता है, पर जाता है। यद्यपि सत्या से मिलता नहीं, प्लेटफार्म पर इधर-उधर घूमता फिरता है। उदासीन सत्या इधर-उधर जगमोहन को ढूँढ़ती है, फिर दिल में चोट लिए चुपचाप अफ्रीका चली जाती है। इन्हीं से सम्बन्धित मूलकथा उपन्यास में प्रभावित होती है अर्थात् गर्म-राख उपन्यास की यह मूल कथाधारा है।

इसके साथ ही कथा को संगठित करने के लिए अन्य घटना प्रसंग भी आते हैं, जैसे——दुरो तथा कामरेड हरीश का उपदेशात्मक पुष्ठ प्रेम-प्रसंग 'यलोबस यूनियन' आन्दोलन, धर्मदेव वेदालंकार और प्रो. ज्योति स्वरूप की उपकथा, बसन्त-सरला का प्रसंग, सरदार गुलबहार सिंह, उसके पिता डॉ. टेकचन्द, खान का पहेली समस्या प्रयास आदि। इस कथा में अनेक पात्रों का मेला-सा लगा हुआ है, जिसे समझने और याद करने में पाठक को पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है। कुछ ऐसे भी प्रसंग उपन्यास में आये हैं, जिनका वास्तविक कथा से कोई सम्बन्ध नहीं।

कामरेड हरीश को उपन्यासकार ने भगवान् बुद्ध का अवतार मानकर प्रस्तुत किया है। इसके मोह भंग की सारी कहानी ठीक वैसी ही है जैसे राजकुमार सिद्धार्थ की। एक रात उन्हें बोध हुआ कि यह सारी व्यवस्था कैसी है——हरीश को अपनी धर्मभीरू माँ से जो उपदेश मिले, उनके पदचिह्नों पर ही चला। "अपने पुत्र को उसने शैशव से ही सत्य बोलने और सत्य आचरण करने की शिक्षा दी थी और नेकी, सच्चाई और दयानतदारी के लिए उसके अन्तर में अपार भूख पैदा कर दी थी।"[42]

उसने यह देखा कि उनके पिता किस प्रकार से पापड़ बेलकर पैसा कमाते हैं तो उसे सारी की सारी व्यवस्था से घृणा हो आयी। उन्होंने फैसला कर लिया कि वे उसका अंग न बनेंगे। फिर तो हर जगह वे उपन्यास में विश्वकोश की तरह सामने आते हैं। हर प्रश्न का सही और स्वस्थ दृष्टिकोण से उत्तर उनके पास है। उनके जीवन का हर पहलू जैसे

निश्चित है कि किस समय वे क्या करेंगे? जरा-सा प्रेम हृदय में आया तो पीठ थपथपा देंगे। नहीं तो लेक्चर झाड़ देंगे।

संक्षेप में 'गर्म राख' 'अश्क' जी का सुन्दर तथा सफल यथार्थवादी उपन्यास है और उनकी इस आरम्भिक रचना से ही हमें उनकी उपन्यास कला की शक्ति और दुर्बलता का पता चल जाता है।

अन्त में राजेन्द्र यादव ने लिखा है—'गर्म राख' उपन्यास में अपनी एक मौलिकता है और यह हिन्दी की वर्तमान उपन्यास परम्परा से इतनी अधिक अलग है कि सहसा ध्यान आकर्षित किए बिना नहीं रहती...हिन्दी के कम ही उपन्यासकारों के पास वह चीज है जो 'अश्क' के पास है, चरित्र और अनुभवों की विशिष्टता और विविधता।

संघर्ष का सत्य

'गर्म राख' उपन्यास 'अश्क' जी का सन् 1952 में प्रकाशित लगभग 554 पृष्ठों का तीसरा वृहद् उपन्यास था। उसी का संक्षिप्त और छात्रोपयोगी संस्करण है—'संघर्ष का सत्य' जिसे लेखक ने कई महीनों के श्रम से काट-छाँट कर दोबारा तैयार किया है।

'संघर्ष का सत्य' उपन्यास लगभग 208 पृष्ठों में वर्णित 'गर्म राख' के पात्रों और विचारधाराओं की भीड़ में जो जीवन सत्य ढूँढ़ने पर ही हाथ आ सकता था, वह 'संघर्ष के सत्य' उपन्यास में अनायास ही सामने आ जाता है।

'संघर्ष का सत्य' उपन्यास के विश्लेषण करने पर मुख्यत: तीन कथा चक्रों को भिन्न-भिन्न रूप में देखा जा सकता है। सबसे पहली कथा कवि चातक की है जो सम्पूर्ण उपन्यास में 'संस्कृति-समाज' की स्थापना से उपन्यास में आदि से अन्त तक गतिमान है। उपन्यास के आरम्भ में वे 'मालती' के सम्पादक महाशय गोपालदास के आमने-सामने बैठ 'मालती' के ताजे अंक को निहार रहे हैं।

दूसरी कथा जगमोहन और सत्या की है, जो उपन्यास का प्रमुख रूप और यह कथा विडम्बना के स्वर को लिए हुए आगे बढ़ती है।

तीसरा कथा चक्र कामरेड हरीश का है, जिसका विस्तार अधिकार न होते हुए भी अपने में पूर्ण है। इसके अलावा अनेक छोटे-छोटे कथा चक्र भी संजोये गये हैं जिनकी अपनी ही विशेषता है, जैसे—गोपालदास, पण्डित धर्मदेव वेदालंकार, शुक्ल जी, दुरो, भगतराम सहगल तथा उनकी पत्नी शान्ता जी आदि।

उपन्यासकार 'अश्क' जी ने उर्दू के कवि फैज का शेर भी प्रस्तुत किया है—

और भी दुःख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा।
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा।।

इस शेर में आशावाद के साथ आने वाले संघर्ष का जिसके बिना सफलता मिलना एकदम असम्भव सा जान पड़ता है। उपन्यासकार ने 'संघर्ष का सत्य' में इसी सिद्धान्त को अपनाकर मानव के जीवन की कसौटी पर कसने का प्रयास किया है। निम्न-मध्यवर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मुख दो समस्याएँ हैं—पहली पेट को भरने के लिए रोटी की समस्या और दूसरी है सैक्स की समस्या। इन दोनों समस्याओं के कारण यह पूरा वग्र तन-मन से क्लान्त हो रहा है। निम्न वर्ग के सामने रोटी की समस्या ने अपना अजगर जैसा मुँह खोल रखा है। उच्च वर्ग को इस समस्या से कोई वास्ता नहीं है और कवि चातक के यहाँ जगमोहन को कुछ अजीब-सी घुटन महसूस होती है—"...मुझे तो यह सब झूठ-सा लगता है।"[43]

उच्च वर्ग की भावना के रूप को भी उपन्यासकार ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है—"पिछली शाम पण्डित जी की आँखों में उसने विचित्र-सी लालसा की जो झलक देखी थी, उसे देखकर जगमोहन को पूरा निश्चय हो गया था कि वे सत्याजी को कॉलेज में ले लेंगे। जगमोहन ने पहले ही कुछ बुजुर्गों की आँखों में वासना जनित लालसा की झलक देखी थी।"[44]

'संघर्ष का सत्य' उपन्यास में निम्न-मध्य वर्ग की रोटी की समस्या को उपन्यासकार ने प्रस्तुत करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। प्रेम एवं दाम्पत्य जीवन लगभग सभी प्रकार के चित्रों की उपन्यास में भरमार है, जो प्राय: निम्न-मध्य वर्ग के हैं। जगमोहन

तथा सत्या, चातक और अनपढ़, गँवार पत्नी, शान्ता जी और उसके पति भगतराम सहगल आदि का दाम्पत्य जीवन व हरीश तथा दुरो इसका उदाहरण हैं। इसके साथ ही बुद्धिजीवी वर्ग के जीवन संघर्ष की कहानी को भी विविध रूपों में अंकित किया गया है।

'संघर्ष का सत्य' में मुख्य रूप से चार ही पात्र हैं—जगमोहन, सत्या, हरीश और दुरो। नायक का पद दिलवाने के लिए 'अश्क' जी ने उपन्यास में जगमोहन को हर प्रकार से ऊँचा उठाने का यत्न किया है। वह निम्न–मध्यवर्गीय युवकों के चरित्र का प्रतिनिधि पात्र है।

उसका स्वप्न ऊँचा है—"यदि किसी तरह पढ़ाई कर ले तो कहीं–न–कहीं लेक्चरर हो सकता है। बी.टी.सी. कर ले तो मास्टर हो सकता है, लेकिन स्कूल के छोकरों को पढ़ाने से उसे कॉलेज के लड़कों को पढ़ाना अच्छा लगता था और उसके साध थी कि वह एम.ए. ही करे।"[45] लेकिन उसके पास साधन नहीं थे, जिससे वह अपनी साध को पूर्ण कर सके। जीवन के संघर्ष के साथ आर्थिक एवं सामाजिक रुकावटों ने उसकी प्रत्येक इच्छा पर रोक लगा दी है। वह खुल कर न तो हँस सकता है और न ही रो सकता है बल्कि वह सत्या जी को यह कहने पर भी मजबूर हो जाता है कि न मैं आपके यहाँ जाऊँगा, न आप मेरे यहाँ आयेंगी और न उन लोगों को बातें करने का अवसर मिलेगा।[46]

जगमोहन सोचता है कि ऐसा क्यों? प्रस्तुत संघर्षों से वह समझौता नहीं कर पाता, अप्रस्तुत उसे मिल नहीं पाता। कारण कि प्रस्तुत प्रेम को वह झुठला नहीं पाता। दुरो को वह चाहता था, किन्तु वह उससे दूर थी। सत्या जी से वह दूर रहना चाहता था, किन्तु वह उसके नितान्त निकट थी। वह प्रकट रूप में अपने पत्र में सत्या जी को लिख भी देता था—"मैं आपको किसी तरह के धोखे में नहीं रखना चाहता। मैं आपसे शादी नहीं कर सकता...मैं विवाह की स्थिति में नहीं हूँ।...ठीक स्थिति बताया और आपके और अपने जीवन को नरक बनने से रोकना ही मुझे अभीष्ट है।"[47]

जगमोहन कवि है, किन्तु जीवन के प्रति अन्य पहलु की तरह वह कविता के प्रति भी पूर्ण सार्थक नहीं है। हृदय की पुकार पर कविता की रचना नहीं कर सकता।

जगमोहन के असफल प्रेम की नायिका सत्या जी हैं जो किसी भी कार्य में जल्दी नहीं करती और न ही असफलता मिलने पर वह हार मानती हैं।

और यदि उपन्यास में सफल प्रेम देखने को मिलता है तो वह प्रेम हरीश और दुरो का है जो दो प्रेमियों को स्वतन्त्र रखकर भी उन्हें कार्य की ओर अग्रसर करने वाला प्रेम है। बसन्त और सरला के प्रेम में भी उपन्यासकार ने मानवीय व्यावहारिक एवं स्वस्थ प्रेम का स्वरूप प्रस्तुत किया है।

'संघर्ष का सत्य' उपन्यास में आने वाली प्रत्येक कहानी का वर्णन 'अश्क' बड़ी निष्ठा के साथ करते हैं। पूर्व परिच्छेद की कहानी के पात्र छूटकर कहाँ चले गये? उनकी क्या दशा हुई? इसका उन्हें ध्यान नहीं रहता। यह गुण (या दोष) उपन्यास को अनोखा बना देता है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि प्रत्येक पात्र का परिचय कराते हुए नये पात्र की योग्यता को ध्यान में रखा गया है।जैसे उपन्यास में सर्वप्रथम चातक जी आते हैं तो लगता है चातक ही उपन्यास का नायक होगा परन्तु नायक का स्थान ग्रहण कर लेता है—जगमोहन। जगमोहन के बाद हरीश आता है। इसी प्रकार उपन्यास के अन्त में जगमोहन और सत्या जी के स्थान पर हरीश और दुरो नायक और नायिका बन जाते हैं। यहाँ पर सत्या एक अफ्रीकन से विवाह करके अफ्रीका प्रस्थान कर जाती है।

उपन्यास 'संघर्ष का सत्य' में यदि हम प्रेम के रूप को एक तरफा ही देखें तो यह उपन्यासकार के साथ अन्याय करना होगा जो वास्तव में समाज का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना चाहता है।

बड़ी–बड़ी आँखें (1955)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का चौथा बड़ा उपन्यास 'बड़ी–बड़ी आँखें' सन् 1955 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का माहौल लेखक की अन्य औपन्यासिक कृतियों से कुछ विपरीत (जुदा–जुदा) सा ही है। कवि सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार—"निस्सन्देह 'बड़ी–बड़ी आँखें' समझने के लिए पाठकों के पास मन की बड़ी–बड़ी आँखें होनी चाहिए। इस

अत्यन्त मनोरम कृति के लिए जिसे मैं गीति उपन्यास कहूँगा—मैं 'अश्क' जी को भूरि-भूरि बधाई देता हूँ।"[48]

छविनाथ पाण्डेय ने इसे 'आदर्शपरक यथार्थवादी उपन्यास' डॉ. देवराज उपाध्याय ने 'यथार्थवादी गीति उपन्यास' एवं सतीश चन्द्र श्रीवास्तव ने 'आदर्श और यथार्थ के संघर्ष का चित्रण' की संज्ञा प्रदान की है।[49]

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास को चिन्तन और यथार्थ का मिश्रण कहना अनुचित न होगा। इसमें कथाकार ने न तो ज्यादा पात्रों की भरमार की है और ना ही आनुषंगिक घटनाओं को दिया है। बस एक सबल सशक्त पूंजीभूत अनुभूति ही द्रवित होकर तरल रूप में समस्त आख्यान के ऊपर छहरी हुई है, तलवर्ती सैद्धान्तिक संघर्ष और वैचारिक ऊहा-पोह भी उसी का आलोडन-विलोडन है। अनुभूति की तीव्रता और निजीपन जिस सीमा तक कथा के विस्तार को प्रगाढ़ रागात्मकता से आच्छादित रख सकती है। उसके ही अनुरूप कथानक में सक्षिप्तता और घटना शृंखला में कसाव है।[50]

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास संगीत की चेतना के जिस बिन्दु से यह कथा नि:सृत होती है, उसके पीछे उसकी गहरी आन्तरिक चुभन, वेदना और आत्मग्लानि छिपी हुई है। मोती से सफेद दाँतों वाली और खुलकर हँसने वाली उसकी पत्नी पित्तो का मधुर साहचर्य, आखिर मौत ने एक लम्बी बीमारी देकर छीन ही लिया और विवाह के पहले कुछ वर्षों की व्यामोहावस्था को एक क्रूर झटका लगा।

मन की अशान्ति दूर करने की खोज से संगीत देवनगर आया, लेकिन विडम्बना तो यह रही कि यहाँ उसे और भी कचोटती अशान्ति मिली। शान्ति की खोज में अन्ततः अशान्ति की उपलब्धि।

कथानक के विकास की स्वाभाविक किन्तु मंथर गति का पहला झटका बड़े दिन की शाम को आयोजित उस समारोह में लगता है, जब उपन्यास की नायिका वाणी संगीत सिंह के निकट बैठकर अपने पिता, चचेरे भाई और तीरथराम को हैरत में डाल देती है, किन्तु तीरथराम के लिए तो यह वज्रप्रहार ही सिद्ध हुआ। दो बच्चों का पिता होते हुए भी

वह वाणी को पाने का हर–सम्भव यत्न करता है। ऐसी अवस्था में संगीत वाणी से कह उठता है—

"वाणी की उन झुकी–झुकी आँखों की ऊर्ध्वगा दृष्टि में ना जाने कैसा पैनापन था कि मैं उसका परस तक महसूस कर रहा था। उसी दृष्टि से विवश होकर आखिर मैंने उस ओर देखा।"[51] यह दृष्टि संगीत के अन्त:स्थल को छू लेती है उसे अपने संतप्त मन को सहला जाने वाले स्नेह की एक क्षीण आभा के दर्शन तो होते हैं, किन्तु तीरथराम की ओर से आने वाले भावी संघर्ष के संकेत को वह नजरअंदाज नहीं कर पाता है—"सामने के स्तम्भ से लगे तीरथराम से मेरी आँखें चार हुईं। वह विनिमेष हमारी ओर देख रहा था। भौंहें चढ़ी और आँखें तनी थीं और उसके चेहरे पर काला–सा बादल घिर आया था।"[52]

जिस समय डाइनिंग हॉल और बाहर मैदान की छिटपुट मुलाकातों के साथ संगीत के प्रति वाणी की हमदर्दी और स्नेह मिश्रित प्रेम उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। तीरथराम की जासूसी उतनी ही सजग और सरगर्म होती गयी और विद्वेष की कडुवाहट स्पष्ट होती चली गई। तीरथराम, हरिमोहन आदि की ओर से व्यक्तिगत स्तर पर पल रही ईर्ष्या और जलन की चरम परिणति 'एप्रिल फूल' की उस घटना से दृष्टिगोचर होती है जिसमें नाबालिग लड़की को बहकाने के झूठे अभियोग में संगीत का विशेषकर उत्सव के समय सभी के समक्ष सरेआम मजाक उड़ाया जाता है। इस प्रसंग का घटनाचक्र जैसे कुछ क्षण के लिए रुक जाता है।

नबी के 'प्रैक्टिकल स्कूल' में प्रवेश को लेकर देवाजी और संगीत के मध्य मन–मुटाव की दरार पड़ जाती है किन्तु वाणी की सहानुभूति, स्नेह एवं ममता ने इस दरार को भर दिया। नबी को चोरी के इल्जाम में नौकरी से अलग करने का देव सैनिकों का आग्रह जब बढ़ता जाता है, तो संगीत उसे निकाल कर स्वयं भी देवनगर को छोड़कर चला जाना अच्छा समझता है और वैसा ही करता भी है।

'बड़ी–बड़ी आँखें' उपन्यास आत्म–कथात्मक शैली में लिखा गया है, परन्तु फिर भी घटनाक्रम में एक ऋजुता, शृंखलाबद्धता, संगठन और गति है। उपन्यास की कथा शृंखला में एक–दो स्थलों पर व्यतिक्रम है। उनकी बड़ी ही सार्थक नियोजना की गई है।

उदाहरणत: पित्तो के प्रसंग के साथ कथा विकास के दौरान में नायक दो स्थलों पर मुड़कर अपनी पिछली सुखमय वैवाहिक जिन्दगी और उसके दर्दनाक उपसंहार के प्रसंगों का जिक्र करता है। पित्तो को भी कथा से पृथक् नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी मौत के कारण ही नई कथा का आरम्भ होता है जिसके कारण संगीत सिंह शान्ति की तलाश में देवनगर पहुँचकर उपन्यास की सम्पूर्ण कथा का केन्द्र बन जाता है।

इस प्रसंग में मार्मिकता ही संगीत की मन:स्थिति की उस पीठिका को स्पष्ट करती है जिसके सन्दर्भ में उसकी मानसिक बेचैनी और शान्ति की खोज के प्रति किए गए प्रयासों की गम्भीरता संगत प्रतीत होती है। आसन्न मौत की मण्डराती छाया देखकर जब पित्तो दबे स्वर से पूछती है—

"दार जी! नरक और स्वर्ग में क्या आपका जरा भी विश्वास नहीं? तो पति से आश्वासन के बदले में वह जो कुछ सुनती है वह वस्तुत: कितना यथार्थ और कटु है— पित्तो, स्वर्ग-नरक के बारे में तुम मेरे विचार जानती हो, लेकिन तुमने अपना कर्त्तव्य पूरी तरह निभाया है, यदि कोई स्वर्ग हो तो वह अवश्य तुम्हें मिलेगा।"[53]

तीसरे दिन नायक संगीत की पत्नी पित्तो मर गयी। इस कथा प्रसंग की करुणा पाठक की संवेदना को भाव-विह्वल करने में समर्थ है, जिससे वह संगीत की मन:स्थिति से सहज ही में तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

हालाँकि इस उपन्यास का रूप आत्म-कथात्मक है एवं कथानक में नायक संगीत की संस्मरणात्मक रागात्मकता के तत्त्व भी उपयोग में आये हैं, किन्तु यह पक्ष इतना संयमित और सन्तुलित है कि उससे पात्रांकन की विविधता पर कोई आँच नहीं आने पायी है। कथानक के पात्रों का चित्रण न तो एकांगी है और न वह सहज नायक की व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं और आग्रहों पर आधारित।

जिन पात्रों के क्रिया-कलापों के माध्यम से 'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास की सृष्टि हुई, उनमें मुख्य हैं—देवा जी (सरदार देवेन्द्र सिंह), माताजी (देवा जी की पत्नी), संगीत सिंह, वाणी तथा तीरथराम।

देवाजी देवनगर के संस्थापक 'देववाणी' के संस्थापक सम्पादक और 'देवसेना' के अधिष्ठाता है। देवाजी का व्यक्तित्व एक स्वप्न दृष्टा-सा है। लगता है कि गम्भीर, सौम्य और शालीन तबियत के इस व्यक्ति को अंधविश्वास, सनक और भाग्यवादिता से बेहद चिढ़ है।

देवाजी के लेखों और भाषणों से पता चलता है कि भारत में यदि स्वर्ग है तो वह देवनगर में है। वहाँ के पवित्र वातावरण में वे एक-दूसरे के सहायक बनकर आगे बढ़ते चले हैं।

"देवाजी प्रेम के बड़े भारी समर्थक थे...वे कहा करते थे 'फूहड़, ऊजड़, असंस्कृत' प्रीति का काम उनके खयाल में जलाना नहीं, गर्मी पहुँचाना था—देवनगर के सैनिक उसी प्रीत-लड़ी के मन के बन जायें, यह उनका उद्देश्य था।"[54] साथ ही देवाजी का कहना है कि देवनगर के निवासियों के हृदय कपाट सदा दूसरों के लिए खुले रहें, वे प्रत्येक कार्य के लिए दिल और दिमाग से विशाल तथा उदार रहे।

It is easy to say, but difficult to do.

'अश्क' जी के इस उपन्यास में बड़े ही कुशल ढंग से उन घटनाओं को उभारा है, जो देवाजी के व्यक्तित्व से विरोध रखती है। प्रैक्टिकल स्कूल स्थापना करके उन्होंने जिस प्रकार बनावटी तथा थोथे आदर्शवाद से तुष्टि को प्राप्त करते हुए, अपनी आत्यन्तिक दुनियादारी से उसका सामंजस्य निभाने का प्रमाण दिया है, वह चौकीदार रामा थापा के बेटे तथा मुसलमान नौकर नबी के प्रसंगों से स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। यही नहीं, वहाँ के देव-सेनानी उनके कटु आलोचक होते हुए भी खुलकर विरोध करने का साहस नहीं रखते।

पर सच बात तो यह है कि संगीत सिंह (नायक) ही पहला व्यक्ति था, जिसने बड़ी निर्भीकता और स्पष्टता से देवनगर के स्वप्न दृष्टा संस्थापक की 'कथनी और करनी' के इस द्वैत की ओर संकेत किया। संगीत भी शायद ऐसा न करता, यदि वह थोड़ा व्यावहारिक होता किन्तु उसका देवनगर आने का उद्देश्य था—पत्नी की मौत के बाद सच्ची शान्ति पाना न कि दुनियादारी निभाना। उसका सबक सीखना था।

नायक संगीत की नैतिक चेतना एवं अपने प्रति ईमानदार बने रहने की भावना बड़ी ही जागरूक है। यहाँ तक कि मौत की घड़ियां गिन रही बीमार पत्नी की तसल्ली के लिए भी (जिसके लिए वह सर्वस्व न्यौछावर कर सकता है) वह सत्य को छोड़कर असत्य नहीं अपनाता। वह बेहद स्वाभिमानी तथा संकोची व्यक्तित्व से सम्पन्न है।

"अन्तरावलोकन और मानव मन के सूक्ष्म विश्लेषण की जो प्रतिभा उपन्यासकार 'अश्क' के पास है वह उन्होंने सारी की सारी कथा नायक संगीत को सौंप दी जिससे वह गहरे, किन्तु निर्भय व पूर्वाग्रहहीन आत्म-विश्लेषण के माध्यम से अपनी मन:स्थिति के सभी पक्षों का स्पष्ट उद्‌घाटन करने में समर्थ है।"[55] वैसे भी संगीत जिसे—"केवल बारह-तेरह बरस की समझता था, वास्तव में पन्द्रह-सोलह बरस की लड़की थी। छोटे कद की पतली-दुबली, बीमार-बीमार सी। बोलती तो उसके मुँह पर कुछ अजीब-सा सहम भरा लुभावनापन आ जाता है।"[56]

अपने कमरे के उस एकान्त में संगीत सोचता है कि आखिर वाणी में ऐसा कौन-सा आकर्षण है कि मैं बीमार-सी वाणी के प्रति आकर्षित हूँ। पर यह बात स्वाभाविक सी जान पड़ती थी, संगीत को कि मेरी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् जो मानसिक पीड़ा (व्यथा) उसके जीवन में आ गयी थी। उस व्यथा को सहलाने वाला वाणी का स्नेह संगीत को अपनी ओर आकर्षित करता ही रहा। इसी कारण वह अपनी इस दशा को प्रकट करते हुए स्वयं ही कह उठता है—

"हर प्रेम के तल में कहीं जरूर वासना की हल्की धारा होती है, लेकिन ऐसा भी प्रेम है, जो गिराता नहीं, उठाता है, जो मन को वो आँखें दे देता है, जो अनजाने भेद जान लेती हैं...बेलि पेड़ का सहारा पाने, उससे लिपट जाने को विवश है, उसकी उस बेबसी से पेड़ अपनी महत्ता पर गर्व कर सकता है, पर उससे लिपटकर वह असहाय विवश बेलि उसे कितनी स्निग्धता, कितनी पूर्णता प्रदान कर देती है...।"[57]

नायक संगीत पत्नी की मौत और देवनगर आगमन से उसकी आत्म-संकुचित दृष्टि को जो विशालता और संवेदना का जो प्रचार मिल गया, वह कोई अप्रत्याशित परिवर्तन न था।

पित्तो (नायक संगीत की पत्नी) की मौत ने उसकी आँखों पर छाये हुए पर्दे को तार तार कर डाला और अब तक गरीबी, भूख और मौत की रोमानी दृष्टि से देखने वाली उसकी आँखें उन रोमानी दृश्यों के पीछे छिपे दुःख को भी देखने लगी। उसकी संवेदना के प्रसार में देवाजी की 'कथनी' से भी प्रेरणा मिली, नायक संगीत स्वयं स्वीकार करता है—"मैंने अपनी प्रेरणा उनकी करनी से नहीं ली, प्राय: हर अवसरवादी की करनी वैसी ही होती है, मुझे प्रेरणा उनकी कथनी से मिली है, जिसने मेरी सोयी हुई रूह को जगा दिया है...।"[58]

परन्तु इन समस्त स्रोतों में वाणी के स्नेह का प्रभाव ही सबसे अधिक प्रेरणास्पद था, जिसने उसकी चेतना की मूर्च्छना को छूकर सजग कर दिया था। इन्हीं प्रेरणाओं के फलस्वरूप संगीत को अपने आस-पास की गरीबी, दुःख-दर्द विह्वल करने लगा और विरोधों के बावजूद उसने नबी के लिए इतना कुछ किया। जब नवी को देवनगर से निकालने का प्रश्न उठा तो हार मानने के बजाय परिस्थितियों से समझौता करके वाणी के स्नेह के तगादे को याद करता हुआ, वह अपने फैसले पर अड़िग रहकर देवनगर छोड़ देता है।

'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास की नायिका वाणी के चरित्र पर प्रकाश डालना अनुचित न होगा। बालपन की सरलता के साथ उसके हृदय में मूक प्रेम के उद्रेक अथवा उसकी संयमित संकोचशील अभिव्यक्ति के चित्रण में 'अश्क' जी की गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है।

बड़े दिन के समारोह में पहली ही भेंट में उसका संगीत के साथ बैठना तथा निरन्तर संगीत की ओर एकटक देखना, अजीब-सा प्रतीत होता है।

संगीत जिस वाणी को अब तक बच्चों की पंक्ति में ही गिनता था, उसकी बातों से आश्चर्य करने लगता है, वह सोचता है—"इसने इस छोटी-सी उम्र में कहाँ से देखना सीख लिया...? कह रही थी मैंने कई बार सुना है आपको गाते। इस आशा में ही आप गायेंगे, मैं कई-कई रात तक जागा करती हूँ।"[59]

कुछ क्षण पश्चात् मुग्ध भावों से ओत-प्रोत होकर वह अपने पिता से संगीत को गाने के लिए कहने का अनुरोध करती है।

नायक संगीत के प्रति वाणी का प्रेम भी वैसा ही है। उसे पिता ही क्या किसी से भी डर नहीं। तभी तो वह बिना किसी भय के संगीत को देवनगर, देवाजी और उसके प्रति प्रेम के विषय में पत्र लिखती है—"इस नगर का नाम चाहे देवनगर है, पर यह वास्तव में राक्षस नगर है।"[60]

वाणी किशोरावस्था को भी पा जाने पर भी उसमें वैसी चंचलता नहीं। दूसरों के दुःख-दर्द के प्रति उसकी सहानुभूति तथा संवेदना ने संगीत को भी नयी दृष्टि प्रदान की है। यहाँ तक कि वह नबी के दुःख को भी अपना ही दुःख समझती है। स्वयं संगीत वाणी के आभार को प्रकट करते हुए कहता है—"तुमने जो आँखें मुझे बख्शी हैं, दूसरों के दुःख-दर्द के महसूस करने की जो शक्ति प्रदान की है, वह उसी का तगादा था कि मैं यों भाग जाऊँ। लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हारी उन बड़ी-बड़ी आँखों की याद, जिन्होंने मेरी आत्मा की आँखें खोल दी हैं 'देववाणी' के आदर्श पर चलने की प्रेरणा दी है, जीवन भी मेरा पथ उजेला रहेगा।"[61]

नि:सन्देह 'बड़ी-बड़ी आँखें' उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का संघर्ष व्यापक रूप से निरूपित है।

उपन्यास की कथा आदि से अन्त तक सुनियोजित तथा सुसम्बद्ध है। पात्रों के सूक्ष्म विश्लेषण, घटना प्रसंगों के, प्रकृति के दृश्यों में प्रयुक्त चित्रात्मक शैली वहाँ के वातावरण को साकार रूप देने में सफल हुई है।

हास्य-व्यंग्य में तो उपन्यासकार 'अश्क' अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, उन्हें जब भी उपयुक्त अवसर मिले हैं, वहाँ से हास्य-व्यंग्य का प्रयोग करने में नहीं हिचके।

नि:सन्देह उपन्यासकार 'अश्क' के 'बड़ी-बड़ी आँखें' नामक उपन्यास को वही पाठक पढ़ सकता है, जिसके पास बड़ी-बड़ी आँखें हों—यह एक यथार्थ सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

पत्थर–अल–पत्थर (1957)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का पाँचवाँ उपन्यास 'पत्थर–अल–पत्थर' सन् 1957 में प्रकाशित लगभग 126 पृष्ठों का लघु उपन्यास है। इसमें कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य वैभव के साथ–साथ वहाँ के मजदूर किसानों की गरीबी, पुलिसवालों के जोर–जुल्म और एक विजिटर (पर्यटक) सेठ की हृदयहीनता के यथार्थ का चित्र अंकित है।

"भैरव प्रसाद गुप्त ने इस उपन्यास को कश्मीरी घोड़वानों के जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्र, डॉ. विजय शंकर मल्ल ने 'एक प्रतीकात्मक उपन्यास' और हनुमान वर्मा ने निम्न–वर्ग के व्यक्ति का यथार्थ चित्रण की संज्ञा प्रदान की है।"[62]

'पत्थर–अल–पत्थर' कश्मीर के एक प्रमुख पर्यटन स्थल गुलमर्ग के एक दरिद्र, धर्म–परायण, भूमिहीन मजदूर किसान, घोड़ावान हसनदीन की दर्द–भरी कहानी है। यह गुलमर्ग की सैर के लिए आने वाले सैलानियों को किराये पर घोड़े उपलब्ध कराता है और साथ में गाइड का काम करता है, क्योंकि 1947 के बाद पर्यटन एक 'उद्योग' बन गया है, इसलिए हसनदीन को स्थानीय अधिकारियों विशेष रूप से पुलिस के हवलदारों को खुश करना पड़ता है, क्योंकि पुलिस की कृपा–दृष्टि पर ही उसकी आय निर्भर है।

उपन्यास की कहानी गर्मियों के महीने में ऐसे ही एक दिन की सुबह से शुरू होती है जब हसनदीन भोर के समय उठ कर, नित्य–कर्म से निबट कर और नमाज 'या अल्लाह!' हसनदीन ने लम्बी साँस भरते हुए उस अदृश्य शक्ति को पुकारा, जिस पर अपने सब भले–बुरे की जिम्मेदारी डालकर वह सोच से मुक्ति पा लेता था।[63] पढ़कर बस अड्डे पर समय से पहुँचने को तैयार हो रहा है ताकि पर्यटकों को लाने वाली बस में से किसी पर्यटक को अपने घोड़े किराये पर लेने के लिए राजी कर सके।

विगत तीन दिन से हसनदीन को कोई सवारी नहीं मिली थी——कारण जो सिपाही बस अड्डे पर ड्यूटी दे रहे हैं, वे दूसरे घोड़वानों से बँधे हुए थे। मगर चौथे दिन हसनदीन जब बस अबड्डे पर पहुँचता है तो उसे प्रसन्नता होती है कि उसका परिचित सिपाही सरदार हरनाम सिंह ड्यूटी पर है।

उसी समय प्राइवेट और सरकारी—दोनों बसें आ पहुँचती हैं। सरकारी बस से उतरने वाली सवारियों में एक अमीर दिखाई देने वाला सेठ खन्ना साहब, उनकी पत्नी और बच्चा भी हैं, जिन्हें घोड़ों की आवश्यकता है।

'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास का नायक हसनदीन सरदार हरनाम सिंह की सहायता से सेठ खन्ना साहब को इस बात के लिए राजी कर लेता है कि वे उसी के घोड़े किराये पर लें। इस बात के पीछे हसनदीन का एक रहस्य यह छुपा था कि खन्ना साहब के रूप-रंग, पहनावे और हाव-भाव से ऐसा लगता है कि वे काफी अमीर हैं और खूब घूमेंगे-फिरेंगे, जिससे उसे अच्छी आय तो होगी ही, सम्भव है, अच्छी बख्शीश भी मिल जाए।

बस अड्डा गुलमर्ग से कुछ नीचे टंगमर्ग नामक स्थान पर है। टंगमर्ग से गुलमर्ग का रास्ता पार करते-करते हसनदीन खन्ना साहब को इस बात के लिए तैयार कर लेता है कि वे स्थानीय तीर्थस्थान 'बाबा पामदीन ऋषि की मजार' को देखने चलें।

हसनदीन को जब यह पता चलता है कि खन्ना साहब गुलमर्ग में केवल दो दिन रुकेंगे, जिसका अर्थ है कि वे जल्दी-जल्दी सब कुछ देखना चाहेंगे। हसनदीन सोचता है कि इसके लिए खन्ना साहब को घोड़े किराये पर लेने होंगे और उसे काम मिल जायेगा।

खन्ना साहब जिस बस से उतरते हैं उसी बस में से उतरने वालों में दिल्ली के एक अधेड़ अर्थशास्त्र के अध्यापक प्रोफेसर उप्पल, उनकी भतीजी उषा और अफ्रीका से आया एक युवक जीवानन्द भी है, जिससे उप्पल साहब श्रीनगर में मिले थे। जीवानन्द व्यापारी है, भारत घूमने आया है, उषा के प्रति आकृष्ट है और उप्पल साहब के मन में एक दबी हुई इच्छा है कि जीवानन्द और उषा का विवाह हो जाये।

खन्ना साहब बहुत जल्दी उप्पल साहब से दोस्ती कर लेते हैं। वो दिल्ली के एक मामूली व्यापारी हैं, लेकिन बात-बात में लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकते रहते हैं। उन्हीं के शब्दों में—हसनदीन ने जब खन्ना साहब को दरी ले चलने के लिए कहा तो खन्ना साहब बोले—"वहाँ क्या घास नहीं है? इन नजाकतों और नफासतों के हम कायल नहीं घर में

चाहे गद्दों और गदेलों पर सोओ, लेकिन वक्त आने पर सूखी धरती पर सोने में मत झिझको अपने बच्चों को मैं यही सिखाता हूँ।"[64]

और भी जब हसनदीन एक पंजाबी पर्यटक की बख्शीश की बात खन्ना साहब को सुनाते हैं तो कहते हैं—"अरे पंजाबियों की क्या बात है, दिल के तो दरिया होते हैं दरिया।"[65]

आगे हसनदीन ने जब खन्ना साहब को कहा कि पंजाबी साहब कभी मोल भाव नहीं करता था, इसके प्रत्युत्तर में खन्ना साहब ने हसनदीन से कहा—"हम भाई कारोबारी आदमी हैं। मोल-भाव किए बिना तो हम एक कदम भी नहीं चल सकते और हमारा विश्वास है कि हिसाब माँ-बेटी का और बख्शीश लाख टके की।"[66]

इस प्रकार मुझे लगता है कि खन्ना साहब की डींगें हांकना एक शौक बन गया है। मोल-भाव भी करते हैं तो उस पर सिद्धान्त का ऐसा आवरण चढ़ा देते हैं कि उनकी स्वभावगत कंजूसी छिप जाय।

हसनदीन खन्ना साहब को बाबा पामदीन ऋषि की समाधि पर ले जाता है, लेकिन समाधि पर एक पैसा भी नहीं चढ़ाते। जब हसनदीन ने बाबा ऋषि की मजार पर खन्ना साहब को कुछ खैरात चढ़ाने के लिए बोला तो खन्ना साहब ने कहा—मेरी जेब में रेजगारी नहीं, दस-दस के नोट हैं। हम बाबा ऋषि की खिदमत में फिर हाजिर होंगे और अगर हमारे मन की मुराद पूरी हो गयी तो बाबा को खूब खुश कर देंगे (रिश्वत की इस भाषा के अतिरिक्त वे दूसरी भाषा नहीं जानते थे)।[67]

हसनदीन जो बहुत धार्मिक प्रवृत्ति का है, अपनी ओर से दो आने चढ़ा देता है। फिर जैसे इतना ही काफी न हो, वह उषा और जीवानन्द को भी समाधि के दर्शनों को ले जाता है और जीवानन्द के लाख कहने पर भी बख्शीश नहीं लेता।

पामदीन ऋषि के दर्शनों के बाद इत्मीनान से उप्पल साहब के खाते पर हाथ साफ करते हुए खन्ना साहब तय करते हैं कि अगले दिन वे गुलमर्ग से आगे खिल्लनमर्ग और

सम्भव हुआ तो अल–पत्थर का हित प्रपात भी देखने जायेंगे। साथ में वे उप्पल साहब को भी तैयार कर लेते हैं।

हसनदीन यह जानकर बहुत खुश होता है कि और अगले दिन की आय को ध्यान में रखते हुए वह पामदीन ऋषि के मजार से वापस होटल पहुँचने पर खन्ना साहब से अपनी तब तक की मजदूरी नहीं लेता, बल्कि अगले दिन इकट्ठा लेने के लिए छोड़ देता है।

अगले दिन सुबह हसनदीन जल्दी ही होटल पहुँच जाता है, कयेंकि खन्ना साहब को उसी दिन बस पकड़नी है। इसलिए उन्हें जल्दी–जल्दी तैयार करके खिल्लनमर्ग ले जाता है।

खिल्लनमर्ग पर एक ऐसी घटना होती है कि हसनदीन को पहली बार लगता है कि उसने सवारियों को पहचानने में भारी भूल की है।

हसनदीन के सामने खन्ना साहब की सारी कंजूसी मध्यवर्गीय टुच्चापन, काइयां स्वभाव और धोखेबाजी खुल जाती है।

खिल्लनमर्ग एक प्राकृतिक स्थल है, वहाँ कोई बस्ती नहीं, लेकिन मुसाफिरों की सुविधा के लिए वहाँ एक सिख चाय वाले ने तम्बू गाड़कर एक सफारी रेस्तरां बना रखा है। जहाँ चाय–नाश्ते का इंतजाम है। इसी चाय वाले के पास एक तम्बू में एक मुसलमान चाय वाले की भी दुकान है। मुसाफिर लोग सिख चाय वाले के यहाँ चाय पीते हैं और घोड़ावान तथा कुली मुसलमान चाय वाले के यहाँ।

इसके पीछे धार्मिक कारण हो अथवा साम्प्रदायिक या फिर ऐतिहासिक——मगर यह अलगाव वहाँ का रिवाज बन गया है और सब इस बात का खयाल रखते हैं, चाहे सिख और अंग्रेज पर्यटक हों अथवा सिक्ख और मुस्लिम दुकानदार। लेकिन जब हसनदीन खन्ना साहब से चाय के लिए पैसे माँगता है तो वे उसे पैसे देने की बजाय सिख चाय वाले की दुकान से चाय पीने को कहते हैं। जब हसनदीन इस बात के लिए तैयार नहीं होता है तो वे उसे विवश करते हैं कि वह उन्हीं के साथ चाय पीये। लेकिन हसनदीन के धार्मिक

विश्वास बहुत गहरे हैं और वह साफ मना कर देता है, तब खन्ना साहब हसनदीन से कहते हैं—

"पैसे–वैसे नहीं मिलेंगे। तुम्हें चाय पीना है या हमसे पैसा ठगना है?"

"हमसे पीना है तो हमारे साथ पीओ, नहीं तो अपने पैसे से पियो। यह लो, रुपया ले लो।"[68]

तब हसनदीन अपने हिसाब से उनसे पैसे लेकर अपने चाय वाले से चाय लेकर पीता है, मगर इस घटना से खन्ना साहब की कंजूसी की और भी घटनाएँ दिमाग में घूमने लगती हैं।

खिल्लनमर्ग से खन्ना साहब को लेकर हसनदीन अगले पड़ाव यानी 'दो नाले' के लिए चलता तो है, लेकिन उसका मन अब उखड़ चुका है। दो नाले पर पहुँचकर उसकी तबियत भी खराब हो जाती है। उसका सिर दर्द करने लगता है और दो दिनों से अपनी सवारियों की सेवा करते रहने की थकान से उसे हरारत भी महसूस होती है। वह दो नाले से आगे नहीं जाना चाहता, लेकिन खन्ना साहब उससे झगड़ने लगते हैं और उसे पैसे न देने की धमकी देकर आगे चलने पर विवश कर देते हैं। दो नाले से आगे बर्फ के पुल पर पहुँचकर खन्ना साहब अन्ततः हसनदीन के घोड़े छोड़ने पर राजी होते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें हसनदीन से कोई लगाव है, बल्कि इसलिए कि बर्फ पर घोड़ों के फिसल जाने से उन्हें तथा उनकी पत्नी और बच्चे को चोट आ जाने का खतरा है। इसके बाद खन्ना साहब घोड़े तो छोड़ देते हैं, लेकिन हसनदीन को नहीं छोड़ते और कभी मिन्नत–समाजत करके भी उसके माथे पर बाम लगा कर उसे अपने साथ ऊपर चोटी तक जाने को मजबूर कर देते हैं।

खन्ना साहब का बेटा भी ऊपर जाने को उत्सुक है और एक जगह जब वह ऊपर तक न जाने की आशंका से निराश होकर उदास हो जाता है तो हसनदीन केवल बच्चे को प्रसन्न करने के लिए अपने सिर का दर्द और बुखार भूलकर चल देता है।

अल–पत्थर की चोटी पर पहुँच कर खन्ना साहब अधिक देर नहीं रुकते। उन्हें उसी दोपहर की बस पकड़नी है, इसलिए जल्दी–जल्दी जैसे कर्त्तव्य पूरा करने के ख्याल

से अल-पत्थर की मनमोहक चोटी पर नजर दौड़ाते हैं और फरोजन तक ले जाते हैं। उन्हें यह भी ख्याल है कि पैसे खर्च किए हैं, तो उनका पूरा उपयोग करना चाहिए, भले ही मजा न आये। यही नहीं, बल्कि बस पर समय से पहुँचने के लिए वे अपनी आदत के बर्फ गाड़ी वालों से काफी भाव-ताव करते हुए खन्ना साहब कहते हैं—

"अरे भाई! कोई राजा-महाराजा होता तो इसी आठ के बदले अस्सी रुपये दे देता, पर हम गरीब आदमी हैं।"[69] और खन्ना साहब बर्फ गाड़ियाँ भी किराये लेते हैं, ताकि पूरा रास्ता कदम-दर-कदम उतरने की बजाय बर्फ की ढलान पर फिसलते चले जायें। इसके अनन्तर खन्ना साहब जल्दी-जल्दी अपना कैमरा निकाल उसे स्टेण्ड पर लगा कर कुछ फोटो लेते हैं। "उसी समय उनका बच्चा बर्फ पर फिसल जाता है। खन्ना साहब कैमरा वहीं छोड़कर भागे। हसनदीन से उन्होंने मेम साहब को लेकर आने के लिए कहा और स्वयं बच्चे को उठाकर बर्फ गाड़ियों की ओर बढ़े।"[70]

खन्ना साहब और उनका परिवार बर्फ गाड़ियों पर और हसनदीन बरसाती पर बैठ कर बर्फ पर फिसलते नीचे जा रहे होते हैं कि खन्ना साहब को कैमरे तथा स्टेण्ड का ख्याल आता है। वे बर्फ गाड़ियाँ रुकवाकर हसनदीन से पूछते हैं। हसनदीन कैमरा अपने गले से निकालकर उन्हें दे देता है, लेकिन स्टेण्ड उसे नहीं मिलता।

हसनदीन खन्ना साहब को आगे बढ़ने के लिए कह कर स्टेण्ड ढूँढ़ने के लिए फिर अल-पत्थर की चोटी पर जाता है। उसे कुछ याद नहीं कि स्टेण्ड कहाँ गया। ऊपर चोटी पर उसे स्टेण्ड कहीं नहीं मिलता है। तभी उसे ख्याल आता है कि स्टेण्ड तो उसने खन्ना साहब के बैग में रख दिया था। वह तेजी से नीचे भागता है और रास्ते में चोट भी खा जाता है। यही नहीं बल्कि उसे विवश होकर एक दूसरे घोड़े वाले से किराये पर घोड़ा भी लेना पड़ता है, क्योंकि खन्ना साहब होटल से टंगमर्ग के लिए चल चुके हैं।

जब हसनदीन टंगमर्ग पहुँचता है तो वह पाता है कि बस चलने को तैयार खड़ी है और सिपाही हरनाम सिंह बस के बाहर खड़ा है।

हसनदीन ने बस अड्डे पर पहुँचते ही अपने पुत्र से कहा—"घोड़ा ले ईदू" और वह बस की ओर भागा ताकि खन्ना साहब से बात कर पाये। हरनाम सिंह उसे पीटना शुरू कर देता है और उसके हाथ से खन्ना साहब की बरसाती और घड़ी लेकर एक और सिपाही के हाथ खन्ना साहब को पकड़ाते हुए हसनदीन को हवालात में ले जाने का आदेश देता है।

तब खन्ना साहब बस से उतरते हैं और इनाम-बख्शीश तो दूर रही, हसनदीन की उचित मजदूरी से भी कहीं कम रुपये निकाल कर हरनाम सिंह के हाथ में पकड़ा देते हैं।

प्रकट ही खन्ना साहब को स्टेण्ड मिल गया है और वे सिर्फ उसके गुम हो जाने का बहाना लेकर हसनदीन के पैसे मार लेना चाहते हैं।

खन्ना साहब तो हसनदीन को धोखा देकर बस में सवार होकर चले जाते हैं, लेकिन अपने पीछे शोषण और उत्पीड़न की अन्य शक्तियों को उकसा जाते हैं। हरनाम सिंह और उसके साथी हसनदीन की मजदूरी अपने पास रख लेते हैं और उसे हवालात में बन्द कर देते हैं। फिर वे हसनदीन को रिहा करने के लिए हसनदीन की बीवी को समझाते हैं कि वह कहीं से पचास रुपये पैदा करे तो हसनदीन छूट सकता है, क्योंकि सरकार पैसेंजरों को तकलीफ देगी तो पैसेंजर आयेंगे नहीं और घाटी के लोग भूखे मरेंगे। स्टेण्ड तो उन्हें खरीद कर देना ही पड़ेगा।[71]

हसनदीन की इसी निराश परिणति पर उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है, लेकिन सरकारी अधिकारियों और हृदयहीन पर्यटकों के शोषण और उत्पीड़न के नीचे पिसते हुए कश्मीर के जिस घोड़ावान के यथार्थ को उपन्यासकार ने चित्रित किया है, उसे देखते हुए हमें यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं होती कि आगे क्या हुआ होगा।

अन्त में 'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास की रचना कलात्मकता से पूर्ण होकर पाठकों के मन पर गम्भीर छाप छोड़ जाती है।

सारांश रूप में भैरव प्रसाद गुप्त ने इस उपन्यास के सन्दर्भ में कहा है—"'पत्थर-अल-पत्थर' कश्मीर के एक घोड़ावान हसनदीन की दर्द भरी कहानी है। 'अश्क' ने यह

कहानी इतनी कुशलता से बुनी है कि हसनदीन की जिन्दगी की सारी ट्रेजडी साकार हो जाती है। 'अश्क' जी ने बड़े-बड़े उपन्यास लिखे हैं और कदाचित और भी वृहत उपन्यास वे लिखें, पर मुझे पूरा विश्वास है कि 'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास अपनी लघुता के बावजूद गुरुता का आभास देगा और 'अश्क' साहित्य ही नहीं, हिन्दी साहित्य में एक नया और महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ेगा।"

शहर में घूमता आईना (1961)

सन् 1961 में प्रकाशित 'शहर में घूमता आईना' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी का 'गिरती दीवारें' उपन्यास की अगली कड़ी व छठा उपन्यास है।

इस उपन्यास के विषय में 'अश्क' जी का कहना है कि—"जो पाठक हर कलाकृति से यह आशा रखते हैं कि वह कुछ सिखाये भी, उनसे निवेदन है कि अच्छी कलाकृति सीधे कुछ नहीं सिखाती, पर सीखने वाले उससे बहुत कुछ सीख लेते हैं। पंजाबी में कहावत है—

इक्कनां नूं दित्ती रब्ब ने
इक्कनां ने सिक्ख लयी
इक्कनां नूं जो न आयी
ज्यूँ पत्थर बूँद पयी।।

यानि एक तरह के लोग भगवान् से सब कुछ लेकर पैदा होते हैं, दूसरे (देख या पढ़कर) सीख लेते हैं, लेकिन तीसरे ऐसे भी होते हैं, ज्ञान जिनके दिमाग पर से पत्थर की बूँद सरीखा फिसल जाता है।"[72]

आगे भी लिखते हैं—"दूसरे के इम्प्रेशन्ज और अनुभूतियों से कुछ पाने के लिए मन का ग्रहणशील होना जरूरी है, जो लोग सब कुछ लेकर पैदा हुए हैं अथवा कुछ भी नहीं ले सकते, उनके लिए इस उपन्यास में बहुत कुछ नहीं है। यह केवल बीच के लोगों के लिए है (जिनमें कि 'अश्क' जी अपने आपको भी मानते हैं) और उसने पाया है कि अधिकांश पाठक उसी कोटि में आते हैं। उन्हीं के हाथों में यह उपन्यास ससंकोच समर्पित है।"[73]

इस उपन्यास में 'अश्क' जी ने नया शिल्प यह अपनाया है कि नायक चेतन द्वारा पूर्ण उपन्यास को दर्पण की भाँति घुमाकर सम्पूर्ण जालन्धर शहर के निम्न-मध्यवर्गीय समाज को निरूपित किया है।

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास—"एक सैर बीन ही है। लेखक नायक चेतन के माध्यम से हत्थी घुमाता जाता है और जालन्धर के निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के एक से एक रोचक यथार्थ और जिन्दगी की धड़कनों से अनुप्राणित चित्र पाठक के सामने खुलते जाते हैं—यहाँ ठस्स फिसड्डी बंदा है; सनकी रामदित्ता है, चिच्चल खाँ चिचलावल खाँ है, लालू रूऊ लाल बादशाह है, सफल सुनार पर असफल हकीम दीनानाथ है, निवाड़-फरोश और साइकिल फरोश साहित्य प्रेमी हैं; बैंतबाज, गुण्डे, टुचपंजिए शायर, स्वयंसेवक और नेता, सरफरोश और योगी अपने आपको राजा समझने वाला डरपोक क्षत्रिय और ऋषियों की सन्तान कहाने वाले लड़ाके शराबी ब्राह्मण...दसियों चित्र...दसियों दृश्य...जो कभी गुदगुदाते हैं, कभी हँसाते हैं और बेहतर उदास कर जाते हैं।"[74] इसके साथ ही चेतन की घर की कठिनाइयों और अतीत की घटनाओं से भी लेखक अवगत करवाता है।

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास की कथा केवल एक दिन के समय की है, जिसमें तीन खण्ड किए गए हैं—सुबह (पन्द्रह उपखण्ड), दोपहर (बारह खण्ड), शाम (पन्द्रह उपखण्ड)। इस उपन्यास में उपन्यासकार 'अश्क' ने उन सब बातों को संजोया है, जिनकी पूर्ति 'गिरती दीवारें' उपन्यास में नहीं हो सकती थीं। इन सब का चित्रण लेखक ने नायक चेतन के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है।

उपन्यास का नायक चेतन अपनी साली नीला की शादी उपयुक्त वर से न होने के कारण उदास हो उठा था, किन्तु उसका अवचेतन मन रह-रहकर उन भूली बिसरी स्मृतियों में खोया-खोया सा ही सो जाता है परन्तु अधिक समय तक न सो सका। 'हूँ-हूँ' की आवाज के कारण वह कच्ची नींद में ही उठ बैठा। पुरानी स्मृतियाँ उसे रह-रहकर याद आती और चित्र की भाँति उसकी आँखों के सामने नाचने लगती हैं।

कैसे वह साली नीला के सम्पर्क में आया था। वह घटना चेतन को याद आने लगती है—"जब नीला दूध लेकर उसके पास आती है और फिर लड़कों को भगाकर उसके सिरहाने आ बैठती है और उसकी पीठ से सट कर अपनी बाँह के सहारे दूध पिलाती है और क्षणिक आवेश में वह उसे बाँहों में लेकर चूम लेता है...उसी नीला की शादी बर्मा के अधेड़ विधुर मिलिट्री एकाउन्टेन्ट से हो जाती है और चेतन अपने हाथों प्यार के उस खजाने को जो अयाचित ही उसके पास आ गया था, दूसरों के हाथों जाते देखता है, पर कुछ कर नहीं पाता।"[75]

इन स्मृतियों को भुलाने के लिए चेतन अपनी पत्नी चन्दा का मुख चूम, उसके साथ ही नीचे उतर आता है। घर में चेतन क्षण भर के लिए ठहरना नहीं चाहता था। जल्दी ही तैयार होकर वह घर से बाहर निकल गया।

घर से निकलते ही वह चेतन मोहल्ले का सुबह का आईना पाठकों के सम्मुख रखता है जिसमें सर्वप्रथम गली के मित्रों से ही मिलता है।

चौधरियों का दीपा (जगदीश) से चेतन को पता चलता है कि खत्री के बेटे अमीचन्द ने डिप्टी के कम्पटीशन में सफलता प्राप्त कर ली है, यह सुनकर वह अधिक प्रसन्न नहीं हुआ।

इसके आगे चेतन ने अनन्त जो खुली छत पर चारपाई बिछाये लेटा हुआ था, उसे जा जगाया। मित्र के पूछने पर चेतन उसे अपनी शिमला की यात्रा के बारे में बताने लगा। इसके साथ ही उसने कविराज रामदास को भी जी भरकर कोसा। बाद में चेतन अन्य मित्रों एवं परिचितों से भी मिलता है।

रामदित्ते हलवाई की कहानी भी उसे याद आने लगती है जो मनोरंजनकारी होने के साथ ही दुःखदायी भी है; किस प्रकार सुन्दर और भोली-भाली पत्नी को प्रसव के समय क्रोधित होकर मारता है, वह (पत्नी) सदा के लिए उसे छोड़कर चल बसती है। दूसरे स्थान पर शादी पक्की करके भी वह शादी नहीं कर पाता। उसके लिए शादी के सभी दरवाजे बन्द हो जाते हैं।

अन्त में रामदित्ते हारकर दुःखमय जीवन को सुखमय बनाने के लिए तीन सौ रुपये खर्च कर विधवा आश्रम से किसी विधवा के साथ शादी करता है, किन्तु वह भी एक दिन घर में रखे गहने, कपड़े तथा कीमती वस्तुओं को लेकर चम्पत हो गई। इसके परिणामस्वरूप घर बरबाद होने के बाद एक स्थायी बेजारी उसके चेहरे पर चिपक गयी। "उसके होंठ जरा से खुले रहते, जिनमें सामने का एक दाँत निहायत बढ़ा तब दिखायी देता है और एक अजीब-सी ऐंठन से उसका चेहरा कसा रहता है।"[76]

इसके बाद गली के पागलों की बारी आती है। "चेतन के दादा पण्डित रूपलाल के तीनों भाई पागल थे। बड़े दो तो चेतन के जन्म से पहले ही परलोक सिधार गये थे, लेकिन सबसे छोटे चुन्नीलाल जो शहर में 'चुन्नी पागल' के नाम से प्रसिद्ध था।"[77] इसी पागल चुन्नीलाल का बेटा फल्गुराम भी उस समय पागल बन जाता है, "जब वह माँ के क्रिया कर्म से निबट कर दफ्तर गया। वहाँ पागल अवस्था में त्याग-पत्र देकर, कपड़े फाड़ता हुआ 'या हुसैन' शब्द को बार-बार दोहराता हुआ भाग जाता है।"[78]

"मोहल्ले में चेतन के घर के ही नहीं, दूसरे घरों में भी पागल थे। झमानो में ही जगत पागल था, जिसकी अभी दो वर्ष पहले ही मृत्यु हो गयी थी।" इसका मुख्य कारण—अभावग्रस्त मोहल्ले में जहाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था, जहाँ कई घरों में उम्र भर भूखे, प्यासे, कुँवारे पड़े थे, अनाचारी, जुआरी, व्यभिचारी और पागल न हो तो और क्या हों?...कई बार जब कोई कुंवारा काफी उम्र गुजर जाने पर शादी करता था तो वह पहले यौन व्याधियों का शिकार हो चुका होता और कई बार जब किसी युवा रण्डुवे की दोबारा शादी न होती तो वह बाद में उन रोगों का ग्रास बन जाता था। विक्षिप्त होकर गली-गली मारा-मारा फिरता...।[79]

दीनानाथ ऊर्फ 'ठल्लू जड़िये दा पुत्तर' के बदले हकीम की उपाधि प्राप्त करके हकीम बनने की कहानी भी पाठकों के लिए कम आकर्षण का केन्द्र नहीं होती है, जो आयुर्वेदिक नुक्से के कारण ऑनरेरी हकीम बनकर भोले-भाले लोगों को ठगने लगता है, अन्त में पकड़ा जाता है।

मोहल्ला कल्लोवानी, चौक चड्डियां का प्रसंग भी पाठकों को पढ़ने को मिलता है। किस प्रकार मोहल्ले में दो महरियां काम करती थीं—ज्वाली और मिरचां। दोनों की जवान लड़कियाँ अक्की और अम्बो। दोनों चेतन को फंसाती हैं, किन्तु वह उनसे दूर रहता है।

चेतन की आँखों के सामने लच्छमा का चित्र घूमने लगता है। "गेहुँआ रंग, बेबाक आँखें, तीखे नक्श, छरहरा शरीर...पण्डित शादीराम के सार्जेण्ट मित्र मंगलसेन की बीवी और पण्डित जी की रखैल, जिसे चेतन की माँ वेश्या से ज्यादा कोई दर्जा नहीं देती।"[80]

यह सोचते हुए पुन: चेतन अपने आपको साली नीला की बेमेल शादी का गुनहगार ठहराता है—"यहाँ फूल खिलने से पहले नोच लिए जाते हैं, जो माली उन्हें लगाता है, वही उन्हें नोच कर अपात्र के हाथों सौंप देता है। पण्डित दीनदयाल नीला से कितना प्यार करते थे, उसे कितना लाड़ लड़ाते थे, पर वही उसका यों गला घोंटने का कारण बने...नीला...नीला...क्या सचमुच उसे अहंकार था अपनी सुन्दरता का कि नियति ने उसे तोड़ फेंकना उचित समझा। उसे तो शायद उसका भान भी न था।"[81]

जिसकी साली नीला चेतन से दूर, बहुत दूर हो गयी थी। चेतन मानव निर्मित दुःख की कड़ियों को सदा-सदा के लिए तोड़ देना चाहता है, जिससे कभी भी कोई इस दशा को प्राप्त न कर सके और न ही उसके स्मृति पटल में कोई स्मृति ही छोड़ सके।

चेतन पुनश्च सोचने लगता है कि उसी के आकर्षण ने नीला को भारत से दूर, समुद्र पार रंगून के कारावास में भेज दिया, जहाँ उसका जाना अत्यन्त असम्भव है।

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में चेतन निश्तर के घर से लाल बाजार होते हुए हमीद से मिलता है। चेतन को लगता है मित्र हमीद अब पहले जैसा हमीद नहीं है। बड़ी नौकरी पा जाने के कारण वह चेतन को हेय दृष्टि से देखता है। चेतन भी औपचारिक शिष्टता दिखाकर हमीद से अलग हो जाता है। अमीचन्द और हमीद की अपेक्षा भरी दृष्टि के कारण चेतन का मन भावी आशाओं और सफलताओं के लिए चिन्तित हो उठता है।

"उसने अनन्त और दीनानाथ तथा निश्तर के यहाँ जाकर अपनी असफलता, पीड़ा और हीनभाव को छिपाने या भुलाने का प्रयास किया था, पर उसे कहीं चैन न मिला था। बार-बार उसके मन में आता था कि वह तत्काल लाहौर जाये। दैनिक समाचार पत्र की नौकरी छोड़, किसी तरह एम.ए. में दाखिल हो जाय, फर्स्ट डिवीजन में पास हो, डॉक्ट्रेट करे और किसी कॉलेज में प्रोफेसर होकर किताब पर किताब लिखे...यहाँ तक कि उसकी ख्याति का सूरज अपनी किरणें देश ही नहीं, विदेशों में भी फैला दे और जब उसकी रोशनी अपने दफ्तरों के संकुचित अँधेरे में, गुलामी की बेड़ियों में जकड़े, कुर्सियाँ तोड़ते हुए उसके अफसर मित्रों तक पहुँचे तो उन्हें अपनी हीनता का आभास मिले।"[82]

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में ज्यों ही चेतन यहाँ से आगे बढ़ता है उसकी मुलाकात हुनर साहब तथा साले रणवीर से हो जाती है। वह उनसे अलग नहीं हो पाता। रास्ते में ही अपने पुराने सहपाठी मित्रों हरसरन आदि से मिलता हुआ चेतन हुनर साहब और साले रणवीर के साथ खाने हेतु खालसा होटल पहुँचता है। वहाँ शहर के मशहूर गुण्डों देबू, जगना और बिल्ला को एक जगह देखकर चेतन का माथा ठनका और सन्देह होने लगता है। यहीं पर 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास का 'सुबह' का परिच्छेद जो पन्द्रह उपविभागों में बँटा हुआ है, समाप्त हो जाता है।

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास का 'दोपहर' का परिच्छेद शहर के तीनों गुण्डों से आरम्भ होता है। देबू, जगना, बिल्ला के गुण्डे होने का उत्तरदायित्व समाज के संकीर्ण वातावरण को है, जिनमें ये निकम्मे रह कर गुण्डागर्दी करते रहते हैं। "उन तीनों गुण्डों में देबू और जगना तो चेतन के मोहल्ले ही के थे। बिल्ला नाइयों की गली में रहता था, जिसे राजा खौरायती राम की वजह से सारा शहर जान गया था।"[83] इन्हीं तीनों (देबू, जगना व बिल्ला) की आपबीती लेखक ('अश्क' जी) चेतन के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

कैसे ये तीनों मूर्ख समाज से लाभ उठाकर गुण्डेपन को अपनाकर ही अपने भावी जीवन को स्वर्णिम बनाना चाहते हैं। बिना बात की लड़ाई मोल लेना तो इनकी आदत सी बन गई है। यदि कोई व्यक्ति इन तीनों के कहने को नहीं मानता तो लड़ाई-झगड़े द्वारा बात को निपटाना ही अपना ध्येय समझते हैं। खालसा होटल में बेपनाह भीड़ होने के कारण

जब चेतन, हुनर, निश्तर तथा साले रणवीर को बैठने का स्थान नहीं मिलता तो देबू चारपाई खाली करवाने के लिए युवक से झगड़ा करने लगता है। बाद में बिल्ला भी उस झगड़े में अपने आपको शरीक कर बैठता है। लेखक यह दिखाना चाहता है कि देबू हर एक से बिना वजह झगड़ा कर सकता है।

चेतन देबू, जगना तथा बिल्ला के गुण्डागर्दी के कामों को अपनी आँखों से देखता है। पीटने और पिटने में उन्हें मजा आता है। रास्ते में चलते अजनबी व्यक्ति से बेतुकी हँसी-मजाक करना तो उन तीनों का नियम-सा बन गया था। बिना किसी से लड़े तथा हँसी किए उन्हें खाना भी हजम नहीं होता है, जो भी हो कुछ समय के लिए उनकी संगत में आ जाता है चाहे वह कितना भी खिन्न क्यों न हो? वह भी अपनी खिन्नता उस समय तक भूल जाता था। चेतन की भी ठीक वैसी ही दशा हुई। कभी-कभी तो चेतन भी अपनी हँसी को रोक नहीं पाता था। अब तीनों के कारनामों के कारण वह भी अपने को बेकाबू करते हुए रस पाने लगा था।

खालसा होटल में खाना खाकर चेतन 'विधवा सहायक' साप्ताहिक पत्रिका के सम्पादक लाला बंशीराम से जब भेंट करता है तो उनकी वास्तविकता उससे छिपी नहीं रहती। वे अपने आपको महात्मा गाँधी का अनुगामी मानते थे और उन्होंने उसी प्रकार का रहन-सहन अपना लिया था। चेतन उनके वास्तविक रूप को इस प्रकार प्रस्तुत करता है—"महात्मा गाँधी की बुद्धि का कितना प्रतिशत उनके भेजे में था, यह भी उसे नहीं मालूम, पर शक्ल-सूरत और आचार-व्यवहार से उन्होंने महात्मा गाँधी बनने में कोई कसर न उठा रखी थी। पतले-दुबले तो वे महात्मा गाँधी की ही तरह थे, पर कद उनका किंचित लम्बा था। गाँधी जी की तरह घुटनों से ऊँची धोती बाँधते थे...बात करते-करते कभी सोचते तो गाँधी ही की तरह होठों पर उँगली रख लेते हैं।"[84] उनका मुख्य ध्येय महात्मा गाँधी के रूप को ही प्राप्त करना ही रहा। वे यही चाहते थे कि दो आबा की जनता उनको गाँधी समझकर सम्मान करे।

'विधवा सहायक' सभा कार्यालय से चेतन अपने पिता के मित्र फकीरचन्द से मिलता है जहाँ मण्डी बाजार में 'मण्डी सोडा वाटर फैक्ट्री' की दुकान है, यहाँ बैठकर

चेतन अपने पिता के मित्रों का वर्णन करता है, जिन्हें वह चार श्रेणियों में विभक्त करता है—"पहली तरह के मित्र वे थे, जिन्हें चेतन की माँ उनके सच्चे मित्र मानती थी, उनमें चौधरी तेजपाल तथा चौधरी गुज्जरमल प्रमुख थे...।[85]

दूसरी तरह के मित्र एकदम स्वार्थी थे। उनमें देशराज प्रमुख था। वह पण्डित शादीराम के मित्रों में सबसे कमीना था।

पण्डित दौलतराम, मुकुन्दीलाल, बनारसीदास आदि तीसरी तरह के ऐसे मित्र थे, जिन्हें पंजाबी में पिछलगुए कहते हैं। पण्डित जी जालन्धर आते तो वे भी मण्डराने लगते...कोई उनका हुक्का ताजा कर रहा है, कोई उनके पैर दबा रहा है, जितने दिन पण्डित जी रहते वे लोग खाते-पीते, फिर कभी उनकी सूरत भी दिखायी न देती, बल्कि पीठ पीछे वे सदा उन्हें गालियाँ देते उनकी निन्दा करते...।

हरलाल और फकीरचन्द को चेतन और उसके भाई अपने पिता के मित्रों की चौथी श्रेणी में रखते थे।...पण्डित जी की कोई ही महफिल ऐसी होगी जिसमें हरलाल या फकीरचन्द न हों, पर वे उनकी कभी निन्दा न करते और चौधरी तेजपाल और गुज्जरमल यदि न मिले तो मुसीबत के वक्त माँ उन्हीं में से किसी को बुलाती।"[86]

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में कथाकार ने पण्डित शादीराम जी के इन चार प्रकार के मित्रों को वर्गों में विभाजित कर वास्तव में मित्रों के यथार्थवादी रूप की ही मुहर लगा दी है। दूसरे और तीसरे वर्गों के मित्रों से समाज भरा पड़ा है जो अपने हित तथा स्वार्थ को ही सब कुछ मानकर मित्रों को लूटते फिरते हैं। उन्हें किसी प्रकार की शर्म नहीं। चाहे दूसरा कितनी ही आनाकानी क्यों न करे, वे तो यही चाहते हैं कि किसी प्रकार से उनका स्वार्थ सधे। लेखक ने ऐसे मतलबी मित्रों को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। अपने पिता के परम मित्र चाचा फकीरचन्द की सुन्दर पत्नी के प्रसंग का वर्णन भी चेतन अपनी माँ द्वारा सुनता है।

उपन्यास में इसके आगे जालन्धरीमल का बनावटी तथा कपटी चरित्र भी कलात्मक ढंग से पाठकों के सामने आता है। मित्रों के भक्तिपूर्वक प्रणाम करने पर भी चेतन दीवार से पीठ लगाकर बैठ जाता है।

चेतन सोचता है कि उन्हें क्या है, जो वृद्ध अवस्था में आराम करने के बदले इतना कष्ट उठा रहे हैं। वह योग सम्बन्धी शंकाओं को दूर करने के लिए उनसे वाद-विवाद करता है, किन्तु वे चेतन के प्रश्नों का उत्तर सही प्रकार से देने में असमर्थ रहते हैं। उत्तरों के बदले जब योगी जी क्रोधित होने लगते हैं तो चेतन मित्र मण्डली को वहीं छोड़कर निकल भागता है, जैसे उनके गले में कोई फाँसी का फन्दा डाल रहा हो और उपन्यास के इसी पडाव पर दोपहर का परिच्छेद समाप्त हो जाता है।

लाला जालन्धरीमल 'योगी' की दुकान से निकलते ही उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' का अन्तिम परिच्छेद 'शाम' आरम्भ हो जाता है। सड़क पर पहुँचते ही चेतन जालन्धरीमल 'योगी' के थोथे ज्ञान तथा दिखावटीपन पर हँसने लगता है—"स्साला योगी का...उसने मन-ही-मन कहा था। चार दिन में ही लाला का सारा देशप्रेम निकाल दिया और तत्त्वज्ञानी बन बैठा...सुख-दुःख से ऊपर उठ कर, आत्मा को परमात्मा में लीन करने और परमानन्द की प्राप्ति करने वाला परम धैर्यवान स्थितप्रज्ञ त्रिगुणातीत...मौन रूप से दूसरों के मन पर प्रभाव डालने वाला...।"[87]

इससे नायक चेतन के हृदय पर आत्मा-परमात्मा, सुख-शान्ति, आनन्द और परमानन्द, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का प्रभाव अपना अधिकार जमाने लगता है। चेतन मन-ही-मन निश्चय करता है कि इस 'नवीन कर्मयोग' सम्बन्धी विषय को लेकर नयी गीता का सर्जन करूँ और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "...अच्छे की आशा रखो और बुरे के लिए तैयार रहो—Hope for the best and be prepared for the worst."[88]

यह सब सोचते हुए वह अपने पुराने सहपाठी लालू से मिलता है—"यह वज्र मूर्ख, सोलहों आने निर्बुद्धि लालू जो छः बार घर से भागा और न जाने कहाँ कहाँ की धूल फांकता फिरा अब बड़े इत्मीनान से सेठ बना बैठा है। चेतन ने सोचा और क्षण भर के लिए उस ढुल-मुल, अस्त-व्यस्त, बहती नाक और कीचड़ भरी आँखें।"[89]

चेतन याद करता हुआ उसकी नवविवाहिता पत्नी की घटना को भी नहीं भूल पाता। किस प्रकार लालू नवविवाहित आगन्तुका को रेलवे स्टेशन छोड़कर अपने आप घर

आ जाता है, फिर मोहल्ले के लोगों द्वारा टोलियों के रूप में ढूंढकर पता चलता है कि ठग ने उसकी पत्नी के जेवर लूट लिए हैं। इस घटना को लेकर मोहल्ले के लोगों ने उसे 'कद्दू' की उपाधि से विभूषित कर दिया, साथ ही पत्नी को लेकर इतना परेशान किया कि फिर वह घर से भाग जाता है।

लाहौर में लालू अपने तीसरे व्यापारिक नाम 'लाल बादशाह' को प्राप्त करके फिर जालन्धर में सिगरेटों की दुकान खोलता है। बातों–ही–बातों में लाला जब चेतन से अमीचन्द की डिप्टी कलेक्टर होने की बात करता है तो वह अपने मोहल्ले वालों के दिमागी घेरे की संकीर्णता पर सोचने लगा कि किस प्रकार से अच्छे पद को पा लेने पर ये अनपढ़ लोग आदर देने तो क्या, डरने भी लग जाते हैं। इसी भोलेपन एवं संकीर्णता का लाभ उठाकर अमीचन्द का बड़ा भाई अमीरचन्द मोहल्ले में घोषणा कर देता है कि तेलू या भागो दोनों में अगर किसी ने मोहल्ले में कदम रखा तो उसकी हड्डी–पसली एक कर देंगे।[90]

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में नायक चेतन लाला गोविन्दराम के सच्चे देशप्रेम से पाठकों को अवगत कराना नहीं भूलता। वे किस प्रकार से विदेशी चीजों के बहिष्कार का आन्दोलन चलाते हैं, जिनमें उन्हें सफलता नहीं मिलती अपितु गाँधी जी के स्थान पर लोग उन्हें ही अपना नेता मानकर उनके नाम का नारा लगाने लगे थे?

इसके साथ ही उन्होंने धूर्त सुनार भवानीराम जो विदेशी वस्तुओं को सबसे प्रिय मानता था और परिवार में वैसे वस्त्रों का प्रयोग करता था, किस प्रकार से लाला गोविन्दराम के हठ करने पर उसे हार माननी पड़ी। वह कंजूस भवानीराम और सनकी सुनार अपनी रेशम की पगड़ी उतारकर अग्नि में स्वाहा होने के लिए लाला के चरणों पर अर्पण कर देता है, जिससे वह देशप्रेम का सच्चा उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।

इसके पश्चात् चेतन अपनी प्रथम प्रेयसरी कुन्ती के प्रेम भरे स्वप्नों में अपने को खो देता है, हालाँकि कुन्ती विधवा हो चुकी थी—"पर उसके माध्यम से अपने उन्हीं उल्लास भरे दिनों का स्पर्श वह चाहता था जो सपने से बीत गये थे, पर अपनी मीठी याद उसी तरह छोड़ गये थे...उसके लजीले–शर्मीले प्यार की वह अछूती प्रतिभा वैधव्य के बाद भी उसके मानस पट पर अपनी निर्दोष छवि के साथ अंकित थी...।"[91]

चेतन अपनी इन दुःखद–सुखद अतीत की यादों में खोया हुआ सेठ हर–दर्शन के बँगले में जा पहुँचता है। वहाँ सेठ हर–दर्शन की आडम्बरों से पूर्ण बातों से पाठकों को अवगत कराता है कि जो कभी कांग्रेस का मेम्बर नहीं रहा और न ही कभी जेल गया, वही कांग्रेस का उम्मीदवार बनकर असेम्बली में आना चाहता है।

चेतन जैसे ही आगे बढ़ता, उसकी मुलाकात पुराने सहपाठी लाला अमरनाथ से हो जाती है। मित्र की व्यापारिक कार्य कुशलता को देख कर उसकी सराहना करते हुए यही कहता है—"जिन्दगी से जूझना कोई तुम से सीखे।"

लाला अमरनाथ से विदा लेकर चेतन जब पापिड़या बाजार में पहुँचता है तो उसे पता चलता है कि अमीचन्द के छोटे भाई के डिप्टी कलेक्टर बनने से पहले ही मौहल्ले में रौब जताने के लिए भगवन्ती के मोहल्ले में आने पर उसे बुरी तरह पीटता है, जिससे बात बहुत आगे बढ़ जाती है। इस पर चेतन के पिता शादीराम के रौद्र रूप को शान्त करने के लिए अमीरचन्द तथा उसके पिता माफी माँगते हैं।

चेतन पिता को सुलाकर जब सोने चला तो उसके सम्पूर्ण दिन की इधर–उधर भटकने से बीते दिन की स्मृतियाँ उसके मानस पटल पर चित्र की भाँति विचरण करने लगीं।

"वही दृश्य, वही घटनाएँ, वही बातें। उसका मोहल्ला, उसका शहर, उनके लोग, उनकी सोच–समझ और भाग–दौड़ का सीमित क्षेत्र...अनन्त, बद्दा, देबू, प्यारू, रामदित्ता, हकीम...फिर सबके ऊपर उसके पिता...वह इस सीमित घेरे से निकलकर तत्काल चला जायेगा और उससे ऊपर उठ जायेगा...एक अदृश्य ज्वाला उसके मन में लपलपा उठी....अपनी हीन दशा पर उसे अव्यक्त क्षोभ हुआ। अखबार की उस चक्की ने उसके कलाकार को पीस दिया है।"[92]

चेतन के सामने अमरनाथ का चित्र आ गया..."सरचश्मा–ए–जिन्दगी क्या नाम दिया था उन लोगों ने उसे, लेकिन अमरनाथ ने उस नाम को सच कर दिखाया। यदि अमरनाथ जैसा ठस्स आदमी एकनिष्ठ होकर लगन से कार्य करने पर सफल हो सकता है, तो वह क्यों नहीं हो सकता। यह प्रबल इच्छा शक्ति, यह अपने उद्देश्य के प्रति दुर्दमनीय

लगभग अंधी, एकांकी लगन यही तो जिन्दगी में सफलता का स्रोत है। यही तो सरचश्मा-ए-जिन्दगी है।"[93]

फिर सोचता है—"उसका दिन बेकार नहीं गया...उसे जिन्दगी के स्रोता का पता चल गया...वह अपने में यह लगन पैदा करेगा, कर्मठता पैदा करेगा, तूफानी नदी की तरह परिस्थितियों के पत्थरों से बहता, चट्टानों को तोड़ता अपने उद्देश्य की ओर बढ़ा चला जायेगा।"[94]

अन्त में भाग्यवादी बन जाता है और अखबार की नौकरी छोड़ने की बात पत्नी चन्दा से कहता है। चन्दा इस बात की स्वीकृति दे देती है।

चेतन के अनुमान से ज्यादा वह उससे और अधिक प्रेम करती है। वह पत्नी चन्दा को अपने से भी अधिक समझदार मानकर पत्नी के प्यार में अपने को डुबो लेता है। उसी समय "चेतन को लगा, गर्मी और तपिश से जला-झुलसा, थका-हारा वह उसी विशाल झील के किनारे आ गया है। उसके ठहरे, निथरे, गहरे निर्मल जल के किनारे ही उसकी नियति है।"[95]

'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में उपन्यासकार ने वस्तुत: कथाओं की प्रदर्शनी सी लगा दी है। उन कथाओं का उपन्यास में न तो सम्बन्ध ही है और न ही वे उपन्यास को आगे बढ़ाने की सामर्थ्य रखती हैं। इस उपन्यास में कथाकार ने नायक चेतन के माध्यम से निम्न-मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। चेतन की पृष्ठभूमि पर ही निम्न-मध्य वर्ग अंकित है।

सारांश रूप में श्रीमती विजय चौहान ने 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास के विषय में कहा है—"यह समूचे उपन्यास में स्थानीय रंग अपने पूरे चटकीलेपन के साथ उभरा है। चेतन वह कैनवास है, जिस पर एक पूरे युग की छाप अंकित है।"

एक रात का नरक (1968)

उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'एक रात का नरक' पहला लघु उपन्यास है, जिसका प्रथम संस्करण 1968 में प्रकाशित हुआ। 'एक रात का नरक' उपन्यास में

लेखक पाठकों को शिमला से दूर पहाड़ी रियासत क्यार कोटी, सी.पी. (सीपुर) के वार्षिक मेले तथा वहाँ के नाना आकर्षण तथा रियासत की हवालात के अँधेरे भूगृह (ब्लैक हॉल) में एक रात की सैर कराकर घर बैठे ही उस रियासत की वास्तविक दशा तथा शासकों के मनमाने अत्याचार व जुल्मों का अनुभव करा देता है। कथाकार उपन्यास के आरम्भ में सी.पी. (सीपुर) के मेले की विशेषता, आकर्षण तथा लोकप्रियता के विषय में अपने उद्‌गार इस प्रकार चित्रित करता है—"मेले की एक खूबी, पहाड़ों की सुन्दर युवतियाँ हैं, जो भड़कीले कपड़े पहने हुए पहाड़ी की एक ओर बैठी हुई मेले में होने वाले खेल-तमाशों और दूसरे कौतुकों को देखती हैं। पुराने जमाने में इसी दो दिन के मेले में शादियाँ पक्की होती थीं।"[96] क्यार कोटी के राणा सदैव बहुत-से मित्रों को आमन्त्रित करते हैं और अपने अतिथि सत्कार के लिए सुप्रसिद्ध हैं। शिमला में आने वाले प्राय: सभी लोग चाहे वे कितने भी कम दिनों के लिए क्यों न आएँ, सी.पी. और इसके प्रसिद्ध मेले को देखना नहीं भूलते।

लेखक की हार्दिक इच्छा थी कि वह भी शिमला के सी.पी. (सीपुर) के आकर्षण को देखे। शिमला जाने पर उसे मौका भी मिल गया। उसने कभी पहाड़ी मेला नहीं देखा था। इसलिए इसे देखने की उत्सुकता भी इसी साल दुगुनी हो गई थी। सुना था वहाँ स्त्रियों की प्रदर्शनी होती है। वहाँ मेले में ही शादी-विवाह के मामले तय हो जाते हैं। इसलिए लेखक कहता है कि मैं देखना चाहता था कि सचमुच यह रियासत क्या अमरीका तथा इंग्लिस्तान से भी दो पग आगे निकल गयी है अथवा पुरातन काल के रोम की तरह यहाँ भी स्त्रियों की मण्डी लगती है।

इतना ही नहीं, वह मेला तो समाप्त हो जाता है लेकिन लेखक के मन पर भी अपनी यादें सबके हृदय में अंकित सा कर देता है, जिससे वहाँ आने वाला अजनबी उसे कभी नहीं भूल सकता। एक सीधे-सादे शहरी के लिए ये दृश्य नये तथा आश्चर्य में डालने वाले बन जाते हैं, जैसे—"मेले में हारे हुए जुआरियों की, मदमस्त शराबियों की, वहाँ आये हुए अंग्रेज अफसरों की मीना बाजार की सैर करा के अपने आतिथ्य का प्रमाण देने वाले राजा की ओर से वहाँ आयी हुई पहाड़ी युवतियाँ, उनकी वेश-भूषा, उनकी सुन्दरता और बेबाकी की कहानियाँ।...न केवल स्त्रियाँ स्वयं जाती हैं बल्कि उनके लिए रियासत

की ओर से प्रबन्ध भी किया जाता है।"[97] और इन्हीं आश्चर्यमयी तथा आकर्षित करने वाली बातों को जानकर लेखक भी वहाँ जाने को उत्सुक हुआ, किन्तु उसे क्या मालूम था कि लोगों की कहानियाँ सुनने के स्थान पर उसकी अपनी ही कहानी बन जायेगी।

लेखक लाला हाकिमचन्द के मित्रों मेहता, सोमदत्त और कपूर तथा भोलानाथ तथा पण्डित तेजभान, लाला दौलतराम व रामभरोसे के साथ सी.पी. (सीपुर) मेला देखने जाता है। सी.पी. पहुँचने पर सभी मित्र एक स्थान पर लाला हाकिमचन्द जी के साथ बैठकर ताश आदि खेलने में मशगूल हो गये। इस समय लेखक को अच्छा अवसर मिला। वह पहाड़ी गीत इकट्ठे करने में इधर-उधर विचरण करने लगा। मेले से प्राप्त नाना अनुभवों के साथ वह गीतों को भी अपनी डायरी में लिखना नहीं भूलता है, जिनमें 'छोरुआ', 'मोहना', 'लोका', 'देवरा' आदि गीत शिमला में लोकप्रिय हैं। लेखक ने जितने गीत सुने थे, उनका भाव प्रेम, विरह, प्रेमी के साथ भाग जाने, पकड़े जाने और चुगली खाने वालों को कोसने ही से सम्बन्ध रखते थे।

लेखक को मेले में घूमते और पहाड़ी गीत इकट्ठे करने में शाम के जब चार बज गये तो उसे भूख सताने लगी। भूख लगने पर वह अपने मित्रों की पार्टी को खोजता है पर उस पार्टी का एक भी मेम्बर नहीं मिला। भीड़ को चीरता हुआ वह उस जगह की ओर बढ़ा जहाँ वह पार्टी को छोड़ गया था। उसने इधर-उधर उन्हें देखा, दरबार में शामियाने और मन्दिर के परे जाकर ढूँढ़ा, पर न जाने वे धरती में समा गये थे या आसमान में उड़ गये थे एक भी साथी उसे नहीं दिखायी दिया।

जब उसे कहीं भी कोई न दिखा तो उसने एक खोमचे वाले से मिठाई (पेड़े और बर्फी) खरीद कर अपनी पेट की अग्नि को शान्त कर ही रहा था कि 'हटो', 'बचो' की आवाजों और भीड़ की रेल-पेल ने उसे वहाँ ला खड़ा किया, जहाँ जंगले के अन्दर सीढ़ी-दर-सीढ़ी पहाड़ी युवतियाँ बैठी मेले का नजारा कर रही थीं और मेले वाले वहाँ से गुजरते हुए उनका नजारा कर रहे थे। लोगों के इशारों से तथा भयमुक्त आँखों के परस्पर इशारों से ही लेखक समझ जाता है कि राजा साहब मेले में चार चाँद लगाने के लिए आ रहे हैं। राजा साहब, जंगीलाल के साथ-साथ आगे-आगे और उनके पीछे मन्त्री महोदय

तथा दूसरे दरबारियों की अर्दल में टिक्का साहब आ रहे थे, जो शायद ऐसा लग रहा था कि जंगीलाल को मेले की सैर कराके वापस छोड़ने जा रहे थे।

लेखक उन लोगों की वेश-भूषा तथा उनके गुणों की चर्चा करना नहीं भूलता। वह पाठकों को उनकी विशेषताओं का परिचय देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है—"राजा साहब काफी बूढ़े थे। दाढ़ी-मूछें सफाचट थीं...उन्होंने एक जरदोजी का लम्बा चोगा पहन रखा था...कमर में चूड़ीदार पायजामा था। पैरों पर पम्प शू...।"[98]

इस प्रकार लेखक उनकी वेश-भूषा का वर्णन कर भाषा के प्रति सोचने लगता है—"उनके समय में तो शायद इन रियासतों तक अंग्रेजी की गंध भी न आयी होगी, तो फिर किस भाषा में बातचीत कर रहे हैं? उनके जमाने में तो शायद 'चीफ्स कॉलेज' की नींव भी न रखी गयी होगी।"[99]

इस प्रबल उत्सुकता को जानने को बेचैन लेखक चौकीदार से पूछ बैठता है— वहाँ के अनपढ़, असभ्य, अव्यावहारिक लोगों की आदतों से अनभिज्ञ होने के कारण उनसे उसकी कहा-सुनी हो जाती है और लेखक पर पहाड़ी औरतों को छेड़ने का अभियोग लगाकर उसे भूगृह (ब्लैक हॉल) में एक रात की असहनीय नरक तुल्य यातना को सहना पड़ता है।

वहाँ खटमलों (पिस्सुओं) के साथ अनेक प्रकार के जीवों का भय रहता है, यहाँ तक कि सपनों में भी साँप और बिच्छू आदि जीवों के दृश्य देखकर वह सहसा सिहर उठता है। लेखक को पहले ही यह सन्देह हो जाता है कि उसे इस भूगृह में बन्दी रहना पड़ेगा। जब उसका सन्देह सत्य का रूप धारण कर लेता है तो लेखक यही सोचने लगता है—"मिन्नत-सलाजत करूँ, इन नरपिशाचों से भिन्नता।...भूगृह के मुख पर आया तो दिल काँप उठा। सिर से पैर तक सिहरन सी दौड़ गयी, लगा जैसे ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ा हूँ और अन्दर शीत नहीं, आग धधक रही है।"[100]

परन्तु इन नरभक्षों द्वारा निर्दयता से बिना कुछ सहानुभूति दिखाये भूगृह में डाल दिया जाता है। अपनी घोर यातना और मानसिक पीड़ा का वर्णन लेखक के इन शब्दों में

किया है—"निराशा में अभीष्ट मनुष्य के समीप आ जाता है और इष्ट मृग-मरीचिका की तरह दूर हो जाता है तथा आशा बिजली के अस्थिर कांधे सी निमिष भर चमक कर काले बादलों में गुम हो जाती है।"[101]

बिल्कुल ठीक ऐसी ही दशा लेखक की हो रही थी। पार्टी के मित्र ताश खेल रहे हैं। सब मेले में घूम रहे हैं, केवल मैं ही उस अनोखेपन से काफी दूर नरक समान अंधेरी कोठरी (ब्लैक हॉल) में बन्द कर दिया गया हूँ। प्रातःकाल की रश्मियां लेखक को सुबह से अवगत करा रही थीं, किन्तु उसका दुःखी हृदय उस ओर ध्यान भी नहीं देना चाहता। उनकी असफलता में विरक्ति के भाव उमड़ आये थे।

पहाड़ी चौकीदार तथा गोविन्द की परस्पर की बातों से लेखक को अनेक अनुभव प्राप्त होते हैं। इस एहसास और अनुभव को पाकर लेखक यह सोचने पर उतारू हो जाता है कि—"मैं उस सिपाही को अत्याचारी, अन्यायी, जालिम, झूठा और न जाने क्या-क्या समझ रहा था, अब जो देखा तो दोष मेरा ही था।"[102]

लेखक सोचने लगता है—इन गँवार लोगों पर क्रोध करके कुछ लाभ नहीं अपितु हानि ही अधिक है। गाली तो उन गंवारों के मुँह में आमतौर से रहती है। बिना गाली दिये बात करना अपना अपमान समझते हैं। मूर्ख एवं विद्वान् उनके लिए एक जैसे ही हैं। हाँ, यदि कोई सभ्य अथवा पढ़ा-लिखा गाली देता तो उस पर क्रोध करना सार्थक है। अब करें तो क्या करें? जो कुछ भी हुआ उसे अब लेखक को भोगना तो पड़ेगा ही।

और गोविन्द तथा चौकीदार की दर्द भरी कहानी जिसमें मेले के कर्मचारियों की पाप-वासना का शिकार बनकर वहाँ की भोली-भाली युवतियों को अन्त में अपना सतीत्व लुट जाने के कारण कोठे में रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अन्त में ईश्वर द्वारा ही पाप की सजा भोगनी पड़ती है। इस सारे वृत्तान्त को सुनकर लेखक भी अपने विचारों को जामा पहनाने लगता है। वह अपने मन को एकाग्रचित्त करके सोने का प्रयत्न करता है, परन्तु—"मस्तिष्क में बीसियों चित्र एक के बाद एक आने लगे। लाख चाहे कि मन एक ओर लग जाए, परन्तु एक तरफ सर्दी शरीर में चुभी जा रही थी तो दूसरी ओर पिस्सुओं ने तन को

काट कर रख दिया था। फिर साँप और बिच्छुओं का भय शाम की दुर्घटना का रंज...।"[103]

इस प्रकार उसके मन की एकाग्रता के साथ ही उसे अनेक पारिवारिक बातें याद आने लगती हैं। वह दार्शनिक विचारों में खो जाता है। वह सोचने लगता है—"जिन्दगी और मौत एक ही चीज के दो पहलू हैं। कुछ तत्त्व इकट्ठे हो गये, जिन्दगी का नाम पड़ गया, बिखर गये मौत हो गयी।"[104]

इस प्रकार के विचारों में खोया हुआ किंचित पलक झपकने पर वह सुनता है कि कोई उसे पुकार रहा है। वह नहीं सोता हुआ भी जाग उठता है। दैनिक कार्य से निवृत्त हो लेखक टिक्का साहब के दरबार में उपस्थित हो जाता है। यहाँ उसके मुकदमे (अभियोग) की सुनवायी होती है ओर अन्त में लेखक अपने सत्य उत्तरों को देता हुआ अपने अभियोग से मुक्त हो जाता है।

जब लेखक टिक्का साहब के दरबार से छूटकर बाहर आता है, तो उसे रास्ते में बहुत-से लोग मिलते हैं जो सभी अपनी-अपनी सिफारिश की बात लेखक से कहते हैं कि हमारी वजह से आप छूट कर आ गये।

रास्ते चलते लाला हाकिमचन्द वकील साहब के साथ आते दिखाई पड़ते हैं। वे उसी ओर आ रहे थे। उन्होंने लेखक को देखा तो सहानुभूति प्रकट की। फिर भी लेखक को यह सैर आठ रुपये की महँगी पड़ी, जो इस नये अनुभव का खर्च था और टूटी हुई ऐनक का मूल्य था और यदि वकील साहब की फीस देनी पड़ती तो सम्भवत: सौ से अधिक और खर्चा करना पड़ता।

लाला हाकिमचन्द के साथ घर आने पर लाला जी की पत्नी तथा लाला के परिवार के अन्य सदस्य लेखक को इस प्रकार से देखने लगे जैसे वह फाँसी के तख्त से छूटकर सीधा ही घर की ओर आ रहा हो। वह तो मित्रों के आकर्षण का एक केन्द्र बन जाता है। बीती घटना को सभी भली-भाँति जानते थे—"पर मुझ से पूछने में शायद उन्हें

रस मिलता था। एक निर्दोष आदमी के लिए भी दूसरों पर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने की कठिनाई का पहली बार अनुभव हुआ।"[105]

जब लेखक कमरे की बत्ती बुझाकर सोने का प्रयास करता है तो उस (काल कोठरी) भूगृह का चित्र अनायास आँखों के सम्मुख गुजरता जान पड़ता है। इस वास्तविकता के प्रस्तुत हो जाने पर लेखक की नींद नष्ट होने के साथ ही एक रात का नरक उपन्यास की कथा को भी विराम मिलता है।

'एक रात का नरक' उपन्यास में लेखक 'अश्क' जी ने शिमला से कुछ दूर पहाड़ी रियासत के वार्षिक मेले (सीपुर) का विस्तृत परिचय दिया है। वहाँ की वास्तविक परिस्थितियों के साथ वह शासकों के शोषण और अत्याचार का अनुभव भी पाठकों तक पहुँचाता है। बाद में एक छोटी-सी घटना के कारण उसे भूगृह की सैर भी करनी पड़ती है। इन सभी को लेखक ने अपने अनुभव पर आधारित कर 'एक रात का नरक' उपन्यास की कथा का निर्माण किया है।

एक नन्ही किन्दील (1969)

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास उपन्यासकार 'अश्क' के महान् उपन्यास 'गिरती दीवारें' का तीसरा खण्ड है और 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास के कथा सूत्र को आगे बढ़ाता है। यह उपन्यास सात सौ अस्सी पृष्ठों में तथा छ: खण्डों में विभाजित सन् 1969 में प्रकाशित किया गया था।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास विभाजन पूर्व हिन्दुस्तान के महानगर लाहौर में निम्न-मध्य वर्ग के संघर्षरत नायक चेतन की कशमकश तथा उसके गार्हस्थ जीवन के छोटे-छोटे ब्यौरों की विशाल गाथा है। ये ब्यौरे इस कलाकारिता के साथ प्रस्तुत हुए हैं कि चेतन के संघर्ष पाठक के अपने संघर्ष हो जाते हैं। उसकी उलझनें और ग्रन्थियाँ पाठकों की उलझने और ग्रन्थियाँ बन जाती हैं। वास्तविकता यह है कि उसके जीवन को हम अपना जीवन समझ लेते हैं।[106]

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में नायक चेतन और उसकी सरला पत्नी चंदा के चरित्रों का अभूतपूर्व खाका खींचता है। कैसे चन्दा अपनी सरलता और सहृदयता के पूरे आकार को पाती है और चेतन पेट-सैक्स अहम के जज्बे से ऊपर उठकर अहं के जज्बे से झूमने लगता है——यही इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास का नायक चेतन एक भाव-प्रवण निम्न-मध्यवर्गीय युवक है, जिसके संघर्षों और सपनों, इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं, अन्त और उलझनों के इर्द-गिर्द यथार्थवादी परम्परा का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास बुना गया है।[107]

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास का आरम्भ नायक चेतन से ही होता है, जब वह शिमला में कविराज रामदास के चतुराई भरे शोषण का शिकार होकर और बस्ती गजां (जालन्धर) में अपनी सुन्दर और प्यारी साली नीला को रंगून के एक अधेड़ और विधुर मिलिट्री एकाउन्टेन्ट की जीवन संगिनी के रूप में विदा कर मन में दसियों घाव लिये कल्लोवानी मुहल्ला, जालन्धर में अपने घर वापस आ जाता है।

घर में माँ और पत्नी के तमाम स्नेह के बावजूद जालन्धर में मन नहीं लगा और शहर में भटकता रहा। आखिरकार तंग आकर वह लाहौर आ जाता है। लाहौर आकर घर की समस्या के साथ-साथ नौकरी की भी समस्या का सामना करना पड़ता है।

इसी दौरान चेतन धूर्त वैद्यराज के विषय में सोचने लगता है जिसकी वजह से भाई साहब को पैसे/रुपये न भेजकर किराये का मकान खाली करने के लिए विवश कर घर की समस्या पैदा कर दी।

पैसे न देते हुए भी रामदास उसे उपदेश देना अपना गौरव समझते हैं——"तुम यदि लगातार किसी की सहायता करो तो वह सोचेगा कि तुम उस पर कोई एहसान कर रहे हो बल्कि वह तुम्हारे इस सद्व्यवहार के पीछे कोई प्रयोजन ढूँढ़ निकालेगा।...यह कि तुम नितान्त मूर्ख हो और वह परम चतुर होने के नाते तुम्हें बेवकूफ बना रहा है कि मूर्खों को मूर्ख बनाना चतुर लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार है।"[108]

और कविराज के इसी परम उपदेश के कारण चेतन को लाहौर में अपने आपको फिर से जमाना पड़ता है। इसी कारण से भाई साहब ने घर छोड़ दिया और चेतन की पुस्तकें, बहुमूल्य कागज–पत्र एवं फाइलें भी असावधानी से फेंक दी थीं। अब समस्या यह थी कि वह कहाँ सोयेगा और कैसे लेखन कार्य करेगा।

चेतन अपना समान रख पुनः घर की तलाश में निकलता है। काफी दौड़–धूप करने पर चेतन को कृष्ण गली नम्बर 1 में मकान मिलता है। इसके पश्चात् चेतन सबसे पहले पण्डित श्यामलाल रत्न से नौकरी के विषय में कहता है। इससे पहले चेतन कविराज रामदास के खोये हुए एक परिच्छेद को पूर्ण करने में लगा रहता है हालाँकि वह रामदास के यहाँ अधिक देर तक न ठहरता था, क्योंकि उसे उसकी खामियों व उसके व्यवहार के विषय में पहले से ही पता था और यही कारण था कि वह अपना एक मिनिट भी कविराज के साथ गुजारने में असमर्थ था।

पण्डित श्यामलाल रत्न के घर मिलने जाते समय रास्ते में मिर्जा नईम बेग चगताई से भेंट होने पर वह उनकी भूली–बिसरी स्मृतियों में खो जाता है। किस प्रकार वह दूसरों के आदेशानुसार कुछ पैसे कमाने के लिए कविता लिखकर अपनी प्रतिभा बेचता है? सम्पादन विभाग वाले उसे अनुरोध कर कविता लिखने को कहते हैं और बाद में पैसे देने पर उनकी नानी मरती है।

पुनः विद्यार्थी जीवन की स्मृतियों में खोया हुआ वह पण्डित श्यामलाल रत्न के घर पहुँच जाता है। पण्डित रत्न जी जब घर आकर कपड़े बदलने जाते हैं तो चेतन अपने सम्पादक विभाग के उन पात्रों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है जो पूर्णतः मनुष्य के रूप में राक्षस हैं। पत्नी के रहते हुए भी लोंडों से प्यार उनके लिए एक असाधारण सी बात थी। मंगतराम बलोची (दैनिक 'भीष्म' का फक्कड़ और अक्खड़ संवाददाता) जैसे पात्र भी इसी श्रेणी में आते हैं।

'वन्दे मातरम' में सम्पादक विभाग में कार्य करते हुए चेतन को अनेक ऐसे अनुभव प्राप्त होते हैं, जो पूर्णतः उसके लिए नये दाग–बेल बनते थे। उसे मलिक मुहम्मद यूसुफ और चिश्ती साहब जैसे पात्रों में ऐसी कमी महसूस होती है जिसके कारण उसे

समाज में आकर धन और प्रतिष्ठा हेतु कैसे-कैसे पापड़ बेलने पड़ते हैं—"उस जमाने में सभी अखबारों में दो-दो सम्पादक होते थे—एक असली और एक नकली। असली सम्पादक अग्रलेख और सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखता और नकली सम्पादक केवल नाम देता।"[109]

इस प्रकार चेतन अनेक चेहरों का विश्लेषण करता हुआ घटनाओं को अपनी डायरी में लिखना नहीं भूलता। 'वन्दे मातरम' को संकुचित व संकीर्ण तथा कूप-मण्डूकवत वातावरण में उसका दम घुटने लगता है तो वह नौकरी से त्याग-पत्र दे देता है।

इसी दौरान पण्डित रत्न हाथ धोकर खाना खाने पर बैठ जाते हैं, साथ में चेतन भी खाना खाता है। खाना खाकर दोनों नल पर हाथ धोकर पण्डित रत्न जी और चेतन नौकरी की तलाश में घर से निकल जाते हैं। यहीं पर उपन्यास का पहला खण्ड समाप्त हो जाता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास का दूसरा खण्ड पण्डित श्यामलाल रतन के साथ शुरू होता है। पण्डित रत्न आठ-दस दिन दौड़-धूप करके चेतन को 'वीर भारत' नामक पत्र में पार्ट टाइम कार्य दिला देता है। उसे रात की शिफ्ट में काम करना था और पगार तीस रुपये मिलता था। चेतन इस परिवेश में घटी उन तमाम घटनाओं को अंकित करना नहीं भूलता जिसमें निम्न-मध्य वर्ग के जीवन की पूरी झाँकी रहती है और जो वस्तुत: लेखक का नया अनुभव है।

इसमें चौधरी अफजल बेग जैसे पात्र भी हैं जो काम करवाने में तनिक भी नहीं हिचकते, किन्तु जब पैसे देने की बारी आती है तो उनका जी जलने लगता है। अपनी आदत के अनुसार चेतन अपनी नोटबुक में—"उन व्यक्तियों और घटनाओं को नोट करने लगा जिनसे वह गत आठ-दस दिन में दो-चार हुआ था।"[110]

चौधरी ईश्वरदास (आर्य समाज के मशहूर रोजाना अखबार 'समाज' के एडिटर), जीवनलाल कपूर (गुरु घण्टाल के मालिक) तथा पण्डित टेकराम साही ('देश' के एडिटर) के साथ ही चेतन अन्य पात्रों की विशेषताओं को भी अपनी डायरी में लिखकर पाठकों के समक्ष प्रकट करता है, जो वास्तव में समाज के वे कीड़े हैं जो अपने स्वार्थ हेतु अन्दर ही

अन्दर घुन की तरह चिपके हुए राष्ट्र व समाज को खोखला कर रहे हैं। आजाद लाला जख्मी भी उनमें से एक हैं।

'वीर भारत' के दफ्तर से रात्रि दो बजे बाहर आकर चेतन फिर अपने आपको सत्तर पृष्ठों में—"जैसे खुले मैदान में साँप का पीछा करता हुआ कोई व्यक्ति किसी अंधेरी गुफा में चला जाय, चेतन भी उसी प्रकार उस झूठ के स्रोत को खोजता हुआ लड़कपन के अँधेरे गारों में खो गया।"[111]

बाद में चेतन यह भी लिखना नहीं भूला—"...सच बोलना आम आदमी के बस की बात नहीं। सच बोलना कमजोर आदमी के बस की बात नहीं...।"[112]

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में नायक चेतन अपने बड़े भाई की पत्नी के बीमार पड़ने पर उसे लाहौर लाने के लिए श्रीरामपुर जाने के लिए तैयार होता है, यहीं पर उपन्यास का दूसरा खण्ड समाप्त हो जाता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास के तीसरे खण्ड में लेखक ने नायक चेतन को अपनी भाभी चम्पा के साथ मेयो अस्पताल में डॉक्टर को दिखाने के लिए, डॉक्टर की इंतजार में एक बैंच पर बैठा हुआ दिखाया है।

उसी बैंच पर बैठा हुआ नायक चेतन अपनी भाभी चम्पा से जुड़े जिन्दगी के प्रसंगों व श्रीरामपुर तक की यात्रा की उधेड़-बुन में खो जाता है। एक के बाद एक चित्र चेतन की आँखों के सामने घूमने लगते हैं। अपनी भाभी की बीमारी के साथ-साथ कश्मीरी लाल 'दाग' का विवरण दिया है जो जालन्धर मोहल्ले ही के झमान (ब्राह्मण) युवक थे। लेखक ने बड़ी चतुरता से उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को प्रत्यक्ष बनाकर पाठकों को अतीत के सपनों में बहा ले जाता है।

यही नहीं 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास के तीसरे खण्ड में वर्णित है कि जादू होने पर स्त्रियाँ किस प्रकार अंधविश्वास करती हैं—"जब कोई हृष्ट-पुष्ट, हँसता-खेलता व्यक्ति अचानक गिर पड़ता है, बेहोश हो जाता है और दूसरे ही क्षण वह चल बसता है तो

लोग प्राय: यही समझते हैं कि उस पर किसी शत्रु ने मूठ चलवा दी है अथवा टोना कर दिया है।"[113]

इस प्रकार की शत्रुता का विवरण देते हुए चेतन वैद्य मोहनलाल तथा उसके विरोधी शत्रु वैद्य गोपालदास की जीवन गाथा बताना नहीं भूलता और चेतन का जमुना के प्रति आकर्षण भी प्रकट करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाता जबकि चेतन की पत्नी चन्दा घर में विद्यमान है और वह मन-ही-मन गुनगुना उठा——

तेरे तीरे नीम, कश को कोई मेरे दिल से पूछे।[114]

यहाँ से चलकर चेतन वापस अपने घर कृष्ण गली नं. 1 पर आ जाता है। दूसरे दिन चेतन अपनी चन्दा को 'कृपाल देवी विद्यालय' में दाखिल कराय आया। इन घटनाओं में खोया हुआ चेतन अपनी नोटबुक में भाभी चम्पा के देहान्त का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है और यह भी बताता है कि——"शक के जहरीले बीज को अगर फूटते ही सख्ती से कुचल न दिया जाये तो वह इतना बड़ा पेड़ बन जाता है कि अपने भयानक साये से जिन्दगी को एकदम सुखा डालता है।"[115]

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास के चौथे खण्ड में चेतन अपनी पत्नी चन्दा के 'कृपाल देवी विद्यालय' में चले जाने के पश्चात् नहा-धोकर सबसे पहले अपनी कहानियों का मसौदा तथा प्रकाशित रचनाओं की फाइल लेकर ऐसे प्रकाशक की खोज में निकल जाता है जो उसकी कहानियों के संग्रह को छापकर रॉयल्टी के रूप में कुछ अच्छा दे सके। वह ऐसे प्रकाशक को अपना संग्रह छापने के लिए नहीं देना चाहता था——"जिसकी पुस्तकों का प्रकाशन निहायत रद्दी होता है। उनका कागज और छपाई ही नहीं, मुख्य पृष्ठ भी घटिया होता था। सस्ते आर्ट पेपर पर लाल अथवा नीली रोशनाई में लेखक का जो भौंडा सा फोटो उन पर छपा रहता था, वह चेतन की सौन्दर्यानुभूति को बड़ी ठेस पहुँचाता था।"[116]

तत्पश्चात् चेतन मुँशी चन्द्रशेखर के द्वारा उल्लेखित भूमिका को लेकर 'चमन बुक डिपो' से येन-केन-प्रकारेण अपनी पुस्तक प्रकाशित कराने में सफल हो जाता है तो इस

शुभ समाचार को वह सबसे पहले चौधरी जहीर को सुनाता है, जिसके कारण उसकी मुलाकात हिन्दी के चातक, मणिभाई आचार्य देशबन्धु, नीरव जी, रामेश्वर 'कारण', शुक्ला जी आदि लेखकों के साथ धर्मदेव वेदालंकार से होती है।

साहित्यिक गोष्ठी में पहुँचने पर चेतन कवि चातक से मित्रता का हाथ बढ़ाता है। चातक चेतन को हिन्दी में लिखने के लिए प्रेरित करता है और उससे कहता है कि— "हिन्दी के भाग्य में इस देश की राष्ट्रभाषा का गौरव लिखा है और इसीलिए वे मालवा की उर्वर भूमि को छोड़कर मरुभूमि में हिन्दी के उद्यान खिलाने के लिए आये हैं।"[117]

इसी प्रसंग में चातक जी चेतन से एक कविता सुनते हैं और उसकी पीठ को थपथपाते हुए घोषणा करते हैं—"तुम में महान् कवि बनने की पूरी सम्भावनाएँ हैं और यदि तुम हिन्दी लिखने का अभ्यास कर लो और मुझे जरा अपनी कविताएँ दिखाते रहो तो...।"[118]

जिस कवि को "हिन्दी काव्य में चातक स्वाति बूँद का प्यासा कहा जाता है, जिसके गीत हृदय से आते और हृदय को छूते हैं।"[119] ऐसे कवि के पास जब चेतन हिन्दी में कहानी लिखकर ले जाता है तो वह काम का बहाना बनाकर चेतन को टरकाना चाहते हैं, जिससे—"चेतन का सारा उत्साह मंद पड़ जाता है। तीन घण्टे चुपचाप बैठना उसके अत्यन्त क्रियाशील मस्तिष्क के लिए घोर यातना के बराबर था।"[120]

अपनी इस दिन-भर की भटकन और विफलता की वेदना को दूर करने के लिए चेतन पत्नी चन्दा के साथ निस्बत रोड पर सैर करने जाता है। उसका विचार है कि 'क्रिस्टल' में रोज की एक-एक बोतल पीकर वापसी पर अगर मन हुआ और समय मिला तो कुछ क्षण कमला के घर भी जायेंगे।

चेतन व उसकी पत्नी चन्दा क्रिस्टल की लॉन पर बैठे मिल्क रोज की बोतल पी रहे थे और चेतन अपने तूफानी घोड़े पर चढ़कर आसमान के तारों से बात कर रहा था कि शीघ्र ही उसकी हिन्दी कहानियाँ देश की समस्त पत्रिकाओं में छपने लगेंगी, उसी समय चन्दा की सहेली मोहिनी वहाँ आकर उसके परिवार के बारे में बताने लगी कि उसके पिता पण्डित दीनबन्धु पागल हो गये हैं और चन्दा के ताऊ उसे लाहौर के पागलखाने में भर्ती

करा गये और माँ भी लाहौर में ही "अमृतधारा के पीछे गोविन्द गली में सेठ वीरभान सर्राफ के यहाँ रसोई का काम देखती है।"[121] इस अनहोनी बात को सुन चेतन बिना मोहिनी और उसके पति लेखराज भाटिया से बात किए बरसात में भीगता हुआ घर की ओर चल दिया।

रात को दफ्तर से आकर जब वापस घर को जाता है तो वह रास्ते में अतीत की घटनाओं में खो जाता है। घर पहुँचने पर फिर वही दृश्य उसके दिमाग में आने लगे और वह यही तय करता है कि यदि उसके ससुर पण्डित दीनबन्धु अधिक पागल न होंगे तो उन्हें व्यापार खुलवा देगा, जिससे उसकी इज्जत मिट्टी में न मिले। वह 'हितोपदेश' की उक्ति को मन-ही-मन दोहराता है––

यथा विधाता विधियते तथैव शुभाय।[122]

चेतन अपनी सास से भी यही कहता है कि यदि ससुर ठीक हो गये तो उन्हें दुकान खुलवा देगा और वह भी नौकरी छोड़कर उनकी व्यापार में सहायता करेगा।

जब चेतन अपने ससुर से अपनी सास व पत्नी चन्दा के साथ पागलखाने में मिलता है और वह उनको पहचानता नहीं है फिर डॉक्टर से उनके बारे में पूछता है तो उसका बना-बनाया हवामहल एकाएक नष्ट हो जाता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास के पाँचवें खण्ड में चेतन सबसे पहले नोटबुक के पन्ने पर इस प्रकार लिखता है––"मैं क्या करूँ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। मेरा ससुर धुत्त पागल है, मेरी सास नजदीक ही सेठ वीरभान के घर चौका-बर्तन कर सात रुपये महीना पा रही है और मैं स्टेशन मास्टर पण्डित शादीराम का बेटा ही नहीं, लाहौर का प्रसिद्ध जर्नलिस्ट और अफसाना निगार हूँ। मेरी सास कभी मेरे पास न आयेगी और न ही मैं इस सूरत-ए-हाल (वस्तुस्थिति) से समझौता कर सकूँगा। मैं क्या करूँ? क्या मोहल्ला छोड़ दूँ? शहर छोड़ दूँ? मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ...?"[123]

इस वस्तुस्थिति से दुःखी चेतन के दिमाग में तूफान मचता है और उसे शान्त करने के लिए वह अपने संग्रह को छपवाने में संलग्न हो जाता है।

पन्द्रह दिन के अनथक परिश्रम से चेतन ने अपने मन मुताबिक पण्डित हरिश्च 'अख्तर' से अपने संग्रह की भूमिका लिखवा ली, वरन् पुस्तक छपवा भी डाली। अपने संग्रह की कुछ कापियां लेकर सबसे पहले पत्नी चन्दा के पास जाता है और 'अपनी रफीका-ए-हयात चन्दा के लिए' लिखकर पुस्तक चन्दा को देता है।

अपने संग्रह की एक प्रति चातक को भी दे दी, परन्तु चातक उस समय पढ़ने के मूढ में न होने के कारण चेतन को भोजन करने के लिए कहता है। भोजन करने के लिए चेतन आनाकानी करता है तो सैक्स की दुनिया में ऊबा कवि चातक का हृदय बिना कुछ सोचे-विचारे कह उठता है—"भूखे भजन न होई गोपाला। भोजन और...इन्हीं पर तो दुनिया का सारा कारोबार निर्भर है। भोजन ही नहीं करोगे तो लिखोगे क्या? संसार की महान् रचनाएँ पेट और सेक्स की भूख से निसृत हुई हैं।"[124]

जब चेतन ने कवि चातक की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया तो कवि चातक अपनी बातों का चेतन पर गहरा प्रभाव पड़ते देख खाना खाने के बाद चेतन को अपने कमरे में ले गया। कमरे में वह 'मायाविनी' नामक कविता सुनकर उनकी प्रशंसा से चेतन को बोरियत महसूस होने लगी। वह चातक और उन्हीं के गुट से शुक्ला जी, करुणा जी, नीरव जी, विकल जी आदि की योग्यताओं का बेझिझक उद्घाटन करता है, वह कहता है—"कवि चातक और करुण निश्चय ही अपने आपको महान् कवि समझते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शब्दों और छन्दों पर भी उनका अधिकार है, पर उनके यहाँ वह चीज नहीं, जो दिल और दिमाग को छू ले।"[125]

कवि अथवा लेखक के क्या गुण होने चाहिए, उन्हें चेतन अपनी रचनाओं द्वारा प्रकट करना चाहता है। चाहे रचना कितनी भी उलझन वाली क्यों न हो, कवि उसे सरल भाषा में रचकर पाठकों के सम्मुख रखे, जिससे पुन: व्याख्या करने की नौबत ही न आये। चेतन भी अपने आपको उन्हीं कवियों में मानता है जो इस संसार के सुखों के विमुख हो, अपने साहित्य में सदा के लिए विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार चेतन महान् लेखक अथवा कवि बनने की अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण करता है। उसका कहना है—"मुझे लिखने में जितना सुख मिलता है, उतना किसी चीज में नहीं मिलता। दुनिया के तमाम झगड़े-झंझट

और दुःख-दर्द से भाग कर मेरा मन साहित्य में पनाह ढूँढ़ता है। मैं लिखता हूँ तो सब कुछ भूल जाता हूँ। मुझे किसी चीज में इतना रस नहीं मिलता, जितना अपने भावों को कागज पर उकेरने में मिलता है। मैं निश्चय ही अपनी सारी जिन्दगी इसको अर्पण कर दूँगा और जैसा कि पिता उपदेश देते थे, इसी फन में कमाल हांसिल करूँगा और एक दिन महान् लेखक और कवि बनकर रहूँगा।"[126]

चेतन अपनी उर्दू की कहानियों का हिन्दी में अनुवाद कर चातक जी की 'मंजरी' में छपवाने के लिए कहता है लेकिन चातक का नकारात्मक रूप देखकर वह शान्त हो जाता है।

चातक द्वारा चेतन की रचनाएँ तो नहीं छपती किन्तु धर्मदेव वेदालंकार की शादी में बिना कुछ खर्चे-वर्चे के दिल्ली जाने का मौका मिल गया। चेतन की सिर्फ यह जिम्मेदारी थी कि वह शादी में सेहरा पढ़ेगा।

दिल्ली पहुँचने पर चेतन को अनेक अनुभव होते हैं। चेतन सबसे पहले तो पाठकों को धर्मदेव के परिवार से अवगत कराता है कि किस प्रकार नाम बदलने की नकली प्रथा असली का रूप धारण कर लेती है।

धर्मदेव वेदालंकार को पिता चूहड़राम गुरदासराम के नाम से पुकारते हैं और यही गुरदासराम आज लाहौर में धर्मदेव वेदालंकार के नाम से हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि वह पिता का नाम भी बदलने में संकोच नहीं करता और वह अनायास ही सोचने लगता है—"क्यों लेखक अपने पिता को नकारे? क्योंकि भले-बुरे हम जो भी हैं अपने माता-पिता और उनके ही खून के कारण हैं। अपनी मिट्टी और खून को नकारने वाला लेखक क्या महान् लेखक बनेगा। वह सच्चा नहीं, झूठा लेखक ही बन सकता है।"[127]

दिल्ली में जब चेतन चातक कवि की सहोदरा निम्मा सूरी से मिला जो कविता लिखती हैं और नृत्य का शौक रखती हैं।...चातक ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और बातों में मेरा तो जिक्र क्या, दुनिया-जहान से बेखबर हो गये।...जैसे हमारे निम्न-

मध्य वर्ग में धर्म भाई।...सीधे प्रेमी को यह वर्ग बरदाश्त नहीं करता। भाई के पर्दे में चाहे प्रेमिका का हाथ अपने हाथ में लिए घण्टों बैठे रहो।[128]

जब चेतन स्टेशन पर वेदालंकार जी की नवविवाहिता पत्नी को देखता है तो वह यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि—"यदि उस पत्नी के सम्पर्क में धर्म जी साहित्यकार बन गये थे तो उनकी यह पत्नी उन्हें निश्चय ही साहित्य की ऊँचाइयों से नीचे ले जायेगी। उसके फैशन का पेट भरने में यदि वेदालंकार जी साहित्य-वाहित्य छोड़कर कोरे व्यावसायिक बन जायें या किसी बड़ी कुर्सी पर जा बैठें तो मुझे हैरत नहीं होगी और उन जैसे नौकरशाही तबियत के साहित्य की सही सजा है।"[129]

चेतन दिल्ली में मुनीन्द्र जी से भी मिलता है और अन्त में वह कसम खाता है कि "सेहरा लिखने से दिल्ली के नहीं, स्वर्ग के द्वार भी खुल जाने वाले हों तो मैं नरक में रहना स्वीकार कर लूँगा, पर सेहरा नहीं लिखूँगा।"[130]

दिल्ली के अनेक प्रकार के अनुभवों से युक्त जब चेतन लाहौर पहुँचता है तो उसे पण्डित 'रत्न' का बुलावा आता है। इतने दिनों तक न आने की शिकायत सुन वह अपनी अतीत की घटनाओं को सविस्तार सुनाकर अपने मन के भार को हल्का करता है।

पण्डित रत्न उसे कहते हैं कि यदि वह ऐडीटर बनना चाहे तो उसके लिए महाशय जीवनलाल कपूर एक नया हफ्तावार अखबार निकाल देंगे। चेतन की इच्छा न होते हुए वह हाँ कर देता है। इससे उसे नया अनुभव भी प्राप्त होगा।

वह अपनी नोटबुक में अपनी इच्छाओं तथा महाशय जीवनलाल कपूर के सम्बन्ध में लिखना नहीं भूलता..."आज न चाहते हुए भी, मैंने 'भूचाल' का सम्पादक होना मंजूर कर लिया। मामूली ट्रान्सलेटर से मैं ऐडीटर होने जा रहा हूँ, लेकिन मेरे मन में खुशी का जरा भी एहसास नहीं। महाशय जीवनलाल मुझे निहायत फूहड़ और अनपढ़ लगते हैं।...उनके दिमाग का घेरा बहुत छोटा है और अन्दर से निहायत गैर-मुहज्जब हैं।"[131] और यहीं पर उपन्यास का पाँचवाँ खण्ड विराम लेता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास का छठा और आखिरी खण्ड नायक चेतन की पारिवारिक समस्याओं का लेखा–जोखा प्रकट करता है।

चेतन अपनी सास की हठ की वजह से अत्यन्त दुःखी है। वह यही चाहता था कि उसकी सास किसी के घर की नौकरानी न बने किन्तु चेतन की हर बात उसकी सास के मस्तिष्क पर से पत्थर की बूँद सरीखी फिसल जाती है, फलस्वरूप वह अपनी पत्नी चन्दा से भी खिन्न रहता है। इस प्रकार के उदास परिवेश में चन्दा भी उसे असुन्दर, सुस्त और फूहड़ लगती थी।

चेतन को उसकी सूरत तक से दहशत होने लगी थी। वह उसके नैकट्य से भागता था और बदले में उसे उदास और कुरूप तथा निर्जीव बना जाता था।[132]

चेतन अपने गुस्से व नाराजगी को उतारने क लिए पत्नी चन्दा पर उखड़ा और झल्ला भी उठता कि उसे साफ सुथरे कपड़े पहन कर रहना चाहिए। वह बकने लगता है—"...वह इतनी गंदी और मैली धोती क्यों पहने रहती है...कि उसका कौन मर गया है? जिसका वह सोग (शोक) मना रही है...यह तुमने धोती पहन रखी है, लगता है जैसे कीचड़ लपेट रखा हो। तुम्हारी माँ ने क्या तुम्हें सफाई–अफाई का जरा भी ख्याल रखना नहीं सिखाया।...गूजरी ने तो तुम्हें दूध पिलाया है, पर क्या पाला भी गूजरी ने ही है?...पागलों और गंवारों की तरह डेवढ़ी में जा खड़ी होती हो...तुम्हें इस बात का जरा भी ख्याल नहीं कि तुम बस्ती गंजा के किसी टुच्चे दुकानदार की बीवी नहीं हो बल्कि एक मशहूर पत्रकार और कथाकार की बीवी हो। तुम क्यों मेरी सारी इज्जत धूल में मिलाने पर तुली हो।...मैं क्या कुत्ता हूँ जो भौंक रहा हूँ? क्या तुमने मुझे भी अपने पिता की तरह पागल समझ लिया है?...क्या मैं झूठ–मूठ चिल्ला रहा हूँ...गलत चिल्ला रहा हूँ?...यह ब्राह्मणों की रसोई? मेहतरों की रसोई भी इससे साफ होगी।...ये तुमने बर्तन साफ किये हैं?...किसी पर जरा भी तो चमक नहीं...क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें बर्तन मलना या रसोईघर साफ करना भी नहीं सिखाया।...अब क्या सारी उम्र यहीं खड़ी रहोगी...यह झाड़ू दे रही हो या बेगार टाल रही हो।...किसी ने तुम्हें कमरा बुहारना भी नहीं सिखाया।"[133] परन्तु चेतन

के इस प्रत्युत्तर में पत्नी चन्दा ने एक शब्द भी अपनी जुबान से नहीं दिया और चुपचाप किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी खड़ी-खड़ी सब सुनती रही।

यहाँ तक कि जब चन्दा की माँ उसके घर आती है तो चेतन उस पर भी व्यंग्य और विष से बुझी हँसी के साथ कहता है——"तुमने अपनी इस लाड़ली को अच्छा कुछ सिखाया भी है? झाड़ी-बुहारी यह नहीं कर सकती, बर्तन ठीक से यह नहीं मल सकती...और तो ओर ठीक से पहनने-ओढ़ने और कपड़ों की साज-सम्हाल करने की इसे तमीज नहीं। बस यह खाना और सोना जानती है। चाहे इसे छत्तीस घण्टे सुला लो।... कुत्ता भी बैठता है तो पूँछ हिलाकर जगह साफ कर लेता है...लेकिन तुम्हारी लाड़ली साहबजादी धूल भरे गंदे फर्श पर रेशमी साड़ी पहने बैठने में नहीं हिचकती...लड़की को दूसरे घर भेजना था तो कुछ सिखा कर तो भेजा होता कि ...किसके पल्ले इसे बाँध दिया है...अपनी इस लाड़ली के लिए कोई गवर्नर ढूँढ़ते, जिसके पास बँगला होता, रसोइये, बैरे और धोबी होते, दाइयां और नौकरानियां होतीं जो तुम्हारी लाड़ली के मालिश करती, इसे नहलाती, कपड़े पहनाती और इसका साज-शृंगार करती।...मुझ जैसे गरीब से इसकी शादी क्यों की?"[134]

चेतन के इस सारे वृत्तान्त के बारे में पत्नी चन्दा ने अपनी माँ से सिर्फ यही कहा——"माँ आज से तुम यहाँ फिर कभी न आना।"[135]

किन्तु शीघ्र ही वह चन्दा व अपनी सास के प्रति बुरे व्यवहार पर पश्चात्ताप भी करने लगता है। जब बड़ा भाई मकान का किराया देने से मना करता है तो चन्दा अठन्नियां, चवन्नियां, दुवन्नियां, आने, अधन्ने पैसों से भरी थैली भाइयों को देकर मकान किराये की समस्या को आसान करती है। तभी चेतन यह सोचने लगता है——"जिसे वह सीधी-सादी, फूहड़ और गँवार समझता है।"[136]

प्रातःकाल वह पत्नी चन्दा के साथ किए बुरे व्यवहार के प्रति खेद प्रकट करता है और चन्दा को वीरभान के यहाँ माँ से मिलाने के लिए ले जाता है। सेठ वीरभान की कोठी में चेतन को सेठानी द्वारा अथाह स्नेह व आदर-सत्कार मिलता है।

इसी बीच चेतन अपनी सास व पागल ससुर के विषय में अपने तमाम मित्र-परिचितों को सब कुछ आगाह करके सहज हो जाता है।

दो दिन के पश्चात् चेतन अकेला ही सेठ वीरभान के यहाँ अपनी सास से मिलने जाता है। वहाँ पर वह अपने सहपाठी अमीचन्द (जो डिप्टी कलेक्टर हो गया था) से भेंट करता है जिससे सेठानी द्वारा पोषित बहन की बेटी कृष्णा के साथ विवाह होने का प्रस्ताव है। बहरहाल चेतन अमीचन्द के डिप्टी कलेक्टर बनने पर वह अपने अतीत, पिता व परिवेश को जिम्मेदार ठहराता है—कि काश! वह भी डिप्टी कमीश्नर होता और यह बात चेतन की इच्छाओं को नया उभार दे देती है। वह अपनी पत्नी चन्दा से कहता है—"मैं तुम्हारी माँ को परेशान नहीं करना चाहता। सेठ और सेठानी उसे इज्जत से रखे हुए हैं और वह बड़ी खुश है, लेकिन मैं यह भी नहीं चाहता कि केवल इसी कारण मेरी तुम्हारी स्थिति, उस घर में जरा भी आकवाई हो जाए। मैं दो साल में लॉ कर लूँगा और लॉ करते ही सबजजी के कम्पटीशन में बैठ जाऊँगा। मैं तुम्हें आज बता देता हूँ कि दुनिया की कोई ताकत मुझे सब-जज बनने से नहीं रोक सकती। मैं सब-जज बना तो फिर डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज बन कर ही दम लूँगा।"[137] और चन्दा भी अपने पति की इस इच्छा को सुन उसमें श्रद्धा, प्रेम और विश्वास की उमंग जगाने लगती है।

जैसे ही चेतन महाशय जीवनलाल के दफ्तर में जब सीढ़ियाँ चढ़ रहा था—लालाजी के छत फाड़ ठहाके की आवाज सुनायी दी—"...'लौण्डा-ए-खुदरंग'...इस गंदे मजाक से चेतन त्याग-पत्र देने की सोचता है।"

जब महाशय जी ने बैठे हुए चेतन को तीन अलग-अलग बार बुलाकर 'मादाम रिकी', 'यह हूणों के जालिम फातेह', 'छपे खजानों की खोज' लेख देने के लिए बुलाया, कुछ काम और भी दिया इसके उपरान्त महाशय जी ने कहा कि तुम्हारा काम पूरा नहीं होता, इस पर चेतन ने अच्छा अवसर पाकर 'भूचाल' की एडीटरी तथा जीवनलाल जैसे फूहड़ तथा असभ्य व्यक्ति के जाल से मुक्ति पाने के लिए अपने पद से इस्तीफा दे दिया। जीवनलाल इज ऐन इन्स्टीट्यूशन के दुर्गुणों को प्रत्यक्ष कर नायक चेतन पाठकों को यह

स्पष्ट करना चाहता है कि किस प्रकार से सम्पादक पत्रिकाओं द्वारा समाज के भोले-भाले लोगों को मूर्ख बनाते हैं। निम्न-मध्य वर्ग अर्द्धशिक्षितों के मनोरंजन मात्र के हेतु पत्र निकालना ही उनका एकमात्र ध्येय होता है। जीवनलाल भी उनमें से एक संस्था है—"एक फूहड़, गलीज, सनसनीखेज साप्ताहिक निकालकर जनता की कुण्ठित वासनाओं और धार्मिक भावनाओं के साथ खेलकर बड़े संस्था बने फिरते हैं।"[138]

चेतन घर आकर पत्नी चन्दा को बताता है कि उसने 'भूचाल' की नौकरी छोड़ दी है। चन्दा इस प्रत्युत्तर में पति के हृदय की बात जानते हुए केवल इतना ही कहती है—"फिर क्या हुआ! दस नौकरियाँ मिल जायेंगी।"[139] इस पर चेतन महसूस करने लगा कि पत्नी चंदा के आश्वासन से अब वह शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा, चाहे कितनी भी मुसीबतें उसे सहन क्यों न करनी पड़ें।

इसी के साथ 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास का अन्तिम छठा खण्ड व 'गिरती दीवारें' उपन्यास की तीसरी कड़ी में जुड़ा उपन्यास भी समाप्त हो जाता है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में उपन्यासकार 'अश्क' ने 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास के समान ही इसमें भी घटनाओं का मेला लगा दिया है। 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास लिखकर लेखक ने जालन्धर शहर के निम्न-मध्य वर्ग तथा 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास लिखकर लाहौर शहर के निम्न-मध्य वर्ग के समाज के लोगों का खाका खींचा है।

'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में लेखक डायरी शैली को अपनाता है। उसके सम्पर्क में जो भी घटना घटती रहती है, उसे वह अपनी नोटबुक में लिखना नहीं भूलता।

सारांश रूप में 'एक नन्ही किन्दील' उपन्यास में लेखक ने नायक चेतन को ही एक नन्ही-सी जान कहा है और उससे प्रदर्शित कराया है कि एक नन्ही (छोटी-सी) जान पर मुसीबतों का अम्बार लगा हुआ है, जिन पर काबू पाना किसी सुयोग्य व्यक्ति से भी कल्पना नहीं की जा सकती है।

नन्ही सी लौ

'नन्ही सी लौ' 'अश्क' जी के वृहत् उपन्यास 'एक नन्ही किन्दील' का यह संक्षिप्त संस्करण—"विभाजन पूर्व हिन्दुस्तान के महानगर लाहौर में समाज में संघर्षरत निम्न-मध्य वर्ग के नायक चेतन की कश्मकश तथा उसके गार्हस्थ जीवन के छोटे-बड़े ब्यौरों की कहानी है। ये ब्यौरे इस कलाकारिता के साथ प्रस्तुत हुए हैं कि चेतन के संघर्ष आपके अपने संघर्ष हो जाते हैं। उसकी उलझनें और ग्रन्थियाँ आपकी उलझनें और ग्रन्थियाँ बन जाती हैं और उसका जीवन आपको अपना जीवन मालूम होता है।"[140]

'अश्क' जी का यह उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास के कथा सूत्र को आगे बढ़ाता है। यह उपन्यास एक सौ बावन पृष्ठों में तथा पाँच खण्डों में संक्षिप्त रूप में विभाजित है।

'नन्ही सी लौ' उपन्यास की शुरुआत नायक चेतन से ही होती है, जब वह शिमला में कविराज रामदास के चतुराई भरे शोषण का शिकार होकर और बस्ती गजां में अपनी सुन्दर और प्यारी साली नीला को सुदूर रंगून के एक अधेड़ और विधुर मिलिट्री एकाउन्टेन्ट की जीवनसंगिनी के रूप में विदाकर, मन में दसियों घाव लिये चेतन कल्लोवानी मोहल्ला, जालन्धर में अपने घर वापस आ जाता है।

घर में माँ और पत्नी के तमाम स्नेह के बावजूद भी जालन्धर में उसका मन नहीं लगा और एक दिन तंग आकर लाहौर आ जाता है और इसी बीच चेतन धूर्त वैद्यराज रामदास के विषय में सोचने लगता है कि उसके रुपये न भेजकर मकान खाली करने के लिए विवश कर घर की समस्या पैदा कर देता है। उल्टा रामदास उसे उपदेश देना अपना गौरव समझते हैं—"जब तक तुम चम्मच से उन्हें दूध पिलाते रहोगे, वो खुद हाथ हिलाना नहीं जानेंगे...।"[141]

इसी उपदेश के कारण से भाई साहब ने घर छोड़ दिया और चेतन की पुस्तकें, बहुमूल्य कागज-पत्र एवं फाइलें भी असावधानी से फेंक दी गई थीं और उन पर बेतरह धूल जमी थी। अब समस्या यह थी कि वह कहाँ सोयेगा और लेखन कार्य कैसे करेगा?

काफी दौड़-धूप करने पर चेतन को कृष्ण गली नं. 11 में मकान मिलता है। मकान मिलने के पश्चात् चेतन कविराज रामदास के खोये हुए एक परिच्छेद को पूर्ण करने में लगा रहता है, हालाँकि वह रामदास के यहाँ अधिक देर तक न ठहरता था, क्योंकि उसे उसकी खामियों व उसके व्यवहार के विषय में पहले से ही पता था और यही कारण था कि चेतन अपना एक मिनट भी कविराज के साथ गुजारने में असमर्थ था।

यहाँ से चेतन पण्डित श्यामलाल रत्न के घर पहुँच जाता है—जहाँ रसोईघर के सामने आँगन में रंगीन पीढ़े पर बैठा हुआ कल्पना ही कल्पना में पिछले डेढ़ वर्ष की अंधेरी-उजेली गलियों में भटकता रहा। इतने में ही पण्डित श्यामलाल रत्न घर आ जाते हैं।

रत्न साहब हाथ-मुँह धोकर खाना खाने पर बैठ जाते हैं। साथ में चेतन भी खाना खाता है। खाना खाकर दोनों नल पर हाथ धोकर चेतन के लिए नौकरी की तलाश में घर से निकल जाते हैं और सौभाग्य से जख्मी साहब के मिल जाने पर चेतन को 'वीर भारत' में तीस रुपये महीने पर रात की नौकरी मिल जाती है और यहीं पर पहले खण्ड का अन्त हो जाता है।

'नन्ही-सी लौ' उपन्यास के दूसरे खण्ड का प्रारम्भ चेतन अपने भाई के लिए डेन्टल चेयर खरीदने के लिए रुपये लाने के लिए जालन्धर जाता है और वापस आकर अपनी डायरी में लिखता है—"कल रात जालन्धर गया था। चन्दा ने न कोई सवाल किया, न जवाब। चुपचाप अपने दोनों भारी गहने लाकर मेरे हाथ पर रख दिये...और मैं गाड़ी में बैठा।...चन्दा की बात सोचता हूँ तो अचानक भाभी की सूरत आँखों में घूम जाती है और उसी की तरह दो-दो रुपये के लिए लड़ाई करने वालियों की सूरत आँखों में घूम जाती है...जाने चन्दा ने किस माँ का दूध पिया है। दुनिया की जरा-सी हवा भी उसे नहीं लगी...।"[142]

लाहौर पहुँचकर चेतन ने अपनी पत्नी चन्दा के जो गहने लेकर आया था जो उसके माता-पिता ने दहेज में दिये थे, भाई साहब के हाथ में रख दिये और यह कहा कि आप डेन्टल चेयर और इंजन ही नहीं, दूसरे औजार भी ले आयें, मगर मुझे दस रुपया

महीना वापस करते जायें। और वायदे के मुताबिक भाई साहब ने एक पैसा भी वापिस नहीं किया जबकि चेतन पूर्ववत् उन्हें अपना वेतन देता रहा। वह सोचता है कि चन्दा को लाहौर लाकर प्रभाकर में प्रवेश करा देगा और उसे योग्य बनायेगा। यह सोचता हुआ वह चन्दा को पत्र लिखने के लिए उठा ही था कि भाई साहब दुकान से आ गये और आते ही एक पत्र जेब से निकाल कर चेतन को देता है—जिसमें चेतन की भाभी की बीमारी के बारे में लिखा था—चेतन अपने भाई की बीमार पत्नी को लाने के लिए श्रीरामपुर जाता है।

नायक चेतन अपने बड़े भाई की बीमार पत्नी चम्पा को श्रीरामपुर से लाकर लाहौर के मेयो अस्पताल में डॉक्टर की इंतजार में एक बैंच पर बैठा हुआ है।

वहाँ बैठा-बैठा चेतन अपनी चम्पा भाभी से जुड़े जिन्दगी के प्रसंगों व श्रीरामपुर तक की यात्रा की उधेड़बुन में खो जाता है।

पिछले सात दिनों से उसने अस्पताल और घर एक कर दिया है। दो दिन पहले माँ चन्दा को लेकर आ गयी है और घर के सब लोग आतंकित हैं—माँ ने आँगन में प्रवेश करते ही अपनी बहू को देखा था—उस वक्त उसने कुछ भी नहीं कहा।

चन्दा ने रसोई का काम सम्भाल लिया था...जब दोपहर को वह चारपाई पर लेटा था तो माँ उसके पास आ बैठी थी। तब चेतन ने बताया कि डॉक्टर ने एक्स-रे और स्पटम-स्टूल टेस्ट के लिए कहा है...जब माँ ने कहा था कि एक्स-रे जो बतायेगा, मैं तुझको अभी बता देती हूँ। इसे पुराना बुखार है...और चेतन को उसने समझाया था कि वह चन्दा से जरा बचकर रहने को कहे।

मैं रामानन्द से कहूँगी कि इसे आदमपुर (भाभी के मायके) भेज दे। तुम लोग अपना देखोगे कि इसके आगे-पीछे फिरोगे। मैं इसे ले जाती पर मेरे साथ उस लड़की की एक दिन नहीं बनती।[143]

चेतन अपनी भाभी को अस्पताल से दिखाकर वापस घर आया तो आते ही कहा—"तुम ठीक कहती थीं, माँ भाभी को टी.बी. है, तीसरे स्टेज में है और उसके दोनों फेफड़े खोखले हो गये हैं।"[144]

दोनों माँ बेटे इस एक ही समस्या पर सोच ही रहे थे कि भाई साहब आ गये। चेतन ने सविस्तार उनसे डॉक्टर की बात कही तब भाई साहब ने कहा था—"बड़ी मुश्किल से यह मकान मिला था। ऊपर वालों को इस बात का पता चला तो वे लोग कमरे खाली करने का नोटिस दे देंगे। तुम मकान मालिक से जिक्र न करना।"[145]

शाम को चेतन और माँ दोनों ग्वालमण्डी स्वर्गीय मोहन लाल वैद्य के घर पहुँचते हैं। वहाँ चेतन की मुलाकात जमुना और कमला नाम की लड़कियों से होती है—कमला ग्वालमण्डी के एक विद्यालय में संगीत सीखने जाती है जहाँ चेतन अपनी पत्नी को भी संगीत की शिक्षा दिलाना चाहता है।

काफी देर बाद चेतन और उसकी माँ उन सबसे नमस्ते कर अपने घर आ जाते हैं और घर आने पर चेतन देखता है कि चन्दा भाभी के कंधे और पीठ दबा रही है। तब माँ ने चेतन से कहा था कि—"तुम बहू को समझा दो। वह उसके इतना निकट न बैठा करे, वह रोग तो उठ कर लगता है।"[146] चेतन और भी आग-बबूला हो गया—"माँ अगर यही रोग यदि मुझे हो जाये तो क्या मेरे निकट कोई नहीं आएगा?"[147] और फिर चेतन चुप रहा।

लेकिन माँ के यह कहने पर कि चन्दा बच्चे से है—यह सुनकर आगे कुछ नहीं बोला था।

दूसरे दिन चेतन की माँ जालन्धर चली गई थी और चेतन ने तय किया था कि भाई साहब पर जोर देगा कि वह भाभी को जल्दी से जल्दी मायके भिजवायें और एक दिन भाभी अपने मेल-ट्रेन ड्राइवर भाई के साथ आदमपुर चली गयी।

चेतन जब दफ्तर से ढाई बजे लौटा तो उसकी पत्नी चन्दा जाग रही थी। चेतन उठकर बैठा ओर आगे लिखना शुरू किया—"सोचता हूँ तो मुझे भाभी की जबरदस्त हिमाकत के साथ-साथ भाई साहब का कुसूर भी कम दिखायी नहीं देता...। खत लिखने में वे बड़े चोर हैं। भाभी को श्रीरामपुर छोड़कर फिर उन्होंने तीन महीने तक उसकी खोज-खबर नहीं ली।...मकान छोड़ने को मजबूर हुए चन्दा के खुलेपन को लेकर उनके सामने

घूँघट न करने के कारण पहले भी भाभी के मन में शक था।...अपने खामोश और रूखे व्यवहार से उसको यकीन में बदल दिया और भाभी ने फाके करके यक्ष्मा मोल ले लिया, तो क्या इसमें भाई साहब का कोई कुसूर नहीं था?...अगर अपनी बीवी को अपना भेद बता दिया होता तो इतनी बड़ी ट्रेजेडी क्यों होती?”[148]

नोटबुक लिखते-लिखते चेतन का दम घुटने लगा और फिर चेतन की आँखों के सामने स्टेशन पर गाड़ी के डिब्बे में बैठी अपनी भाभी का दुबला-पतला, यक्ष्मा का मारा, एकदम सियाह पड़ जाने वाला चेहरा आ गया।

वहीं कमरे में घूमते हुए चेतन ने नोटबुक उठायी और आगे लिखने लगा—“इस ट्रेजेडी की ठीक वजह क्या है, मैं तय नहीं कर पाता।...क्या इसके पीछे चन्दा से मेरे उस अनुरोध का हाथ नहीं, जो मैंने उससे भाई साहब के सामने घूँघट उठा देने के लिए किया था और जिसके कारण वह उनके सामने खुले मुँह आने और हँसने-बोलने लगीं।...लेकिन भाई साहब के इस रूखेपन और खामोशी का क्यों नहीं, जिसने भाभी के शक को यकीन में बदल दिया...।”

लेकिन शायद सबसे बड़ा कारण भाभी का भ्रम है, जिसके बस होकर उसने मौत का रास्ता अपना लिया।[149]

इस दुःखद ट्रेजेडी की वजह जो भी हो, लेकिन यह तो पता चलता है कि सन्देह के विष बीज को अगर फूटते ही सख्ती से कुचल न दिया जाये तो वह इतना बड़ा पेड़ बन जाता है कि अपनी भयानक छाया से जिन्दगी को एकदम सुखा डाले।[150] और चेतन इस प्रकार लिखते लिखते एकदम सोचने लगा कि कहीं भाई साहब ने भाभी को यह तो नहीं बता दिया कि चन्दा ने गहने बेच कर भाई साहब को रुपये दिये हैं जिसकी वजह से भाभी ने यह अर्थ लगा लिया हो कि चन्दा भाई साहब पर मरती है।

ऐसा सोचकर एक लम्बी साँस ली और कापी में लिखने लगा—“जाने तकदीर किन अदृश्य तारों से जिन्दगी को चलाती है और मौत किन अजान हाथों से आकर उसे दबोच लेती है।”[151]

उपन्यास के तीसरे खण्ड में चेतन अपनी पत्नी चन्दा के कृपाल देवी हिन्दी विद्यालय में चले जाने के पश्चात् सबसे पहले अपनी कहानियों का मसौदा तथा प्रकाशित रचनाओं की फाइल लेकर ऐसे प्रकाशक की खोज में निकल जाता है जो उसकी कहानियों के संग्रह को छापकर रायल्टी के रूप में कुछ अच्छा दे सके।

तदन्तर वह मुँशी प्रेमचन्द के द्वारा लिखी भूमिका को लेकर 'चमन बुक डिपो' से अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवाने में सफल हो जाता है तो इस शुभ समाचार को वह सबसे पहले चौधरी जहीर को सुनाता है, जिसके कारण उसकी मुलाकात हिन्दी के अन्य लेखकों से होती है।

कवि चातक चेतन को हिन्दी में लिखने के लिए प्रेरित करता है, किन्तु जब वह हिन्दी में कहानी लिखकर चातक के पास लाता है तो चातक काम का बहाना बनाकर चेतन को टरकाना चाहता है जिससे चेतन का सारा उत्साह मन्द पड़ जाता है। तीन घण्टे चुपचाप बैठना उसके अत्यन्त कियाशील मस्तिष्क के लिए घोर यातना के बराबर था।

चेतन अपनी इस वेदना को दूर करने के लिए अपनी पत्नी चन्दा के साथ निस्बत रोड पर सैर करने जाता है। चेतन का विचार था कि क्रिस्टल में रोज की एक-एक बोतल पीकर वापसी पर अगर समय मिला तो कमला के घर भी जायेंगे।

वे क्रिस्टल की लॉन में बैठे रोज की बोतल पी रहे थे और चेतन अपने हवाई घोड़े पर चढ़ा आसमान से बातें कर रहा था कि शीघ्र ही उसकी हिन्दी की कहानियाँ देश भर की पत्रिकाओं में छपने लगेंगी—"और तब देश का कोई ऐसा कोना न होगा, जो मेरे नाम या मेरी रचनाओं से अपरिचित रह जाय।"[152] तभी चन्दा की सहेली मोहिनी वहाँ आकर उसके परिवार के बारे में बताने लगी कि उसके पिता पागल की अवस्था में लाहौर के पागलखाने में हैं और माँ भी गोविन्द गली में सेठ वीरभान सर्राफ के यहाँ रसोई का काम देखती है। इस अनहोनी दुःखी खबर को सुन चेतन बिना बात किये घर की ओर चला दिया।

जब रात को दो बजे दफ्तर से भीगता हुआ चेतन वापस घर पहुँचा तो चन्दा जाग रही थी। चेतन के पूछने पर कि उसकी मोहिनी के साथ क्या-क्या बातचीत हुयी है इसी

क्रम में चन्दा ने चेतन को बताया कि—"एक सुबह वे तायी जी के घर गये और उन्होंने तायी जी को गालियाँ देने शुरू कीं, अपने सभी कपड़े फाड़ डाले और मरने-मारने पर तैयार हो गये।...जब दो-तीन दिन तक यही हुआ तो तायी जी ने अपने मित्रों और कुछ मोहल्ले वालों की मदद से थाने में रपट लिखायी और पुलिस की सहायता लेकर उन्हें पागलखाने दाखिल करा गये।"[153]

और चन्दा फिर सिसकने लगी—"मेरे पिता तो चींटी तक पर हाथ नहीं उठाते।...मुझे तो न इस पर विश्वास आता है कि पिताजी ने तायी जी को गालियाँ दीं और मैं तो वहीं पली हूँ और ताऊ जी को पिता समान और उनके बेटे-बेटियों को अपने सगे भाई-बहनों से बढ़ कर मानती रही हूँ।"[154]

चेतन ने अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है। हम उन्हें पागलखाने से लाकर छोटी-सी दुकान खोल देंगे। तुम्हारी माँ को किसी के यहाँ चौका-बर्तन करने की आवश्यकता न होगी। मैं ग्राहक लाने में उनकी दुकान पर स्वयं बैठूंगा। मैंने अपने भाई की प्रैक्टिस जमा दी है तो उनकी जमाने में मुझे क्या देर लगती है, सब ठीक हो जायेगा।[155]

और जब चेतन अपने ससुर से पागलखाने में मिलता है और उनके बारे में डॉक्टर से पूछता है तो उसका बना बनाया हवामहल एकाएक नष्ट हो जाता है और कुछ भी नहीं करने के लिए मजबूर हो जाता है।

उपन्यास के चौथे खण्ड में चेतन सबसे पहले नोटबुक में इस तरह से लिखता है—"मैं क्या करूँ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता...। मेरा ससुर धुत्त पागल है, मेरी सास नजदीक ही सेठ वीरभान के घर चौका-बर्तन कर सात रुपये महीना पा रही है।"[156]

इस दुःख से दुःखी चेतन अपने संग्रह को छपवाने में संलग्न हो जाता है। पन्द्रह दिन के पश्चात् वह अपने संग्रह की कुछ कापियां लेकर सबसे पहले अपनी पत्नी चन्दा के पास जाता है और उसका नाम लिखकर पुस्तक उसे देता है।

चेतन ने संग्रह की दूसरी प्रति पण्डित रत्न को भी दे दी। तीसरी महाशय सुदर्शन को इस तरह से संग्रह की एक-एक प्रति अपने मित्रों को बाँटता हुआ शाम को घर पहुँचता है।

दूसरे दिन चेतन अपनी पत्नी चन्दा को लेकर अपनी सास से मिलने गोविन्द गली जाता है और अपनी सास को घर लाकर समझाता है लेकिन उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता है और अपनी कहानी संग्रह की एक प्रति उठा कर माँ-बेटी को बातें करता छोड़कर घर से निकल जाता है।

चेतन ने संग्रह की एक प्रति चातक को भी दे दी परन्तु चातक उस समय पढ़ने के मूड में न होने के कारण चेतन को भोजन करने के लिए कहता है।

जब भोजन करने के लिए चेतन आनाकानी करता है तो कवि चातक कह उठता है—"भूखे भजन न होइ गोपाला" जब चेतन ने कवि चातक की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया तो अपनी बातों का गहरा प्रभाव पड़ते देख खाना खाने के बाद चातक उसे अपने कमरे में ले गया। यहाँ वह 'मायाविनी' नामक कविता सुनाकर अपनी प्रशंसा से चेतन को बोर करने लगा। तभी चेतन ने भी चातक की कविता की बढ़-चढ़ कर प्रशंसा की तो चातक जी कहने लगे—"यह हमारी बदकिस्मती है कि देश गुलाम है। विदेशी लेखकों के सामने हिन्दुस्तान की अहमियत कुछ भी नहीं, वरना क्या रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद यहाँ एक भी लेखक को नोबल पुरस्कार न मिलता।"[157] वह चातक तथा उन्हीं के गुटों के शुक्ला जी, करुण जी आदि की योग्यता का बेहिचक उद्‌घाटन करता है। वह लिखता है—"कवि चातक और करुण निश्चय ही अपने आपको महान् कवि समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शब्दों और छन्दों पर भी उनका अधिकार है, पर उनके यहाँ वह चीज नहीं, जो दिल और दिमाग को छू ले।"[158]

इनसे अपने साहित्य की तुलना में चेतन स्वत: ही कहता है—"पता नहीं मेरी रचनाओं में अभी वह चीज आयी कि नहीं। जैसे उन्हें अपनी रचनाएँ पसन्द हैं, वैसे ही मुझे भी हैं, लेकिन कवि की महज अपनी पसन्द इस सिलसिले में शायद कोई मायने नहीं रखती। मुझे लिखने में कितना सुख मिलता है, उतना किसी चीज में नहीं मिलता।...मैं लिखता हूँ तो सब कुछ भूल जाता हूँ। मुझे किसी चीज में इतना रस नहीं मिलता, जितना

अपने भावों को कागज पर उकेरने में मिलता है...इसी कला में कमाल हासिल करूँगा और एक दिन महान् लेखक और कवि बनकर रहूँगा।"[159] और चेतन यह निश्चय कर लेता है कि वह विविध पत्रिकाओं में बारी-बारी से रचनाएँ भेजेगा, लेकिन चातक द्वारा उसकी रचनाएँ नहीं छपतीं।

उपन्यास का पाँचवाँ अन्तिम खण्ड चेतन की पारिवारिक समस्याओं का लेखा-जोखा प्रकट करता है। वह अपनी सास के हठ के कारण अत्यन्त दुःखी है। वह यही चाहता था कि उसकी सास किसी के घर की नौकरानी न बने किन्तु चेतन की "हर बात उसकी सास के मस्तिष्क पर पत्थर की बूँद सरीखी फिसल जाती है। फलस्वरूप वह अपनी पत्नी चन्दा से भी खिन्न रहता है। इस उदास वातावरण में चन्दा भी उसे असुन्दर, सुस्त और फूहड़ लगती थी। चेतन को उसकी सूरत तक से नफरत होने लगी थी। वह उसके नैकट्य से भागता था और बदले में उदास और कुरूप तथा निर्जीव बन जाता था।"[160]

अपने गुस्से को उतारने के लिए चेतन चन्दा पर झल्ला भी उठता है कि उसे ठीक तरह से कपड़े पहन कर रहना चाहिए। यहाँ तक कि चेतन की सास जब उसके घर आती है तो उसे भी भला-बुरा कहता है किन्तु शीघ्र ही वह चन्दा के प्रति बुरे व्यवहार पर पश्चात्ताप भी करने लगता है। जब बड़ा भाई मकान का किराया देने से इन्कार करता है तो चन्दा पैसों से भरी थैली भाइयों को देकर उनकी मुश्किल को आसान करती है।

तभी चेतन सोचने लगता है—"जिसे वह सीधी-सादी, फूहड़ और गँवार समझता है, वह अन्दर से कितनी गहरी, सभ्य और सुसंस्कृत है।"[161]

प्रातःकाल चेतन चन्दा के साथ किए बुरे व्यवहार के प्रति खेद प्रकट करता है और उसे माँ से मिलान के लिए ले जाता है वहाँ चेतन को सेठानी द्वारा आदर-सम्मान मिलता है। तत्पश्चात् वह अपने सहपाठी अमीचन्द से उन्हीं के घर मुलाकात करता है जिससे सेठानी द्वारा पोषित बहन की बेटी कृष्णा के साथ विवाह होने का प्रस्ताव है।

अमीचन्द का डिप्टी कलेक्टर बनना चेतन की इच्छाओं को नया उभार दे देता है। वह पत्नी चन्दा से कहता है—"मैं तुम्हारी माँ को परेशान नहीं करना चाहता। सेठ और

सेठानी उसे इज्जत से रखे हुए हैं और वह बड़ी खुश है, लेकिन मैं यह भी नहीं चाहता कि केवल इसी कारण मेरी तुम्हारी स्थिति उस घर में जरा भी आकवर्ड हो जाये। मैं ढाई साल में लॉ कर लूँगा और लॉ करते ही सब-जजी के कम्पीटीशन में बैठ जाऊँगा। मैं तुम्हें आज बता देता हूँ कि दुनिया की कोई ताकत मुझे सब-जज बनने से नहीं रोक सकती। मैं सब-जज बना तो फिर डिस्ट्रिक्ट और सेशन-जज बन कर ही दम लूँगा...।"[162] चन्दा भी अपने पति की इस इच्छा को सुन उसमें श्रद्धा, प्रेम तथा विश्वास के बीज बोने लगती है और यहीं पर 'नन्ही सी लौ' उपन्यास का अन्त हो जाता है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'नन्ही सी लौ' उपन्यास में उपन्यास कला के सभी गुण विद्यमान हैं—सहज-सरल शैली, समाज और मनुष्यों की गहरी समझ और यथार्थवादी दृष्टि। इन्हीं गुणों की वजह से चेतन की कहानी महज एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक की कहानी न रहकर भारत के सम्पूर्ण युवकों की कहानी बन जाती है जो समाज में एक नवीन चेतना विकसित करती है।

बांधो न नाव इस ठांव (1974)

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास 'अश्क' जी के 'गिरती दीवारें' उपन्यास की शृंखला का चौथा उपन्यास है। इसकी कथा को 'अश्क' ने दो भागों में विभाजित किया है—पहले (घाट) भाग में नौ खण्ड तथा दूसरे में दस खण्ड हैं।

चेतन का जीवन ही वास्तव में लेखक का जीवन है फिर उसकी कहानी अधूरी कैसे रह सकती है? 'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास लिखकर 'अश्क' जी ने एक रचनात्मक कार्य को पूर्ण अंजाम दिया है, जिसमें तकलीफ और तनाव के साथ ही "इस महागाथा का नायक चेतन अपने व्यक्तित्व और अपने परिवेश की सार्थक पहचान की तलाश में धारा के केन्द्र से फैलावों के गहरे धुंधलकों की तरफ तेज गति से बहता है और विभाजन पूर्व लाहौर की उन तमाम सरगर्मियों से जुड़ता है जो सड़क पर स्टॉल लगाये नीलामकारों से लेकर भव्य सभागार में व्यवस्थित जिन्दगी जीने वाले उच्चवर्गीय साहित्यकारों और शायरों तक फैली हुई है।

लेकिन चेतन की यह मात्रा बाहर के विशाल अँधेरे नद में जितनी है——उतनी ही अपने अंदर की निरन्तर बहती पारदर्शी नदी में भी जिसका निकटता संसर्ग पाने के लिए ही वह बाहर के खलबलाते जीवन नद में और गहरे धंसता है। एक अनिश्चय से दूसरे अनिश्चय के छोर तक चेतन की यह यात्रा उपन्यास की प्रमुख रचना भूमि है——तकलीफ और तनाव के इसी पड़ाव-दर-पड़ाव और घाट-दर-घाट की कथा है।"[163]

उपन्यास के इस प्रथम भाग (घाट) में चेतन तकलीफ और तनाव का सामना करता हुआ स्वार्थी समाज में अपनी जिन्दगी बसर करता है। वह समाज की कुरीतियों व बुराइयों को यथार्थ के धरातल पर अंकन करना ही अपना परम ध्येय समझता है।

महाशय जीवनलाल कपूर (सम्पादक और मालिक साप्ताहिक 'गुरु घण्टाल' और 'भूचाल') के साथ चेतन की अनबन हो जाती है और वह 'भूचाल' के सम्पादक की नौकरी छोड़ देता है। घर में दो जून का आटा भी नहीं रहता। उसने विचार किया कि जो 'कटिंग' अनुवाद के लिए महाशय जीवनलाल से लाया था, उसका अनुवाद करके सम्भवत: कुछ पारिश्रमिक मिल जाये तथा साथ ही शेष वेतन भी।

चेतन अनुवाद लेकर जब महाशय जीवनलाल के यहाँ पहुँचता है तो उसे वहाँ पारिश्रमिक और वेतन के स्थान पर जलील होना पड़ता है। महाशय जीवनलाल चेतन की नजरों में फूहड़ और कमीना है। उसके यहाँ से निराश लौटकर चेतन कविराज रामदास के औषधालय में उनसे मिलने जाता है। शायद वहाँ उसे कुछ लिखने का काम मिले किन्तु पैसे तभी मिलते जब कहानी पर्चे में छपती। "चेतन को तो इस हाथ ले उस हाथ दे के अनुसार काम के पैसे दरकार थे।"[164]

चेतन रामदास से विदा लेकर सोचने लगता है कि आखिर वह कहाँ जाये और अचानक चातक जी के दफ्तर की ओर चल देता है। चेतन चातक जी से काम के बारे में चर्चा करता है और अपनी परेशानी बताकर धन की सहायता लेना चाहता है, परन्तु जैसा कि चातक जी की आदत है, अपनी नयी कविता 'सहोदरा' को चेतन के सामने लेकर बैठ गये। "कविता सुनते हुए चेतन के सामने बार-बार वे सारे दृश्य आते रहे जो निम्मो और कवि चातक के साहचर्य में उसने देखे थे, जिनमें एक ओर वय प्राप्त उदमाती लड़की थी

और दूसरी ओर अपनी कर्कशा, कुरूपा पत्नी से दबा-डरा, लेकिन बँधा एक कवि जो बड़े प्यार से अपनी मुँह बोली 'सहोदरा' का हाथ अपने बे-हड्डी के से हाथों में लिए, उसकी आँखों में डूबने की कोशिश में उसे प्यार से घण्टों सहलता था, 'बहिन-बहिन' करते हुए उसे गोद में भरकर उसका प्यार ले लेता था और उदमाती 'भैया-भैया' कहती हुई उससे चिमट-चिमट जाती थी।"[165]

चेतन मन मार कर बैठा अपने मन-मस्तिष्क पर कवि चातक की कविताओं का यह अत्याचार सहता रहा। जब चेतन चातक जी से अपनी नौकरी के बारे में कहता है तो उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता है। चेतन नौकरी न मिलने तथा चातक जी की स्वार्थमयी बातों को सुनकर बेहद परेशान हो जाता है और वहाँ से उठकर घर के लिए चल दिया। घर पहुँच कर खाना पकाया, खाया और आराम करने लगा। उसी दौरान वह सोचने लगा——"वह चातक जी को भोला, भावुक और किंचित मूर्ख समझता था, लेकिन वे तो कविराज के भी चाचा निकले। दुनिया में यह कैसी आपाधापी मची है, एक-दूसरे को समूचा निगल जाने के लिए सभी कितने व्यग्र हैं। आदमी ही नहीं, निरीह से दिखने वाले पशु-पक्षी अपने से कमजोरों को निगल जाते हैं।...प्रेम भरी कविताएँ लिखने वाला सहृदय कवि नि:संकोच अपने ही जैसे दूसरे कवि का यूँ शोषण करने के लिए तैयार हो सकता है तो फिर शक्तिशालियों और जन्मजात ठगों की तो बात ही दूर रही।"[166]

इन्हीं विचारों में खोया चेतन भाई साहब से पाँच रुपये की सहायता के लिए दुकान पर जाता है जिससे घर का खर्च चल सके लेकिन भाई साहब से उसे किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं होती है। तभी अचकनपोश नीलामकार दो रुपये दे जाता है। वह चारपाई से उठा और सोचने लगा कि वह दो रुपये वापस कर आये लेकिन वह उसे उचित नहीं लगा और पत्नी चंदा के साथ चाय पीने लगा। ऊपर मकान मालिक का परिवार परम भक्तिभाव से भगवान् की आरती उतारने लगा। चेतन सोचता है कि काश! मैं भी ऐसा कर पाता और यहीं पर उपन्यास का पहला खण्ड समाप्त हो जाता है।

नीलामदार से प्राप्त दो रुपयों से चेतन जीवनदास खण्ड सन्स, थोक-फरोश की दुकान से आठ आने दर्जन के हिसाब से दो दर्जन मर्दाने और दो दर्जन जनाने बढ़िया

विलायती रूमाल खरीदकर अनारकली में बेचने लगता है, जहाँ सर्वप्रथम उसकी भेंट आकाशलाल खन्ना (पी.सी.एस. सब-जज) से होती है जो कि चेतन के बेचे हुए रूमाल खरीद लेता है। चेतन उससे मिलकर काल्पनिक दुनिया में खो जाता है और सोचने लगता है—"वह आते वर्ष जरूर लॉ कॉलेज में प्रवेश लेगा और तीसरे साल पी.सी.एस. की प्रतियोगिता में बैठकर सब-जज हो जायेगा...।"[167]

दूसरी मुलाकात धर्मदेव वेदालंकार से होती है। वह चेतन को रूमाल बेचते देखकर दंग रह जाता है। आप साहित्यकार हैं, यह आप क्या करने लगे? इसके उत्तर में चेतन ने कहा—"साहित्यकार के पेट नहीं होता क्या?...छोटी ही क्यों न हो, उसकी भी गिरस्ती है। फिर यह कोई बुरा काम नहीं है, आप काम दिला देंगे तो छोड़ दूँगा।"[168] और चेतन की दशा देखकर काम देने का वचन देते हैं।

अनारकली में चेतन को जब पण्डित रत्न इस दयनीय दशा में देखते हैं तो उसके सारे रूमाल खरीदकर अपने साथ ले जाते हैं।

पण्डित रत्न चेतन को चुन्नी भाई के यहाँ से उर्दू में अनुवाद का काम दिलवाते ही नहीं, अपितु पाँच रुपये पेशगी भी दिलवा देते हैं, जिससे वह घर में खाने का सामान ला सके। दूसरे दिन इतवार को वे चेतन को सूफी हनुमान प्रसाद के पास ले जाते हैं, जो 'मस्ताना योगी' जैसे रिसाले के मालिक तथा सम्पादक थे। उनके पास भी अंग्रेजी से उर्दू में अनुवाद करने का काम दिलवाकर वे तीन रुपये पेशगी भी दिलवा देते हैं।

चुन्नी भाई व सूफी हनुमान प्रसाद के यहाँ काम दिलवाने पर पण्डित रत्न ने चेतन को यह सलाह दी कि क्यों ना वह 'लिट्रेरी लीग' जैसी संस्था खोल लेता, जिससे खर्चा भी निकल जायेगा और संस्था भी बनी रहेगी। पण्डित रत्न से सलाह व सुझाव लेकर चेतन सबसे पहले चुन्नी भाई और सूफी हनुमान प्रसाद के लिए कार्य को जल्द ही समाप्त कर वह 'लिट्रेरी लीग' जैसी संस्था खोलने के लिए सपने संजोने लगा जिसमें लाहौर के मध्यवर्गीय शिक्षित जन भाग ले सकें। चेतन शीघ्र ही चुन्नी भाई को 'झण्डू फार्मेसी' का पत्र तथा सूफी हनुमान प्रसाद के दो लेख भी पूरा करता है।

चेतन सूफी हनुमान प्रसाद का अन्तिम लेख तैयार कर जब उसे देने जाता है और वापस आता है—तब वह चेतन से लाहौर के जर्नलिस्टों के गुप्त कार्यों की रिपोर्ट माँगते हैं जिसके लिए पचास रुपया महीना देने के लिए कहता है। इस पर चेतन ने उसे कहा कि— "लिट्रेरी लीग के समान एक सोसायटी चलाने वाला है जिसमें दस रुपये सरपस्तों के लिए और पाँच रुपये आम मेम्बरों का चन्दा होगा। हर महीने उसकी मीटिंग होगी। यह औसत दर्जे की अदीबों, जर्नलिस्टों और इन्टरलेक्चुअलों की एक सोसायटी रहेगी।...सभी जर्नलिस्टों को उसका मेम्बर बनाऊंगा। इसी बहाने इनसे मिलता रहूँगा और आपका काम भी कर दूँगा...।"[169]

यह सुनकर सूफी साहब ने चेतन के इस कार्य की प्रसन्नता की दाद दी। "जेब से दस रुपये का नोट निकालकर चेतन को देते हुए बोले—पहला सरपरस्त मुझे बना लो...।"[170]

रुपये लेकर चेतन सूफी हनुमान प्रसाद के बारे में सोचने लगता है—"साला अपने आपको बहुत चालाक समझता है, लेकिन मेरे मन को जरा नहीं भाँप सका और मूर्ख बन गया।"[171]

चेतन किसी के बारे में जासूसी करना पाप समझता है। "गत दो वर्षों के संघर्ष ने बाहरी दुनिया के प्रति उसे बेतरह सतर्क बना दिया था। हर एक को चोर समझो, जब तक कि वह शाह साबित न हो।...कविराज जी के साथ तीन महीनों के प्रवास ने उसकी तमाम अल्हड़ता छीन ली थी।...स्नेह से उसका विश्वास जीतकर उससे कुछ भी कराया जा सकता था, लेकिन चालाकी से तिनका भी उससे तुड़वाना मुश्किल था। वह सामने वाले की आँख में देखकर उसके दिल की बात पढ़ लेता और सतर्क होना सीख गया था। झूठ बोलना उसके लिए कठिन था, लेकिन जहाँ सच्ची बात कहने से हानि होने की आशंका हो, वह चुप लगाना भी सीख गया था और जहाँ उसके व्यक्तित्व का एक भाग नितान्त कोमल भाव-प्रवण और सदय था, दूसरा इस्पात सा कठोर और पत्थर सा सख्त हो गया था।"[172]

इस प्रकार 'बांधो न नाव इस ठांव' (प्रथम भाग) में चेतन समाज से प्राप्त कड़वे-मीठे-तीखे अनुभवों में अपने को ढालकर अपने आपको भी वैसा ही बना लेता है।

चेतन का साला रणवीर अपनी शादी में बुलाने के लिए लाहौर आता है तो चेतन उसकी पत्नी चन्दा तथा बड़े भाई साहब रामानन्द उसकी शादी में जालन्धर आ जाते हैं।

रणवीर की शादी लालडां गाँव में हो रही थी। वहाँ पर किसी प्रकार का साधन नहीं जाता था, इसलिए बारात को रणवीर के घर बस्ती गजां से लालडां गाँव तक की यात्रा बैलगाड़ियों में आरम्भ करनी पड़ती है। इन्हीं बैलगाड़ियों में चेतन, रामानन्द, हुनर साहब और निश्तर को भी रणवीर की शादी के लिए यात्रा करनी पड़ती है। रास्ते में ये सभी लोग आनन्द, मस्ती और शादी में जो मजे लेने चाहिए लेते जा रहे होते हैं। बीच-बीच में चेतन अपनी कल्पना शक्ति में खो जाता है। इतनी छोटी यात्रा का वर्णन उपन्यासकार ने पूरे एक खण्ड (तीसरा खण्ड) अर्थात् लगभग अस्सी पृष्ठों (पृष्ठ 117 से 182) में किया है।

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास के चौथे खण्ड में चेतन, हुनर साहब, निश्तर, भाई साहब, रणवीर के बड़े जीजा, मिस्टर गणेशीलाल वत्स (इंजीनियर) लालडां के प्रसिद्ध गायक चिरंजीलाल, लालडां के चमत्कारी बाबा के दर्शनों के लिए जाते हैं। रास्ते में हुनर साहब चमत्कारी बाबा के चमत्कारी किस्से सुनाता जा रहा है।

उपन्यासकार 'अश्क' ने चमत्कारी बाबा के चमत्कारों का वर्णन लगभग साठ पृष्ठों (पृष्ठ 183 से 236) में किया है, जो उपन्यास के लिए अनावश्यक ही प्रतीत होता है।

उपन्यास के पाँचवें खण्ड में चमत्कारी बाबा के दर्शनों के लिए गये चेतन इत्यादि को बुलाने के लिए गिल्ली पण्डित दौड़े-दौड़े आते हैं और रणवीर की मूर्खता के विषय में बताते हैं। लालडां गाँव पहुँचकर चेतन वस्तुस्थिति को सम्भालता है और स्थिति पर काबू पाता है।

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास के छठे खण्ड में चेतन रणवीर की शादी में शामिल होने के बाद लाहौर पहुँचते ही सबसे पहले जो काम करने के लिए सोचा—"वह था पण्डित 'रत्न' से प्रस्तावित सोसायटी के नियम-कानून और उद्देश्य बनवाना, उन्हें छपवाना और उसके सदस्य बनाने की मुहिम जारी करना।"[173]

उपन्यास के सातवें खण्ड में चेतन मियाँ बशीर अहमद के यहाँ से लौटने के पाँचवें दिन अपने मित्र अनन्त को अपने जीवन (15-20 दिनों) के खट्टे-मीठे अनुभवों का कच्चा-चिट्ठा लिखता है।

इसी प्रसंग में वह पत्नी चन्दा से भी कहता है—"कि वह एकदम कमजोर शख्स है...यह दुनिया कमजोरों की नहीं। बैठे-बिठाये यह कुछ नहीं देती, जिसकी बाँहों में जोर न हो, वह दिमाग में और जोर पैदा करे और इससे जो चाहे ले ले...।"[174]

"उसके पास धन की लाठी न सही, दिमाग की लाठी तो है, वह उसी से काम लेगा। चाणक्य ने उसके बल पर मौर्य साम्राज्य खड़ा कर दिया, वह साली एक निकम्मी सोसायटी भी खड़ी न कर सकेगा...।"[175]

और इसी दौरान चेतन अपना मकान अनारकली नं. 1 से बदलकर अमृतधारा मुहल्ला में आ गया। जहाँ वह ग्यारह रुपये मकान किराया देगा।

यहाँ चेतन हिन्दी साहित्यकारों कवि चातक और धर्मदेव वेदालंकार से भी मिलता है जहाँ पर निराशा के अलावा कुछ नहीं मिलता है और खण्ड के अन्त में चेतन वेदालंकार जी को अपने भाई रामानन्द डेन्टिस्ट के पास ले जाता है, जहाँ वेदालंकार जी के साथ अजीब घटना घटती है—भाई रामानन्द ने उनकी एक दाढ़ निकालने की बजाय दोनों दाढ़ों को थोड़ा-थोड़ा काट दिया जिससे उनको बेहद दर्द होता है। यहाँ से चेतन धर्मदेव जी को डॉ. लखनपाल के पास ले जाता है, वहाँ उनकी दोनों दाढ़ों को निकलवाकर उनके घर पर छोड़ कर आता है। चेतन वेदालंकार जी के घर से निकलकर अपने घर की ओर आता है, रास्ते में हुनर साहब से मुलाकात हो जाती है। जहाँ से वे सीधे भाई साहब की दुकान पर आते हैं।

उपन्यास के आठवें खण्ड में चेतन ने आचार्य देशबन्धु से लाला हाकिमचन्द से सिफारिश करवा दी और लाला जी के खाने-रहने की सुविधा के साथ चालीस रुपये महीने पर उसे अपने साथ शिमला ले जाना स्वीकार कर लिया था।

ट्यूशन की बात पक्की हो जाने पर चेतन ने शिमला जाने के लिए सबसे पहले कपड़ों की व्यवस्था की जिससे वह लाला हाकिमचन्द को प्रभावित कर सके। फटे हाल में

रहना उसे मंजूर नहीं था। इसलिए दूसरा कोई काम करने से पहले वह जालन्धर जाकर दहेज में मिली रेशमी रजाई व बिस्तर तथा कपड़ों की व्यवस्था करने लगा और माँ से पच्चीस-तीस रुपये के लिए भी कहता परन्तु माँ को अपना रोना देखकर वह वापस लाहौर आ जाता है। लाहौर आकर चेतन हुनर साहब से मिलता है, जिन्होंने अपने शागिर्दों से कहकर चेतन के सूट के पैसों की व्यवस्था कर दी।

रुपयों का इन्तजाम हो जाने पर चेतन अनारकली जाकर कपड़े खरीदता है और हुनर साहब से हरगोविन्द टेलर से सिफारिश करवाता है कि वह कपड़ों की सिलाई शिमला जाते ही भेज देगा।

हुनर साहब को 'सोसाइटी फॉर यू एण्ड मी' का प्रबन्धक बनाकर वह उससे भी छुटकारा पाना चाहता था। उसने हुनर साहब से कहा—"मैं चार महीनों के लिए शिमला जा रहा हूँ और चाहता हूँ कि सोसाइटी का इफ्तिताही जलसा कर दूँ, ताकि आप जनरल सैक्रेटरी चुन लिए जाएँ और सोसाइटी को अपने हाथ में ले लें।"[176]

चेतन ने चालू रसीद बुक और ब्रोशर अपने पास रख कर बाकी सभी रसीद बुक तथा ब्रोशर हुनर साहब के हवाले कर दी।

'ओपनिंग सेरेमनी' के लिए 'एलफिन्स्टन होटल' के मालिक लाला कर्मचन्द का हॉल बुक करने के साथ मीनू भी पसन्द करके पच्चीस रुपये पेशगी के रूप में चेतन व हुनर साहब दे आते हैं।

चेतन ने हुनर साहब को उर्दू विंग तथा कवि चातक को हिन्दी विंग का सैक्रेटरी बनने के लिए कहा। 27 अप्रैल, 1934 को ओपनिंग सेरेमनी का प्रस्ताव पास हुआ जिसमें चुनाव भी होने तय हुए।

हुनर साहब ने लाला दौलतराम सागर को सोसाइटी की इफ्तिता की रस्म अदा करने के लिए चुना। जो वक्त पर सोसाइटी की माली हालत पर भी विचार प्रकट करें।

कवि चातक ने हिन्दी विंग का उद्घाटन करने के लिए प्रोफेसर दिलबहार सिंह का नाम पेश किया जो वास्तव में साहित्य के क्षेत्र से काफी दूर थे—"हाँ, वे पंजाब

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम बोर्ड के कन्वीनर थे। चातक जी अपनी पुस्तकों के लिए मैदान बनाना चाहते थे।"[177]

इस प्रकार उर्दू और हिन्दी विंग के उद्घाटनकर्त्ताओं के नाम निमन्त्रण पर छापे गये और चेतन ने जो सदस्य और सरपरस्त बनाये थे, उन सब की सूची बनाकर उन सबको निमन्त्रण पत्र भेजा गया।

उद्घाटन समारोह में आने वाले सरदार जगदीश सिंह, हुनर साहब, लाला दौलतराम सागर, चातक जी, प्रोफेसर दिलबहार सिंह, नीरव जी, धर्मदेव वेदालंकार व उनकी पत्नी इनके अलावा जिनको चेतन नहीं जानता था आये। लाला हाकिम सिंह भी आये।

उद्घाटन समारोह में लाला हरकिशन लाल, राजा साहब महेन्द्र नाथ, मियाँ बशीर अहमद और न ही सूफी साहब, कविराज तीर जी और तो और पण्डित रत्न तक न आये जो कि सोसाइटी के जन्मदाता थे।

निश्चित समय पर 'तुम्हारी मेरी सोसाइटी' का उद्घाटन हुआ। हुनर साहब ने उर्दू और चातक जी ने हिन्दी की महत्ता के प्रति अपने भाषण देकर गजलें और कविताएँ पढ़ीं।

समय अधिक होने के कारण होटल के लाला कर्मचन्द (जो मक्खीमार थे) से हुनर साहब के शार्गिद लड़कर बची हुई पेस्ट्रियां तथा केक वहाँ से ले गये थे।

बाइबिल सोसाइटी के इधर, सड़क के किनारे, मखमली घास के लॉन पर बैठकर मिठाई और नमकीन के लिफाफे खोलकर ठहाके लगाते तथा लाला कर्मचन्द को दुआएं देते हुए सबने बढ़-चढ़ कर हाथ मारे।[178]

उद्घाटन समारोह समाप्त करके और सभी से छुट्टी पाकर चेतन अपने घर की छत पर लेटे प्रकृति को निहारते हुए वह हुनर साहब, उनके शार्गिदों तथा चातक के परिवार के सम्बन्ध में सोचता रहा——"एक-एक उनके सभी चेलों की सूरतें घूम गयीं। उसकी आँखों में अमृतसरिया मल 'दीवाना' का खुला मुख और लटका, निचला होठ उभरा...यह भी नहीं जानता कि जब वह शेर पढ़ता है तो बेहद दयनीय लगता है।...फिर रामप्रसाद नसीम

का ऊपर नीचा होता हुआ टेंटुआ उभरा...उसे हुनर साहब के बीवी-बच्चों का ख्याल आया। चातक जी के बारे में तो उसे मालूम था कि वे अपनी पत्नी की कुरूपता और अक्खड़ता से भाग कर काव्य में आश्रय ढूँढ़ते थे, लेकिन क्या हुनर साहब की यही स्थिति न थी...हुनर साहब भी प्रकट ही अपनी पत्नी से डरते थे इसलिए वे अपने कस्बे और दुकान तथा घर से भागकर जालन्धर और लाहौर के नये-नये शायरों की संगत में महीनों काट देते थे...हुनर साहब की तब तक की जिन्दगी, उनकी तमाम लम्पटता उनके सामने घूम आयी। महज खाने-पीने के लिए वह सब दन्द-फन्द करना और कुछ भी महत्त्वपूर्ण काम सरअंजाम न देना उसे केवल पशुओं की तरह जीना लगता था।"[179]

छत पर लेटा लेटा चेतन सोच ही रहा था कि पत्नी चन्दा के आ जाने पर चेतन ने सोसाइटी के उद्‌घाटन में घटित सभी घटनाओं का सविस्तार वर्णन पत्नी चन्दा को सुनाया।

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास के अन्तिम खण्ड में चेतन (नायक) अपनी पत्नी को भविष्य के लक्ष्य के विषय में बताते हुए दोनों प्यार की दुनिया में चले जाते हैं। यहीं पर 'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास के प्रथम घाट (भाग) का समापन हो जाता है।

बांधो न नाव इस ठांव (दूसरा भाग (घाट) 1974)

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास का पहला भाग तकलीफ और तनाव का अगर एक खलबलाता हुआ जीवन नद है तो यह दूसरा भाग तथा वापसी एक छोटी-सी झील है जिसके एक छोर से दाखिल होकर कथा धारा दूसरे छोर से फिर अपनी अटूट गति ग्रहण कर लेती है।

एक उच्च-मध्यवर्गीय अफसर की रूपगर्विता, उद्दण्ड लड़की और जिम्मेदारियों के बोझ से संत्रस्त, निम्न-मध्यवर्गीय भीरू युवक चेतन की प्रणय कथा है।[180]

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास के दूसरे (घाट) भाग के प्रथम खण्ड का आरम्भ रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म से होता है। चेतन लाला हाकिमचन्द के परिवार के साथ इन्टर टिकट के साथ शिमला जा रहा होता है।

रेल में लाला हाकिमचन्द चेतन के बैठने का स्थान सुरक्षित कर देते हैं और वहीं बैठे-बैठे चेतन रास्ते में लाला हाकिम चन्द के घर पर पहली मुलाकात की पुनरावृत्ति करते रहते हैं—"गाड़ी में बैठे-बैठे, चन्द्रा को देखते हुए (जो न खुदसर लगती थी, न ट्यूटरों को पिटवाने वाली) चेतन ने शिमला के अपने दैनिक कार्यक्रम की रूप रेखा एक बार फिर मन-ही-मन दोहरा ली।"[181]

शिमला पहुँचकर चेतन 'केनमारे कॉटेज' से पत्नी चन्दा को पत्र लिखता है, जिसमें रास्ते भर का विवरण, शिमला के प्रकृति की मनोरम छटा का वर्णन भी करता है। पत्र के अन्त में लिखता है कि जिस लड़की के ट्यूशन के लिए वह यहाँ आया उसका नाम चन्द्रा है। माँ-बाप प्यार से उसे 'चन्दा' या 'चन्दी' कहते हैं तो मुझे तुम्हारी याद आ जाती है। पत्र लिखकर चेतन हाकिमचन्द जी को डालने के लिए दे देता है और यहीं पर प्रथम खण्ड समाप्त हो जाता है।

उपन्यास के दूसरे परिच्छेद में पत्नी चन्दा का पत्र आता है, जिसमें वह लिखती है—"अपनी हालत में परीक्षा के लिए जाने में मुझे संकोच होता है ... यह तो और भी अच्छा है कि—उसका और मेरा नाम एक ही है। आप समझिए, वह नहीं, मैं ही हर समय आपके पास हूँ।"[182]

शिमला पहुँचकर जब चेतन ने पहले ही दिन से सोच-विचार कर जो कार्यक्रम बनाया था, उस पर वह बड़ी सख्ती से अमल करता आ रहा था। उसे चन्द्रा को पढ़ाते हुए बहुत ही दुःख सा होता है कि वह पढ़ाई में ध्यान नहीं लगाती। इसी दौरान उसने एक दिन चन्द्रा को एक प्रश्न का उत्तर लिखने के लिए कहा तो चन्द्रा ने यह पूछ लिया कि 'विजय' का क्या मतलब होता है। इस पर चेतन झल्ला उठता है और चन्द्रा से कहता है कि तुम्हें विजय का मतलब नहीं आता और मैं सारा इतिहास पढ़ा गया हूँ। उसने जोर का एक थप्पड़ चन्द्रा के गाल पर जड़ दिया और बिना उसकी ओर देखे चिल्लाता रहा—इतने दिन से पढ़ा रहा हूँ, इतनी लड़ाइयों का जिक्र आया; इतने नोट लिखाये; पचास बार यह शब्द आया होगा, तुमने पहले इसका मतलब क्यों नहीं पूछा।[183]

और चेतन यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्यों नहीं उसने भाई साहब की बात मान ली कि चन्द्रा सुन्दर है, अनेक ट्यूटरों को उसने पिटवाया है। फिर सतर्कता से चन्द्रा को पढ़ाता है, जिससे वह न तो पिट सके और न ही अपमानित हो।

हालाँकि चेतन को बेहद अफसोस था, चन्द्रा को थप्पड़ मारने का और इसी परेशानी को लेकर कि चन्द्रा इस बात को लाला हाकिमचन्द से न कह दे, दुःखी था।

उधर चन्द्रा ने इस बात को अपने पिता हाकिमचन्द से तो नहीं कहा लेकिन गुस्से में अपने छोटे भाई 'गिगलू' को बालकनी से नीचे गिरा दिया जिससे उसका सिर फट गया बाद में लाला हाकिमचन्द ने चन्द्रा को बुरी तरह पीटा था।

चेतन इस परेशानी से छुटकारा पाने के लिए शिमला में अपने चिर-परिचित मित्रों से मिलने चला जाता है और रात को देर से घर आता है। सुबह होने पर लालाजी चेतन को 'प्रोस्पेक्ट हिल' की पिकनिक पर चलने के लिए कहता है।

'प्रोस्पेक्ट हिल' की पिकनिक में चेतन ने लाला हाकिमचन्द तथा उनके साथी तेजभान और मेहता सोमदत्त क्लर्कों को बहुत ही नजदीक से देखा—"ऐसे में जब सब आवरण हट जाते हैं और आदमी अपने असली रूप में होता है—इसके साथ ही उनके परस्पर के मनोरंजन को देखकर चेतन को लाला हाकिमचन्द समेत उन सभी क्लर्कों पर दया हो आयी। उनके मजाक कितने फूहड़ थे, कितने भौंडे, क्रूर, अश्लील और बेतुके पर वे उनमें कितना रस पाते थे। उनकी सोच-समझ का घेरा कितना सीमित और संकीर्ण था...।"[184]

इस पर चेतन अपने आप आश्वस्त होकर चन्द्रा की ट्यूशन और शिमला के प्राकृतिक दृश्यों में लीन होकर समय बिताना चाहता है।

इस प्रकार चेतन पार्टी (प्रोस्पेक्ट हिल) खत्म करके जस्सो के साथ 'लोअर बाजार' के एक रेस्तरां में चाय पीते हैं। यहाँ पर जस्सो चेतन को सी.पी. मेले के विषय में बताता है जिस पर चेतन कल्पना लोक में खो जाता है और पहाड़ी गीत इकट्ठे करने के

लिए सोचने लगता है और यहीं पर 'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास का तीसरा खण्ड समाप्त हो जाता है।

उपन्यास के चौथे परिच्छेद में नायक चेतन अपने मित्र अनन्त को पत्र लिखकर लाला हाकिमचन्द तथा उसकी बेटी चन्द्रा से आप बीती सभी घटनाओं/प्रसंगों का वर्णन कर अपने मन के भार को कम करना चाहता है। पत्र के आरम्भ में वह लिखता है—"मैं तो यार खासी परेशानी में फँस गया हूँ। चन्द्रा को थप्पड़ मारने और उसके बाद अपने पढ़ाने के ढंग को बदलने की बात...कि खाई से निकलकर मैं कुएँ में जा गिरा हूँ।...हो सकता है मेरा तजुरबा उतना न हो पर लड़कियाँ जिन्हें हमारे यहाँ शील संकोच की देवियाँ कहा जाता है...तो मैं विश्वास न करता...।"[185]

मित्र अनन्त को पत्र लिखते लिखते चेतन पिछले दिनों (भण्डाला के घर अखण्ड कीर्तन व रमा वाली स्मृतियों में खो जाता है और पत्र के अन्त में लिखता है—"सो बताओ यार...सीपी. का मेला देख आऊँ") (यहीं शिमला से लगती एक रियासत है—क्यार कोटी, उसमें मेला लगता है) उसके बाद किसी-न-किसी तरह अपनी इज्जत अपने हाथ लेकर यहाँ से भाग जाऊँ। यह ठीक है कि यह ट्यूशन लेने में मुझसे गलती हो गयी है। गलती इन्सान से होती है, मगर जो उस गलती से चिपटा रहता है, उसे गुणा करता रहता है, वह मूर्ख है और मैं अपने आपको समझदार गिनता हूँ।[186] और चेतन के पत्र के अन्त के साथ ही उपन्यास का चौथा अध्याय (खण्ड) भी समाप्त हो जाता है।

'बांधो न नाव इस ठांव' (दूसरा भाग) उपन्यास में नायक चेतन लाला हाकिमचन्द के मित्रों (बिहारीलाल, रामभरोसे, लाला दौलतराम, पण्डित तेजभान, झण्डालाल, मेहता सोमदत्त, कपूर और लाला भोलानाथ आदि) के साथ सी.पी. (सीपुर) मेला देखने तथा पहाड़ी गीत इकट्ठे करने तथा यह देखने कि पुराने जमाने में दो दिन के मेले में शादियाँ कैसे पक्की हो जाती हैं परन्तु मेले में पहाड़ी गीत इकट्ठे करने के चक्कर में चेतन के सभी साथी बिछुड़ जाते हैं और उसे एक अनहोनी घटना का सामना करना पड़ता है।

ज्यों ही चेतन पहाड़ी गीत (छोरुआ, मोहना, लोका, देवरा) इकट्ठे करके अपने साथियों की तलाश में इधर-उधर भटकता है तो उसे भूख लग आती है। भूख को शान्त

करने के लिए चेतन ने एक खोमचे वाले से मिठाई (पेडे और बर्फी) ली और खाने लगा। उसी समय 'कोटी' के राणा साहब, जंगी लाट के इधर से गुजरने पर चेतन ने एक चौकीदार से सिर्फ यह पूछा था कि—"क्यों जी! यह आपके राणा कहाँ तक पढ़े हुए होंगे?...कि राणा जंगी लाट से जो बात करते हैं, क्या अंग्रेजी में करते हैं अथवा क्या जंगी लाट...।"[187]

इतनी-सी बात पर चौकीदार ने उसे धक्का देकर गिरा दिया और एक गाली भी जड़ दी। चेतन ने इसके बदले में चौकीदार को एक थप्पड़ जमा दिया। इतने में रियासत का दारोगा आ गया और उन्होंने चेतन पर मेले में आयी पहाड़ी औरतों से छेड़खानी का इल्जाम (अभियोग) लगा दिया और हाथ में हथकड़ी पहना दी, जिससे चेतन को भूगृह (ब्लैक हॉल) में एक रात का नरक भोगना पड़ा। भूगृह में केवल सील और पिस्सुओं के सिवाय चेतन को कुछ भी नहीं मिला।

बिना अपराध के सजा मिलने पर उसे दूसरे दिन प्रातःकाल छोड़ दिया गया। रास्ते में बहुत-से परिचित लोगों से मिला। सभी ने यही कहा कि हमारी सिफारिश से आप जल्दी आजाद हो गये वरना तो पता नहीं क्या होता? जब चेतन घर आया तो सभी के लिए विचित्र मेले की वस्तु की तरह बन गया। इस घटना से चन्द्रा का चेतन के प्रति आकर्षण उसे और अधिक परेशान सा करने लगा और चेतन के हृदय में अनेक प्रश्नोत्तर उठने लगते हैं—"क्यों बार-बार उसके मन में हर नयी लड़की के लिए खिंचाव पैदा हो जाता है?...क्या सभी पुरुषों के साथ ऐसा होता है? यह क्या मर्द की सहज कमजोरी है?...तो क्या वह चन्द्रा से प्रेम करने लगा है?...कल चन्द्रा उसके साथ भागने को तैयार हो जाये तो क्या वह भाग जायेगा? उत्तर मिला—नहीं। क्या वह अपनी सब महत्त्वाकांक्षाएं उसके लिए छोड़ सकता है?—नहीं।"[188]

इसी ऊहापोह में पड़ा हुआ चेतन अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचता है कि उसे यह ट्यूशन छोड़कर लाहौर चला जाना चाहिए जिससे वह दूसरे ट्यूटरों की तरह न तो पिटे और न ही पिटने का अवसर दे। जब चेतन लाला हाकिमचन्द से अपनी पत्नी की बीमारी का बहाना बनाकर छुट्टी पाना चाहता है तो उसमें भी उसे असफलता ही हाथ लगती है।

अपने मन के भार को कम करने के लिए चेतन अपनी पत्नी चन्दा को पत्र लिखता है। पत्र में ट्यूशन तथा चन्द्रा के विषय व सी.पी. मेले के बारे में लिखता है—"लगता है, जैसे मैं चूहेदानी में फँस गया हूँ।...लेकिन मैं इन दो-ढाई महीनों में अच्छी तरह समझ गया हूँ। कैसे मैं, बिना कुछ किए भी पिट सकता हूँ और किस तरह न चाहते हुए भी मुझसे कुछ ऐसा हो सकता है...।"[189] और होता भी वही है जिस बात का चेतन को डर था।

उपन्यास के नौवें खण्ड में चेतन और उसका मित्र नारायण आपस में धार्मिक विचारों में खोये हुए हैं और इसी खण्ड में लाला हाकिमचन्द के पिता व चन्द्रा के दादा शिमला में आ जाने से चेतन सावधान हो जाता है कि कहीं ऐसी गलती न कर बैठे, जिससे वह पकड़ा जाये और पिटने की नौबत आ जाये। हालाँकि चेतन के इस समय शिमला के मात्र आठ-दस दिन ही शेष रह गये हैं।

और जब चेतन के शिमला से लाहौर जाने के कुछ ही दिन बाकी रह गये तो वह चन्द्रा से कहता है—"देखो चन्द्रा, मैं शिमला में सिर्फ दो-तीन दिन और रहूँगा हालाँकि जाने को मेरा मन नहीं है फिर भी मुझे चलने की तैयारी करनी है, शिमला के मित्रों से मिलना है, इसलिए आज का दिन तुम इस पढ़ाई का आखिरी दिन समझो। जो थोड़े-से सवाल बाकी रह गये हैं, मैं दोपहर बाद एक-डेढ़ घण्टे में तुम्हें लिखवा दूँगा। फिर मैं छुट्टी चाहूँगा।"[190]

इस पर चन्द्रा चेतन से जाने का कारण पूछने लगती है। दादा पास के कमरे में सोते हुए भी जागकर उन दोनों की बातों को सुन और देख रहे थे।

लाला हाकिमचन्द द्वारा दिये गये अस्सी (80) रुपये लेकर चेतन अपने मित्र नारायण को साथ लेकर बाजार से सामान खरीद लाये थे और ज्यों ही शाम को वापस चेतन घर आया तो सुक्खु नौकर ने आकर बताया कि—"मास्टर जी, लाला जी ने सुबह आपको अस्सी रुपये दिये थे। उन्हें कुछ जरूरत पड़ गई है। उन्होंने वे रुपये मंगाये हैं और कहा है कि कल आपको दे देंगे।"[191] और खाना खाकर आप ऊपर आ जायें।

ज्यों ही चेतन ऊपर गया तो दादा जी, बीबी जी तथा लाला हाकिमचन्द ऐसे बैठे थे मानो चेतन का ही इन्तजार कर रहे हैं। पहुँचते ही लाला हाकिमचन्द ने चेतन से कहा कि—"यू आर अ रोंग" उसने चन्द्रा के साथ गलत शरारत की है जो ठीक नहीं है।

इस पर चेतन ने धैर्य रखकर उत्तर दिया कि वह निरपराध है और चन्द्रा व उसके मध्य जो-जो बातें हुई सच-सच बता दीं, जिसका अत्यधिक प्रभाव लाला हाकिमचन्द पर पड़ा और उन्होंने चेतन से क्षमा माँगी। फिर भी चेतन इस घटना से इतना दुःखी एवं हतोत्साहित व उत्साहहीन हो गया कि शिमला को तत्क्षण छोड़ने का फैसला कर लिया।

उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद में नायक चेतन असहाय होकर उन साठ रुपयों तथा दो सरपरस्तों (सर तेजासिंह तथा रिटायर्ड सब-जज खान हिकमत अली खाँ) को बनाकर दस-दस रुपये लेकर खुश हो चुका था। मित्र नारायण की सहायता से टैक्सी में बैठकर शिमला से कालका जा रहा था। नारायण ने चेतन की विचारधारा को बदला और उसे यह एहसास कराया कि उसे लाला हाकिमचन्द से ही अपने मेहनत के पैसे के लिए लड़ना था। उसने दूसरों को क्यों ठगा?

यकायक ही चेतन के मन में माँ के शब्द आवाज करने लगे—"वह कहती है, छल-कपट, झूठ-फरेब, अत्याचार जुल्म है, पर इसका यह तो मतलब नहीं कि आदमी खुद भी बुरा बन जाए, अत्याचार और जुल्म करे।"[192]

माँ के उपदेशमय लाजवाब शब्दों में डूबा चेतन अपने कवि एवं लेखक के अहं और धर्म में खो जाता है—"वह किसी अंधी, विवेकहीन भीड़ का अंग नहीं पढ़ा-लिखा, विचारवान, लेखक और कवि है...लेखक का तो धर्म है कि समाज के झूठ और फरेब, तंगनजरी और कट्टरता, अन्याय और जुल्म पर उँगली रखे।...लेखक के नाते उसका यह धर्म है कि अगर खुद उससे कुछ अन्याय होता है तो उसको अनदेखा न करे। वह उसे जाने और कलम की नोक पर रखे।"[193]

इसके पश्चात् चेतन ने—"तय किया कि वह अपने को इन छोटी-छोटी बातों, छोटे-छोटे अपमानों से नहीं भटकने देगा...अवकाश के समय...अपने ईर्द-गिर्द फैले

जुल्म और अत्याचार तथा एक्सप्लॉयटेशन का पर्दाफाश करेगा...माहौल में रचे-बसे, दुःख-दर्द और गम का भी चित्रण करेगा।"[194]

टैक्सी में बैठा चेतन इन विचारों में तल्लीन अनायास ही अपनी पत्नी चन्दा के प्रेमरस में खो जाता है।

शिमला के प्राकृतिक सौन्दर्य का भरपूर आनन्द उठाने के लिए चेतन टैक्सी में आगे की सीट पर बैठा था। नाना प्रकार के विहंग सुन्दर दृश्य अपनी शोभा से उसे मनमोहक व आकर्षित करते हुए आगे सरक रहे थे।

अनजाने ही अपनी चिन्ताओं से मुक्त चेतन बेखबर हो निद्रा देवी की गोद में एकदम पसरा हुआ सो रहा था। इस प्रकार 'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास समाप्त हो जाता है।

'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास दो खण्डों में विभाजित है जिसकी कथा चेतन को लेकर ही लिखी गयी है। प्रथम भाग में लाहौर के उच्च तथा मध्य वर्ग के बनावटी तथा स्वार्थी रूप को प्रकट किया गया है जिसके कारण निम्न वर्ग के प्राणी का जीवन जीना असम्भव था। वर्तमान परिदृश्य में इसकी प्रतिच्छवि परिलक्षित होती है।

दूसरे भाग में नायक चेतन के शिमला प्रवास का वर्णन है, जहाँ उसे कुछ कड़वे तथा कुछ मीठे अनुभव प्राप्त होते हैं। सम्भवत: उपन्यासकार उपन्यास को इस रूप में प्रस्तुत कर चेतन की जीवन कथा पर विराम लगाना चाहता था, किन्तु वह असफल ही रहा।

इस आधार पर उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का सन् 1947 में 'गिरती दीवारें', सन् 1963 में 'शहर में घूमता आईना' दूसरे भाग के रूप में सन् 1969 में 'एक नन्ही किन्दील' तीसरे भाग के रूप में तथा इसका चौथा भाग 'बांधो न नाव इस ठांव' (दो भाग) 1974 में प्रकाशित उपन्यास एक ही शृंखला की कड़ी हैं।

छोटे–बड़े लोग

'छोटे बड़े लोग' 'अश्क' जी के वृहत उपन्यास 'बांधो न नाव इस ठांव' का संक्षिप्त विभाजन पूर्व पंजाब की राजधानी लाहौर में एक निम्न–मध्यवर्गीय युवक चेतन के संघर्ष का दस्तावेज है, जिसे प्रख्यात कथाकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने अपनी सुपरिचित शैली में पेश किया है।

लाहौर के पत्रकार जगत, हिन्दी, उर्दू भाषाओं की साहित्यकार...बिरादरी और वर्गों में बँटे हुए समाज को चेतन की जिन्दगी के माध्यम से चित्रित करते हुए 'अश्क' जी ने एक ऐसे दौर की झाँकी दिखायी है, जो 1947 के बाद धीरे–धीरे ऐतिहासिक कहलाने लगा है।

लेकिन यह उपन्यास अतीत का जड़ चित्र नहीं है। आज भी हिन्दुस्तान के तमाम नगरों, कस्बों में मध्यवर्गीय युवक रोजी–रोटी की कशमकश से गुजर रहे हैं। इनमें से बहुत–से नौजवान चेतन ही की तरह साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सरगर्मियों में हिस्सा लेते हैं।

उपन्यास में नायक चेतन तकलीफ और तनाव का सामना करता हुआ स्वार्थी समाज में अपनी जिन्दगी बसर करता है। वह समाज की कुरीतियों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना ही अपना ध्येय समझता है।

'छोटे बड़े लोग' उपन्यास में नायक चेतन के यौवन काल का जीवन चित्रित किया गया है। वह लाहौर में किस प्रकार असभ्य तथा फूहड़ सम्पादकों की नौकरी छोड़ता है और अन्य नौकरी की तलाश में उसे क्या–क्या पापड़ बेलने पड़ते हैं। इन प्रसंगों को उपन्यासकार ने बड़े ही यथार्थ एवं सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। अब वह अनारकली जैसे मन मोहने वाले बाजार में बेशर्म, निर्लज्ज एवं दीन बनकर रूमाल बेचता है। पण्डित रत्न के सुझाव पर वह सोसाइटी खोलने के लिए आतुर हो उठता है, जिससे उसे नये–नये अनुभव प्राप्त होते हैं। अन्त में हारकर वह लाला हाकिमचन्द जैसे नीरस तथा बर्बर व्यक्ति की लड़की चन्द्रा की ट्यूशन स्वीकार करता है। इस प्रकार उपन्यास के इस काल विस्तार

में नायक चेतन को उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग में अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे अनेक अनुभव प्राप्त होते हैं, जो एकदम यथार्थ एवं नग्न सत्य प्रस्तुत करते हैं।

पलटती धारा (1997)

'पलटती धारा' हिन्दी व उर्दू के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जो सन् 1997 में प्रकाशित प्रथम संस्करण छ: खण्डों और लगभग चार सौ बावन पृष्ठों में भारतीय समाज की झाँकी प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास 'गिरती दीवारें' उपन्यास का छठा खण्ड है, जिसमें 'अश्क' एक निम्न-मध्यवर्गीय युवक के पाँच वर्षों के जीवन का सूक्ष्म चित्रण करना चाहते थे, साथ में जीवन और समाज के बारे में अपने अनुभव जनित सत्यों की अभिव्यक्ति भी करना चाहते थे।

इसी उद्देश्य से 'अश्क' जी ने विभाजन पूर्व पंजाब के एक नगर जालन्धर में रहने वाले युवक चेतन की महागाथा रचनी शुरू की जिसका कार्यक्षेत्र पंजाब के तीन महत्त्वपूर्ण नगरों—जालन्धर, लाहौर तथा शिमला में फैला हुआ था। 'पलटती धारा' इसी महागाथा की छठी कड़ी है, जिसमें नायक चेतन की कहानी एक कदम आगे बढ़ती है और उसे एक ऐसे मोड़ पर ले आती है, जहाँ उसके सामने दो विकल्प हैं—लेखक बने या कानून की परीक्षा पास करके सब-जज के कम्पीटीशन में बैठे। चेतन दूसरा विकल्प चुनता है।...दूसरी ओर लाहौर के साहित्यिक समाज में विचरते देखते हैं। इसी के साथ-साथ अपनी पत्नी की बीमारी के सिलसिले में चेतन अपने परिवार के कुछ दबे-छिपे पहलुओं से भी रूबरू होता है, जिनसे उसे अपने माता-पिता को नये कोण से देखने की अन्तर्दृष्टि मिलती है। इन्हीं घटनाओं में अपनी साली नीला के प्रति चेतन के आकर्षण की अन्तर्कथा भी गुथी हुई है और धर्म तथा अध्यात्म को लेकर चेतन की ऊहापोह।

"'अश्क' जी ने बड़े सधे हाथों से चेतन की इस संघर्ष गाथा को चित्रित किया है और भारतीय समाज की ऐसी झांकियां प्रस्तुत की हैं कि हर संघर्षरत युवक को यह अपनी ही कथा जान पड़ती है।"[195]

और इन्हीं सब पहलुओं को अंकित किया है—'पलटती धारा' उपन्यास में 'अश्क' जी ने। उपन्यास का आरम्भ चेतन शिमला प्रवास से वापस अपने घर जालन्धर जब पहुँचता है तो उसे मालूम चलता है कि उसके मोहल्ले में खत्रियों और स्वयं के परिवार में जबरदस्त झगड़ा हुआ है और इसी झगड़े की रपट लिखाने पिता शादीराम के साथ थाने में जाते हैं। चेतन रास्ते भर अपने अतीत की स्मृतियों को याद करता हुआ चलता है कि किस प्रकार से अक्सर खत्रियों के मुकन्दी और मोहल्ले के ब्राह्मणों में आये दिन झगड़ा होता रहता था। थाने पहुँचने से पहले पिता परसराम के लिए डॉ. पी.सी. लूम्बा (एल.एस.एम.एफ.) से इंजरी सर्टिफिकेट लेते हैं और वकील से मिलकर दावा दायर कर देते हैं।

हालाँकि लाला मुकन्दीलाल और मंगल ने एफ.आई.आर. लिखवाकर दूसरे ही दिन मामला चला दिया था और पण्डित जी ने तीन दिन बाद दावा किया था। क्रॉस केस होने से दोनों मुकदमों की पेशी एक माह बाद फर्स्ट क्लॉस ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, चौधरी गजनफर अली की अदालत में लगी थी। जहाँ कल्लोवानी मोहल्ले के मर्द नौजवान तमाशा देखने की गरज से खड़े थे।

क्षण भर बाद पण्डित शादीराम ने कहा था कि मुकन्दी ने उनके खिलाफ जो मुकदमा दायर किया था, उसकी तारीख एक महीने बाद पड़ गयी है और उन लोगों ने परसराम की ओर से मुकन्दी, उसके बेटे और साथियों के विरुद्ध दायर किया है—उस मुकदमे की शुरुआत ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के आते ही हो जायेगी, क्योंकि थानेदार करतार सिंह की मदद से पिता ने जो एफ.आई.आर. लिखते हुए जो केस बनाया था, वह इस प्रकार से था जिसमें निम्न-मध्य वर्ग का चित्रण नजर आता है—"मुकन्दी चरित्र का ढीला है। पहले उसने अपनी भाभी को घर में बिठा लिया। अवैध बच्चा हो गया और मोहल्ले में शोर मचा तो उस पर चादर डाल दी और मंगला को जो हराम का पैदा हुआ था, उसने अपना लड़का घोषित कर दिया। लेकिन आदत उसकी नहीं बदली। जब उसके दूसरे भाई धर्मचन्द की मृत्यु हुई तो अपनी दूसरी भाभी भागवन्ती पर भी डोरे डालने लगा। इस बात को लेकर मोहल्ले में बहुत फसाद हुआ। सात साल हो गये हैं, मंगल की शादी

हुए...वकील दयालचन्द रिश्ते में देवर होते हुए भी घर आते हैं तो मुकन्दी को बुरा लगता है और परसराम कभी कुएँ पर नहाता है और बहू चिक के पीछे बैठी होती है तो इस बात को लेकर मुकन्दी तूफान मचाता है। लड़ाई बाप बेटे और दयालचन्द में हुई। मंगल ने अपने बाप पर लाठी निकाल ली तो वह भी लाठी उठा लाया। परसराम ने बीच-बचाव करने की कोशिश की और उसको बरजा कि क्यों उसका नाम लेकर बहू को तंग करता है तो वह उस पर पिल पड़ा। लाठी से उसकी पीठ पर वार किया। उसने लाठी छीन कर फेंक दी तो उसके कंधे पर चाकू दे मारा।"[196]

पिता शादीराम ने देबू और श्यामे, तेलू और परसराम के दूसरे दोस्तों के नाम गवाही में लिखवा दिये थे। लड़ाई में मुकन्दी के साथ उनके गवाहों और वकील के नाम भी लिखा दिये थे और एफ.आई.आर. देर से लिखाने का कारण दो दिन खत्रियों ने परसराम को घर से नहीं निकलने दिया। पता चलने पर वे बहराम स्टेशन से आये तो रिपोर्ट लिखाने आ गये।

इसके बाद पिताजी ने चौधरी साहब की अदालत के बाहर परसराम और देबू को बयान और गवाही के विषय में ठीक प्रकार से समझा दिया। परसराम के बयान होने पर देबू ने एफ.आई.आर. के अनुसार गवाही दी। गवाही के दौरान मुकन्दी और निहालचन्द वकील का तोप एडवोकेट बेटा दयालचन्द कई बार झल्लाये और बभके, लेकिन देबू ने तो ऐसी गवाही दी थी कि मानो वह ऐसी ही घटना घटी हो। कहीं कुछ भी झूठ या बना हुआ न लगता था।

देबू का बयान हो जाने पर वकील गडयोक ने चौधरी साहब से कहा था कि यह बयान पर्याप्त है, इससे ज्यादा गवाहों की जरूरत नहीं, आप ठीक समझें वैसा फैसला दो।

इसके प्रत्युत्तर में दयालचन्द ने कहा था—"वादी का सारे का सारा बयान और गवाह व साक्ष्य झूठे और मन-गढन्त हैं और यह मामाला खारिज कर दिया जाना चाहिए।"[197] लेकिन चौधरी गजनफर अली ने अल्जाम लगा दिये और मुकदमे की तारीख एक महीने बाद रख दी।

चौधरी साहब का फैसला सुनते ही रोशनलाल गडयोक, परसराम, चेतन, देबू और उसके साथियों में खुशी की लहर दौड़ गयी और काले पानी की हवा खिलवाने वाले मुकन्दी और मंगल, बद्धा और जगदीश और दयालचन्द के चेहरों पर कालिख पुत गई।

जैसे ही फैसला सुनकर मुकन्दी और मंगल अदालत से बाहर आये तो उन्होंने लाला गुज्जरमल की सलाह पर पण्डित शादीराम को अपना बड़ा भाई मानते हुए पैर पकड़ कर माफी माँग ली थी।

चेतन ने शिमला प्रवास में ही सोच लिया था कि वह लाहौर जाकर लॉ कॉलेज में प्रवेश लेकर एल.एल.बी. करेगा और कम्पीटीशन में बैठकर एक दिन हाई–कोर्ट के जज की कुर्सी पर बैठेगा। बनाम मुकन्दीलाल के मामले की पेशी के तीसरे दिन अपना चरित्र प्रमाण–पत्र डी.ए.वी. कॉलेज से लेकर वापस अपने अतीत की स्मृतियों में खो जाता है, किस प्रकार से तेजपाल ने दोनों पक्षों के वकीलों को सुलहनामा दाखिल करने का आदेश देकर दोनों पक्षों में सुलह करा दी थी। दूसरी सुबह माँ ने बताया था कि—"पण्डित जी रात को देर से आये थे। लाला तेजपाल से दो सौ रुपये चार आने सैकड़ा ब्याज पर लेकर उन्होंने सौ रुपये मुकन्दी को और पचास मंगल को घी–चूरी खाने और सेहत बनाने के लिए दिए हैं।"[198] जब चेतन को यह पता चला तो उसके अन्तर्मन को बड़ी ठेस पहुँची और वह सोचने लगा—"उनको रुपये देने के बदले वे सौ रुपये उसे दे देते तो न केवल उसके प्रवेश शुल्क की समस्या हल हो जाती बल्कि वह महत्त्वपूर्ण किताबें भी खरीद लेता...लेकिन अपने किसी बेटे की फीस आदि के लिए वे किसी दोस्त के आगे हाथ नहीं फैला सकते। यह काम तो माँ ही कर सकती थी।"[199]

लेकिन चेतन माँ से भी यह बात कह नहीं सका क्योंकि उसने शिमला में रहते हुए अपनी पत्नी चन्दा को लिख चुका था कि वह दाखिले के पैसे जोड़ लेगा और ना ही उसने माँ को कभी पैसे घर भेजे थे इसलिए वह माँ से रुपयों के लिए कह नहीं सका।

रास्ते चलते–चलते चेतन को फिर स्मृति हो आयी कि जब वह शिमला से घर आया तो पत्नी चन्दा के लिए नयी साड़ी लाया था, उसके पहनने के पश्चात् मैंने चन्दा से कहा था कि वह माँ को दिखाकर चरण छुए लेकिन चन्दा ने विनीत भाव से मना कर दिया

और स्नेह भरे स्वर से कहा था—"मैं ऐसे साड़ी पहन कर जाऊँगी तो माँ जी बुरा मानेंगी। पहले आप माँ को दिखा दो फिर पहन कर चरण स्पर्श करूँगी।" लेकिन साड़ी को माँ के पास ले जाने का साहस चेतन का नहीं हुआ और जब माँ रात को घर के काम से निवृत्त हो गयी तो चेतन ने माँ को साड़ी देते हुए कहा माँ यह साड़ी तो मैं ले आया हूँ क्योंकि वे रुपये मैं पढ़ाई पर खर्च नहीं करना चाहता था...तुम कहो तो यह साड़ी मैं चन्दा को दे दूँ।[200] परन्तु माँ ने उस साड़ी को किसी गरीब ब्राह्मण के घर देने के लिए कहा था और बात करते-करते चेतन ने माँ से कह दिया कि—"माँ मेरे पास दाखिले के पैसे कम हो गये हैं, उसके लिए क्या करूँ?"[201] तब माँ ने पूछा था कि कितने रुपये प्रवेश के लिए लगेंगे और चेतन ने कहा—"ठीक-ठीक तो फार्म भरने के बाद ही पता चलेगा, लेकिन शायद अस्सी रुपये लगेंगे।"[202] और माँ ने हाँ कर दी।

और फिर चन्दा को आश्वस्त करते हुए कहा था—"चन्दा मैं लॉ कर लूँ। कम्पटीशन में आ गया तो खैर, नहीं तो मैं प्रैक्टिस करूँगा, इतना पैसा कमाऊंगा कि तुम्हें सोने में पीली कर दूँगा। यह साड़ी तो कुछ भी नहीं, मैं तुम्हारे लिए ऐसी साड़ियाँ ला दूँगा कि तेरी किसी सहेली ने देखी तक न हो।"[203] और फिर चन्दा ने गर्व भरे स्वर में धीरे-से कहा था—"मुझे पूरा विश्वास है।"[204]

चेतन अपने विचारों में खोया हुआ था कि—"माँ ने ठीक ही कहा था—जिस धन को वह अपनी शिक्षा पर खर्च नहीं कर सकता था, उससे अपनी पत्नी के लिए साड़ी कैसे खरीद सकता था?"[205]

और चेतन पिछले दिनों की स्मृतियों को ताजा करते-करते अपने घर पहुँच गया था और अपनी माँ से अस्सी रुपये लेकर चेतन ने लाहौर जाकर लॉ कॉलेज में सुबह की शिफ्ट में प्रवेश ले लिया। लॉ कॉलेज में प्रवेश लेने के पीछे चेतन के अन्तर्मन में एक बहुत बड़ी टीस थी जो अक्सर निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों में देखने को मिलती है, वह इस प्रकार थी—"यदि चेतन के ससुर पागल न हो गये होते, पण्डित वेणी प्रसाद अपने छोटे भाई के उत्पात से परेशान होकर उसे लाहौर के पागलखाने में न भर्ती करा गये होते, चेतन की सास अपने जेठ की छत्रछाया में रहने के बदले लाहौर आकर सेठ वीरभान के यहाँ सात

रुपये महीने पर महाराजिन की नौकरी करके अपने वेतन से दूध और बादाम लेकर हफ्ते में दो बार पागलखाने जाकर अपने पति को बादाम खिलाकर और दूध पिलाकर उसके दिमाग की खुश्की दूर करके उसे पूर्ण रूप से स्वस्थ बनाने का हठ और सपना न पालती और सबसे बढ़कर यह कि यदि नये-नये डिप्टी कलेक्टर बने उसके अहंकारी और मोहल्लावासी सहपाठी अमीचन्द की सगाई सेठ वीरभान की सुन्दर दत्तक पुत्री कृष्ण से न हो गयी होती और हठात् उस घर में चेतन की पत्नी की स्थिति महज महराजिन की लड़की के नाते हेय न बन गयी होती तो चेतन कभी कानून की परीक्षा पास करके सब-जजी के कम्पटीशन में बैठने और सब-जज बन कर उस घर में अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा बढ़ाने का फैसला न करता...लेकिन नियती ने कुछ ऐसा जाल बिछाया था कि उसके सामने कोई चारा न बचा था। उसकी सास वह नौकरी छोड़ने को तैयार न थी। सेठ वीरभान और सेठानी उसे आदर और प्यार से रखे हुए थे। चेतन ने भी उस स्थिति से समझौता कर लिया था, लेकिन कृष्णा के साथ अमीचन्द की सगाई ने उसका रास्ता लॉ कॉलेज की ओर मोड़ दिया और परम साधनहीन के बावजूद चेतन प्रबल हठ से लॉ कॉलेज में प्रवेश लेने और प्रथम श्रेणी से कानून पास करने का फैसला करता है।"[206]

इस प्रकार की मानसिक वेदना ने उसके दिल को झकझोर दिया और प्रवेश लेने के लिए विवश हो गया। येन-केन-प्रकारेण लॉ की पुस्तकों की व्यवस्था करके वह अपना खर्चा चलाने के लिए और कॉलेज की फीस देने हेतु सरदार जगदीश सिंह व लाला हाकिमचन्द के बच्चों को पढ़ाने के लिए ट्यूशन करता है।

जब चेतन को लाहौर आये दो महीने हो गये थे उस समय तक जालन्धर (घर) से कोई समाचार नहीं मिला था। इसी बात से चिन्तित चेतन अपने मित्र अनन्त को पत्र लिखता है। पत्र में लॉ कॉलेज में प्रवेश से लेकर लॉ की पढ़ाई के विषय में और अपने कई प्रसंग लिखता है जो लाहौर में अपने साथ घटते हैं और पत्र के अन्त में लिखता है—"अनन्त जब मैं जालन्धर से चला था तो चन्दा और बच्चे की तबियत ठीक नहीं थी। मैंने कई पत्र घर लिखे हैं, लेकिन माँ ने एक का भी जवाब नहीं दिया।...तुम अगले सप्ताह जालन्धर जा रहे हो तो...हमारे घर जाकर उन दोनों के स्वास्थ्य के बारे में पता करके मुझे

वहीं से पत्र लिखना ताकि मेरी चिन्ता मिटे और मैं पढ़ने-लिखने में मन लगा सकूँ। आशा है बेपरवाही से काम न लोगे। चन्दा और बच्चे की चिन्ता मुझे पढ़ाई में मन नहीं लगाने देगी। मैं बेसब्री से तुम्हारे पत्र की बाट देखूँगा।"[207] फीस तथा कॉपियों की व्यवस्था करने के बाद चेतन के पास नहीं के बराबर पैसे बचते थे, अत: लिखने में वह कंजूसी करता था। वह किसी कहानी की थीम सोच ही रहा था कि चातक जी और प्रसिद्ध हिन्दी प्रकाशक श्री पन्नालाल जैन वहाँ आकर चेतन को खाना खाने के बहाने से बाहर ले जाते हैं, लेकिन पन्नालाल जी रास्ते में ही चकमा देकर फरार हो जाते हैं।

चेतन और चातक जी, चातक जी के घर पहुँचकर खाना खाते हैं और 'प्रेम की वेदी' कहानी को चेतन चातक जी से संशोधन करवाता है, जिसे वह ठाकुर साहब की पत्रिका 'सरस्वती' के लिए भेजता है। कुछ दिन बाद ठाकुर साहब का पत्र आता है कि आप अपनी दो फोटो 'सरस्वती' को भेजें। इस बात की सूचना चेतन कवि चातक को सउत्साह देता है।

'पलटती धारा' उपन्यास के तीसरे खण्ड में दूसरे दिन चातक जी चेतन को पन्नालाल जैन के लिए नाटक लिखवाने के लिए उसके घर खाना खाने के बहाने से ले जाते हैं। चेतन ने कभी नाटक नहीं लिखे थे और न ही नाटक लिखना चाहता था लेकिन चेतन यह सोचकर कि अगर वे उसे कुछ रुपये पेशगी दे दें तो वह नाटक लिख देगा...वह कुछ रुपया माँ को दे आएगा, बाकी रकम से पाठ्यक्रम की जरूरी पुस्तकें खरीद लेगा। उसे पुरी के यहाँ बार-बार न जाना पड़ेगा। वह जब चाहेगा, वही पुस्तक अपनी छत पर बैठे पढ़ सकेगा। उसके विस्तृत नोट लेगा और यूँ प्रथम श्रेणी पाने के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा दूर हो जायेगी।[208]

चेतन ऐसा मन-ही-मन सोचकर खाना खाकर उठते हुए चातक जी से कहता है कि "यदि आप कुछ पेशगी दे सकें तो मैं कोशिश करके देखूँगा।"[209]

चेतन चातक जी से शरारतन पूछता है कि "आप तो यह कहकर लाये थे कि कोई योजना बनायेंगे, इस ठग को परखेंगे कि इसने कितनी शक्ति प्राप्त कर ली है, और इस

'गैया' को कितना दुहा जा सकता है, पर आपने तो न कोई बात की, न कोई योजना बनायी।"[210] उल्टा आपने तो मेरी परीक्षा ले ली।

पेशगी की बात सोचकर चेतन सोचने लगता है कि उसे नाटक लिखने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। यदि वह ऐसा करेगा तो लॉ में प्रथम श्रेणी नहीं पा सकेगा और ना ही सब-जज बनेगा और जज नहीं बना तो अपने मोहल्लेवासी सहपाठी अमीचन्द और सेठ वीरभान की पुत्री कृष्णा की शादी पर वह चन्दा को कैसे भेज सकेगा।

फिर इस सिलसिले में उसे अपनी तमाम तकलीफ, तनाव और अन्त उसकी याद में ताजा हो आये। इसलिए उसने मन-ही-मन तय किया कि नाटक नहीं लिखेगा और अवकाश के क्षणों को अध्ययन में लगायेगा और योग्यता सूची में स्थान प्राप्त करेगा। इसी अन्त में वह चातक जी से नमस्कार कर चला आता है।

दूसरे ही दिन अनन्त का पत्र आता है जिसमें लिखा था कि—"मैं तुम्हारे घर गया था।...तुम्हारी पत्नी बीमार थी। उसे टाइफाइड हो गया था, लेकिन अब वह ठीक है तुम चिन्ता मत करना।"[211] पत्र पढ़ते ही चेतन हताश हो गया और उसका अन्तर्मन सोचने लगता है—"परसराम को टाइफाइड हो गया था तो माँ और बाबूजी ने घर को सिर पर उठा लिया था और चन्दा को टाइफाइड हुआ तो किसी ने मुझको खबर तक नहीं दी।"[212] इस तरह काफी ऊँच-नीच सोच-समझकर चेतन यही फैसला लेता है कि वह नाटक लिखेगा, जिससे मिले पैसों से पत्नी का इलाज करा सके और यही सोचकर चेतन चातक जी को टॉड राजस्थान ले आया और मेवाड़ का सारा इतिहास पढ़ डाला।

फिर भी चेतन को नाटक की थीम हाथ नहीं लगी। यही सोचकर चेतन चातक जी के घर जाता है कि बप्पा रावल और राजा हमीर के जीवन प्रसंगों को जिस तरह उसने नाटक का जामा पहनाने की सोची है, उस पर चातक जी से राय करके दोनों में से एक थीम पर नाटक लिखने का तय कर लेगा और कुछ पेशगी लेकर अपनी पत्नी को देखने जालन्धर चला जायेगा तथा आकर 'पवित्र हिन्दू होटल' में सीट का प्रबन्ध कर नाटक लिख देगा, उसे चातक जी ने ना पास कर दिया।

चेतन जानता था कि चातक जी गलत नहीं कहते, उसने यूँ ही बहस के लिए कहा—"साहित्य हिन्दू-मुसलमान से मतलब नहीं रखता, वह आदमी से उसके कार्य-कलाप और उस सबके पीछे कार्यरत उसके मनोविज्ञान से मतलब रखता है और बप्पा रावल तथा सोलंकिनी के उस प्रसंग में...।"[213] फिर भी वह थीम पसन्द न आयी तो चातक जी ने बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द की पुस्तक चेतन को दी। चेतन जड़वत हो गया कि मेरी सारी मेहनत बेकार हो गयी। चेतन किताब लेकर चातक जी से पेशगी के रुपये माँगता है तो चातक पाँच रुपये निकाल कर यह कहते हुए कि तुमने पहले बताया होता तो मैं पन्नालाल जी से रुपये ले आता।

चातक जी से पाँच रुपये लेकर चेतन जालन्धर आता है घर पहुँचते ही वह आपे से बाहर हो जाता है। यहाँ तक कि वह अपने पिता को भी भला-बुरा कहता है कि जब आपके पुत्र को टाइफाइड हुआ तो सभी परेशान थे, लेकिन—"चन्दा आपकी बहू है, यही फर्क है। हमारे यहाँ बहुओं की कोई कदर नहीं। एक मर जाती है तो चौथे दिन ही दूसरी के लिए सगुन आ जाता है।"[214]

और चन्दा के हाल-चाल पूछने पर मन-ही-मन सोचने लगता है कि—"ये लोग कैसे जालिम हैं।...मैं लगातार तुम्हारे खत का इन्तजार करता रहा...अपने घर की हालत मैं जानता हूँ। जन्म-मरण के अलावा यहाँ कोई किसी को खत नहीं लिखता। मुझे तुम्हारी और बच्चे की चिन्ता रहने लगी...पास पैसे नहीं थे, वरना उसी शाम चला आता।"[215]

चेतन ने आगे कहा था—"हालात देखकर कभी-कभी जी में उबाल उठता है कि कानून-वानून छोड़कर नौकरी कर और तुम्हें लाहौर ले जाऊँ। यह ख्याल कि तुम बीमार और कमजोर हो, कैसे पढ़ाई में मेरा मन लगने देगा।"[216]

चन्दा के यह कहने पर कि—"मुझे और तो कोई समस्या नहीं है लेकिन मुझे भूख बहुत लगती है, पर माँ घर में सबके बाद खाना खाती है मैं उनसे पहले कैसे खा लूँ।"[217] अगर पहले खाना खाती हूँ तो यह माँ को मंजूर नहीं जिस पर चेतन ने कहा था—तुम माँ से कह दिया करो जब भूख लगे तुम्हें तो। चन्दा फिर सोचने लग जाती है

कि—"वह अपने इस मातृभक्त पति को कैसे समझाती कि अपनी जिस माँ को वह दया-माया की मूर्ति समझता है, वह उसे कितने ताने-तिशने और कोसने-उलाहने देती है, देर से उठने पर, वक्त से स्नान करने पर, ठीक से बर्तन न चमकाने पर, कपड़े न धोने पर, सही तौर पर बच्चे की देखभाल न कर सकने पर।...बच्चे के जन्म की वजह से मैं कमजोर हो गयी हूँ। बीमारी ने मेरा खून चूस लिया है।...अंग-अंग टूटता रहता है। न माँ जी की तरह तड़के उठ पाती हूँ, न जल्दी-जल्दी बर्तन मल पाती हूँ।"[218]

चेतन चन्दा की शिकायत को सुनकर दुकान से दूध और आधी डबल रोटी लाकर चन्दा को खिलाता है और बाद में स्वयं माँ के साथ खाना खाता है और वहीं माँ के पास बैठकर चन्दा की बात को कहता है। तब माँ ने आश्वस्त किया कि वह दुःखी नहीं हो और अपनी लॉ परीक्षा की तैयारी करे तथा आते समय चेतन माँ से पन्द्रह रुपये ले आया था।

चेतन लाहौर वापस आकर 'पवित्र हिन्दू होटल' में बैठकर कानून के शास्त्र की पुस्तक पढ़ रहा होता है कि उसी समय भाई साहब ठाकुर साहब का लिखा हुआ पत्र लेकर आते हैं जिसमें ठाकुर साहब ने लिखा था—"अभी-अभी मुझे चातक जी का पत्र मिला है। उन्होंने आपकी कहानी 'प्रेम की वेदी' की सिफारिश की थी। अब वे चाहते हैं हम उसे 'सरस्वती' में न छापें। उन्होंने शिकायत की है कि वे आपको उर्दू से हिन्दी की ओर लाये, उन्होंने आपको शुद्ध हिन्दी लिखना सिखाया, आपकी रचनाओं में संशोधन करके उन्हें छपने योग्य बनाया, लेकिन आपने सबका बदला घोर कृतघ्नता से दिया है। सम्पादक बिरादरी के सदस्य होने के नाते उन्होंने हम पर जोर दिया है कि हम आपकी उस कहानी को तत्काल लौटा दें और आपको लिखें कि चातक जी की सिफारिश पर कहानी छप रही थी, अब उन्हीं के कहने पर लौट रही है।

हम नहीं जानते, आपने चातक जी से क्या दुर्व्यवहार किया है जो वे आपसे इस हद तक नाराज हो गये हैं। हम अपनी ओर से यही कहना चाहते हैं कि यद्यपि उन्होंने आपकी सिफारिश की थी, लेकिन कहानी महज उनकी सिफारिश के कारण स्वीकृत नहीं हुई। हम उसे 'सरस्वती' में इसलिए स्थान दे रहे हैं कि वह मौलिक और उत्कृष्ट लगी। यही बात हम चातक जी को भी लिखने जा रहे हैं। कहानी स्वीकृत हो गयी है। 'सरस्वती'

के किसी आगामी अंक में छपेगी। इसी महीने लाहौर में अखिल भारतीय प्रदर्शनी में वे कवि सम्मेलन का संचालन करने आयेंगे और चातक जी को समझायेंगे कि उन्हें वैसा पत्र नहीं लिखना चाहिए था और व्यक्तिगत राग-द्वेष में सम्पादकीय भाईचारे को नहीं लाना चाहिए था।...चेतन से कोई भी भूल चूक हो गयी हो अथवा चातक जी को कोई भ्रम हो गया हो तो वह उसका निराकरण कर दें।"[219]

ठाकुर साहब का पत्र पाकर चेतन को कवि चातक जी की क्षुद्रता पर भी क्रोध आया मगर यह जानकर अत्यधिक खुशी भी कम नहीं हुई थी कि उनकी इस ओछी हरकत का ठाकुर साहब ने कोई नोटिस नहीं लिया था। कहानी को उनकी सिफारिश पर नहीं बल्कि उसकी योग्यता पर स्वीकृत किया था।

ठाकुर साहब का हार्दिक आभार प्रकट करते हुए चेतन ने लिखा था कि चातक जी बेकार नाराज हैं। जब आप लाहौर आयेंगे तो बतायेगा कि उन्होंने उसके साथ कितनी बड़ी ज्यादती की है, वे किस तरह उसका शोषण करना चाहते थे और जब हकीकत जानकर वह उनके चंगुल से निकल गया तो अपनी कुण्ठा में वे उस पर झल्ला रहे हैं। विक्षोभ तो उस स्थिति पर उसे होना चाहिए न कि उन्हें। चेतन ने ठाकुर साहब को धन्यवाद दिया था कि उन्होंने कहानी लौटायी नहीं और उन्हें विश्वास दिलाया कि उन्हें अपने फैसले का कभी अफसोस नहीं होगा और वह उम्र भर उनका ऋणी रहेगा।

पत्र लिखकर चेतन भाई साहब को छोड़ने सीढ़ियों तक जाता है। उस समय उन्होंने मुझे परामर्श दिया था कि बेकार अपना दिमाग खराब न करे और समझ ले कि जो कुछ हुआ है अच्छे के लिए ही हुआ है और पढ़ने में मन लगाये।

तीसरी बार ठाकुर साहब का पत्र पढ़कर चेतन डायरी में लिखता है—"आज ठाकुर साहब का पत्र मिला। चातक जी को पता चल गया है कि मैं 'राजपूताने का भीष्म' उनके साथ नाटक नहीं लिखूँगा। चूँकि उन्होंने पन्नालाल से रुपये लिए हैं, इसलिए वे मुझसे बहुत नाराज हैं।...मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि चतुर बनने की तमाम कोशिशें के बावजूद मैं कितना बेवकूफ हूँ। मैं दूसरों का सहज विश्वास कर लेता हूँ, मार खाता हूँ और फुरसत में पछताता हूँ, क्या मुझे कभी आदमियों की पहचान नहीं आयेगी। मैं ऐसे ही ठगा

जाता रहूँगा। भाई साहब ने कहा है—जो कुछ हुआ अच्छे के लिए हुआ है। 'यथैव विधाता विधियति तथैव शुभाय' इसमें क्या शुभ है? दो महीने नाटक लिखने के प्रयास में बरबाद हो गये। फल यह निकला कि पचास रुपये सिर पर कर्ज चढ़ गये, नाटक अधूरा पड़ा है और चातक जी विष घोल रहे हैं।

पर शायद भाई साहब ने ठीक ही कहा है। यह सब मेरे फायदे के लिए ही हुआ है। नाटक में लगा रहता तो पढ़ाई का नुकसान होता। चातक जी नाटक ले लेते। पैसे भी दिलवाते या खुद दे देते और मेरा नाम न देते तो मैं क्या कर लेता...मैं शायद परीक्षा ही में फेल हो जाता। फिलहाल मैं पूरी लगन से पढूँगा, लॉ पास करूँगा, कम्पटीशन में बैठूंगा और अगर कभी नाटक लिखूँगा तो वह सिर्फ मेरे नाम से प्रकाशित होगा।"[220]

चेतन ने डायरी बन्द की और पुस्तक उठाकर परम एकाग्रता से पढ़ने में तल्लीन हो गया और यहीं पर तीसरे खण्ड का विराम हो जाता है।

'पलटती धारा' उपन्यास के चौथे खण्ड में चेतन लाहौर से जालन्धर इसलिए आ जाता है कि एफ.ई.एल. (कानून के पहले वर्ष) की परीक्षा के लिए तैयारी को मिली दो महीने की छुट्टियाँ जालन्धर में बितायेगा। अपनी पत्नी चन्दा की चिन्ता से मुक्त होकर एकाग्र भाव से परीक्षा की तैयारी व घर के काम-काज में उसकी मदद करेगा। चूँकि उसकी एक कहानी 'सरस्वती' में स्वीकृत हो गयी थी और दूसरी प्यारी सी उर्दू कहानी हिन्दी में। उसे मुँशी चन्द्रशेखर की पत्रिका 'हंस' के लिए भेज दिया। इसलिए वह जालन्धर आ गया।

तभी एक दिन बस्ती गजां से चेतन के साले रणवीर ने सन्देश दिया था कि अमृतसर में नीला के जेठ के लड़के त्रिलोक का देहान्त हो गया है, इसलिए नीला कोडरमा से आयी है और कल शाम या परसों सुबह अमृतसर पहुँचेगी। इस पर चेतन ने अफसोस करते हुए सुबह आने के लिए कहा था।

चेतन बस्ती गजां से जब वापस आता है तो चन्दा आते ही आँगन में पसर जाती है। देखने पर पता चलता है कि चन्दा को सौ डिग्री बुखार है तो वह मन-ही-मन भयभीत हो आया था। उसकी पत्नी बीमार पड़ गयी तो वह उसकी सेवा सुश्रूषा करेगा या अपने

इम्तिहान की तैयारी करेगा। यह सोचकर वह उसे हकीम 'नबी जान' को दिखाकर दवा ले आता है।

चौथे दिन माँ चन्दा को शीतला माता के मेले में माथा टेकने के लिए ले जाती है—वहाँ मेले में चन्दा को नीला भी मिल जाती है, जो सुबह घर आने के लिए कहती है। नीला के घर आने व वहाँ रहने पर चेतन को अनेक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। साथ ही ठीक ढंग से परीक्षा की तैयारी भी नहीं कर पाता है।

इस दौरान चेतन को नीला की शादी, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या, नीला के सुबह की सैर, नीला के मुँह से लक्ष्मी व केसरी की कहानियाँ अपनी अतीत की स्मृतियाँ ताजा हो उठती हैं। यहाँ तक चेतन का मन निम्न-मध्यवर्ग के विषय में सोचने को मजबूर होता है—"शोख गंजा और माँ के शब्दो में 'चलित्तरी' औरतों के सिलसिले में माँ की मनोग्रन्थियों पर निम्न-मध्यवर्ग की वर्जनाओं पर उस दबे-घुटे संकुचित वातावरण पर, उसमें औरत-मर्द के सहज सम्बन्धों के नितान्त अभाव पर...क्यों चन्दा को उसे अपने कमरे में बुलाने की जरूरत पड़ी...नीला को हमेशा तो वहाँ रहना नहीं...वह इतनी मूर्ख तो नहीं कि उसकी पढ़ाई में बाधा डाले।...बल्कि माँ अगर अपने सामने बैठाकर तीनों को खाना परोस देती तो कितना अच्छा होता। नीला सहज भाव से हँसती, चुहलें करती, न उस छद्म की जरूरत पड़ती, न उस वंचना की...चेतन ने लम्बी साँस भरी...क्या यह नियम निम्न-मध्यवर्गीय दृष्टिकोण कभी बदलेगा?...क्या इस वर्ग के लोग, मन-ही-मन वह अपने वर्ग को उस संकुचित मानसिकता को कोसने लगा...सारे फसाद की जड़ यही शक है।

यह शक चन्दा के मन में पैदा क्यों नहीं होता? वह क्यों आम निम्न-मध्यवर्गीय औरतों की तरह टुच्ची, शक्की, ईर्ष्यालु और क्षुद्र नहीं है? वह क्यों मूर्खता की हद तक सरल, सहिष्णु और उदार?...चन्दा दूसरी पत्नियों की तरह तेज-तर्रार और चतुर होती तो चेतन लाख चाहता, वह कभी नीला को उसके निकट न फटकने देती, लेकिन वह शीतला माता के मन्दिर में गयी और अपनी उस सुन्दर और शोख बहन को कल्लोवानी आकर कुछ दिन रहने का निमन्त्रण दे आयी। उसकी जगह कोई दूसरी औरत होती तो बाहर ही

बाहर उसका पत्ता काट देती।"[221] इसी अन्त में चेतन कुछ नहीं कर पाता और एक दिन वह अपने पिता के पास बहरामपुर ठीक ढंग से परीक्षा की तैयारी के लिए निकल जाता है।

इण्टर के डिब्बे में बैठा चेतन सोचता है कि—"नीला बस्ती से आयी होगी तो यह जान कर कि वह बहरामपुर चला गया है, उसका हँसमुख और सुन्दर उत्साह भरा चेहरा एकदम उतर गया होगा...नीला मुझे माफ कर दो।...मैं तुम्हारे प्यार के योग्य नहीं...मैं अपने पिता जैसा जालिम, क्रूर और कलुष नहीं हो सकता। मैं चन्दा जैसी पत्नी से विश्वासघात नहीं कर सकता। उसे और तकलीफ नहीं पहुँचा सकता।"[222] तभी चेतन तनाव मुक्त होकर गहरी नींद में सो गया था और यहीं पर उपन्यास का चौथा खण्ड समाप्त हो जाता है।

उपन्यास के पाँचवें खण्ड में चेतन अपने पिता शादीराम के पास बहराम रेलवे स्टेशन पहुँचता है। वहाँ पढ़ने में एकाग्र मन से तल्लीन हो जाता है। बहराम में घी, दूध और छाछ की कमी न थी, इसलिए चेतन अपनी पत्नी को स्वास्थ्य में सुधार होगा, यह सोचकर अपने पास बुला लेता है।

अपने पिता की बुरी आदतों को सुधारने के लिए चेतन को यहाँ काफी मशक्कत करनी पड़ती है। वह अपने पिता को कह उठता है—"बाऊजी, आपकी बहू आ गयी है,आपकी पसन्द का खाना पका सकती है, अब आप शाम को बाहर क्यों खाते हैं। अपनी बहू को सेवा का मौका दीजिए।"[223] इस पर पिता ने कहा था—"शाम को बेटा, तुम तो जानते हो, मैं जरा पीता हूँ और गोश्त के साथ खाना खाता हूँ। तेरी माँ चौके में गोश्त लाना पसन्द नहीं करती। होशियारपुर के कट्टर मिश्र घराने की ब्राह्मणी...मैं...खाह-म-खाह उसके जज्बात को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता...।"[224]

चेतन अपने पिता की सारी स्थिति को जानकर अपनी पत्नी से कहता है— "पिताजी ने कभी इस तरह आराम, अत्मीनान, प्यार और दुलार से घर में खाना नहीं खाया। माँ को उनके गोश्त, शराब और सिगरेट से सख्त चिढ़ रही है, हिन्दू पत्नी है परम पतिव्रता। पति को परमेश्वर ही समझती है, पर पति को उसने अंजाने में छेक भी दिया है। मुझे लगता है कि उनके जुल्म और क्रूरता का एक कारण यह भी है। वरना बाऊजी तो बड़े

भोले और उदार आदमी हैं। बहरहाल हम यह तजुरबा करके देखेंगे। मेरा ख्याल सही निकला तो यह सिर्फ बाऊजी का पीना कम हो जायेगा, अच्छी गिजा खाने से उनकी सेहत भी बेहतर हो जायेगी।"[225]

इस बात का पिता पर सफल प्रयोग करने के लिए चेतन को अपने हाथों से अपने ही घर (रेलवे क्वार्टर) में मदिरा पिलानी व चन्दा को घर में ही मांस पकाकर खिलाना पड़ा है, जिससे पिता की आदतों में थोड़ा-थोड़ा सुधार भी आता है।

रात को सोते समय चेतन के अन्त   में आध्यात्मिकता से सम्बन्धित कई विचार आते हैं कि जन्म और पुनर्जन्म, आत्मा और परमात्मा, निराकार और निर्गुण, निरपेक्ष, स्वयंभू और परिभू स्रष्टा की कल्पना। वह सपने ही सपने में शिमला में अपने मित्र नारायण के पास भी पहुँच जाता है, जहाँ कि इस सम्बन्ध में काफी तर्क-वितर्क हुआ था—दोनों दोस्तों में और जब आँख खुली तो कुछ नहीं था। आँखें खुलने पर...चेतन दण्ड-विधान की पुस्तक लेकर पूरी एकाग्रता से पढ़ने में तल्लीन हो जाता है।

'पलटती धारा' उपन्यास के छठे और अन्तिम खण्ड में चेतन बहराम से छुट्टियाँ खत्म होने से पहले ही इसलिए वापस आ जाता है कि अपने पिता को यह कहने पर कि रेलवे क्वार्टर में जगह कम होने की वजह से मेरी पढ़ाई ठीक ढंग से नहीं हो पाती है, अत: पढ़ने के लिए कहीं और जगह मिल जाती तो एकाग्रता से पढ़ाई करता—इस पर पिता ने रेलवे स्टेशन पर ही माल गोदाम में पढ़ने के लिए व्यवस्था कर दी थी...वह वहाँ पढ़ने के लिए दो दिन तक लगातार जाता भी रहा लेकिन दो कबूतरों की वजह से पढ़ाई में तल्लीन नहीं हो सका, इसलिए वापस घर आकर ही पढ़ाई करता है।

चेतन का दिमाग हताशा, निराशा, उक्ताहट, बेजारी, क्रोध और विक्षोभ से भरा वह अपने पिता शादीराम से झिझकते-झिझकते कहता है—"बाऊजी, मेरे पढ़ने के लिए कोई दूसरी जगह तजबीज कर देते तो बहुत अच्छा होता।"[226]

चेतन के ऐसा कहते ही पण्डित शादीराम ने एक छोटा-मोटा भाषण जड़ दिया कि—"अमरीका का राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन रेलवे लाइन पर मजदूरी करता था और

फुर्सत के वक्त वहीं बैठकर पढ़ता था। गाड़ियाँ आती-जाती रहती थीं, उसके साथी मजदूर बतियाते रहते थे, लेकिन लिंकन की एकाग्रता को कोई भी चीज भंग नहीं कर पाती थी...वह प्रथम श्रेणी में पास होना चाहता है और उन दो कबूतरों की खौफ भी फड़फड़ाहट ने उसे परेशान कर दिया...।"[227]

और दूसरे दिन ही पिता ने उन दोनों कबूतरों को बन्दूक का निशाना लगाया था और उसके मन में जो असहाय पीड़ा थी, उसे सारे का सारा दोष अपना ही लगता था। इस बात को उचित-अनुचित सोचते हुए उसके मन में अपने पिता की अतीत की स्मृतियाँ एक के बाद एक आने लगीं कि किस प्रकार के मेरे निर्दय पिता हैं।

बस यह सोचकर अपने दिल को मसोस कर वह बहराम से जालन्धर आ गया और एक दिन रुक कर वापस लाहौर जाने को रेलवे स्टेशन पर पहुँचता है कि नीला से मुलाकात होती है और इसके पश्चात् फ्रण्टियर मेल से जालन्धर से लाहौर रवाना हो जाता है।

'पलटती धारा' उपन्यास का नायक चेतन का सम्पूर्ण जीवन निम्न-मध्यवर्गीय इच्छाओं एवं कुण्ठाओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

वह अपने आपको शिमला, जालन्धर और लाहौर में निम्न-मध्यवर्गीय समाज की जो भी समस्याएँ प्रतिपादित हुई हैं व पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ती चली जाती हैं। समाज को जाग्रत करने व तत्कालीन परिवेश को वर्तमान सन्दर्भ से जोड़ने वाला यह यथार्थ चित्रण करुणा पूर्ण है।

निमिषा

'निमिषा' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का ग्यारहवाँ उपन्यास है, जो छः खण्डों में विभाजित है। 'निमिषा' उपन्यास को पढ़कर एक कथाकार मित्र ने कहा था—"यह एक भयानक उपन्यास है। मैं इसे पढ़कर सारी रात नहीं सो सका। क्या माला जैसी नारियाँ सचमुच होती हैं।"[228]

'अश्क' जी का यह उपन्यास जब साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में छपा था तो एक पाठक को तो यह इतना अच्छा लगा कि जिस दिन इसकी अन्तिम किस्त छपी और उनके घर बच्ची ने जन्म लिया तो उन्होंने न केवल उसका नाम 'निमिषा' रखा वरन् इसकी सूचना साप्ताहिक को भी दी। 'निमिषा' के विषय में उपन्यास सम्राट् मुँशी प्रेमचन्द ने भी लिखा था कि—"कोई नयी चीज लिखने से बेहतर है कि फितरत (मानव प्रकृति) का सच्चा खाका खींच दिया जाय।"[229]

इन सभी विषयों को व्यापक रूप में चित्रित किया है 'अश्क' जी ने अपने उपन्यास 'निमिषा' में। 'निमिषा' उपन्यास की शुरुआत अपने एडवोकेट चाचा लाला हिकमत राय के घर से होती है। वहाँ निमिषा यह सोचती है कि बी.टी. की परीक्षा में प्रवेश ले लिया जाये लेकिन बीमार होने के बावजूद उसने परीक्षा दी और क्लॉस में सर्वप्रथम आने से रह गयी और कुछ दिन वह हतोत्साह बैठी रही थी। किसी से बात करने को, किसी से मिलने को उसका मन न होता था। चाचा और प्रिंसीपल मिसेज शर्मा के तसल्ली देने पर वह आगे की सोचने लगी थी।

निमिषा रोज 'टिब्यून' और 'सिविल मिलिट्री गजट' को पढ़ती और लगातार आवेदन-पत्र देती। उसे विश्वास था कि उसे कहीं-न-कहीं नौकरी मिल जायेगी लेकिन फिर भी वह बेचैन थी। जब आवेदन-पत्र दे देकर वह हार गयी और कहीं से जवाब न आया तो एक दिन उसने अटैची केस तैयार कर अपने फ्लैट से उतर कर मिसेज शर्मा के घर जाने के लिए निस्बत रोड पर खड़ी खाली ताँगे में बैठकर 'मॉडल टाउन' बस अड्डे पर जा रही थी। रास्ते में लाहौर का गोविन्द आता दिखाई दिया जिसकी चर्चा अपनी अन्तरंग सहेली कनक अक्सर किया करती थी। उसी के साथ लाजपत राय हॉल के मुशायरानुमा कवि सम्मेलन में गोविन्द की गजल सुनी थी, लेकिन उससे व्यक्तिगत रूप से परिचित न हो पायी थी। वह सोचने लगी कि—"कनक ने कहा था कि निमिषा जल्दी तैयार हो जाए, लाजपत राय हॉल में एक कवि सम्मेलन है, वही सुनवाने के लिए वह उसे लेने आयी है।"[230]

गोविन्द का नाम सुनते ही निमिषा स्वयं कवि सम्मेलन में जाने के लिए तैयार हो जाती है और लाजपत राय हॉल पहुँचकर अगली पंक्ति की दो कुर्सियों पर प्रतिष्ठित हो

गयीं। तभी कवि सम्मेलन शुरू हो गया। तरुण जी गोविन्द के परिचय में अपना कर्त्तव्य बता रहे थे—"क्योंकि वे पहली बार हमारी संस्था में मंच पर आ रहे हैं। वे उर्दू के कवि हैं 'दर्द' उपनाम से लिखते हैं, लेकिन वे जितने अच्छे कवि हैं उतने ही सक्षम चित्रकार हैं। हिन्दी प्रेमी यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि उन्होंने हिन्दी में भी लिखने का वचन दिया है। अभी वे अपनी एक ताजा गजल सुनायेंगे।"[231]

गोविन्द ने गजल पढ़ी थी। उसकी आवाज में बेपनाह सोच और लोच था, लेकिन जाने कवि के स्वर में कैसा दर्द था कि निमिषा के सामने अपनी माँ की बीमारी और पिता की उदास सूरत आ गयी—"उसके मिलिट्री एकाउन्टेन्ट पिता त्रिवेन्द्रम छावनी में थे, वहाँ का खान-पान और जलवायु रास न आया था और माँ को आँतों की शिकायत रहने लगी। डॉक्टर ने माँ का ऑपरेशन करने के लिए कहा लेकिन पिता का दिल ऑपरेशन के लिए गवाह नहीं दिया और उसे लेकर लाहौर पच्छोवाली मोहल्ले की अपनी हवेली में आ गये, वहाँ निमिषा की दादी से अपनी माँ की न बनती थी। सो पिता उसे शेखपुरा उसके मायके में ले गये थे, यहाँ नानी व मौसी ने माँ की बहुत सेवा सुश्रूषा की लेकिन कोई आराम नहीं मिला तो पिता ने अपनी बदली पंजाब करा ली।"[232]

निमिषा ने कनक से कहा—"लगता है गोविन्द ने ये शेर अपनी मरणासन्न पत्नी को लेकर लिखे हैं। 'जाके पैर न फटे बिवाई सो क्या जाने पीर परायी।'"[233]

जब कवि सम्मेलन खत्म हुआ तो निमिषा ने गोविन्द से मिलना चाहा लेकिन मिल न सकी और दोनों सहेलियाँ अपने-अपने घर आ गयीं। रात को अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे रात को निमिषा को नींद न आयी और उसकी आँखों में अपने ये शेर मन-ही-मन गुनगुनाये और कण्ठ भरभरा आया था—

जीत जाते साथ देता गर फलक,
'दर्द'हमने हार दीं सब बाजियाँ।[234]

ताँगे में बैठी निमिषा अपने अतीत में ऐसे खो गयी थी कि उसे पता ही नहीं चला कि कब बस अड्डे पर पहुँच गयी।

बस में बैठकर निमिषा फिर अपने अतीत में खो गयी—"कितना बड़ा था उसका घराना, उसके स्व. दादा बच्छोवाली लाहौर के साहूकार थे, माल रोड पर उसके फूफा की जनरल स्टोर की बहुत बड़ी दुकान थी, नाना शेखपुरे के जमींदार थे, मामा मौसा विलायत हो आये थे, लेकिन महीने भर के अन्दर-अन्दर उसके माता-पिता उसे छोड़कर चले गये तो उसकी स्थिति हीरे मोतियों में घिरे ऐसे व्यक्ति सी हो गयी थी, जिसे किसी चीज को छूने का अधिकार न हो। नाना के दिवंगत हो जाने पर मामा लोगों में जायदाद को लेकर झगड़ा हो गया था और नाना के देहावसान के बाद तो वह शटल कॉक की तरह इस मामा के आँगन से उस मामा के आँगन में फेंकी जाने लगी। अपने मामा-मामियों के दुर्व्यवहार से वह इतना दुःखी हो गयी कि एक दिन लाहौर में अपने एडवोकेट चाचा को पत्र लिख दिया कि वे आकर उसे ले जायें।"[235]

यद्यपि निमिषा की दादी से उसकी माँ की कभी न पटी थी, लेकिन उसके चाचा अपनी भाभी का बहुत आदर करते थे। पिता की मृत्यु पर उसके चाचा शेखुपुर गये थे तो माँ ने अपने देवर को सामने बैठा देख कर निमिषा का हाथ उनके हाथ में देते हुए कहा था—"देखो, हिकमत राय, मैं तो नदी किनारे का रूखड़ा हूँ, आज हूँ, कल नहीं। यूँ तो मेरे बाद निमिषा यहीं अपने ननिहाल में रहेगी, लेकिन इसे दिक्कत हो तो आकर ले जाना और पढ़ा लिखाकर किसी योग्य बना देना। मेरा बस चलता तो अपने सामने ही इसके हाथ पीले कर जाती, पर अब तुम्हीं कोई योग्य वर ढूँढ़ कर उसके हाथ सौंप देना। पाँच हजार का उनका बीमा इसके नाम है, गहने हैं, वे सब इसकी शादी में इसे दे देना और देवर ने अपनी मरणासन्न भाभी को यह वचन दिया था कि वह चिन्ता ना करें उनके जीते जी निमिषा को कोई कष्ट न होगा...और निमिषा का पत्र पाकर उसके चाचा शेखुपुरा गये और उसे अपने साथ लाहौर ले आये थे।"[236]

लाहौर आकर निमिषा अपने चाचा के लाड-प्यार की अभ्यस्त हो गयी थी। इसी दौरान चाचा हिकमत राय ने शादी कर ली थी जिससे निमिषा की कभी नहीं पटती थी—आये दिन निमिषा की चाची अपने पति से निमिषा की शिकायत करती रहती थी और एक दिन चाचा को यह कहने के लिए निमिषा को मजबूर होना पड़ा कि—"मैं चाहता था कि

मैंने अपनी भाभी को जो वचन दिया है, उसे भरसक पूरा करूँगा। तुम्हें एम.ए. तक पढ़ाऊंगा। अच्छी तरह तुम्हारी शादी करूँगा ताकि भाभी की आत्मा को तकलीफ न हो, लेकिन तुम इतनी जिद्दी, खुदसर और बेसमझ लड़की हो कि मेरी एक नहीं चलने देती। चाची से तुम्हारी पटती नहीं। दादी के पास तुम रहना नहीं चाहतीं। मैंने भाभी के कहने पर तुम्हारा गार्जियन बनना स्वीकार किया था। तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो मैं तुम्हारी गार्जियनशिप छोड़ दूँगा।"[237]

अपने चाचा की यह बात सुनकर निमिषा स्तब्ध रह गयी थी और न जाने उसे क्या हुआ कि वह मॉडल टाउन अपनी प्रिंसीपल मिसेज शर्मा के बँगले पर जा पहुँची। निमिषा मिसेज शर्मा के घर पहुँचते ही यह कहते हुए रो पड़ी कि चाचा अब उसके गार्जियन नहीं रहना चाहते।

मिसेज शर्मा ने निमिषा को तसल्ली देते हुए यह पूछा कि आखिर ऐसी कौन-सी गलती उससे हो गयी जिससे उसके चाचा गार्जियनशिप तक छोड़ने को तैयार हो गये। जब निमिषा ने मिसेज शर्मा को सारी कहानी बता दी तो प्रिंसीपल ने कहा था—"तुम चिन्ता न करो, अगर तुम्हारे चाचा तुम्हारे गार्जियन नहीं बनना चाहेंगे तो मैं बन जाऊँगी। जब तक तुम एम.ए. नहीं कर लेती, तुम यहीं रहना। मुझे भी सहारा मिल जाएगा।"[238] उस तरफ से तुम चिन्ता मुक्त हो जाओ लेकिन दो एक बातें मैं तुम्हें समझाना चाहती हूँ। तुम्हारे चाचा जिन्होंने अपनी मरणासन्न भाभी को तुम्हारे पालन-पोषण का वचन दिया था, जिन्होंने तुम्हें मिडिल से एम.ए. तक बड़े स्नेह से पढ़ाया है यदि अब गार्जियनशिप छोड़ना चाहते हैं तो जरूर ही वे गुस्से में होंगे। हो सकता है वे अपनी पत्नी से गुस्सा हों और उस पर गुस्सा न निकाल कर तुम पर निकाल रहे हों। तुम्हारे व्यवहार से ही दुःखी हों। तुम पढ़ी-लिखी और समझदार लड़की हो, जरूर ही वे तुम से बेहतर समझदारी की आशा रखते होंगे। तुम उनकी गार्जियनशिप छोड़कर मेरे यहाँ आ जाओगी तो उन्हें बहुत दुःख होगा। यह सोच लो ऐसा कदम उठाने की राय मैं तुम्हें तभी दे सकती हूँ, जब पानी सिर से गुजर जाए और तुम सब प्रयत्न करके हार जाओ।[239]

सुबह मिसेज शर्मा निमिषा को निस्बत रोड पर घर छोड़ गयी तो अभी तक चाचा दफ्तर नहीं गये थे। वहाँ पहुँचते ही निमिषा ने चाचा से कहा—"मुझे ठीक-ठीक अपनी गलती तो मालूम नहीं, लेकिन मैं आपसे सिर्फ यही कहती हूँ कि आपके लाड़ के कारण मुझसे जो भी गलती बन पड़ी हो, उसे आप क्षमा कर दें। मैं कोशिश करूँगी कि आपको या चाची को मुझसे फिर कोई शिकायत न हो।"[240]

निमिषा के प्रत्युत्तर में चाचा ने कहा था—"मैं ही जानता हूँ, मुँह से वह बात निकाल कर मुझे खुद कितनी तकलीफ हुई है। मैंने तुम्हारी माँ को जो वचन दिया है, उसे पूरा करने में मेरी मदद करनी चाहिए और कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए कि मेरी पोजीशन फ्लॉप हो जाय।"[241] और निमिषा ने चाचाजी से क्षमा माँग ली थी और यह निश्चय किया कि वह बी.टी. करके नौकरी करेगी, चाचा-चाची पर बोझ नहीं बनेगी और आजाद होकर सुख की साँस लेगी।

बस में बैठी बैठी निमिषा अपने अतीत में खोयी हुई थी कि बस मॉडल टाउन पहुँच गयी और निमिषा मिसेज शर्मा के घर पर पहुँची।

मिसेज शर्मा के घर बैठी निमिषा यह सोच रही थी कि वह अपनी चाची से कह आयी थी कि उसके आवेदन पत्रों के उत्तर में कहीं से कोई जवाब आये तो तत्काल उसे फोन कर दें और यदि फोन खराब हो तो नौकर के हाथ उसे समाचार भिजवा दें।

चार पाँच दिन तक जब कोई फोन या नौकर नहीं आया तो वह बेचैन हो उठी और उसे चिन्ता होने लगी कि वह कहीं नौकरी पायेगी या नहीं। छठे दिन निमिषा घर जाने के लिए तैयार हो गयी, लेकिन मिसेज शर्मा के कहने और समझाने पर वह मान गयी। तभी फोन की घण्टी बजी जो कनक का फोन था। निमिषा ने कनक के प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। कनक ने निमिषा को 'लाहौर कल्चरल लीग' चित्र प्रदर्शनी में चलने का आग्रह किया तो निमिषा इसके लिए तैयार हो गयी।

निमिषा और कनक 'लाहौर कल्चरल लीग' में पहुँची। पहले दिन चीफ जस्टिस ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था। आर्टिस्टों में खान अब्दुल रहमान चुगताई और रूपकृष्ण

दम्पति आये थे। निमिषा ने चुगताई साहब को पहली बार देखा था। निमिषा ने चुगताई साहब के तीनों चित्रों को देखा जो गालिब के तीनों शेरों को व्याख्यायित करते थे। शोभासिंह का चित्र 'सोनी–महिवाल' निमिषा को अच्छा लगा था। लेकिन इन तमाम चित्रों को देखते हुए भी निमिषा का मन उनमें नहीं था। वह तो गोविन्द के चित्र देखने को उत्सुक थी। तभी अचानक कनक आयी और उसे गोविन्द के चित्र दिखाने ले गयी। जहाँ तीन चित्र थे——गोविन्द की पत्नी के।

इसके बाद कनक निमिषा को अपने चित्रों के पास ले आयी थी, तभी प्रो. लाल के कुछ छात्र और छात्राएँ वहाँ आ गये थे और उन्होंने कनक को घेर लिया था। निमिषा मौका पाकर वहाँ से वापस गोविन्द के चित्रों के पास आ गयी और मन–ही–मन यह सोचने लगी——"गोविन्द जी, आपकी गजल सुनने के बाद मैं तो आपको सेन्स्टिव कवि समझती थी, पर आप तो गजब के कलाकार निकले। गोविन्द जी कनक ने बताया है इन चित्रों में आपने अपनी दिवंगत पत्नी को उकेरा है, वे बहुत ही अच्छी होंगी कि आपको ऐसे सुन्दर चित्र बनाने की प्रेरणा मिली और निमिषा का दिल धड़क रहा था कि यदि अन्तिम दिन भी गोविन्द न आया तो वह कैसे अपनी निराशा कनक से छिपा पायेगी।"[242]

धड़ाधड़ चित्र प्रदर्शनी में सबके चित्र बिक रहे थे। निमिषा भी गोविन्द के चित्रों को खरीदना चाहती थी, लेकिन वे बिकाऊ नहीं हैं, यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ। तीसरे दिन जब प्रदर्शनी खत्म होने को आयी उस समय गोविन्द अपने मित्रों के साथ आया। तब कनक ने निमिषा को कहा——वह रहा तुम्हारा गोविन्द। यह सुनकर निमिषा का चेहरा लाल हो आया था।

गोविन्द प्रदर्शनी देखता हुआ कनक के चित्रों के करीब आया तो निमिषा को लगा कि कनक गोविन्द से उसका परिचय करा देगी, किन्तु कनक ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और गोविन्द कनक से बात करता हुआ आगे बढ़ गया और प्रदर्शनी से बाहर निकल गया।

गोविन्द के जाते ही कनक ने निमिषा के पास आकर चलने के लिए कहा था। निमिषा ने कनक से शिकायत की कि यदि मुझे गोविन्द से मिला देती तो क्या हो जाता।

बाहर आकर कनक ने एक ताँगे वाले को आवाज दी और अपनी सहेली निमिषा को यह कहते हुए आश्वस्त किया कि इतवार को गोविन्द के घर चलेंगे और बातें करेंगे। वह रविवार जिसका उल्लेख कनक ने किया था, फिर कभी नहीं आया। न कनक ने उसे बुलाया, न निमिषा ही जा सकी। क्योंकि दूसरे दिन ही निमिषा को एक साथ दो जगह से साक्षात्कार के लिए बुलावा पत्र आ गया था। एक लाहौर व दूसरा रेनाला से। निमिषा ने रेनाला जाने का निश्चय किया।

रेनाला जाने से पहले निमिषा कनक से मिलने गयी तो कनक गोविन्द से मिलाने के लिए उसके घर ले गयी वहाँ उसकी भाभी के द्वारा ज्ञात हुआ कि गोविन्द लाहौर छोड़ कर देवनगर में ड्राइंग टीचर के लिए चला गया है। गोविन्द के बड़े भाई से निमिषा ने गोविन्द का पता ले लिया—'पत्थर चट्टी (जिला अमृतसर)' और निमिषा ने निश्चय किया कि रेनाला जाते ही वह गोविन्द को पत्र लिखेगी और इसी के साथ 'निमिषा' उपन्यास का पहला खण्ड समाप्त हो जाता है।

'निमिषा' उपन्यास के दूसरे खण्ड की शुरुआत निमिषा रेनाला से गोविन्द को पत्र लिखकर करती है। वह लिखती है—"आदरणीय गोविन्द जी, आप एक अपरिचित का पत्र पाकर हैरान होंगे। 'लाहौर आर्टिस्ट एसोसिएशन' की सैक्रेटरी कुमारी कनक लाल से आप परिचित हैं। वह मेरी सहेली है। उसी के साथ एक कवि सम्मेलन में मैंने आपकी गजल सुनी और लोरैंग्ज की चित्र प्रदर्शनी में आपके चित्र देखे थे।"[243]

आपके घर जाने पर पता चला कि आप लाहौर छोड़कर देवनगर चले गये जो मध्य पंजाब के गाँवों में पत्थरचट्टी के निकट ही एक नयी कॉलोनी बसी है।

आगे लिखती है—"यदि इसे अन्यथा न लें तो पूछना चाहूँगी कि लाहौर की गहमागहमी को छोड़कर आप इतनी दूर देहात में क्यों चले गये? आपको देहात का वातावरण कैसा लगा? क्या आपके कवि और चित्रकार के अनुकूल है? क्या आपने वहाँ के वातावरण में कुछ नयी कृतियाँ सृजी हैं?"[244]

"आपको यह पत्र पढ़ने का कष्ट इसलिए दे रही हूँ कि मैं भी कुछ तुकबन्दी कर लेती हूँ और चित्रकला में भी रुचि है। मैं चाहती हूँ कि इस क्षेत्र में आप मुझे कुछ राह दिखायें। आशा करती हूँ उत्तर जरूर मिलेगा। कष्ट के लिए एक बार फिर क्षमा चाहती हूँ।"

आपकी बहन (निमिषा)

निमिषा के पत्र को पढ़कर गोविन्द निमिषा को लिखता है—"यह जानकर खुशी हुई कि आप कविता के मैदान में उतरना चाहती हैं फारसी मसल है—'जा-ए-उस्ताद खाली अस्त!' यानि कोई भी क्षेत्र हो, उस्ताद की जगह हमेशा खाली रहती है।"[245]

देवनगर का वातावरण प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर और पुरानी जागीर को पुनरुद्धार किया जा रहा है। यह दूसरा खण्ड निमिषा और गोविन्द के बीच आपस में पत्रोत्तर का है।

गोविन्द के पत्र को पढ़कर वापस निमिषा गोविन्द को पत्र लिखती है—"गोविन्द भैया, आपके प्रोत्साहन भरे पत्र को पाकर बहुत प्रसन्नता हुई।" गोविन्द फिर निमिषा को पत्र लिखता है कि—"मैं नहीं जानता कि चित्रकला की जन्मजात प्रतिभा आप में है या नहीं? जहाँ तक मैंने पाया है, जीनियसों के लिए कोई नियम नहीं होता, वे तो अपने नियम स्वयं बनाते हैं। चित्रकला के इतिहास में ऐसे भी कलाकार हुए हैं, जिन्होंने किसी उस्ताद से चित्रकला की ट्रेनिंग नहीं ली, सिर्फ अपनी ही प्रेरणा से कला को सिद्ध किया और आर्ट के इतिहास में क्रान्ति कर गये।"[246]

फिर ऐसे भी कलाकार हुए हैं, जिनमें जन्मजात प्रतिभा तो नहीं थी, लेकिन किसी भी प्रेरणा से वो इधर झुके और लगतार मेहनत और मशक्कत से उन्होंने इस कला में सिद्धि पायी और अमर हो गये।[247]

"चित्रकला तभी सीखो यदि चित्रकार बनना चाहती हो और जिन्दगी इसमें खपाना चाहती हो, वरना शौक के लिए चित्र बनाओगी तो जिन्दगी के संघर्ष में निभ न पाओगी और उतना वक्त बेकार बर्बाद होगा। सो यह सब सोच कर पेन्सिल या ब्रुश हाथ में लेना।"[248]

"यह भी कि जल्दी हतोत्साहित न होना, न किसी की आलोचना का बुरा ही मानना, सदा सीखने और आगे बढ़ने की कोशिश करना। चित्रकला काफी कठिन कला है। पहले तो सिद्धि पाना ही मुश्किल है, फिर कोई सिद्धि पा भी ले तो लोग उसे मान भी लेंगे, इसकी कोई गारण्टी नहीं। इसके बजाय कविता-कहानी लिखना सरल है। और कुछ नहीं तो पत्र-पत्रिकाओं में आदमी अपना नाम पढ़कर ही खुश हो लेता है। स्वान्त: सुखाय चित्र बनाओ, धन अथवा यश की इच्छा न करो। हौसला हार कर बैठ न जाओगी तो एक दिन जरूर नाम पाओगी।"[249]

निमिषा गोविन्द के पत्र को पाकर गोविन्द का आभार प्रकट करती है और लिखती है—"17 सितम्बर को मैं दो दिन के लिए लाहौर जाऊँगी। स्कूल के लिए सामान खरीदना है, मैं चाहती हूँ कि आप भी उन दिनों लाहौर आ जायें। आशा है आप मुझे निराश नहीं करेंगे।"

निमिषा के अगले पत्र को प्राप्त कर गोविन्द उसे लाहौर छोड़कर देवनगर आने के कई कारण बतलाता है। और जहाँ तक लाहौर आने की बात है, यह अभी नहीं कह सकता अगर मैं लाहौर पहुँचा तो छोटे भाई के हाथ सन्देश भिजवा दूँगा।

प्रत्युत्तर में निमिषा ने गोविन्द को लिखा था—"यदि अपनी आत्मा पवित्र हो तो मैं नहीं समझती कि समाज की परवाह करनी चाहिए मैं तो अपनी आत्मा को देखती हूँ। समाज को नहीं देखती।"[250]

वापसी डाक से गोविन्द निमिषा को लिखता है—"आपने बहन-भाई, आत्मा और सच्चाई की बात लिखी है मैं तो परम्परा की बात जानता हूँ, हकीमत को नहीं जानता। आपने वह कहावत तो सुनी होगी—'बहन के घर भाई कुत्ता, ससुर के घर जमाई कुत्ता।' मेरा कोई भरोसा नहीं, कब यहाँ से नौकरी-वौकरी छोड़, डेरा-डण्डा उठाऊँ और आपके यहाँ ही कुछ दिन चला आऊँ।"[251]

रेनाला से लाहौर आने से पहले निमिषा गोविन्द को अन्तिम पत्र लिखती है—"आप लाहौर जरूर आइए। मैं शनिवार की सुबह दस बजे पहुँच जाऊँगी। आप मुझे

निराश नहीं करेंगे। आपसे मिलने, आपकी सुनने और अपनी सुनाने की आशा लेकर लाहौर जाऊँगी, सादर, निमिषा।"[252]

शनिवार की सुबह निमिषा जब रेलवे स्टेशन पर पहुँची तो गाड़ी निकल गयी थी और लाहौर समय पर पहुँचने के लिए निमिषा को एक ट्रक में बैठना पड़ा जिसमें गाय और बछड़ा बँधे थे और सुबह साढ़े बारह बजे घर पहुँची।

घर पहुँचते ही निमिषा ने चाची से पूछा—मुझे कोई पूछने तो नहीं आया। इसके बाद वह नहाने चली गयी। स्नानागार से जब वह बाहर आयी तो गोविन्द का छोटा भाई खड़ा था और यह सन्देश देकर चला गया कि भाई साहब दुकान पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा सुनकर निमिषा जल्दी ही दुकान पर पहुँच गयी जहाँ गोविन्द इन्तजार कर रहा था। निमिषा ने गोविन्द को नमस्कार किया प्रत्युत्तर में गोविन्द यह कहते हुए कि संधू के घर चलते हैं—लंगडाते हुए दुकान से बाहर आ गया और एक ताँगे में बैठकर संधु के घर चल दिए। सन्तनगर के अधबने मकान के निकट ताँगा रुका और संधु जो गोविन्द का मित्र भी था—वहाँ पहुँचकर आपस में गोविन्द ने परिचय कराया।

सुखबीर के यह पूछने पर कि पैर में क्या हुआ तो गोविन्द बोला—"जिन्दगी में एक चोट खायी हो तो बतायें, बाहर से नजर नहीं आतीं, अन्दर तो घाव ही घाव हैं, जो कभी नहीं भरते।"[253] और यह कहते हुए गोविन्द पलंग पर बैठ गया। पास में ही निमिषा कुर्सी पर बैठ गयी।

गोविन्द निमिषा से अपने निकट अतीत की बातें करने लगा कि किस प्रकार अपने रूढ़िवादी परिवार, पत्नी की बीमारी और मौत की कहानी सुनायी। इसी बीच सुखबीर सिंह संधु चाय और शिकंजी लेकर आ गया। पीने के बाद गोविन्द ने अपने पैर का सेक करवाया।

ऐसे में निमिषा को काफी समय लग गया और घर आने में उसे देरी हो रही थी, इसलिए वह वहाँ से उठ खड़ी हुई और गोविन्द ने दूसरे दिन भाई साहब की दुकान में एक बजे मिलने का समय तय कर निमिषा अपने घर आ गयी जहाँ उसके चाचा उसका इन्तजार कर रहे थे।

दूसरे दिन काम में व्यस्त होने की वजह से निमिषा एक बजे की बजाय दो बजे दुकान पर पहुँची जहाँ गोविन्द उसका इन्तजार कर रहा था। गोविन्द के अनुरोध पर जैसे ही निमिषा कुर्सी पर बैठी तो श्री जर्जर महोदय वहाँ आ टपके—गोविन्द ने दोनों का आपस में परिचय कराया। निमिषा को जर्जर महोदय को वहाँ देखकर अच्छा नहीं लगा और यह कह दिया कि मुझे तो चार बजे की गाड़ी पकड़नी है आप सुनिए-सुनाइए।

ऐसे में गोविन्द भी निमिषा के साथ उठ खड़ा हुआ और दुकान बन्द कर घर को चल दिए। रास्ते में चलते हुए गोविन्द से निमिषा ने पूछा कि क्या आपकी स्वर्गीया पत्नी का कोई चित्र है मैं देखना चाहती थी। गोविन्द के घर पहुँचकर उसके निर्देशानुसार निमिषा ने ट्रंक से तस्वीर निकाली और काफी देर तक वह उसे देखती रही। गोविन्द भी चुपचाप निमिषा को देखता रहा। और अन्त में गोविन्द ने निमिषा से देवनगर आने के लिए कहा— मैं आपको वहाँ अपनी मजबूरियां बतलाऊंगा।

निमिषा ने कहा मैं दशहरे में प्रोग्राम बनाऊंगी और आपको लिखूंगी और ज्यों ही निमिषा आने लगी तो गोविन्द ने निमिषा का एक फोटो ले लिया और इसके साथ ही दूसरे खण्ड का अन्त हो गया।

उपन्यास के तीसरे खण्ड में निमिषा रेनाला पहुँच कर गोविन्द को लाहौर की मुलाकात के विषय में विस्तार से लिखती है। प्रत्युत्तर में गोविन्द भी निमिषा को पत्र लिखता है कि किस प्रकार मुलाकात के दौरान मैं अपनी ही बात सुनाता रहा और आपने अपने विषय में कुछ भी नहीं बताया।

रेनाला से वापस आकर निमिषा, गोविन्द और उसके पुत्र को अपने पास ले गयी थी। वहाँ पाँच दिन रहने के पश्चात् वे दोनों देवनगर वापस लौट आए थे। इसी दौरान गोविन्द और निमिषा में एक-दूसरे की चाहत बढ़ने लगी थी। ऐसे में निमिषा वापस लाहौर गोविन्द से मिलने चली आयी और घर आते ही सीधे गोविन्द के पास पहुँची। जाते ही निमिषा ने दरवाजे पर दस्तक दी तो दरवाजा गोविन्द ने ही खोला था। उस समय गोविन्द ने बढ़िया सूट और मैच करती टाई पहन रखी थी। गोविन्द कमरे में चक्कर लगा रहा था।

निमिषा ने पूछा—"कहीं आप बाहर जा रहे हैं तो चले जाएँ, मैं फिर आ जाऊँगी। गोविन्द ने कहा—नहीं, मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था और वहीं निमिषा के सामने बैठ गया और कहने लगा—मैं एक साड़ी, ब्लाउज और अंगूठी खरीदना चाहता हूँ। कितनी देर में ये तीनों चीजें मिल जायेंगी।"[254]

निमिषा के यह पूछने पर ये सब आपको इतनी जल्दी क्यों चाहिए। जवाब में गोविन्द ने कहा—"सच, मैं तुम्हारे ही लिए चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ हम आर्यसमाज मन्दिर में आज ही शादी कर लें। भाई साहब शाम को आयेंगे। मैं उनसे कह दूँगा कि मैंने शादी कर ली और राहो वाली सगाई अपने आप टूट जायेगी। उठो और मुझे ये तीनों चीजें खरीदवा दो।"[255]

निमिषा ने गोविन्द से कहा कि मैं इसके लिए तैयार होकर नहीं आयी और ना ही मैंने चाचाजी को बताया—"उन्होंने मुझ अनाथ को पाला और पढ़ाया है, फिर मेरी नौकरी का भी सवाल है। इस तरह बिना बताये मैं शादी नहीं कर सकती। मेरी दादी जिन्दा है, फूफी है, उनकी लड़की है, दामाद हैं, मेरी सहेलियाँ हैं, मिसेज शर्मा हैं। यदि आप कल का रखें तो मैं आज शाम को सबको बता दूँगी। चाहे आयें या ना आयें, लेकिन मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जायेगा।"[256] लेकिन गोविन्द ने साफ शब्दों में कह दिया कि "कल कुछ न हो सकेगा" और "कल सुबह आऊँगी" यह कहते हुए निमिषा सीधे मिसेज शर्मा के घर जाकर सारी बात मिसेज शर्मा से कहीं। प्रिंसिपल ने निमिषा की पीठ थपथपाते हुए कहा—"यदि तुमने ऐसा किया तो तुम्हारे चाचा ने जो कुछ तुम्हारे लिए किया है, उसे देखते हुए यह घोर कृतघ्नता होगी। यदि गोविन्द पुरुष होकर भी कायर है और तुम नारी होकर भी वीर हो तो इसमें शर्म की क्या बात है? आइ एम प्राउड ऑफ यू...आइ एम श्योर एवरी थिंग विल बी ऑल राइट। अव्वल तो मुझे उम्मीद नहीं कि कल वह शादी के लिए तैयार होगा। वैसे डरपोक आदमी के लिए दुनिया का सामना करना मुश्किल है लेकिन यदि कोई बात हो तो तुम मुझे फोन करना, मैं दस मिनट में पहुँच जाऊँगी।"[257]

निमिषा घर आकर अपनी चाची से इस प्रकार कहने लगी—"अगर मुझे किसी से प्यार हो जाय, वह हमारी जाति का न हो तो क्या चाचा मान जायेंगे। तुम अरेंज्ड मैरिज

और प्रेम विवाह में किसे पसन्द करती हो। अगर मुझे कोई ऐसा साथी मिले और मैं उससे विवाह कर लूँ, तो तुम बुरा तो न मानोगी।"[258]

चाची से यह आश्वासन मिलने पर कि नहीं—"नहीं, मैं बुरा नहीं मानूँगी और अगर तुम्हारे चाचा नाराज होंगे तो मैं उन्हें भी मना लूँगी, वे तुम्हें सचमुच प्यार करते हैं तो अन्त में मान जायेंगे।"[259]

उस क्षण निमिषा अपनी चाची के विरुद्ध अपनी तमाम शिकायतें भूल गयी थी और रात को लेटे-लेटे यह सोचने लगी—काश उसका भी कोई निकट सम्बन्धी ऐसा होता जो उसके लिए इतना लगाव महसूस करता और उसे सहसा अपने दिवंगत माता-पिता की याद हो आयी और रोती रोती सो गयी।

दूसरे दिन सुबह जब निमिषा गोविन्द के घर पहुँचती है तो वापसी में छोड़ते समय गोविन्द ने कहा कि—"मैंने आपसे कहा था कि कल कुछ न हो सकेगा।"[260] और यह कहा कि देवनगर जाकर विस्तार से पत्र लिखूँगा। 'आप मेरी शादी में आयें' ऐसा कहकर अपने घर को वापस आ गया। निमिषा वहीं खड़ी-खड़ी उसको कुछ देर तक देखती रही और वापस अपने घर को आ गयी और इसी के साथ तीसरे खण्ड का समापन हो जाता है।

'निमिषा' उपन्यास के चौथे खण्ड में गोविन्द की शादी राहो वाली माला से हो जाती है। बारात घर आती है तो पता चलता है कि माला उतनी सुन्दर नहीं है जितनी कि होनी चाहिए थी। गोविन्द की भाभी कहती है कि प्रीति की जगह माला की शादी कर दी, जो कि प्रीति की मौसेरी बहन है और इस बात को लेकर घर में कोहराम मच जाता है। भाई साहब के यह कहने पर कि—"धोखा किया है तो भुगतेंगे। गोविन्द तुम देवनगर भाग जाओ। इस बीवी से तुम्हारी दो दिन नहीं पटेगी।"[261] लेकिन भाई की बात सुनकर गोविन्द के अन्तर में छिपा कलाकार आहत हो गया। उसे नीचे अपनी दुल्हन माला का ध्यान आया—"शादी तो हो गयी, अब क्या हो सकता है।"[262]

इतने में ही रेनाला से निमिषा गोविन्द के घर भाभी से मिलने आती है और गोविन्द को सपत्नी नाश्ते पर बुला कर घर चली जाती है।

दूसरे दिन सुबह साढ़े दस बजे गोविन्द निमिषा के घर नाश्ते पर अकेला ही पहुँचता है। निमिषा गोविन्द को अकेला ही आया देखकर भाभी के लिए पूछती है——भाभी नहीं आयीं? गोविन्द ने जवाब में कह दिया कि आस-पड़ोस की औरतें माला को देखने आ रही थीं और फिर आज ही राहो जायेंगे। गोविन्द नाश्ता करके अपने घर वापस आ गया। निमिषा ने भी कहा कि मैं परसों आपके घर आऊँगी।

तीसरे दिन निमिषा और गोविन्द कॉफी हाउस में बैठे-बैठे बतिया रहे थे। निमिषा गोविन्द को सपत्नी रेनाला आने का निमन्त्रण देती है——अगर आप नहीं आये तो मैं आपको कभी भी पत्र नहीं लिखूंगी।

गोविन्द कुछ देर चुप रह कर निमिषा से पूछता है——"तुम्हारा क्या प्रोग्राम है?" गोविन्द का इशारा निमिषा की शादी से था। निमिषा ने कहा——"परसों चाचाजी ने बताया कि हमारे सैक्रेटरी चौधरी साहब ने प्रोफेसर ध्यान के लिए उन्होंने प्रपोज किया था। प्रोफेसर ध्यान बहुत अच्छे आदमी हैं। अभी तो कॉलेज में लेक्चरर हैं...और तुम्हें क्या चाहिए।"[263] और दोनों कॉफी हाउस से बाहर आ गये। गोविन्द ने कहा यदि हमारी जिन्दगी चल पड़ी तो आप देवनगर आइएगा वरना मुझे भूल जाना और अपनी जिन्दगी बनाना। यह कहते हुए वह अपने घर की ओर चल दिया। इसी के साथ उपन्यास का चौथा खण्ड समाप्त हो जाता है।

'निमिषा' उपन्यास के पाँचवें खण्ड में गोविन्द शादी कराकर वापस देवनगर चला आता है। यहाँ आकर चैन पाने में नितान्त असफल रह कर गोविन्द ने दो लम्बे पत्र लिखे। पहला निमिषा को लिखा——"प्रिया, निमिषा, तुमने कहा था और मैंने वादा किया था कि तुम्हें पत्र नहीं लिखूँगा, फिर भी यह लम्बा पत्र लिख रहा हूँ, समझ लो बहुत मजबूर हूँ। इसे पढ़ लेना और मुझे क्षमा कर देना। अपनी शादी के लिए ली गयी छुट्टियाँ लाहौर में गुजार दीं। बदले में आहत और परेशान हुआ। अन्त में माला को छोड़कर अपने भतीजे अशोक और अपने लड़के के साथ, मैं यहाँ आ गया हूँ।"[264]

"माला से मैं कह आया हूँ कि अभी तो मैं एक छोटे-से कमरे में अकेला रहता हूँ। अब मैं जाकर जगह की व्यवस्था कर लूँ, तब तुम्हें ले आऊँगा।"[265]

"मैं कितना परेशान हूँ निमि, मैं तुम्हें बता नहीं सकता। लाहौर में कुछ दिनों मैंने अपनी पत्नी के साहचर्य में जो यातना पायी है उसकी याद भर से मेरे प्राण काँप जाते हैं। काश, वह सब तुम्हें बता सकता। दो शब्दों में यही कह सकता हूँ कि लाहौर के वे दिन मैंने एक अपरम्पार भूखी और फूहड़ नारी के सम्पर्क में काटे हैं और मेरी आत्मा तक कुचल गयी है। मैं जब से आया हूँ, सन्न सा घर में पड़ा हूँ। मुझे न दिन को चैन पड़ता है और न रात को नींद आती है।"[266]

"...मैं निहायत आवेगी आदमी हूँ। भाई साहब ने मेरी एक पेश भी नहीं चलने दी। तुमने मेरी स्थिति को समझा नहीं। तुम्हें अपने रिश्तेदारों की भावनाओं और नौकरी की चिन्ता रही और ओम की पत्नी सुन्दर होने से भाभी को अपने हठ पर अड़े रहने का एक और बहाना मिल गया...सबने अपने दोष मेरे कन्धों पर डालकर मुझे एक अँधेरे कुएँ में धकेल कर खुद अलग जा खड़े हुए।"[267] "कभी-कभी तो मन यह भी चाहता है कि इस बेकार के जीवन की डोर काट दूँ, इस तरह जीने से क्या हासिल है?...लेकिन घबराओ नहीं, मैं आत्महत्या नहीं करूँगा। यह पाप है। आत्महत्या करने के लिए बड़ा जिगरा अथवा पागल दिमाग चाहिए और मैं एक कमजोर इन्सान हूँ। कभी मेरे बारे में वैसी असामान्य खबर मिले तो हैरान न होना, बस मुझे क्षमा कर देना। कोई बात बुरी लगे तो दिमाग में न लाना और पत्र पढ़ कर फाड़ देना।"[268]

परेशान तुम्हारा गोविन्द।

दूसरा पत्र माला के नाम लिखता है—"माला, जब से मैं यहाँ आया हूँ, लगातार अपने और तुम्हारे बारे में सोच रहा हूँ, यहाँ तक कि मेरा दिमाग जिन्दगी में कभी जान-बूझकर मैंने किसी को दुःख नहीं दिया। झूठ बोलने की कला मुझे आती नहीं और सच्ची बात हमेशा कड़वी होती है और दुःख देती है।"[269] "इसलिए जो मैं कुछ लिखने जा रहा हूँ उस पर गौर करना—मैंने तुम्हारे साथ वैवाहिक जीवन न गुजारने का फैसला इसलिए किया है कि अपनी वर्तमान मानसिक स्थिति में मुझे पूरा विश्वास है, मैं उसे चला नहीं पाऊंगा। अगर तुम मेरे सुझाव को न मानो और मेरे साथ जिन्दगी गुजारने की जिद करो तो चूँकि मैंने शादी करने की गलती की है, इसलिए मैं मान तो लूँगा लेकिन सफल और सुखी

वैवाहिक जीवन का वादा नहीं करता। इसमें रिस्क है। हो सकता है कि हमारी जिन्दगी बेहतर बन जाये। हो सकता है, बदतर हो जाय।—गोविन्द।"[270]

गोविन्द ने माला और निमिषा को पत्र लिख दिये परन्तु उनको दो दिन तक डाक में नहीं डाला। तीसरे दिन माला के नाम पत्र को अशोक को देकर भेज देता है, लेकिन निमिषा को लिखे पत्र को गोविन्द ने डाक में नहीं डालकर उसे ट्रंक में रख दिया।

चार दिन तक गोविन्द अशोक के आने और माला की प्रतिक्रिया जानने की बाट देखता रहा, लेकिन पाँचवें दिन ही गोविन्द का छोटा भाई सोम, माँ और पत्नी (माला) गोविन्द के यहाँ देवनगर पहुँच जाते हैं। उनको अचानक यहाँ देखकर गोविन्द कुछ नहीं बोला और खाने की व्यवस्था में जुट गया। व्यवस्था पूरी करके खाना खाकर सो जाता है। अपने छोटे भाई की परीक्षा निकट होने के कारण चार दिन बाद माँ और सोम माला को गोविन्द के पास छोड़कर वापस लुधियाना चले जाते हैं। उस शाम को जब गोविन्द स्कूल से घर आया तो अपनी पत्नी माला को वीराने का पूरा चक्कर लगवाकर वापस देवनगर आ जाता है और हताश चारपाई पर लेट जाता है।

दूसरे दिन स्कूल में देव सेना के वार्षिक सम्मेलन की छुट्टियाँ थीं। गोविन्द की पत्नी माला उस वार्षिक सम्मेलन में जाने के लिए तैयार होती है, लेकिन गोविन्द इसके लिए तैयार नहीं था। इस वजह से माला अकेली ही चली जाती है। माला के चले जाने के बाद गोविन्द ताजदीन भिश्ती के चित्र को पूरा करने की बजाय, वह माला के खाके में रंग भरता है—उसकी रेशमी सलवार और जम्फर दोनों छातियों को नुमाइयां करती हुई जम्फर की चौड़ी फ्रिल उसके चेहरे का पाउडर, उसके गालों की झलकती काली झाइयां, उसके होठों पर फैली हुई खून के रंग की सुर्खी लगता था जैसे उसने अभी–अभी किसी का खून पिया हो।[271] चित्र बनाकर गोविन्द जब शाम को देवनगर का पूरा चक्कर लगाकर वापस घर आया तो उसका कैनवास गायब था। ठीक प्रकार से देखने पर मालूम चला कि उसे फाड़कर फेंक दिया गया है। माला से पूछा तो कहा—"अपनी बीवी का वेश्याओं जैसा चित्र बनाते हुए आपको शर्म नहीं आयी।"[272]

माला का जवाब पाकर प्रत्युत्तर में गोविन्द ने कहा था—"जब टकिहाइयों की तरह कपड़े पहनते और पाउडर-सुर्खी लगाते तुम्हें शर्म नहीं आती तो मुझे चित्र बनाने में शर्म क्यों आयेगी। जैसी तुम दिखती थीं, वैसा ही तो चित्र बनाया था।"[273]

ऐसा कहकर गोविन्द ने सोचा उसे दो-चार लात-घूंसे जमा दे, लेकिन कोई लाभ नहीं। उससे मुक्ति पा लेनी चाहिए और मन-ही-मन उससे मुक्त होने का फैसला कर लिया।

तीन-चार दिन बाद गोविन्द ने माला से कहा कि इस कोठी का मकान मालिक आ रहा है, अत: उसे कोठी खाली कर देने का आदेश हुआ है और जब तक नयी कोठी उसे नहीं मिल जाती तब तक उसे लाहौर या अपने मायके रहना होगा और उसे लाहौर छोड़ आया। भाई साहब से कह भी दिया कि वह उसके साथ नहीं रह सकता। वे उसके भाइयों को लिख दें।

अभी माला को लाहौर गये एक सप्ताह ही हुआ था कि माला अपने देवर अशोक के साथ वापस देवनगर आ गयी। माला को देखकर गोविन्द उदास मन से अशोक के औषधालय की व्यवस्था करने में व्यस्त हो गया और यहीं पर उपन्यास 'निमिषा' का पाँचवाँ खण्ड समाप्त हो जाता है।

'निमिषा' उपन्यास के छठे व अन्तिम खण्ड में गोविन्द अपनी पत्नी को वापस देवनगर आया देखकर उससे मुक्ति पाने के लिए अपने प्रिय मित्र हरभजन को पत्र लिखता है—"ये पंक्तियाँ मैं तुम्हें यह सूचना देने के लिए लिख रहा हूँ कि इस छोटे-से अर्से में ही मैं इस शादी से इस हद तक उकता गया हूँ कि मैंने इससे जान छुड़ाने का फैसला कर लिया है। अब स्थिति यह है कि मेरी लगी लगायी नौकरी छूट गयी है और मैं बहुत दूर बंगलौर में एक ट्यूशन लेकर जा रहा हूँ। जाहिर है इस बीवी से प्राण बचाने का दूसरा कोई और तरीका मुझे नहीं सूझा। मैंने त्याग-पत्र नहीं दिया, कुछ ऐसे मैनेज किया है कि मुझे एक महीने का नोटिस मिल जाय और मैं उसे अपनी पत्नी को दिखाकर उससे छुटकारा पा सकूँ। मैंने उसे समझा दिया है कि जब तक मैं किसी दूसरी जगह पैर नहीं जमालेता, उसे साथ नहीं ले जा सकता।

मैं नहीं जानता मेरे भाग्य में क्या बदा है, कितना भटकना, कहाँ कहाँ की ठोकरें खाना? मगर यह तय है कि मैं अब इस औरत के चंगुल में नहीं फँसने वाला। अगले महीने की पहली तारीख को मैं यहाँ से बंगलौर के लिए निकलूंगा।

अभी घड़ी भर पहले मैं अपनी पत्नी को अपने चचेरे भाई के साथ लाहौर की बस पर चढ़ा कर आया हूँ।

मेरा मन उदास है, लेकिन साथ ही बहुत हल्का भी है। मुझे लगता है, जैसे मैं एक बहुत बड़े बोझ से मुक्त हो गया हूँ...तुम्हारी जिन्दगी कैसे बीत रही है, नहीं जानता। यदि तुमने अपनी पत्नी के साथ एडजेस्ट कर लिया तो तुम्हारी दाद देता हूँ। मैंने भी करना चाहा था, पर नहीं कर सका। उल्टे एक बच्चे का बाप बन जाने की भी सम्भावना है, जिसने मेरे अपराध भाव को बढ़ा दिया है...।

भाभी को मेरी याद दिलाना और कभी कभार मेरे हक में दुआ कर दिया करना।"[274]

तुम्हारा मित्र गोविन्द।

अपने प्रिय मित्र हरभजन को पत्र लिखने के बाद गोविन्द निमिषा को भी पत्र लिखना चाहता था लेकिन वह तय न कर पा रहा था कि वह क्या लिखे और क्या न लिखे। सोच-विचार कर कुछ पंक्तियाँ लिखीं—"...पिछले चन्द महीनों में हर रात मैंने जो एक नरक भोगा है, उसने मेरी रूह तक को छलनी कर दिया है। मैं आजिज आ गया हूँ। काश! मैं तुम्हें सब कुछ बता सकता। ये पंक्तियाँ तुम्हें यह बताने के लिए लिख रहा हूँ कि मैंने नौकरी छोड़ दी है। सत्यनारायण कविरत्न ने लिखा है—'भयो क्यों अनचाहत को संग।'

अगले महीने की पहली तारीख को मैं बंगलौर के लिए चल दूँगा। वहाँ जाने से पहले तुम से दो पल मिलने की हसरत है। लाहौर पहुँचने के दिन की तुम्हें सूचना दूँगा। आशा करता हूँ, निराश नहीं करोगी। — हताश, गोविन्द।"[275]

और दोनों पत्र स्वयं डाकखाने में डाल आया। वापस आते गोविन्द को तीन दिन पहले देखा सपना याद हो आया, लेकिन प्रकट वह तो देवनगर की उदास कोठियों को देखता चला आ रहा था और मौन रूप से उसका अन्तर्मन निमिषा...निमिषा पुकार रहा था।

इसी के साथ 'निमिषा' उपन्यास व उसके छठे खण्ड का समापन हो जाता है।

'निमिषा' उपन्यास में 'अश्क' जी ने विवाह और प्रेम के बीच झूलते, संशय ग्रस्त चित्रकार गोविन्द, उसकी दूसरी पत्नी माला और प्रेमिका निमिषा का अभूतपूर्व चित्र खींचा है। यह उपन्यास महज एक रोचक प्रेमकथा ही नहीं है, अपितु समाज की रूढ़िग्रस्तता पर आघात करते हुए 'अश्क' जी ने अपने इस उपन्यास में अपनी पैनी नजर और बेबाक नजरिये से समाज का अनुपम खाका पेश किया है, जहाँ जिन्दगी और प्रेम भी सहज, स्वाभाविक और प्राणवन्त नहीं कर पाता। वर्तमान सन्दर्भ में भी यह उपन्यास युवा पीढ़ी को एक नई चेतना और मार्ग प्रशस्त करने वाला है।

सन्दर्भ

1. संचेतना, दिल्ली।
2. उपेन्द्रनाथ अश्क : सितारों के खेल, प्रथम पृष्ठ पर
3. ओंकार शरद : सितारों के खेल : एक विवेचन, पृ. 25-26
4. वही, पृ. 27
5. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 27
6. डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त : उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 40
7. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 57
8. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 115
9. डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त : उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 41
10. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 112
11. अश्क : सितारों के खेल, पृ. 233
12. वही, पृ. 230
13. वही, पृ. 234-235

14. अश्क : सितारों के खेल, पृ.
15. वही, पृ. 235
16. अश्क : गिरती दीवारें, मुख्य पृष्ठ पर
17. डॉ. कुलदीपचन्द्र गुप्त : उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 131
18. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 142
19. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 143
20. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार अश्क, पृ. 130
21. डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त : उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 49
22. अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 381-382
23. वही, पृ. 381-82
24. वही, पृ. 208
25. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — उपन्यासकार अश्क, पृ. 132
26. अश्क — चेतन संक्षिप्त, पृ. 3
27. वही, पृ. 7
28. वही, पृ. 48, 50, 51
29. वही, पृ. 52
30. वही, पृ. 53
31. वही, पृ. 55
32. वही, पृ. 82
33. वही, पृ. 83
34. वही, पृ. 87
35. वही, पृ. 95-96
36. अश्क — चेतन संक्षिप्त, पृ. 128
37. अश्क : चेतन संक्षिप्त, पृ. 147-148
38. वही, पृ. 150
39. वही, पृ. 208
40. अश्क : गर्मराख, पृ. 140
41. वही, पृ. 466
42. अश्क : गर्म राख, पृ. 274
43. अश्क : संघर्ष का सत्य, पृ. 32

44. वही, पृ. 47-48
45. वही, पृ. 85-86
46. वही, पृ. 106
47. वही, पृ. 159-60
48. पं. सुमित्रानन्दन पन्त की दृष्टि में : बड़ी-बड़ी आँखें, पृ. 2
49. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार अश्क, पृ. 206
50. वही, पृ. 232
51. अश्क : बड़ी-बड़ी आँखें, पृ. 45
52. वही, पृ. 44
53. वही, पृ. 13-14
54. वही, पृ. 26
55. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार अश्क, पृ. 237-238
56. अश्क : बड़ी-बड़ी आँखें, पृ. 52
57. वही, पृ. 110
58. वही, पृ. 200
59. वही, पृ. 42
60. वही, पृ. 111
61. वही, पृ. 240
62. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : उपन्यासकार अश्क, पृ. 245
63. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, आस्तिकता के दर्शन, पृ. 26
64. अश्क : पत्थर-अल-पत्थर, पृ. 83-84
65. वही, पृ. 86
66. वही, पृ. 86
67. वही, पृ. 89
68. वही, पृ. 113
69. वही, पृ. 125
70. वही, पृ. 139
71. वही, पृ. 126
72. अश्क : शहर में घूमता आईना, पृ. 10
73. वही, पृ. 10

74. अश्क : शहर में घूमता आईना, मुख्य पृ. 1
75. वही, पृ. 21
76. वही, पृ. 55
77. वही, पृ. 59
78. वही, पृ. 65
79. वही, पृ. 66
80. वही, पृ. 105
81. वही, पृ. 109
82. वही, पृ. 156-157
83. वही, पृ. 177
84. वही, पृ. 234
85. वही, पृ. 251
86. वही, पृ. 253
87. वही, पृ. 296
88. ओघ] इ= 302
89. वही, पृ. 321
90. वही, पृ. 326
91. वही, पृ. 35
92. वही, पृ. 410
93. वही, पृ. 411-412
94. वही, पृ. 412
95. वही, पृ. 425
96. अश्क : एक रात का नरक, पृ. 13
97. वही, पृ. 13
98. वही, पृ. 83
99. वही, पृ. 84
100. वही, पृ. 94
101. वही, पृ. 26
102. वही, पृ. 103
103. वही, पृ. 125

104.वही, पृ. 126
105.वही, पृ. 151
106.अश्क : एक नन्ही किन्दील, मुख पृष्ठ 1
107.वही, मु.पृ. 1
108.अश्क : एक नन्ही किन्दील, पृ. 29
109.वही, पृ. 131
110.वही, पृ. 169
111.वही, पृ. 206
112.वही, पृ. 271
113.वही, पृ. 351
114.वही, पृ. 382
115.वही, पृ. 404
116.वही, पृ. 414
117.वही, पृ. 463
118.वही, पृ. 466
119.वही, पृ. 467
120.वही, पृ. 485
121.वही, पृ. 506
122.वही, पृ. 523
123.वही, पृ. 547
124.वही, पृ. 564
125.वही, पृ. 596
126.वही, पृ. 596-597
127.वही, पृ. 653
128.वही, पृ. 654
129.वही, पृ. 655
130.वही, पृ. 651
131.वही, पृ. 671
132.वही, पृ. 676
133.वही, पृ. 682-685

134. वही, पृ. 686-687
135. वही, पृ. 688
136. वही, पृ. 712
137. वही, पृ. 753
138. वही, पृ. 774
139. वही, पृ. 777
140. अश्क : नन्ही सी लौ, मृख्य पृ. 1
141. अश्क : नन्ही सी लौ, पृ. 11
142. वही, पृ. 33
143. वही, पृ. 41-42
144. वही, पृ. 43
145. वही, पृ. 45
146. वही, पृ. 54
147. वही, पृ. 54
148. वही, पृ. 68-69
149. वही, पृ. 70-71
150. वही, पृ. 71
151. वही, पृ. 71
152. वही, पृ. 98
153. वही, पृ. 103
154. वही, पृ. 104
155. वही, पृ. 104
156. वही, पृ. 115
157. वही, पृ. 123
158. वही, पृ. 126
159. वही, पृ. 126
160. वही, पृ. 127
161. वही, पृ. 142
162. वही, पृ. 152
163. अश्क : बांधो न नाव इस ठांव, कवर पृ. 1

164. अश्क : बांधो न नाव इस ठांव, पृ. 48
165. वही, पृ. 51 (प्रस्तुत उद्धरण में लेखक ने निम्न-मध्य समाज के पनपते भाई-बहन का परस्पर के बेतुके प्यार का वर्णन किया है)।
166. वही, पृ. 57-58
167. वही, पृ. 79
168. वही, पृ. 80
169. वही, पृ. 110-111
170. वही, पृ. 111
171. वही, पृ. 112
172. वही, पृ. 112-113
173. वही, पृ. 251
174. वही, पृ. 369-370
175. वही, पृ. 371
176. वही, पृ. 546
177. वही, पृ. 598
178. वही, पृ. 642
179. वही, पृ. 645-646
180. अश्क : बांधो न नाव इस ठांव (दूसरा भाग), कवर पेज 1
181. अश्क : बांधो न नाव इस ठांव (दूसरा भाग), पृ. 22
182. वही, पृ. 55
183. वही, पृ. 67
184. वही, पृ. 177
185. वही, पृ. 183
186. वही, पृ. 205
187. वही, पृ. 251
188. वही, पृ. 332
189. वही, पृ. 347
190. वही, पृ. 474
191. वही, पृ. 487
192. वही, पृ. 538-539

193.वही, पृ. 539
194.वही, पृ. 539-540
195.अश्क : पलटती धारा, कवर पेज, पृ. 1
196.अश्क : पलटती धारा, पृ. 47
197.वही, पृ. 52
198.वही, पृ. 56
199.वही, पृ. 57-58
200.वही, पृ. 61
201.वही, पृ. 61
202.वही, पृ. 61
203.वही, पृ. 62
204.वही, पृ. 62
205.वही, पृ. 63
206.वही, पृ. 74-75
207.वही, पृ. 94
208.वही, पृ. 143
209.वही, पृ. 147
210.वही, पृ. 147
211.वही, पृ. 150
212.वही, पृ. 151
213.वही, पृ. 171
214.वही, पृ. 175
215.वही, पृ. 176
216.वही, पृ. 177
217.वही, पृ. 177
218.वही, पृ. 177
219.वही, पृ. 195
220.वही, पृ. 196
221.वही, पृ. 287-288
222.वही, पृ. 300

223. वही, पृ. 328
224. वही, पृ. 328
225. वही, पृ. 337
226. वही, पृ. 418
227. वही, पृ. 418-419
228. अश्क : निमिषा, प्रकाशकीय, पृ. 2
229. प्रेमचन्द : निमिषा, पृ. 10
230. अश्क : निमिषा, पृ. 16
231. वही, पृ. 19
232. वही, पृ. 20
233. वही, पृ. 21
234. वही, पृ. 24
235. वही, पृ. 26
236. वही, पृ. 26-27
237. वही, पृ. 34
238. वही, पृ. 36
239. वही, पृ. 37
240. वही, पृ. 40
241. वही, पृ. 40-41
242. वही, पृ. 67
243. वही, पृ. 79-80
244. वही, पृ. 80
245. वही, पृ. 81
246. वही, पृ. 85
247. वही, पृ. 85
248. वही, पृ. 86-87
249. वही पृ. 87
250. वही, पृ. 97
251. वही, पृ. 98
252. वही, पृ. 100

253.वही, पृ. 108
254.वही, पृ. 156
255.वही, पृ. 157
256.वही, पृ. 157
257.वही, पृ. 162-163
258.वही, पृ. 163-164
259.वही, पृ. 164
260.वही, पृ. 167
261.वही, पृ. 197
262.वही, पृ. 197
263.वही, पृ. 239
264.वही, पृ. 243
265.वही, पृ. 249
266.वही, पृ. 250
267.वही, पृ. 253
268.वही, पृ. 253, 256
269.वही, पृ. 256
270.वही, पृ. 267
271.वही, पृ. 286
272.वही, पृ. 287
273.वही, पृ. 287
274.वही, पृ. 294-295
275.वही, पृ. 316

❑

उपसंहार

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ होते-होते पूँजीवादी देशों की आपसी स्वार्थों की टकराहट इतनी तीव्र हो गयी थी कि इसमें मानवरहित व जनकल्याण गौण हो गये तथा यह स्वार्थ विश्व युद्ध का कारण बना। यह वह समय था, जब ब्रिटिश हुकूमत के दबदबे में भारत में निम्न-मध्यवर्गीय जिन्दगी का एक बड़ा स्पष्ट और नियमित स्वरूप उभर चुका था, जिस पर मध्यकालीन परम्पराओं, धार्मिक असंगतियों, निषेधों और विदेशी सत्ता से सीधे प्राप्त आज्ञाकारिता की पाबन्दियों की गहरी छाप थी। देश में कल कारखानों के लगने, आवागमन के साधनों के बढ़ने विशेषकर रेलों द्वारा प्रमुख नगरों के बीच सम्बन्ध स्थापित होने, सभ्यता की लहर तहजीव और शऊर के फैलने, सामान्य लोगों के जीवन में विकास की मंजिल पर विभिन्न प्रकार के राग-विराग और अन्तर्विरोधों के तीव्र होने तथा सामाजिक जीवन में अपना स्थान और उपयोगिता सिद्ध करने के प्रयास से शहराती, अर्ध-शहराती कस्बाती जीवन में एक ऐसी नागरिकता उभर कर सामने आ चुकी थी जो अपने तमाम प्रकार के बेमेल निहित स्वार्थी और जीवन पद्धति की घालमेल, अपेक्षाओं में अपने वर्गच्युत, त्रिशंकु, अनिर्णीत, अनिश्चित, सन्देहास्पद और ऊहापोहग्रस्त अस्तित्व का बोध कराती थी। सरलतापूर्वक हम इस नागरिकता की पहचान में उसे निम्न-मध्य वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं। हर एक सामाजिक प्राणी समाज में एक ऐसे मेहमान की तरह होता है, जो अपनी तमाम अपरिचय की स्थिति में बेगानेपन, अनात्मीय बोध, झिझक और अप्रत्याशितता के कारण समाज की विशालता में इधर से उधर भागता फिरता, मण्डराता और सन्देहास्पद उपयोगिता में बेमानी सिद्ध होता रहता है। वह जिस शोषित समाज और

कुत्सित संस्कृति के भ्रूण में से उत्पन्न होता है। उसमें उसकी सारी अवस्थिति, जिन्दगी की सतत् भटकन, आवारा अपेक्षाओं, गुमराह प्रतीतियों, दिशामूढ़ पहचानों, धरातल विहीन मान्यताओं, अबूझ आस्थाओं, और आधारहीन अपेक्षाओं का आकलन बन जाती है।

समाज में रहने वाला हर एक प्राणी समाज में अपने को महज पहचान पाने, अपनी जगह तलाश पाने, अपने होने और न होने के बीच के सम्बन्धों की पड़ताल कर पाने, अपने बारे में 'क्यों' और 'क्यों नहीं' की जिज्ञासाओं में रमते रहने में ही अपनी सारी जिन्दगी गुजार डालता है। सर्वाधिक धार्मिक आग्रहों, नैतिक प्रतिमानों, मूल्य सम्मत प्रतिज्ञाओं और लोकाचरण की कट्टरताओं में जीने को विवश यह सर्वाधिक धार्मिक जघन्यताओं, नैतिक विसंगतियों, मूल्य विसर्जित इरादों और अराजक छूटों में जीता रहता है। स्वयं 'अश्क' जी ने उपन्यास के विषय में कहा भी था—"उपन्यास जिन्दगी का शास्त्र है। इसमें सारी जिन्दगी का निचोड़ होता है। उपन्यास मैंने जिन्दगी के शास्त्र की तरह लिखा है। ऐ मेरे पाठको! ऐ मेरे बेटो! तुम जिन्दगी को समझो...।"[1]

'अश्क' जी की यह पक्ष और अभिप्राय सजगता प्रकटत: सामाजिक यथार्थ की चेतना सम्पन्न भावभूमि पर आधारित है। समाज में व्याप्त एकरसता, अनवरत दुराहट और निष्क्रिय आकांक्षाप्रियता के जितने भी व्यग्रता भरे, क्लोंच और उकताहट पैदा करने वाले, दयनीय, रिरियाहट ग्रस्त सीमित विवेकों में त्रासद और नियतिवादिता में घुटन भरे प्रसंग हो सकते हैं, उनके अत्यन्त खफीक, महीन, सूक्ष्म और लगभग अमूर्त तक लगने वाले पहलुओं की भी 'अश्क' जी को भरपूर जानकारी है, जिसका अपनी बेहतर किस्म की स्मृति के सहारे ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग वे करते हैं। इस सीमा तक कि ब्यौरों और तफसीलों में जाने की उनकी अथक वर्णनप्रियता प्राय: मूल या प्रयोजनीय कथा प्रसंगों को भटका देती है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना : को शोध का विषय बनाने के पीछे मेरा यही उद्देश्य रहा है कि 'अश्क' जी के उपन्यासों में चित्रित समाज और कृति सत्य जितना प्राणी के सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक यथार्थ से जुड़ा

है, उतना ही चेतन पात्रता से उसके जीवन के भ्रमजालों को दिशा–निर्देश देने वाली नियति से और अन्ततः एक निम्न–मध्यवर्गीय व्यक्ति की सपुंज नियति से।

'अश्क' जी ने पहली बार निम्न–मध्यवर्ग को अपने पूरे उपन्यासों में अस्तित्व और इतिहास सहित प्रस्तुत किया है जो समाज को एक नया दिशा बोध देने का सायास प्रयास है। यद्यपि यह समाज देश की स्वतन्त्रता से पूर्व का है तथापि आज परिस्थिति बदल जाने के बाद भी इसकी नियति में आमूल परिवर्तन नहीं हुआ है। इन अर्थों में लेखक को जीवन की आन्तरिक भ्रमजालिकता का बोध है, जो सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस विषय से जुड़े अनेक प्रश्नों को, इनके अन्तर्गत उठाया गया है तथा उनके समाधान की दिशा में एक छोटा–सा सार्थक प्रयास भी किया गया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में सामाजिक चेतना : के व्यवस्थित और सर्वांगीण अध्ययन के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को प्रस्तावना, उपसंहार और परिशिष्ट को छोड़कर छः अध्यायों में विभक्त किया जाता है।

प्रथम अध्याय में 'अश्क' जी के बहुरंगी तथा विविध धर्मी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन किया गया है। साहित्य में 'अश्क' जैसा अनुभवपूर्ण जीवन कम ही साहित्यकारों को मिला है। अत: उन अनुभवों को उनके जीवन को खतरों में जीने और खेलने का दम–खम दिया, जिसका रचनात्मक प्रतिफलन उनकी विभिन्न विधाओं के लेखन में हुआ। एक ही साथ वे उपन्यासकार, एकांकीकार, कहानीकार, कवि, आलोचक, अनुवादक, सम्पादक, अभिनेता, निर्देशक, संस्मरण तथा जीवनी लेखक तथा अन्य कई विधाओं में अपनी कलम की शक्ति तोलने वाले कृति व्यक्तित्व हैं।

उपन्यासकार अपने युग की परिस्थितियों से सीधे साक्षात्कार कराता है और कराना भी चाहिए, इसी हकीकत के रचनात्मक प्रयोगों में साहित्य और समाज तथा उपन्यास और समाज की पड़ताल की जा सकती है।

'अश्क' जी की दृष्टि में जो रूप उभरकर सामने आता है वह आज के समाज के लिए बहुत ही उपयोगी है। आपसी स्वार्थ और मतभेदों की लड़ाई में पिसता मानव जीवन

कब तक अधोगति को प्राप्त होता रहेगा, यह चिन्ता 'अश्क' जी के सम्पूर्ण साहित्य में ध्वनित होती है। वे व्यक्ति को समाज से समाज को व्यक्ति से अलग करके देखने के अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें दोनों एक-दूसरे के पूरक लगते हैं।

इस अध्याय में 'अश्क' जी की 'औपन्यासिक रचना दृष्टि' शीर्षक के अन्तर्गत 'अश्क' जी का संक्षिप्त जीवन और सृजन परिचय, उपन्यास और समाज के सम्बन्धों का विवेचन और उनके सामाजिक दृष्टिकोण का विवेचन विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के **द्वितीय अध्याय** में 'अश्क' जी के उपन्यास और समकालीन परिवेश को चित्रित किया गया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' स्वाधीन भारत के ऐसे उपन्यासकार हैं, जिनकी रचनाओं में हमें स्वाधीनता के पूर्व का समाज और आज के समाज के प्रमाणित चित्र प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं। रचनाकार की दृष्टि उसकी रचना में उसकी प्रतिभा, कला और जीवनानुभवों के माध्यम से जिस प्रकार छनकर आती है उसी में उसकी शक्ति और उसका उद्देश्य स्पष्ट होता है। एक अन्यन्त प्रखर मानवीय संवेदना और समाज को अपने गहरे लगाव के कारण विकासोन्मुख देखने के इच्छुक 'अश्क' जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में समाज के सारे परिदृश्यों को प्रस्तुत करने का साहस पूर्ण उद्यम किया है।

'अश्क' जी ने तत्कालीन और वर्तमान समाज की जीवन रीति-स्वभाव, संस्कार, विचार पद्धति, विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक बुराइयों, उसकी आन्तरिक कुण्ठाओं एवं दमित इच्छाओं का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक शैली में किया है। वस्तुत: उनकी रचनाओं में प्रारम्भ से ही यथार्थ का वह आलोचनात्मक रूप मिलता है, जो प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास की विशेषता है। नवीन युग के अनेक उपन्यासकारों की भाँति वे यथार्थ की जिन्दगी में बह जाने का अनुमोदन नहीं करते।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में 'अश्क' जी के उपन्यास और समकालीन परिवेश शीर्षक के अन्तर्गत रचनाकार का युग परिवेश (स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज की पूर्व पीठिका, नव जागरण, साहित्य में उसकी छवि, भाषा कौशल) और 'अश्क' के उपन्यासों

में समाज और सामाजिक संरचना की वर्गीय भूमिका तथा सामाजिक स्वातन्त्र्य दशा और दिशाओं तथा अन्य विविध पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

शोध प्रबन्ध के **तृतीय अध्याय** में 'अश्क' जी के उपन्यासों में परिवेशगत वैशिष्ट्य एवं वैचारिक सृष्टि की चर्चा हुई है। प्रस्तुत प्रबन्ध में 'अश्क' जी के उपन्यासों में परिवेश पर विचार प्रस्तुत किया गया है। 'अश्क' जी के उपन्यासों में परिवेश विभिन्न रूपों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक तथा धार्मिक परिवेश की विस्तार से चर्चा की गई है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास से लेकर 'बांधो न नाव इस ठांव' तक की उपन्यास माला, जैसा कि कहा जा चुका है कि सामाजिक चेतना और समाज को नया दिशा बोध कराने में अपनी सम्पूर्ण सजीवता, यथार्थता एवं रोचकता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इस प्रकार समाज के वातावरण और परिवेश को इन उपन्यासों में 'अश्क' जी ने इतनी सूक्ष्मता से उभारा है कि आलोचकों को यह कहना पड़ा है कि हिन्दी जगत में अन्य कोई ऐसा साहित्यकार नहीं, जिसने 'अश्क' से अधिक एकाग्रता और अधिक परिमाण में समाज को लेकर साहित्य का निर्माण किया हो। हिन्दी में आज 'अश्क' इस वर्ग में सबसे बड़े साहित्यकार हैं।

प्रस्तुत अध्याय में स्वाधीन भारतीय समाज का वैचारिक धरातल और 'अश्क' के उपन्यासों में उसका दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के **चतुर्थ अध्याय** में 'अश्क' के उपन्यासों में पात्र सृष्टि एवं उनका सामाजिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रमुख पुरुष पात्रों और प्रमुख स्त्री पात्रों के मध्य सामाजिक दायित्व बोध का ज्ञान कराना है। पात्र, उसका स्वरूप, पात्र संख्या, पात्रों के वर्ग, चरित्र-चित्रण का महत्त्व, चरित्र-चित्रण की विधि आदि का सामाजिक दायित्व बोध की चर्चा की गई है। 'अश्क' के उपन्यासों के चरित्र विधान की प्रवृत्तियों पर विचार करने के साथ ही उसके अन्य पहलुओं पर भी विचार किया गया है। उनके सभी उपन्यासों में आये पुरुष व स्त्री पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालने की पुरजोर कोशिश हुई है।

इसी अध्याय के अन्तर्गत 'अश्क' जी ने कालजयी पात्र सृष्टि और उनमें व्याप्त संघर्ष, जिजीविषा और विद्रोह का भी सफल प्रयोग किया है। 'अश्क' जी के सामाजिक जिन्दगी के अनुभवों को देखकर आश्चर्य होता है। पाठक जिन विषयों को जानना चाहता है, 'अश्क' जी उससे आगे बताते चलते हैं। यही कारण है कि 'अश्क' जी अपने उपन्यासों को लिखकर स्वयं को ही दोहराने-तिहराने लगते हैं। असल में अपने भोगे हुए व अनुभवों की समृद्धि और समाज में जन सामान्य से हार्दिक जुड़ाव ही रचना को यथार्थ और कालजयी बनाता है, यह प्रदर्शन 'अश्क' जी में सघन मात्रा में है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के **पंचम् अध्याय** में 'अश्क' के उपन्यासों में चित्रित समाज के विविध वर्गों का वर्णन किया गया है जिसमें उच्च वर्ग, मध्य वर्ग व निम्न वर्ग का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'अश्क' जी ने अपने उपन्यासों में यद्यपि अधिकांशत: निम्न व मध्य वर्ग का ही वर्णन किया है, परन्तु उच्च वर्ग का वर्णन भी कम नहीं हुआ है। 'बांधो न नाव इस ठांव' उपन्यास में अधिकांशत: उच्च वर्ग का ही वर्णन किया गया है। 'अश्क' जी ने पहली बार अपने उपन्यासों में 'पत्थर-अल-पत्थर' उपन्यास में निम्न वर्ग का यथार्थ रूप में हसनदीन के माध्यम से चित्रण किया गया है। वर्तमान में भी समाज में निम्न वर्ग पर इसी तरह अत्याचार और उसका शोषण किया जाता है जो समाज की उन्नति में एक विकराल समस्या है। यदि हमें समाज का सम्पूर्ण विकास और उन्नति करनी है तो सभी वर्गों को समानता और सम्मान देना होगा।

शोध प्रबन्ध के **षष्ठ अध्याय** में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय : एक विवेचन पर विस्तार से विचार किया गया है। इसमें 'अश्क' जी के 16 उपन्यासों का विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है जिनमें 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें' (चेतन संक्षिप्त), 'गर्म राख' (संघर्ष का सत्य), 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील' (नन्ही सी लौ), 'बांधो न नाव इस ठांव' (दो भाग), 'छोटे-बड़े लोग', 'एक रात का नरक', 'निमिषा', 'पलटती धारा' प्रमुख हैं।

प्रस्तुत अध्याय के उपर्युक्त सभी उपन्यासों में 'अश्क' जी ने समाज में नारी की दयनीय स्थिति, शोषण के विरुद्ध आवाज, अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह, धार्मिक शोषण, दमित वासनाओं, कुण्ठा, निराशा, अंध-विश्वासों आदि सामाजिक समस्याओं पर विचार करने के साथ ही उनके उपन्यासों में वर्ण्य विषय और प्रतिपाद्य पर भी विचार किया गया है।

सारांशत: इस शोध प्रबन्ध में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी के लगभग सभी उपन्यासों में सामाजिक चेतना को पर्याप्त उल्लेखनीय प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है तथापि उनका प्रथम उपन्यास 'सितारों के खेल' (1940) एक पौराणिक कथा पर आधारित है। आपका दूसरा उपन्यास 'गिरती दीवारें' (1946) बहुत अधिक चर्चित रहा है, जो छ: खण्डों में विभाजित है—'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील', 'बांधो न नाव इस ठांव' (दो भाग), 'पलटती धारा'। यह उपन्यास तत्कालीन सामाजिक जीवन का सच्चा दस्तावेज कहा जाय तो अतिरंजना न होगी। इसमें लेखक ने सन् 1935-40 के आस-पास के भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय जीवन को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। उन्होंने निम्न-मध्यवर्गीय युवकों की महत्त्वाकांक्षाओं, विवशताओं एवं असफलताओं के चित्र को सामाजिक विडम्बनाओं के परिप्रेक्ष्य में बड़ी कुशलता से उभारने का प्रयत्न किया है। लेखक की दृष्टि मुख्य रूप से समाज में निम्न-मध्य वर्ग के जीवन के यथार्थ चित्रण की ओर ही केन्द्रित रही है।[2]

'अश्क' जी ने अपने सम्पूर्ण उपन्यासों में जिस अस्थिर और ढुलमुल समाज की कथा कही है। सामाजिक चेतना से सम्बन्धित सारे तथ्यों को ध्यान में रखें तो भैरव प्रसाद गुप्त का यह कथन हमें अधिक सही लगता है कि—"'अश्क' समाज की चीख हैं और यही उनमें सबसे बड़ी महत्त्व की वस्तु है। वे समाज को नंगा करके रख देते हैं, उसकी एक-एक तह को कुरेद-कुरेद कर सामने ला देते हैं। उनमें व्यंग्य सीधे, तीखे और तिलमिला देने वाले हैं। एक कुशल सर्जन की तरह 'अश्क' समाज के हर वर्ग के जख्म, फोड़े में निरन्तर मरहम लगाना जानते हैं। 'अश्क' समाज की विविध समस्याओं को उठा देते हैं, उनके हल वे पेश नहीं करते। लेकिन वे उन कुरीतियों का, बुराइयों का समाज के

फोड़ों का चित्रण इस तरह करते हैं कि पाठक के मन में उन बुराइयों को दूर करने की, उन फोड़ों का इलाज करने की प्रबल आकांक्षा जाग उठती है। यह सब बदलना चाहिए, यह सब बदलना चाहिए, पाठक का मन पुकार-पुकार कर कह उठता है।"[3]

समाज के निम्न-मध्य वर्ग का चित्रण करते हुए 'पत्थर-अल-पत्थर' की भूमिका में भैरव प्रसाद गुप्त ने लिखा है—"यह निम्न-मध्य वर्ग एक ढुलमुल वर्ग है, जिसका कोई एक नैतिक स्तर नहीं, एक व्यवसाय नहीं, एक जीवन नहीं, एक आचरण नहीं। यह संक्रान्ति की पैदावार है। यह आकाश का स्वप्न देखता है और धरती से नफरत करता है और दोनों के बीच त्रिशंकु की तरह लटका रहता है। इसे समझ लेना आसान नहीं पकड़ लेना सरल नहीं, चित्रित करना सहज नहीं, इस बीहड़ जंगल में पाँव रखना साहस का काम है।"[4]

समग्रत: 'अश्क' जी की इस उपन्यास माला को 'सामाजिक चेतना का महाकाव्य' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

हिन्दी के सर्वाधिक विवादग्रस्त, समर्पित और जीवन्त रचनाकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने इलाहाबाद के स्वरूप रानी नेहरू चिकित्सालय में 19 जनवरी, 1996 को आखरी साँसें लीं। उपन्यासकार, नाटककार, कथाकार, कवि और निबन्ध लेखक 'अश्क' जी एक क्रियाशील रचनाकार के तौर पर ही नहीं बल्कि एक सजग और निष्ठावान शख्स के रूप में भी चर्चित रहे। प्रखर चेतना और निर्भीक वाणी के जरिये साहित्यिक और साहित्येतर मोर्चों पर अनेक लड़ाइयाँ लड़ने वाले 'अश्क' जी का बचपन और युवावस्था अभावों और विपन्नता में बीता एवं उनका सामाजिक परिवेश व उनके माता-पिता के परस्पर विरोधी स्वभाव, उनके संवेदनशील मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गये।

इसी परिवेश ने उन्हें आगे चलकर भारतीय समाज की चेतना के सच्चे और व्यापक चित्रण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व उपयुक्त मिजाज दिया।

प्रेमचन्द ने जिस हिन्दुस्तानी अदब की बुनियाद रखी थी, 'अश्क' उसकी उल्लेखनीय उपलब्धि के रूप में हमेशा-हमेशा याद किए जाएंगे।

'अश्क' जी ने हिन्दी साहित्य को जो कुछ भी दिया, उसकी कीमत आंक पाना आसान नहीं है जितनी बड़ी उनकी उम्र थी, उससे कहीं बड़ी उनकी साहित्य साधना थी। उन्होंने साहित्य की हर विधा में अपनी कलम का जोर आजमाया और पूरी लगन, परिश्रम एवं योग्यता के उचित प्रयोग से उसे बनाया, संवारा। आधुनिक हिन्दी साहित्य की इस बेजोड़ हस्ती के दुनिया से उठ जाने से साहित्य जगत को करारी चोट पहुँची हैं। भारतेन्दु के बाद हिन्दी साहित्य की अनेकानेक गतिविधियों का केन्द्र यदि कोई एक रचनाकार था तो वह 'अश्क' जी ही थे। अत: समग्रत: कहा जा सकता है कि 'अश्क' जी सामाजिक चेतना के एक ऐसे अग्रदूत और क्रान्तिकारी कदम थे जो आज के सामाजिक के लिए एक अमिट पद चिह्न छोड़ गये। ऐसे साहित्यिक साधक को शत-शत नमन।

सन्दर्भ

1. सुदर्शन वशिष्ठ : टेरता पाखी, पृ. 20
2. बीना श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना, पृ. 106
3. भैरव प्रसाद गुप्त : पत्थर-अल-पत्थर
4. वही, पृ. 23

❑

परिशिष्ट

(1) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का आलोच्य कथा साहित्य
(2) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

परिशिष्ट–I

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का आलोच्य कथा साहित्य

उपन्यास

1. सितारों के खेल (1940)
2. गिरती दीवारें (1946) (अ) चेतन वृहद्, (ब) चेतन संक्षिप्त
3. गर्म राख (1952) (अ) संघर्ष का सत्य
4. बड़ी–बड़ी आँखें (1955)
5. पत्थर–अल–पत्थर (1957)
6. शहर में घूमता आईना (1961)
7. एक नन्ही किन्दील (1969)
8. बांधो न नाव इस ठांव (पहला घाट) (1974) (अ) छोटे–बड़े लोग
9. बांधो न नाव इस ठांव (दूसरा घाट) (1974)
10. एक रात का नरक
11. निमिषा
12. पलटती धारा
13. चन्द्रा (अप्रकाशित)

कहानी संग्रह

1. सत्तर श्रेष्ठ कहानियां
2. उबाल और अन्य कहानियाँ
3. छींटे
4. जुदाई की शाम का गीत
5. काले साहब
6. बैंगन का पौधा
7. आकाशचारी
8. पिंजरा

9. कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल
10. दो धारा
11. 'अश्क' की श्रेष्ठ कहानियाँ
12. चाचा राम दित्ता
13. ये राजे : ये ऋषि
14. दूरदर्शी लोग
15. ग्रामोफोन नहीं बजेगा
16. पलंग
17. उर्दू की बेहतरीन कहानियाँ
18. मेरी दुनिया

नाटक

1. लौटता हुआ दिन
2. बड़े खिलाड़ी
3. आदि मार्ग
4. जय–पराजय
5. पैंतरे
6. कैद और उड़ान
7. अंजो दीदी
8. अलग–अलग रास्ते
9. छठा बेटा
10. स्वर्ग की झलक
11. भँवर
12. मेरा नाम बिएट्रिस है
13. एक और कालिदास
14. आंधियाँ बोने वाले
15. विद्रोही
16. लम्बे दिन की यात्रा रात में
17. क्षितिज के पार
18. हित चिन्तक
19. अभिशप्त

एकांकी

1. मुखड़ा बदल गया
2. पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी
3. पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ
4. साहब को जुकाम है
5. तूफान से पहले
6. चरवाहे
7. देवताओं की छाया में
8. अंधी गली
9. प्रतिनिधि एकांकी
10. नये रंग एकांकी
11. उर्दू के बेहतरीन एकांकी

काव्य

1. एक दिन आकाश ने कहा
2. स्वर्ग एक तलघर है
3. अदृश्य नदी
4. पीली चोंच वाली चिड़िया के नाम
5. अदृश्य सड़कों पे ढले साये
6. खोया हुआ प्रभामण्डल
7. दीप जलेगा
8. चाँदनी रात और अजगर
9. बरगद की बेटी
10. उर्दू की बेहतरीन नज्में
11. उर्दू की बेहतरीन गजलें
12. प्रात: प्रदीप
13. उर्म्मियाँ

संस्मरण / जीवनी

1. बेदी : मेरा हमदम मेरा दोस्त
2. 'अश्क' : एक रंगीन व्यक्तित्व
3. चेहरे अनेक (पाँच खण्ड)
4. फिल्मी जीवन की झलकियां I
5. फिल्मी जीवन की झलकियां-II
6. मंटो : मेरा दुश्मन
7. ज्यादा अपनी कम परायी
8. रेखाएँ और चित्र
9. परतों के आर पार
10. आस्माँ और भी हैं
11. उर्दू के बेहतरीन संस्मरण
12. शिकायतें और शिकायतें
13. तूफानी लहरों में हँसता मांझी
14. उदास फूल की मुस्कान
15. उगते सूरज का दर्शक

अनुवाद

1. ये आदमी ये चूहे (उपन्यास) — जॉन स्टाइन बेक
2. रंग साज (उपन्यास) — चेखब
3. हिज एक्सलेंसी (उपन्यास) — दास्तोयेब्स्की
4. लम्बे दिन की यात्रा रात में (नाटक) — ओ नील
5. क्षितिज के पार (नाटक) — ओ नील
6. अभिशप्त (नाटक) — ओ नील
7. हित चिन्तक (नाटक) — थार्नटन वाइल्डर

आलोचना

1. अन्वेषण की सहयात्रा
2. हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय
3. हिन्दी कहानियाँ और फैशन
4. हिन्दी नाटक और रंगमंच
5. उर्दू काव्य की एक नयी धारा
6. आधी जमीन
7. नाटककार 'अश्क'

निबन्ध / हास्य–व्यंग्य

1. खोने और पाने के बीच
2. छोटी–सी पहचान
3. उस्ताद की जगह खाली है
4. उर्दू की बेहतरीन हास्य–व्यंग्य
5. कुछ दूसरों के लिए

साक्षात्कार / समालाप

1. साक्षात्कार और विचार–1
2. साक्षात्कार और विचार–2
3. साक्षात्कार और विचार–3
4. गिरती दीवारें : दृष्टि–प्रतिदृष्टि
5. कहानी के इर्द–गिर्द
6. आमने–सामने
7. विवादों के घेरे में
8. हम कहें आप कहो

सम्पादित ग्रन्थ / संकलन

1. संकेत : हिन्दी
2. संकेत : उर्दू
3. कथा कुंज
4. प्रतिनिधि एकांकी
5. नये रंग एकांकी
6. 'अश्क' : 75 (दो भाग)

❑

परिशिष्ट–II

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	साहित्यकार 'अश्क'	—	डॉ. कपिल देव राय
2.	नाटककार 'अश्क'	—	जगदीश चन्द्र माथुर
3.	'अश्क' के उपन्यास : कथ्य और शिल्प	—	डॉ. श्रीमती वीणा पाणि
4.	उपन्यासकार 'अश्क'	—	डॉ. इन्द्रनाथ मदान
5.	उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	—	डॉ. कुलदीप चनद्रगुप्त
6.	'अश्क' : एक रंगीन व्यक्तित्व	—	नरेश मेहता
7.	'अश्क' के उपन्यास और पत्थर-अल-पत्थर	—	भैरव प्रसाद गुप्त
8.	उपन्यासकार 'अश्क'	—	डॉ. शिवदान सिंह चौहान
9.	उपन्यासकार 'अश्क'	—	डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण
10.	'अश्क' : व्यक्तित्व और कृतित्व	—	डॉ. (श्रीमती) कमल गुप्ता
11.	'अश्क' आधी मंजिल पर : उपन्यासकार 'अश्क'	—	शमशेर बहादुर सिंह
12.	'अश्क' के उपन्यास : एक विवेचन	—	शिवनारायण श्रीवास्तव
13.	महिला उपन्यासकार मूल्य चेतना	—	डॉ. शकुन्तला गर्ग
14.	सामाजिक चेतना और श्रीलाल शुक्ल का पहला पड़ाव	—	कौशल्या
15.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	—	डॉ. भैंरूलाल गर्ग

16. नारी उत्पीड़न : समस्या और समाधान — डॉ. हरिदास रामजी शेण्डे
17. साठोत्तरी कहानी में मानवीय मूल्य — विनिता अरोड़ा
18. यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डॉ. ह. श्री साने
19. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना — रवि कुमार 'अनु'
20. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना — डॉ. शिवशंकर त्रिवेदी
21. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डॉ. श्रीमती शोभा पालीवाल
22. समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना — डॉ. किरण बाला
23. हिन्दी उपन्यास : पंजाब का सांस्कृतिक सन्दर्भ — डॉ. रविकुमार 'अनु'
24. हिन्दी उपन्यास और सर्वहारा वर्ग — डॉ. शकुन्तला गर्ग
25. स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य — डॉ- रामविलास शर्मा
26. इण्डिया टुडे — रजनी पामदत्त
27. हिन्दी उपन्यास के शिखर — डॉ. हेमराज निर्मम
28. हिन्दी उपन्यास : आधुनिक विचारधारा — डॉ. सुमित्रा त्यागी
29. टेरता पाखी — सुदर्शन वशिष्ठ
30. आज का हिन्दी उपन्यास — डॉ. इन्द्रनाथ मदान
31. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास — अतुलवीर अरोड़ा
32. मध्यमवर्गीय चेतना व हिन्दी उपन्यास — डॉ. भूपसिंह भूपेन्द्र
33. हिन्दी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य — डॉ. सुदेश बत्रा
34. हिन्दी उपन्यास कला — प्रताप नारायण टण्डन
35. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में मध्यवर्गीय चेतना — डॉ. रमेशचन्द्र वर्मा
36. समकालीन सिद्धान्त और साहित्य — डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

37.	हिन्दी उपन्यास का नया इतिहास	—	डॉ. रामखिलावन पाण्डेय
38.	हिन्दी उपन्यास	—	डॉ. रामदरश मिश्र
39.	हिन्दी उपन्यास	—	डॉ. मक्खनलाल शर्मा
40.	आलोचना	—	नलिन विलोचन शर्मा
41.	आधुनिक साहित्य	—	नन्द दुलारे वाजपेयी
42.	हिन्दी उपन्यास : युग चेतना व पाठकीय संवेदना	—	डॉ. मुकुन्द द्विवेदी
43.	सितारों के खेल : एक विवेचन	—	ओंकार 'शरद'
44.	हिन्दी उपन्यास : उद्भव व विकास	—	डॉ. सुरेश सिन्हा
45.	उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ	—	डॉ. सुरेश सिन्हा
46.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव व विकास	—	डॉ. बेचन
47.	हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण और उसका विकास		डॉ. रणवीर रांगा
48.	ज्योत्स्ना	—	डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण
49.	भाषा संवेदना	—	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
50.	उपन्यास और लोक जीवन	—	रेल्फ फॉक्स
51.	एट्टीन फिफ्टी सेवन	—	सुरेन्द्रनाथ सैन
52.	भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज	—	जगमोहन सिंह और चमनलाल
53.	मॉडर्न रिलीजियस मूवमेन्ट इन इण्डिया	—	फर्कुहर
54.	आस्था और सौन्दर्य	—	डॉ. रामविलास शर्मा
55.	मानव समाज	—	राहुल सांकृत्यायन
56.	कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र	—	कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स
57.	हिन्दी उपन्यास में मानवतावाद	—	डॉ. रणवीर सिंह
58.	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	—	डॉ. शशिभूषण सिंहल
59.	सफेदपोश : भारतीय मध्यम वर्ग : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	—	डॉ. श्रीनाथ सहाय
60.	आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यम वर्गीय चेतना	—	वीणा गौतम

61. हिन्दी उपन्यासों में मध्यम वर्ग — डॉ. मंजुलता सिंह
62. मिडिल क्लासेज इन इण्डिया — डॉ. नासिर अहमद खान
63. दी इण्डियन मिडिल क्लासेज — वी.वी. मित्र
64. इण्डियन हेरिटेज — हुमायूँ कबीर
65. विचार और वितर्क — डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
66. कुछ विचार — प्रेमचन्द
67. मुक्तिबोध रचनावली (भाग 6 में संकलित भारत इतिहास और संस्कृति) — गजानन माधव 'मुक्तिबोध'
68. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद — डॉ. त्रिभुवन सिंह
69. The Writers geative individuality and the development of lituate. — M. Khrapchenko
70. हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास — डॉ. प्रतापनारायण टण्डन
71. हिन्दी उपन्यास — सुषमा धवल
72. परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य — डॉ. हेतु भारद्वाज
73. गिरती दीवारें : एक विवेचन — डॉ. कृष्णदेव शर्मा, डॉ. माया अग्रवाल
74. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास — डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
75. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास — डॉ. सत्यपाल चुघ
76. हिन्दी उपन्यासों में मध्यम वर्ग — ओम प्रभाकर
77. उपन्यास का समाजशास्त्र — डॉ. बी.डी. गुप्ता
78. हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक सम्बन्ध — डॉ. उषा मन्त्री
79. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 व 2 — डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती
80. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना — विजय मोहन सिंह
81. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास — डॉ. यश गुलाटी
82. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा — परमानन्द श्रीवास्तव

83. साहित्यानुशीलन — शिवदान सिंह चौहान

84. हिन्दी का गद्य साहित्य — डॉ. रामचन्द्र त्रिपाठी

85. हिन्दी कथा साहित्य — पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

86. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विधान — डॉ. बेचन

87. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन — डॉ. एस.एन. गणेशन

88. समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना — डॉ. गोविन्द रजनीश

89. हिन्दी गद्य का उद्भव व विकास — डॉ. उमेश शास्त्री

संस्कृत साहित्य

1. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ

2. काव्य मीमांसा — राजशेखर

3. काव्य प्रकाश — मम्मट

4. नाट्यशास्त्र — भरतमुनि

5. वक्रोक्तिजीवितम् — कुंतक

अंग्रेजी साहित्य

1. Sociology — J.H. Fichtar

2. Human Society — Kingstley Devis

3. The Social Structure of values — R.L. Mukharji

4. The Development of Social — Bogardus Thought

शब्दकोश

1. नालन्दा अध्येतन कोष — पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल

2. मानक हिन्दी कोष — रामचरन वर्मा

3. हिन्दी साहित्य कोष — धीरे वर्मा

4. आदर्श हिन्दी शब्द कोष — पं. रामचन्द्र पाठक

5. मानविकी शब्दावली-2 — इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स पोर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिस डिक्शनरी

6. संस्कृत हिन्दी कोष — वामन शिवराम आप्टे

7. मानक हिन्दी अंग्रेजी कोष — सम्पा. सत्यप्रकाश तथा बलभद्रप्रसाद मूल सम्पा. श्यामसुन्दर दास

8. हिन्दी शब्द सागर — नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

पत्र–पत्रिकाएँ

1. मधुमती — वेद व्यास
2. हंस — राजेन्द्र यादव
3. अपेक्षा — डॉ. तेज सिंह
4. नया ज्ञानोदय — रवीन्द्र कालिया
5. वागर्थ — एकान्त श्रीवास्तव
6. सारिका —
7. आलोचना —
8. दैनिक नवज्योति —
9. धर्मयुग —
10. इलेस्ट्रेट वीकली —
11. साहित्य संदेश —
12. दिनमान —
13. आजकल —
14. माधुरी (1926) —
15. नया पथ —
16. कथादेश —
17. तद्भव —
18. वीणा —
19. नवनीत —
20. कादम्बिनी —
21. साहित्य अमृत —
22. वसुधा —

23.	समकालीन भारतीय साहित्य	—
24.	वैचारिकी	—
25.	नया साहित्य	—
26.	शोध यात्रा	—
27.	इन्द्रप्रस्थ भारती	—
28.	दैनिक भास्कर	—
29.	राष्ट्रदूत	—
30.	जनसत्ता	—
31.	दैनिक आज तक	—
32.	सरस्वती (1926)	—
33.	चाँद (1927)	—
34.	सुधा (1927)	—
35.	क्षत्रिय (1927)	—
36.	बालसखा (1927)	—
37.	लहर (1968)	—
38.	पंजाब केसरी	—

❑❑❑

शोध–पत्र प्रकाशन